तीसरा नेत्र

अरुण कुमार शर्मा

तीसरा नेत्र

[योग-तंत्र साधना प्रसंग]

❖

प्रथम खण्ड

❖

अरूण कुमार शर्मा

संकलन

मनोज शर्मा

❖

आस्था प्रकाशन

वाराणसी

❖ प्रकाशक
आस्था प्रकाशन
बी. 5/23 हरिश्चन्द्र रोड,
वाराणसी – 221 001 (उ.प्र.)
दूरभाष : 313775/312293

❖ प्रथम संस्करण
सन् 1999 ई.
(सर्वाधिकार लेखक के आधीन)

❖ मूल्य – 250/–

❖ वर्णाक्षर संयोजन
ग्राफिक्स मीडिया
लेन – 16, रविन्द्रपुरी, वाराणसी – 5

लेखक की पूर्व अनुमति के बिना पुस्तक के किसी भी अंश का किसी भी रूप में प्रकाशन तथा किसी अन्य भाषा में अनुवाद अथवा उपयोग पुर्णरूप से प्रतिबन्धित है।

प्रकाशक

आगम निगम संस्थान

द्वारा

द्वारा प्रस्तुत

मणिभद्रा

हिमालय और तिब्बत के प्रच्छन्न, अप्रच्छन्न

सन्त महात्माओं एवं योगी साधकों की

स्मृति में

जिनसे आध्यात्मिक सत्संग का

परिणाम

है

तीसरा नेत्र

मेखला

माँ महामाया के प्रति उद्‌गार

हे मां ! कितना अनुग्रहीत हूँ मैं, कैसे कहूँ ? तुमने मुझे अमूल्य और देव दुर्लभ शरीर दिया है और मानव जीवन। जिसको प्राप्त करने की पात्रता मुझमें नहीं थी। मुझे तुमने ब्राह्मण कुल में जन्म लेने का अवसर दिया और इसके अतिरिक्त रूप, सौन्दर्य, और आकर्षक व्यक्तित्व भी दिया। जिन्हें प्राप्त करने का अधिकारी मैं नहीं था। तुमने मुझे जीवन में सभी प्रकार के सुख और आनन्द प्रदान किये, जिनका भी अधिकारी मैं नहीं था। सचमुच तुम्हारे अनुग्रह तुम्हारी अनुकम्पा तुम्हारी करूणा और तुम्हारी दया, कृपा के भार से दब सा गया हूँ मैं। यदि तुम्हारे दिए इस पुनीत जीवन यात्रा में मैंने किसी भी प्रकार का दुख, कष्ट और किसी भी प्रकार की पीड़ा, व्यथा, आदि पायी है तो निश्चित ही मेरी कोई भारी भूल रही होगी। तुम्हारा दिया हुआ यह मानव जीवन अत्यधिक आनन्दमय है और सुखों से है पूर्ण।

मुझे मुक्ति नहीं चाहिए माँ, मोक्ष की भी कामना नहीं है मुझमें, महामाया। यदि तूने मुझे योग्य समझा है तो बार–बार मुझे मानव जीवन देती रहना। मैं बार–बार मानव शरीर और मानव जीवन चाहता हूँ, इसलिए कि प्रत्येक जीवन में अपनी पुस्तकों के माध्यम से तुम्हारी सेवा अर्चना करता रहूँ। बस, यही है मेरी कामना, और यही है मेरी याचना। मुझे पूर्ण आशा और पूर्ण विश्वास है कि तुम अवश्य स्वीकार करोगी मेरे इस अन्तिम विनय को।

मेरा जीवन अचिन्त्य महामाया
की एक लीला
अरूण कुमार शर्मा

कनखला

समत्व योग उच्चते यह मेरा परम आदर्श है।
सम भाव और समदृष्टि-यह मेरा जीवन दर्शन है।

समत्व ही मेरे लिए परम योग हैं,
जिसके मार्ग का पथिक हूँ मैं।

योग चित्त वृत्ति निरोधः -
मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखता।

- अरूण कुमार शर्मा

कलकलपा

* अन्तर्वस्तु-क्रम *

क्र०		पृष्ठ सं०
१.	प्रकाशकीय	१
२.	पुस्तक के सबंध में	३
३.	अपनी बात	१०
४.	प्राक्कथन	१३

अध्याय - १

१.	रहस्यमय देश तिब्बत	३३
२.	मेरी तिब्बत यात्रा का प्रेरणास्रोत	३५
३.	यात्रा का लक्ष्य	३६
४.	एक बौद्ध सन्यासिनी से साक्षात्कार	३७
५.	साधिका पद्मगन्धा	३७
६.	सत्संग	३९
७.	आत्मा की जागृत अवस्था	४५
८.	रहस्यमय मस्तिष्क	४८
९.	रहस्यमय मानव मस्तिष्क	४८
१०.	स्मरण शक्ति	५१
११.	मानसिक शक्ति का विकास	५१
१२.	बहिर्चेतना और आन्तेंचेतना	५३
१३.	विचारों की अदृश्य तरंगे	५४
१४.	रहस्यमय कपाल प्रदेश और विचार शक्ति	५४

१५. महाचिति शक्ति ५६

१६. योग-तांत्रिक सिद्धियों के मूल में विचार शक्ति ५७

१७. आन्तर ज्ञान वैज्ञानिको की दृष्टि में ५८

१८. ब्रह्माण्डीय चेतना और परम ज्ञान ५९

१९. आन्तर ज्ञान और परम ज्ञान ६०

२०. वेदान्त की माया और धर्म ग्रन्थ ६५

२१. निर्विकल्प अवस्था प्राप्त एक योगी ६५

२२. विज्ञान की दृष्टि में प्रभामण्डल ६६

२३. सम्मोहन कैसे होता हैं ६८

२४. प्रभामण्डल यानी विद्युत क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन ६९

२५. योगियों के चमत्कार ७१

२६. कुण्डलिनी और शक्तिपात में वैज्ञानिक दृष्टि ७१

२७. एक सन्त के विचार ७२

२८. अध्यात्म क्या है? ७३

२९. शरीर और आत्मा ७४

३०. प्राण शक्ति ७४

३१. प्राण शक्ति का विकास और उसका परिणाम ७५

३२. सूक्ष्म शरीर की यात्रा का विचित्र अनुभव ७६

३३. वह रहस्यमय रोमाञ्चकारी दृश्य ८०

३४. जब वह बौद्धभिक्षुणी अन्तर्ध्यान हो गयी ८४

३५. अदृश्य होने की घटनाएँ ८६

३६. अन्तर्ध्यान विज्ञान की कसौटी पर ८७

३७. आइंस्टीन की यूनीफाइड फिल्ड थ्योरी ८९

३८. मानसरोवर का वातावरण ९३

३९. मानसरोवर में कभी आठ मठ थे ९४

अध्याय - २

१. पद्मगन्धा से भेंट और मानसरोवर की वह रहस्यमयी गुफा ८७

२. पद्मगन्धा का पूर्व पार्थिव शरीर ८९

३. शरीर का मूल्य और महत्व १००

४. मानव शरीर में महा शक्ति के दस केन्द्र १०१

५. वह अद्भुत प्रकाश पुञ्ज और तथागत् का आत्म शरीर १०२

६. बौद्ध दीक्षा के पूर्व पद्मगन्धा की जीवनगाथा १०४

७. श्रेष्ठी विरूढ़क १०५

८. स्वेच्छा चारिणी पटाचारा १०५

९. क्रोध और अहंकार की मूर्ति पटाचारा १०६

१०. भगवान तथागत् के शरण में १४३

११. पवित्र पावन स्थल कैलाश १४६

१२. कैलाश निवासी प्रणव गिरि १४७

१३. वह रहस्यमय अलौकिक मठ १४९

१४. जब चार हजार सैनिक गायब हो गये १५१

१५. पाँच प्रच्छन्न सिद्ध योगाश्रम १५३

१६. बाईस प्रकार के शरीर और उनका सम्बन्ध १५५

१७. परम ऐश्वर्य, सिद्धैश्वर्य और ऐश्वर्य १५६

अध्याय - ३

१. काल विज्ञान और क्षण विज्ञान १६०

२. समय शाश्वत हैं १६२

३. अक्षय का प्रतीक 'समय' १६५

४. समय के साथ एकता परमात्मा के साथ एकता १६६
५. समय के लक्षण १६६
६. ईश्वर का ऐश्वर्य और ईश्वर का अस्तित्व १६७
७. हमारे और ईश्वर के बीच अहंकार १६८
८. ऐश्वर्य के सभी रूप परमात्मा है १७०
९. ईश्वर क्या है? १७४
१०. ईश्वर सर्वत्र व्याप्त १७५
११. ईश्वर और सृष्टि १७८
१२. योगी आनन्द मोहन ब्रह्मचारी १८०
१३. योग-तंत्र का मुख्य विषय १८०
१४. मनुष्य का व्यक्तित्व १८१
१५. अन्नमय कोष (पार्थिव-शरीर) १८१
१६. सात्विक और असात्विक आहार १८२
१७. पिनियल ग्लैण्ड १८३
१८. वह रहस्यमय दिव्य गन्ध १८६
१९. दो प्रकार का बुद्धि स्वातन्त्रय १८६
२०. आत्मा के लिए 'पुरूष' शब्द का प्रयोग क्यों १८९
२१. सात्विक, राजसी और तामसी भोजन के लक्षण १९०
२२. आपका भोजन और आप १९०
२३. प्राणमय कोष (प्राणमय-शरीर) १९५
२४. सूक्ष्मशरीर की झलक १९७
२५. श्वास का विज्ञान १९७
२६. दर्शन और सत्संग का प्रभाव १९८
२७. मनोमय कोष (मनोमय-शरीर) २००
२८. विचार भी पदार्थगत हैं २०२

२९. विज्ञान कोष (विज्ञानमय-शरीर) २०४
३०. ध्यान की चरम सीमा और विज्ञानमय-शरीर २०६
३१. चेतन मन और अचेतन मन २०७
३२. परा मनोविज्ञान २०८
३३. मन एक प्रसारण केन्द्र २०९
३४. समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत 'योग' २१२
३५. समस्त आविष्कार आन्तरज्ञान द्वारा ही सम्पन्न २१२
३६. आनन्दमय कोष (आनन्दमय-शरीर) २१४
३७. आनन्द सुख नहीं है २१७
३८. आनन्द की खोज क्यों? २१७
३९. निर्वाण क्या है २१९

अध्याय - ४

१. कैलाश से व्यास कुण्ड की ओर २२२
२. वह रहस्यमय गुप्त आश्रम २२६
३. योगी सच्चिदानन्द २२७
४. पंचकोष और प्रकृति प्रदत्त अनुकूल और प्रतिकूल गुण २२८
५. सुख और दुःख का स्वरूप और उससे निवृत्ति २२९
६. सुख-दुःख २३०
७. रुचिकर और अरुचिकर २३४
८. तपश्चर्या, तप और कैवल्य २३५
९. कर्ता और अकर्ता २३६
१०. नियति, भाग्य और विधि २३७
११. सन्तोष की उपलब्धि कब? २३७

१२. शरीर, इन्द्रियाँ मन और आत्मा २३८
१३. शरीर से आत्मा का बँधने का कारण २३९
१४. क्या मानव अमर हो सकता है २४०
१५. मन की अमरता एक वैज्ञानिक प्रयोग २४१
१६. अमरत्वः कार्लजुगं की दृष्टि में २४२
१७. मानव, प्रकृति की तुच्छ इच्छा २४२
१८. ज्ञानेन्द्रियों से परे एक आयाम २४४
१९. विचारों का मूल स्रोत क्या है २४५
२०. वास्तविक "हम" कभी नहीं मरते २४६
२१. व्यक्त से अव्यक्त की ओर २४८
२२. रहस्यमयी साधिका दिव्यमाया २५३
२३. काशी से लद्दाख की ओर २५६
२४. शान्ति का प्रदेश लद्दाख २५७
२५. हेमिस का बौद्ध मठ २५७
२६. डुप्पालामा से साक्षात्कार २५८
२७. चक्रेश्वरी मठ की यात्रा २५८
२८. चक्रेश्वरी मठ २५९
२९. मठ के आचार्य का स्वर्ण मण्डित कक्ष २६०
३०. ज्योतिष और योग-तंत्र २६१
३१. मनुष्य का ग्रह नक्षत्रों से आन्तरिक संबंध २६६
३२. मनुष्य की अस्वस्थता का मूल कारण २६७
३३. देवशक्ति के तीन रूप २६७
३४. राशिचक्र और पंचदशी यंत्र २६७
३५. चार प्रकार का पंचदशी यंत्र २६८
३६. वह रहस्यमय ज्योतिष यंत्र २६९

अध्याय - ५

१.	चक्रेश्वरी मठ का गुप्त प्रकोष्ठ	२७१
२.	योग की रहस्यमयी मृत समाधि	२७२
३.	आत्म-शरीर द्वारा ब्रह्माण्ड भ्रमण	२७३
४.	अदृश्य रूप से साधनारत योगीगण	२७३
५.	एक आकाश चारी योगी का दर्शन	२७६
६.	लौकिक ज्ञान, पारलौकिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान	२७६
७.	ज्ञानोपलब्धि के लिए तीनो शरीरों का उपयोग	२७७
८.	सूक्ष्म-शरीर द्वारा लौकिक ज्ञान की प्राप्ति	२७८
९.	मनोमय-शरीर द्वारा पारलौकिक ज्ञान की प्राप्ति	२८०
१०.	दो प्रकार का मन	२८०
११.	विज्ञान की आधुनिक सीमा	२८१
१२.	योग-विज्ञान यानी प्रकृष्ट विज्ञान	२८२
१३.	परामनोविज्ञान एक और यथार्थ	२८२
१४.	योगी का मनोमय-शरीर में प्रवेश	२८३
१५.	मनोमय-शरीरधारी योगात्माओं का पृथ्वी पर आगमन	२८४
१६.	विशुद्धात्माओं द्वारा लोक सम्पर्क	२८५
१७.	आत्म-शरीर द्वारा अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति	२८५
१८.	नियति क्या हैं	२८७
१९.	आत्मलोक की योगात्माओं द्वारा मानव मस्तिष्क से सम्पर्क	२८८
२०.	सूक्ष्म-शरीर का विवेचन	२८९
२१.	एक योगी के लिए शरीर वस्त्र के समान	२९१
२२.	एक परम साधिका से साक्षात्कार	२९१
२३.	शरीर किसी का और आत्मा किसी की	२९२

२४. भौतिक स्मृति और आध्यात्मिक स्मृति २९४

२५. सूक्ष्म-शरीर क्या है? २९५

२६. सूक्ष्म-शरीर मन और आत्मा २९६

२७. सूक्ष्म की व्याख्या २९७

२८. अनुमान भी विचार का एक अंग है २९८

२९. अज्ञात और अज्ञेय २९८

३०. सत् और असत् २९९

३१. योग-साधना का मूल उद्देश्य ३०१

३२. सूक्ष्म-शरीर का निर्माण और विसर्जन ३०२

३३. किशोरी माँ का यौगिक रूप ३०३

३४. भाव राज्य ३०४

३५. आत्मा और मन की तीन अवस्थाएँ ३०५

३६. सुषुप्ति और समाधि ३०५

३७. दिव्य सूक्ष्म शरीर ३०६

३८. प्राण और प्राण शक्ति ३०६

३९. वृक्षो में सभी प्रकार की प्राण शक्तियाँ ३१०

४०. जीव और द्रव्य शरीर ३१०

४१. जीव और द्रव्य नाड़ियां ३११

४२. जीव द्रव्य और एक सिद्ध योगी ३१२

४३. सिद्ध योगी रामानाथ चक्रवर्ती ३१३

४४. तांत्रिक योगी सुमति प्रज्ञ और उनका रहस्यमय मठ ३१५

४५. मठ के अधिष्ठाता की मृत काया ३१७

४६. मिस्र की सभ्यता के चरमोत्कर्ष के प्रतीक रहस्यमय पिरामिड ३१९

४७. मिस्र के पिरामिडो का निर्माण काल ३२०

४८. मिस्र के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का प्रतीक गीजा का पिरामिड ३२०

४६. गीजा के पिरामिड में ज्योतिषशास्त्रीय एवं ज्यामितिकीय दृष्टि ३२१
५०. पृथ्वी की भूगणितीय शक्ति ३२२
५१. गणितीय चमत्कार का मूर्तरूप खूफू का पिरामिड ३२३
५२. नेपोलियन को किसी अज्ञात रहस्य का अनुभव ३२३
५३. अन्य लोगों को भी विचित्र अनुभव ३२४
५४. सम्राट फैरो तुतन खामेन की अभिषप्त समाधि ३२५
५५. फैरो तुतन खामेन का शवाधार ३२६
५६. तिब्बत में मृतात्माओं का मार्ग दर्शन ३२७
५७. तिब्बत में प्रधान लामा की चयन विधि ३२८
५८. दिव्यात्माओं अथवा साधको के मृत शरीर का मूल्य और महत्व ३२८
५९. जब जीसस का शव अदृश्य हो गया ३२९
६०. सूक्ष्म शरीर धारी महात्माओं से साक्षात्कार ३३०

❖

द्वितीय खण्ड

के

कतिपय प्रमुख विषयों के शीर्षक

- ❖ नेत्र विज्ञान और तीसरा नेत्र
- ❖ तिलक, टीका, त्रिपुण्ड का योग, तांत्रिक रहस्य
- ❖ योग वल से भोजन सामग्री की सृष्टि
- ❖ पृथ्वी की भू गणितीय शक्ति
- ❖ आन्तर जगत का प्रवेश द्वार तीसरा नेत्र
- ❖ नेत्र की रहस्यमयी कर्णिकाएं
- ❖ शास्त्र लिखने की विवशता
- ❖ ध्यान से ज्ञान का जन्म
- ❖ बिना ज्ञान के पुण्य भी व्यर्थ
- ❖ वह हृदय विदारक दृश्य
- ❖ योग साधिका गौरी माँ
- ❖ तिब्बत में कापालिकों का रहस्यमय मठ
- ❖ सन्त और संसारी में भेद
- ❖ स्मृति ज्ञान नहीं है।
- ❖ पति पत्नी के मध्य टीका
- ❖ आज्ञा चक्र और सम्मोहन विद्या
- ❖ मस्तक की तीन रेखाएं और मानव मस्तिष्क
- ❖ तीसरा नेत्र और तिब्बत
- ❖ क्या हिटलर तांत्रिक था ?

..... आदि आदि

कन्तलिपा

प्रकाशकीय

अरूण कुमार शर्मा एक ऐसे व्यक्ति का नाम है जिनकी लेखनी पिछले पचास वर्षो से अनवरत गतिशील है।

- अरूण कुमार शर्मा एक ऐसे चिन्तक और विचारक का नाम है, जिन्होंने अपने गहन गम्भीर चिन्तन, मनन द्वारा भारतीय गुह्य विधाओं और उनके आध्यात्मिक तत्वों के अन्तराल में प्रवेश कर उनके विषय में अपने मौलिक विचारों को व्यक्त किया है।
- अरूण कुमार शर्मा एक ऐसे सत्यान्वेषी व्यक्ति का नाम है, जिन्होने योग-तंत्र में निहित रहस्यमय सत्यों से परिचित होने के लिए प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न भाव से विचरण और निवास करने वाले सिद्ध, सन्त-महात्माओं और योगी साधकों की खोज में सम्पूर्ण भारत की ही नहीं बल्कि हिमालय और तिब्बत के दुर्गम स्थानों को जीवन-मरण दायिनी हिम यात्रा की हैं।
- अरूण कुमार शर्मा एक ऐसे साहित्यकार का नाम है, जिन्होंने अपनी सशक्त आध्यात्मिक और दार्शनिक कृतियों से संबंधित समकालीनों को सैकड़ों मील पीछे छोड़ दिया है। विलक्षण प्रान्जल भाषा, मनोहारी शिल्प आत्मग्राही सज्जा और आकर्षक प्रस्तुति करण उनकी कृतियों का विशेषण है।
- हजारों पंक्तियों के बीच उनकी पंक्ति को पहचान लेना प्रत्येक वर्ग के पाठकों के लिए सरल और सहज है। और यही वह तथ्य है जो अरूण कुमार शर्मा को अरूण कुमार शर्मा बनाता है।

उनकी प्रसिद्ध कृति तीसरा नेत्र का प्रकाशित कर आस्था प्रकाशन अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहा है। परमात्मा से प्रार्थना है कि इस महान विचारक, तपस्वी, साधक और मनस्वी को दीर्घायु प्रदान करें।

१९९९ ई०
वाराणसी

आस्था प्रकाशन
वाराणसी

पुस्तक के संबंध में

वर्तमान समय में स्व.म.म.डॉ. गोपीनाथ कविराज के पश्चात पिताश्री पं. अरूण कुमार शर्मा आध्यात्म चिंतक और तत्व दृष्टा के रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध है। परम सौभाग्य की बात तो यह है कि वे अभी हम सब लोगों के बीच अपनी भौतिक सत्ता में विद्यमान हैं। अपने निवास पर प्रबुद्ध एवं आध्यात्मिक वर्ग के लोगों से प्राय: नित्य सायंकाल योग और तंत्र के गूढ़ और गोपनीय विषयों पर चर्चा किया करते हैं वह। आध्यत्मिक विशेषकर योग के प्रति मेरी शुरू से ही रूचि रही है, इसलिए कभी कदा अवसर प्राप्त होने पर सत्संग में भी अपनी जिज्ञासाओं के निमित्त उपस्थित हो जाया करता हूँ। एक दिन प्रसंगवश मैंने अपनी जिज्ञासा प्रकट की "योग" द्वारा मनुष्य का आत्मिक विकास कैसे सम्भव है?

मेरी इस जिज्ञासा के समाधान में पिताश्री ने कहा - मनुष्य की जितनी भी अवस्थाएं हैं उनमें "योग" सर्वोच्च अवस्था है। वह अवस्था अति दुर्लभ हैं। जिसे प्राप्त करने के लिए देवगण भी लालायित रहते हैं। वास्तव में योग ऐसी अवस्था है जिसे प्राप्त कर मनुष्य असम्भव से असम्भव कार्य कर सकने में समंर्थ होता हैं। एक परम उच्च अवस्था प्राप्त सिद्ध योगी के लिए कुछ भी सम्भव नहीं हैं। क्योंकि वह ईश्वर से अभिन्न होता है। जैसे ईश्वर की शक्ति माया है, उसी प्रकार एक सिद्ध योगी की भी अपनी शक्ति होती है और वह उसी शक्ति का आश्रय लेकर असम्भव का सम्भव करता है। जो जितना ईश्वर का आदर्श प्राप्त करने में समर्थ है, वह उतना ही बड़ा योगी है।

साधक और योगी में क्या अन्तर है?

इस प्रश्न के उत्तर में पिताश्री ने कहा - जब तक वह माया को नियन्त्रित नहीं कर पाता - तब तक साधक है। माया को नियन्त्रित कर उस पर अधिकार प्राप्त कर लेने के पश्चात् वह योगी है। इसी को वीर भाव और दिव्य भाव कहते हैं। साधक वीर भावापन्न है जबकि योगी है दिव्य भवापन्न।

इस प्रकार जब कभी मुझे अवसर उपलब्ध होता है मैं अपनी योग संबंधी कौतूहलों, जिज्ञासाओं और प्रश्नों को निस्संकोच पिताश्री के सम्मुख रख देता, और

वे बड़ो ही सहज भाव से इनका निराकरण और समाधान कर देते। यहां यह भी बतला देना आवश्यक न होगा कि अपनी संस्कारजन्य आध्यात्मिक लालसा के वशीभूत होकर बाल्यावस्था में ही कई बार पिताश्री के साथ कठिन और दुर्गम यात्रायें की हैं पर्वतीय और वन प्रदेश की मैंने।

हम उन दिनों कलिम्पांग में रहे। एक दिन सहसा पिताश्री ने मुझसे कहा - तुम कुंग फू सीखो। बड़ी अच्छी कला हैं। सफलता मिलेगी तुमको। इसके गर्भ में योग-दर्शन का बहुत बड़ा गम्भीर रहस्य छिपा हुआ है।

कुंग फू क्या है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में पिताश्री ने बतलाया कि चीन और जापान ने मिलकर लाओत्से के सिद्धान्त के आधार पर कई प्रकार की युद्ध कलाओं को विकसित किया, उन्हीं कलाओं में एक कला है कुंग फू भी। उन दोनों देशों की युद्ध कला का यही रहस्य है कि प्रतिरोध मत करो। कुंग फू यही है। वह कहता है कि प्रतिरोध मत करो। झुक जाओ। कोई तुमको अपनी पूरी शक्ति से मारे तो तुम उस मार की चोट से अपनी रक्षा की चेष्टा मत करो उस आघात को, यानी उस चोट को आत्मसात कर लो। स्वीकार कर लो। तब तुम देखोगे कि जिसने तुमको मारा है वह कराह रहा है दर्द से।

कुंग फू की कला कहती है कि यदि तुम प्रतिरोध मत करो तो तुम सदैव विजयी रहोगे। इसलिए जो लोग इस कला के मर्मज्ञ हैं, उनसे कोई पहलवानी करे तो वह निश्चय ही पराजित हो जायेगा। अपना हाथ-पैर भी तुड़वा लेगा। लेकिन कुंग फू जानने वाला व्यक्ति इसके ठीक विपरीत पहलवान द्वारा किये गये प्रहार को यानी आघात को पी जायेगा, स्वीकार कर लेगा और आत्मसात कर लेगा हँसकर। उसकी अपनी शक्ति जरा सा भी नष्ट न होगी, बल्कि और बढ़ जायेगी।

इस संबंध में तुमको और कुछ समझाना पड़ेगा, तभी इस कला के मर्म में प्रवेश कर सकोगे। कुंग फू की गहरी कला यह है जब कोई तुमको मारता है तो तुम उसे शान्ति से स्वीकार कर लो। किसी भी प्रकार का विरोध मत करो। इससे एक लाभ यह होगा कि मारने वाले की सारी ऊर्जा तुमको अपनी आप उपलब्ध हो जायेगी। उसके मारने में जितनी शक्ति व्यय हुई उतनी शक्ति तुम्हारे शरीर में रूपान्तरित हो जायेगी अपने आप। मारने वाला थक कर गिर जायेगा। अपने में शिथिलता का अनुभव करेगा बाद में।

वास्तव में कुंग फू एक कला है युद्ध की। यह युद्ध कला ऐसी है कि इसमें शक्ति की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यही इसकी विशेषता है। एक साधारण-सा बालक भी बड़े से बड़े पहलवान से लड़कर उसे पराजित कर सकता

है। इस कला में शक्ति का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है झुकने का। स्वीकार करने का और आत्मसात करने का। प्रतिरोध नहीं करना है। यदि प्रतिरोध करोगे तो पराजय निश्चित है। यह कला तो तुमको झुकना सिखायेगी। झुकने में सुरक्षा निहित है।

तुमको यह बात ठीक से समझ लेना चाहिए कि ऊपर उठने की कामना और इच्छा नीचे गिरे होने का प्रबल प्रमाण है। जो कभी नहीं नीचे गिरा है, वह कभी भी ऊपर उठने की कामना या इच्छा नहीं करेगा। जो स्वयं आश्वस्त हैं वह किसी को भी आश्वासन नहीं देगा जिसको स्वयं अपने आप पर पूर्ण विश्वास है वह अन्य किसी को पराजित करने की इच्छा कभी नहीं करेगा। किसी को वह अपना प्रतिद्वन्दी नहीं समझेगा। मनुष्य संघर्ष करता हैं कुछ प्राप्त करने के लिए, और कुछ सिद्ध करने के लिए। लोग लड़ते क्यों है? युद्ध क्यों करते हैं? इसलिए कि वे अपने आपको कुछ सिद्ध करना चाहते है। ऐसे लोग यह अच्छी तरह जानते हैं कि वह स्वयं कुछ नहीं हैं, लेकिन कुछ होना चाहते हैं और यही कुछ होने का भाव उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करता हैं।

इसी प्रसंग में मैं एक और महत्वपूर्ण बिन्दु पर विचार करूँगा। छोटे बालक प्रायः गिरते रहते हैं, लेकिन उनको चोट नहीं लगती। वे गिरते हैं और फिर उठकर खेलने लग जाते है। इसका क्या रहस्य है? वास्तव में बालकों को पता नही होता कि वे गिर रहे है। वे झुक जाते हैं। वे गिरने के लिए स्वयं तैयार हो जाते है। कोई व्यक्ति गिरता है तो होश में गिरता है। वह अपने गिरने का विरोध करता है कि वह न गिरे। लेकिन पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण तीव्रता से उसे अपनी ओर खींचता है और इसी खींचातानी में व्यक्ति को चोट लग जाती हैं। यदि व्यक्ति गिरते समय विरोध न करें तो पहले उसे चोट नहीं लगेगी, यदि लगेगी भी तो साधारण-सी लगेगी। बालक को गिरते समय यह पता ही नहीं होता कि वह गिर रहा है। बस वह झुक जाता हैं इसलिए उसे चोट नहीं लगती समझे न। योगी-साधक और सन्त-महात्मा इसी को पूर्ण चैतन्य अवस्था में करते है जिसे बालक अनजाने में करते हैं। योगी और बालक में बस यही अन्तर है।

तुमको ज्ञात होना चाहिए कि जीवन के आधार के कई ऐसे गहन सूत्र हैं यदि उन पर हम विचार न करे तो हम कितना ही उनको सिद्धान्तो की तरह स्वीकार कर लें हम ठीक उनके विपरीत व्यवहार बराबर करते चले जाते हैं। सुरक्षा का अर्थ है झुक जाना। लेकिन यह कार्य है अति कठिन। एक क्रोध को ही लो। क्रोध न करना बहुत कठिन प्रतीक होता हैं। यदि विजय प्राप्त करना होता हैं तो पराजित हो जाओं। सम्मान प्राप्त करना है तो सम्मान प्राप्त करने की

इच्छा ही मत करो। सारांश यह कि जीवन के सभी सूत्र विपरीत हैं। यदि हम उन्हें अच्छी तरह से समझ ले तो जीवन नर्क न बन कर स्वर्ग बन जायेगा। कहने की आवश्यकता नही मैंने उसी समय से कुंग फू का प्रशिक्षण लेना शुरू कर दिया। जो आगे चल कर मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ।

जहाँ तक मेरी धारणा है - शुरू से ही पिताश्री के जीवन में दो प्रकार की साधना की धारा प्रवाहित रही है-पहली आध्यात्मिक साधना की धारा और दूसरी साहित्य साधना की धारा। पहली धारा सदैव गुप्त और प्रच्छन्न रही हैं। अपनी साधना के विषय में वे कभी किसी को स्पष्ट रूप से कुछ नहीं बतलाते।

अब रही दूसरी धारा की बात। उनकी साहित्य साधना और उस साधना की गम्भीरता से भला कौन परिचित नहीं है। पिछले पांच दशक की कालावधि में उन्होंने जो लिखा और जिन विषयो पर लिखा, वह निश्चत ही भारत की अमूल्य आध्यात्मिक सम्पत्ति मानी जायेगी, इसमें सन्देह नहीं। आप ही ऐसे प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होनें योग-तंत्र के गूढ़ गोपनीय रहस्यों को कथा शैली के रूप में प्रस्तुत करने की एक नयी परम्परा स्थापित की जो हिन्दी सहित्य जगत में एक मौलिक देन समझी जायेगी।

एक बार पिताश्री गम्भीर रूप से अस्वस्थ हुए। जीवन दीप बुझता सा प्रतीत हुआ। मैं उनके अत्यन्त निकट रहा हूँ, सम्भवतः इसीलिए मुझे अपने निकट बुला कर मन्द स्वर में बोले-मुझे मृत्यु का भय नहीं कई बार अनुभव कर चुका हूँ मैं मृत्यु का। जीने की लालसा भी अब समाप्त हो चुकी है। यदि कोई लालसा और कोई कामना है तो बस यही कि जो कुछ सोचा था लिखने के लिए उसे पूर्ण कर देता। सच पूछो तो अभी लिखा ही क्या है मैंने। बस थोड़ा और समय दे देती महामाया तो यह अन्तिम कामना भी पूर्ण हो जाती मेरी।

सम्भवतः महामाया ने पिताश्री की याचना सुन ली और वे स्वस्थ हो गये। उनके स्वस्थ होने के पश्चात मेरे मन में एक विचार कौंध सा गया। क्यों न उनकी अब तक की प्रकाशित-अप्रकाशित रचनाओं, दुर्लभ कृतियों और यत्र-तत्र बिखरी हुई पाण्डुलिपियों को संकलित किया जाय। मैं अकेला था और मेरा कार्य भी यह नहीं था, लेकिन संकलन और संग्रह का कार्य शुरू कर दिया मैंने। अपनी कथाओं में घटना के माध्यम से भूत-प्रेत और तंत्र-मंत्र के गूढ़ रहस्यों और गोपनीय तथ्यों को प्रकाश में लाने की चेष्टा की हैं पिताश्री ने अतः सर्वप्रथम मैंने उनकी सारी कथाओं का संकलन किया। जिनमें बहुत सी कथाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं। अब उन संकलानों को "कथा-संग्रह" के रूप प्रकाशित करने की योजना बनायी जा रही हैं।

अब रही पिताश्री की आध्यात्मिक, दार्शनिक और गुह्य विधाओं से संबंधित कृतियों रचनाओं और पाण्डुलिपियों के संकलन की समस्या। यह अत्यन्त कठिन और दु:साध्य कार्य था मेरे लिए। किसी प्रकर संकलित होने पर भी उनमें व्यक्त विषयों का सही ढंग से विश्लेषण करने का अधिकारी नहीं समझता था मैं अपने आपको।

एक दिन अवसर देखकर पिताश्री ने मैंने कहा - आपने अध्यात्मक. और उसके विभिन्न महत्वपूर्ण अंगों पर यथा-योग्य प्रकाश डाला है लेकिन जहाँ तक प्रश्न "तत्व निरूपण का है, उसके प्रसंग में आपने कहीं भी स्पष्ट रूप से अपने विचारों को व्यक्त नहीं किया हैं। अध्यात्म के गूढ़ तत्वों और योग अथवा दर्शन के सूक्ष्म रहस्यों पर आपने जो चिन्तन-मनन किया है तथा अनुभव प्राप्त किया है, उनके निष्कर्षो को यदि एक स्थान पर संकलित किया जाय तो जिज्ञासु पाठकों और अध्यात्म मार्ग पर अग्रसर साधकों को सर्वथा नई दिशा मिलेगी और मिलेगी नई दृष्टि। इतना ही नहीं अध्यात्म जगत भी उपकृत होगा इससे।

यह सुनकर पिताश्री थोड़ा गम्भीर होकर बोले ठीक है, उस संबंध में तुम प्रश्न करो। मैं उत्तर दूंगा और समाधान भी करूंगा। अब मेरे सामने फिर एक विकट समस्या खड़ी हो गयी। आध्यात्मिक, दार्शनिक और योग-तांत्रिक विषयों में मेरी पर्याप्त गति नहीं थी। इसलिए उनके संबंध में किसी प्रकार के प्रश्न अथवा किसी प्रकार की जिज्ञासा का उदय होना असम्भव था। पात्रता भी नहीं थी। उन विषयों में मेरी श्रद्धा अवश्य थी लेकिन उनमें प्रवेश मेरा नहीं था। किस प्रकार की साधना उपासना तो कभी की नहीं थी मैंने, इसलिए, आध्यात्मिक जिज्ञासा वृत्ति का उदय होना सम्भव नहीं। कालान्तर में कभी वह वृत्ति जागृत हुई थी तो उस समय पिताश्री की छत्र छाया और उनकी अनुकम्पा प्राप्त हो सकेगी? कौन जान सकता है भला इसे?

यह समझ कर मैंने कहा - मुझमें न शास्त्र ज्ञान है, न दर्शन के गम्भीर समुद्र में प्रवेश करने की शक्ति हैं और न तो है अध्यात्म की गहन गुफा में प्रवेश की योग्यता ही। जो कुछ पूजी है भी तो वह है छिछली। आप तो सब कुछ जानते समझते हैं। आप तो योग-तंत्र, दर्शन आदि के रहस्य द्रष्टा हैं। विभिन्न साधनाओं की गम्भीरता से भी परिचित हैं। इसके अतिरिक्त आपकी अपनी आध्यात्मिक विचार धारा भी हैं। मुझसे इतना बड़ा व्यापार कैसे सम्भव होगा? मैंने एक मार्ग सोचा है और वह यह कि आपने अपने जीवन काल में अब तक जिन प्रच्छन्न अप्रच्छन्न सन्त महात्माओं, सिद्ध साधकों और उच्च कोटि योगियों से आध्यात्म के जिन अंगों पर सत्संग किया है, विचारों का आदान प्रदान किया

है, जो अनुभव प्राप्त किया हैं और जो प्राप्त किया है ज्ञान। वे सब व्यापक निरूपण की अपेक्षा करते हैं। यदि आप उन पर थोड़ा विस्तृत प्रकार डाल दे तो उनमें आपको चिर संचित ज्ञान और साधना के पुष्ट अनुभव स्वारस्य आ जायेगा। और जिसका शुभ और चिर स्थायी परिणाम यह होगा कि उनके पुस्तक रूप में प्रकाशित होने पर अध्यात्म मार्ग के अनुयायिओं को सर्वथा नई दिशा प्राप्त होगी इतना ही नहीं उन्हें अपने मार्ग पर चलने के लिए नई प्रेरणा भी उपलब्ध होगी।

ठीक है। जो उचित समझों करो- इस प्रकार पिताश्री की आज्ञा प्राप्त होते ही मैं संकलन के कार्य में जुट गया। अनेक प्रकार की कठिनाईयों का सामना करते हुए संकलन का कार्य पूरा हुआ। उनमें कुछ संशोधित हुए और कुछ नए संलग्न किये गये।

फिर विषयों के आधार पर बारह शीर्षक बनाए गये और उनके अनुसार लेखन कार्य शुरू हुआ। समय व्यतीत होता चला गया। महीनों पर महीने गुजरते चले गये। न शीर्षक का पेट भरा न लेखनी थकी, और न तो विषयों की न्यूनता का ही अनुभव हुआ। मुझे भी तृप्ति नहीं हुई। मैंने सोचा-जितना इस अथाह भण्डार से बाहर निकल आये, उतना ही लाभदायक सिद्ध होगा आध्यात्मिक जगत के लिए। सम्भवत: नियति को यह स्वीकार नहीं था। सहसा विघ्न उपस्थित हुआ। पिताश्री अस्वथ हो गये। उनके रोग का निदान अच्छे से अच्छे डॉक्टर न कर सके। दिनों-दिन स्थिति गम्भीर होती गयी। इन्दौर निवासी डॉक्टर वी.पी. बंसल को सूचित किया गया। डॉ. बंसल पिताश्री के प्रिय शिष्यों में हैं। वे उनके शरीर शास्त्र से भली-भाँति परिचित है। उन्होंने परामर्श दिया कि पिताश्री के रोग को समझना सबके वश की बात नहीं, बस दाल और दूध का सेवन अधिक से अधिक करें। प्रोटीन की आवश्यकता है। प्राणायाम पुन: शुरू कर दें। स्वास्थ्य लाभ होगा। ऐसा ही हुआ, लम्बी बिमारी के बाद पिताश्री स्वस्थ तो हो गये लेकिन जो काम जहाँ रूका था, वहीं रूका रह गया। मैंने जो बारह शीर्षक बनाये थे, उनमें एक शीर्षक था तीसरा नेत्र। सर्वाधिक विषय इसी शीर्षक में था। फिर विषयों के आधार पर कुल आठ शीर्षक बनाए गए।

सभी दृष्टि से तीसरा नेत्र अपने आप में गम्भीर और महत्वपूर्ण था। जब धारावाहिक रूप में कई महीनों तक वाराणसी के दैनिक "आज" पत्र के साप्ताहिक अंक में प्रकाशित हुआ तो आध्यात्मिक क्षेत्र में और प्रबुद्ध वर्ग में व्यापक रूप में प्रचारित, प्रसारित हो गया वह। सभी लोग तीसरा नेत्र को पुस्तक रूप में प्राप्त करने के लिए इच्छुक हो उठें। पिताश्री के संकेत पर "आर्णव प्रकाशन" वाराणसी को प्रकाशन का भार सौपा गया। क्योंकि आर्णव प्रकाशन पिताश्री की

परलोक विज्ञान पुस्तक प्रकाशित कर चुका था। लेकिन "तीसरा नेत्र" के प्रकाशन में तरह-तरह की बाधाओं का सामना करना प्रकाशक महोदय को। इस प्रकार पूरे तीन वर्ष का समय व्यर्थ नष्ट हो गया। पिताश्री की अस्वस्थता के कारण पहले ही विलम्ब हो चुका था। इधर हर वर्ग के पाठकों की मांग बराबर बढ़ती ही जा रही थी। चिन्तित हो उठा मैं। अन्त में "नवस्थापित" आस्था प्रकाशन वाराणसी को प्रकाशन का उत्तरदायित्व सौपा गया। छै सौ से अधिक पृष्ठं की पुस्तक थी, लेकिन जब वह छपने लगी तो उसमें भी कोई न कोई समस्या उपस्थित होने लगी। विलम्ब होता देखकर पुस्तक को दो खण्डो में विभक्त करना पड़ा मुझे विवश होकर।

निश्चय ही एक साधक और मनस्वी पुरुष की दुर्लभ रचनाओं और कृतियों को संकलित करना और उन संकलनों में उनके विचारों, भावों और अनुभवों को यथा स्थान प्रस्तुत करना और फिर अन्त में उन्हें पुस्तक रूप प्रदान करना अति कठिन और दु:साध्य कार्य था मेरे लिए इसमें सन्देह नही। यदि महामाया की कृपा और पिताश्री का आर्शीवाद प्राप्त न हुआ होता तो कदापि सफल न होता मैं इस यज्ञ में। अस्तु प्रथम खण्ड पाठकों के समक्ष हैं, और आशा है यथा शीघ्र दूसरा खण्ड भी प्रस्तुत होगा उनके सम्मुख। आशा ही नहीं मुझे पूर्ण विश्वास हैं कि मेरे द्वारा संकलित तीसरा नेत्र आध्यात्मिक वर्ग के लोगो के अतिरिक्त जिज्ञासु और प्रबुद्ध पाठकों के लिए उपादेय और संग्रहणीय सिद्ध होगी, इसमें सन्देह नहीं।

व्यवस्थापक
आगम निगम संस्थान
वाराणसी

पाठकों की प्रेरणा और उनके
स्नेह का आकांक्षी
मनोज शर्मा

अपनी बात

भारतीय संस्कृति और साधना की मूल भित्ति एक मात्र योग और तंत्र है। योग तपश्चर्या है और तंत्र है साधना। योग के अट्ठारह प्रकार है, जिनका प्रतिनिधित्व गीता का अट्ठारह अध्याय करता है, लेकिन एक ऐसा भी 'योग' है, जो सर्वोपरि और अपने आपमें स्वतंत्र है और वह 'योग' है - 'कुण्डलिनी योग'। कुण्डलिनी योग में सभी अट्ठारह प्रकार के योगों का समावेश है इसीलिए उसे परम योग और महायोग भी कहते हैं। कुण्डलिनी योग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें तंत्र के गुह्य आयामों का सामन्जस्य है और यही कारण है कि कुण्डलिनी योग साधना अपने विकास की ऊँचाइयों में योग के अनेक आयामों को और विभिन्न प्रक्रियाओं को अपने में समाहित कर लेती है। इसलिए इस साधना को सिद्ध योग भी कहते हैं। वास्तव में कुण्डलिनी योग मनुष्य के आन्तरिक रूपान्तरण व जागरण की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। कहने की आवश्यकता नहीं, १९४५ ई० में जब मैंने योग तंत्र पर व्यक्तिगत रूप से शोध एवं अन्वेषण करना चाहा तो गुरूदेव महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ जी कविराज के संकेत पर मैंने कुण्डलिनी योग का ही चयन किया। और उसी आधार पर दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी की कुण्डलिनी शक्ति और मारण पात्र। दोनों ग्रंथ प्रकाशित है।

किसी भी विषय पर शोध और अन्वेषण एक प्रकार से सत्य की खोज और उसकी उपलब्धि है। लेकिन आजकल शोध एवं अनुसंधान विश्वास का परिपन्थी माना जाता है। मगर बात ऐसी है नहीं, शोध एवं अनुसंधान का मतलब है कि जो जैसा दिखाई दे रहा है उसे वैसा ही नहीं मान लेना चाहिए। संसार की वास्तविकता को उसकी गहरायी में जाकर खोजने की आवश्यकता है, जो कुछ जैसा दीख रहा है, उसका वही स्वरूप नहीं भी हो सकता है। प्रत्येक वस्तु को तर्क की कसौटी पर कस कर देख लेना आवश्यक है। वास्तविक शोध एवं अनुसंधान की चपेट में न धर्म बच सकता है न आत्मा, न ईश्वर न योग और न तो भक्ति। धर्म और उसके विभिन्न अंगों के रहस्य को वही जानता है और उसके वास्तविक स्वरूप

से वही परिचित होता है, जो तर्क और जिज्ञासा का आश्रय लेकर अनुसंधान करता है। कहने की आवश्यकता नहीं, मेरे शोध और अनुसंधान के समस्त विषय शुरू से लेकर अन्त तक पुष्ट तर्कों और पुष्ट-जिज्ञासाओं पर ही आधारित रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं। यहाँ यह भी कहना अप्रासंगिक न होगा कि १९४५ से १९७५ यानी पूरे तीस वर्षो के अपने शोध एवं अनुसंधान काल में जहां मैंने प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न भाव से संचरण विचरण करने वाले तथा गुप्त रूप से निवास करने वाले उच्च कोटि के योगियों, साधको और सन्त महात्माओं की खोज में पूरे भारत का जहां भ्रमण किया वहीं हिमालय के दुर्गम स्थानों के अतिरिक्त योगी और तांत्रिकों के रहस्यमय देश तिब्बत की भी जीवन मरणदायिनी हिम यात्रा की मैंने। इस सिलसिले में मेरे जीवन में ऐसी-ऐसी विलक्षण और चमत्कार पूर्ण घटनाएं घटी और ऐसे-ऐसे अलौकिक और रहस्यमय अनुभव हुए मुझे, जिन पर सहसा कोई विश्वास न कर सकेगा इस युग में। कभी-कभी तो मैं स्वयं सोचने लगता हूँ कि क्या वे तमाम विलक्षण और चमत्कारपूर्ण घटनाएं मेरे ही जीवन में घटी थी? क्या वे सारे अलौकिक और रहस्यमय अनुभव मुझे ही हुए थे। सब कुछ सपना, सपना सा लगता है अब। ''अस्तु''।

कहने की आवश्यकता नहीं तीसरा नेत्र उसी का परिणाम है, जिसमें प्रासंगिक रूप से उपदिष्ट हुए योग तांत्रिक विषयों का लाभ सुविज्ञ पाठकों को तो होगा ही इसके अतिरिक्त उनसे संबंधित मेरे जीवन में घटी अलौकिक घटनाओं और रहस्यमय अनुभवों की चमत्कारपूर्ण कथा भी उन्हें पढ़ने को उपलब्ध होगी। आशा है तीसरा नेत्र आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए ज्ञान वर्धक और उपादेय सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं।

बसन्त पंचमी
(सरस्वतीपूजा)
सन् १९९९ ई.

अरूण कुमार शर्मा

प्राक्कथन

बीसवीं शताब्दि के इस वैज्ञानिक युग में भी एक अत्यन्त रहस्यमय देश है तिब्बत। भारत की योग-तंत्र आदि प्राचीन विद्यायें भले ही लुप्त हो गयी हों काल के प्रवाह में पड़कर, लेकिन वे आज भी तिब्बत में गुप्त रूप से सुरक्षित हैं। इसमे सन्देह नहीं। भारत और तिब्बत का संबंध अति प्राचीन काल से है। सातवीं शताब्दी में तिब्बत के राजा का विवाह नेपाल और चीन की राजकुमारियों से हुआ था। दोनों देशो के राजकुमारियों के परिवार बौद्ध धर्मावलम्बी थे। पंचशील में विश्वास रखते थे। तिब्बत के राजा भी बौद्ध धर्म से प्रभावित हुए बिना न रह सके, परिणाम स्वरूप उन्होंने भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं बौद्ध धर्म को तिब्बत का राज धर्म भी घोषित कर दिया। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि बौद्ध धर्म के पहले तिब्बत में 'वोन' धर्म प्रचलित था। जो भारतीय शैव धर्म का विकृत रूप था। तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रभाव धीरे-धीरे अपनी चरम सीमा पर पहुँचने लगा। उसी समय राजा द्वारा प्रेरित होकर तिब्बत के प्रकाण्ड विद्वान सम्भोत भारत आये और जब वापस तिब्बत लौटने लगे तो अपने साथ संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध योग, तंत्र, ज्योतिष आदि विषयों से संबंधित बहुत से ग्रन्थ ले गये। और उनका अनुवाद तिब्बती लिपि में किया जो कश्मीर की शारदा लिपि जैसी है।

उस समय नालन्दा विश्वविद्यालय की विश्व ख्याति थी। उससे संबंधित विद्वानों और प्रकाण्ड पण्डितो की विद्वता और पाण्डित्त्य की सुगन्ध सम्पूर्ण भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी फैल रही थी। तिब्बत के राजा भी प्रभावित हुए बिना न रहे सके, उस सुगन्ध से। उन्होंने तत्काल नालन्दा विश्वविद्यालय के ख्याति प्राप्त धुरन्धर विद्वान शान्त रक्षित को (ईस्वी सन् ६५० से ७५०) आमंत्रित किया, लेकिन उस विद्वान को तिब्बत में प्रवेश करते ही अनेक प्रकार के प्राकृतिक उपद्रव होने लगे। राजा ने शान्त रक्षित से परामर्श कर उस समय के महातांत्रिक पद्म सम्भव को तिब्बत आने का निमन्त्रण दिया उन प्राकृतिक उपद्रवों को शान्त करने के लिए। पद्म सम्भव तिब्बत गये और अपने योग-तंत्र बल से उन प्राकृतिक

उपद्रवों को शान्त तो किया ही इसके अतिरिक्त जिन उग्र देवी देवताओं के कारण वे प्राकृतिक उपद्रव हुए थे, उन्हें भी सन्तुष्ट किया उन्होंने। कहने की आवश्यकता नहीं, वर्तमान में तिब्बत में जो लामा धर्म है वह पद्म सम्मव की ही मूल कृति है, जिसे तिब्बती लामारिन पोचे कहते हैं और अमर मानते है।

पद्म सम्मव ने भारतीय तंत्रो पर आधारित वज्रयान सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का तिब्बत में व्यापक प्रचार किया और उसके तीन 'मकार' मंत्र, मण्डल और मुद्रा के प्रयोग पर अधिक बल दिया। यही कारण है कि वज्रयान सम्प्रदाय की कई शाखायें तिब्बत में विद्यमान हैं।

इसके पश्चात् लगभग तीन सौ वर्ष बाद विक्रम शिला के प्रकाण्ड तांत्रिक दीप शंकर श्रीज्ञान तिब्बत गये। उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का तिब्बत भाषा में अनुवाद किया। सन् १०३८ में विक्रम शिला के आचार्य अतीशे ने भी तिब्बत की यात्रा की। उन्ही दिनो लामा मरप भारत आया और भारत में योग-तंत्र की शिक्षा प्राप्त करने के बाद वापस जाते समय कई संस्कृत के महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी अपने साथ ले गया और तिब्बती भाषा में उन सबका अनुवाद किया। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि योगी मिलरप उसी का शिष्य था, जिसकी गद्दी अब तक चल रही है। मिलरप बहुत बड़ा तांत्रिक और योगी था।

इसे सभी ने स्वीकार किया है कि तिब्बत अति दुर्गम देश है। फिर भी वहाँ के शासको ने विदेशियों, विशेष कर पश्चिमी देशों के विरूद्ध सदैव तिब्बत के प्रवेश का मार्ग बन्द रखा। इसलिये तिब्बत की प्राचीन संस्कृति और साहित्य के अतिरिक्त योग तथा तंत्र-मंत्र से संबंधित प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रन्थ पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हो पाये। वर्तमान समय में भी तिब्बत में तंत्र-मंत्र और टोना-टोटका व्यापक रूप से प्रचलित हैं। वहाँ का वायु मण्डल भूत, प्रेत, पिशाच आदि अप देवताओं से ओत-प्रोत हैं।

यह बात अवश्य है तिब्बत के योग-तांत्रिक रहस्यों को समझने के लिए कई विदेशियों ने भगीरथ प्रयत्न किया। उन विदेशियों में एक थी मैडम एलेक्जेन्ड्रा डेविड नील। वह एक फ्रांसीसी महिला थी। वह किसी प्रकार तिब्बत के रहस्यमय वातावरण में प्रवेश कर ही गयी। लेकिन उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पड़े और अनेक प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। किस प्रकार अपने रूप रंग को छिपाकर रहना पड़ा और तिब्बत के तिमिराच्छन्न रहस्यों को किस प्रकार उद्घाटित करना पड़ा। कहने की आवश्यकता नहीं, इन सभी का सांगो-पांग वर्णन मिस डेविड नील ने अपनी पुस्तक माइ जर्नी टू ल्हासा (मेरी ल्हासा यात्रा) में किया हैं।

एक दो बार नही पाँच बार तिब्बत की कठिन यात्रा की मिस डेविड नील ने। और पन्द्रह वर्ष वहाँ रहकर लामाओं से योग का प्रशिक्षण लिया और अन्त में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली उन्होंने। सबसे पहले वह भारत आयी और वेदान्त दर्शन का अध्ययन किया उन्होंने। सन् १९६० तक वे जीवित रही। अपने जीवन काल में पुस्तकों के अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बराबर लेख भी लिखा करती थी। सन् १९३१ ई० में प्रकाशित उनकी पुस्तक "विद मिस्टिक्स एण्ड मेजीसियन्स इन टिवेट" में विस्तार से लामाओं की सिद्धियों उनके योगाभ्यास और तांत्रिक चमत्कारो का वर्णन किया गया है।

मिस डेविड नील जब दूसरी बार वाराणसी आयी थी तो काशी के मानसहंस पं. विजयानन्द त्रिपाठी के माध्यम से मेरा उनसे परिचय हुआ था। पं. त्रिपाठी जी अपने समय के मानस मर्मज्ञ थे। रामायण के गूढ़ विषयों पर प्राय: अपने निवास स्थान पर प्रवचन दिया करते थे। मिस डेविड नील भी उनका प्रवचन सुनती थी। तिब्बत और वहाँ के योग-तंत्र और जादू-टोना के प्रति शुरू से ही मेरे मन में आकर्षण था। एक बार अपनी जिज्ञासाओ के समाधान के निमित्त तिब्बती योग-तंत्र आदि के विषय में पूछने पर मिस डेविड नील ने विस्तार से बतलाते हुए कहा-तिब्बत में कई प्रकार के योगाभ्यास हैं जिसे तिब्बती भाषा में लुंगोम कहते हैं। वास्तव में लुंगोम का अर्थ हैं तीव्र गति से अभ्यास करना। अति प्राचीन काल से लुंगोम की शिक्षा देने की परम्परा तिब्बत में चली आ रही है। तिब्बत में एक प्रसिद्ध मठ है जिसका नाम है शालू मठ। सिद्ध लामा वुस्तोन द्वारा स्थापित वह मठ लुंगोम की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध हैं।

'लुंगोम' योग विद्या की साधना है। इसका साधक पहले एक मोटे गद्दे पर पद्मासन की मुद्रा में बैठता है फिर वह प्राणायाम की पूरक विधि से अपना शरीर वायु से भरता हैं। फिर कुम्भक अवस्था में वह आसनबद्ध हो, ऊपर उछलने का प्रयत्न करता हैं। यह अभ्यास वर्षो तक चलता हैं। स्त्रियाँ भी इसकी शिक्षा लेती हैं इस साधना के अभ्यास से शरीर बहुत हल्का हो जाता है और आकाश में उड़ने तक की शक्ति आ जाती है।

शालू मठ में पहले साधक के शरीर के बराबर भूमि में एक गड्ढा खोदा जाता है फिर उस पर उतना ही बड़ा एक गुम्बज बनाया जाता है, जिसमे ऊपर की ओर एक छेद रहता है। इस तरह यदि साधक की ऊचाई ५ फुट ४ इंच है तो छेछ १० फुट १० इंच गड्ढे की तह से होगा। साधक गड्ढे में बैठकर अभ्यास करता है। इसमे साधक को तीन वर्ष तक रहना पड़ता है। वह बराबर कुम्भक की दशा में उछलता रहता हैं। जब उसमे इतनी शक्ति आ जाती है।

कि वह उछल कर उस छेद से बाहर निकल जाय, तब उसे सफल मान लिया जाता है। और उसे 'महे-के-तंत्र' (भेसें) की उपाधि से विभूषित किया जाता हैं। परन्तु इसके पहले साधक को तंत्र कुरू का अभ्यास करना पड़ता है। इसका अर्थ है आसन, प्राणायाम और मंत्र जप का अभ्यास। इसमे जब कुछ सफलता मिल जाती है तब लुगोम की शिक्षा प्रारम्भ होती है। आजकल दौड़ने की प्रतियोगिता होती है। इसमे लोग दौड़ने का अभ्यास करते है, पर शीघ्रगमिता की योग विद्या दूसरे प्रकार की हैं। उसमे दौड़कर नहीं, आसन जमाकर बैठने के साथ अभ्यास करना पड़ता है।

मिस डेविड नील ने कहा - जब यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है तब साधक की गति अति तीव्र हो जाती है। वह दौड़ता नही, एक प्रकार से वह उछलता हुआ चलता है। उसकी निगाह ठीक सामने रहती है और उसके हाथ में एक मंत्र पूरित कटार रहता है जिसे तिब्बती भाषा में फुर्व कहते हैं। साधक प्राय: उसी कटार पर जोर देकर चलता है। श्वास-प्रश्वास के साथ मंत्र जप चलता रहता है। वह न किसी से बोलता है और न तो किसी की ओर देखता है। मार्ग में कोई उसे देखता भी नही। टोक देने से दोनों का अनिष्ट होने की आशंका रहती हैं। उसे गुजरते हुए देखकर लोग प्रणाम कर चुपचाप खड़े रहते हैं। ऐसा लगता है कि वह समाधि को अवस्था में चल रहा है। योग की लघिमा सिद्धि के अन्तर्गत इसकी गणना है। डेविड नील ने बतलाया कि उन्होंने अपने तिब्बत प्रवास में ऐसे तीन लामाओं को देखा था।

उस दिन समय कम था इसलिए मिस डेविड नील से अधिक चर्चा न हो सकी इस विषय पर। लगभग एक सप्ताह बाद अचानक गंगा तट पर बैठी हुई मिल गयीं वह मुझको। प्रसन्न हो उठा मैं! उनके समीप जाकर बैठ गया। मुस्कुराकर एक बार देखा उन्होंने मेरी ओर। फिर बोली-कुछ साधना करते हो?

हां! प्राणयामं और ध्यान का अभ्यास करता हूँ। बहुत ठीक, वह बोली-योग के साधक को द्वन्दातीत होना चाहिए। यह अति आवश्यक है। स्थूल रूप से इसके लिए पहले शीत और फिर गरमी सहन करने की शक्ति होनी चाहिए।

मिस डेविड नील ने आगे बतलाया कि समुद्र की सतह से तिब्बत की ऊँचाई ११ हजार से १८ हजार फुट तक है। ऐसे में नग्न रहना अथवा साधारण कपड़े पहन कर घूमना सहज बात नहीं। पर तब भी कितने लामा ऐसा करते हैं। तिब्बती भाषा में यह अभ्यास तूमो कहलाता है। जिसका अर्थ है तेज। शरीर में गरमी पैदा करने की यह विद्या बहुत गुप्त रखी जाती हैं। इसकी शिक्षा प्राप्त करने के पहले प्राणायाम, चित्त की एकाग्रता और समाधि का कुछ अभ्यास आवश्यक है।

इसकी शिक्षा निर्जन एकान्त में बर्फ की पहाड़ियों पर दी जाती हैं। शिक्षा देते समय केवल गुरू ही पास रहता है। मुख्य समय सूर्योदय के पहले होता है। साधक को गा तो नग्न रहना पड़ता है। या केवल एक साधरण सूती वस्त्र पहनना पड़ता है। वह चटाई पर पद्मासन लगाकर बैठ जाता है फिर वह कई प्रकार के प्राणायाम का अभ्यास और कुछ मंत्रो का जप करता है। शरीर में तीन मुख्य नाड़ियां है - इडा, पिंगला और सुषुम्ना। इसमे पिंगला सूर्य नाड़ी है। उसे जागृत करना होता है। इसकी शिक्षा में दस स्तर होते हैं जिन्हे पूरा करने में पर्याप्त समय लगता है। इसमें विशेष कर हठ योग की प्रक्रियायें है। कहा जाता है कि इसे तिब्बतियों ने भारतीय गुरू नरोप (नरोत्तमपाद्) से प्राप्त किया था। इसमे सूर्य और अग्नि की कल्पनाएँ करनी पड़ती है। और वे फिर सारे शरीर में व्याप्त है ऐसी कल्पना करनी पड़ती हैं और ऐसा ही अनुभव भी करना पड़ता है। इस विद्या को सीखने के बाद उसकी परीक्षाएं होती हैं। शीतकाल की रात में जब तेज हवा चल रही हो साधक को किसी नदी या झील के किनारे ले जाया जाता है। यदि जम गयी है तो बर्फ में एक गड्ढा खोदकर उसमे उसे बैठा दिया जाता है साधक नग्न होकर उसमे बैठ जाता हैं। फिर एक सूती चादर को वर्फ के पानी में भिगों कर उसे ओढ़ा दी जाती है जब वह चादर सूख जाती है तब उसे दूसरी चादर ओढ़ा दी जाती है। जो साधक इस प्रकार सबसे अधिक चादर सुखा देता है वह परीक्षा में सर्वप्रथम माना जाता है। कहा जाता है कि कम से कम तीन चादरे सुखाना तो बहुत आवश्यक है। ऐसे साधक को 'रेस्पा' कहते हैं। कुछ लोग तो ४०-४० चादरें सुखा डालते हैं।

दूसरी परीक्षा यह होती है कि जो साधक बैठकर सबसे अधिक बर्फ पिघला सके वह प्रथम माना जाता है। अभ्यास पूरा होने पर उच्च श्रेणी के साधकों को कोई ऊनी या सूती वस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। तिब्बती लामाओं की अपनी इस सिद्धि पर बड़ा गर्व हैं।

सांझ की स्याही धीरे-धीरे रात की कालिमा में बदल चुकी थी लेकिन समय का ज्ञान न मुझे था और न तो था उस परम विदुषी को। अपने धुन में बोलती जा रही थी वह, दूसरों के मन की बात जान लेना या मानसिक रूप से दूसरे से बात करने का भी कुछ लामाओं को बड़ा अभ्यास रहता हैं। शायद इसी को अंग्रेजी में टेलिपैथी कहते हैं। योग में इसे कहते हैं मानसिक संक्रमण। तिब्बत में गुरु शिष्य में प्राय: इसी मानसिक संक्रमण द्वारा वार्तालाप होता हैं। यह बेतार के तार की विद्या है। इस विद्या का प्रधान साधन मन है। तिब्बती योग के अनुसार यह एक विशुद्ध विज्ञान है। और अन्य वैज्ञानिक तथ्यों की तरह इसे भी सीखा

जा सकता हैं इसमें मन पर नियन्त्रण और चित्त की एकाग्रता सबसे अधिक आवश्यक है। इसका कुछ अभ्यास हो जाने पर मुख्य शिक्षा दी जाती है। गुरु और शिष्य दोनो एक साथ अंधेरे कमरे में बैठते हैं और एक ही वस्तु पर अपने चित्त को एकाग्र करते हैं। कुछ काल के पश्चात् अपने-अपने अनुभव एक दूसरे को बतलाते हैं। दोनो के अनुभव में कहाँ अन्तर है और कहाँ है साम्य, इस पर विशेष ध्यान देते है। ध्यानावस्थित होकर शिष्य यह अनुभव करने लगता है कि गुरु से कहाँ प्रेरणा मिल रही है? फिर धीरे-धीरे अन्ततः कितनी ही दूरी क्यों न हो, दोनो एक दूसरे के मन की बात समझ लेते है। गुरु अपने शिष्यों को प्रायः मानसिक आदेश ही देता रहता है। शिष्यों की इसमे भी परीक्षा होती हैं। आपस में भी इनका अभ्यास उनको करना पड़ता है। मिस डेविड नील ने बतलाया कि उनको इसका भी कई बार अनुभव हुआ था। दुर्गम स्थान पर रहने वाले एक लामा से मिलने जाना था। उसके पहले किसी भी प्रकार का सन्देश नहीं भेजा गया था। पर तब भी उनको देखकर आश्चर्य हुआ था, उनके आने की सारी व्यवस्था पहले से ही बनी हुई थी। लामा के दर्शन करने पर उसने बतलाया - मुझे ज्ञात था कि तुम आ रही हो।

एक बार मैं एक प्रसिद्ध लामा के साथ यात्रा कर रही थी। मार्ग में एक दिन मुझे दही खाने की इच्छा हुई। थोड़ी ही देर में मैं देखती क्या हूँ कि समीप वाले गांव से एक व्यक्ति दही लिए हुए लामा के सामने खड़ा हैं। लामा ने मेरी ओर संकेत किया और वह मेरे सामने दही रखकर चला गया।

सृष्टि मन का संकल्प है। यह अपने यहाँ का प्राचीन सिद्धान्त है। पर संकल्प को घनीभूत करने की शक्ति होनी चाहिए। तिब्बत में कई ऐसे सिद्ध लामा है जो ऐसा कर सकते हैं। वे किसी पशु-पक्षी पर मनुष्य की भावना करते है और बाद में ध्यान-धारण द्वारा उसे मूर्त रूप से दे देते हैं और उससे अपना काम लेते हैं या अपनी सेवा कराते हैं। भावना के इस मूर्त रूप को तिब्बती भाषा में 'तुल्य' कहते हैं। तुल्य को दूसरे लोग भी देख सकते हैं। तुल्य को इच्छानुसार उत्पन्न और नष्ट किया जा सकता हैं। सब कुछ मन पर निर्भर हैं।

मिस डेविड नील ने कहा - मैंने स्वयं इसमे सिद्धि प्राप्त की थी। मैंने एकान्त में रहकर एक महन्त की भावना की। मेरा ध्यान उसी पर केन्द्रित रहता था। कुछ दिनों में वह मूर्त होकर मेरे साथ रहने लगा। मैं उससे काम भी लिया करती थी। पहले मुझे सन्देह हुआ कि यह मेरे मन का केवल भ्रम हैं। पर कुछ लोग जो इस बात को जानते तक नहीं थे, उन्होंने बतलाया कि डेरे में मेरे साथ एक ऐसा महन्त बैठा था, जिसका वर्णन ठीक वैसा ही था जैसी मेरी कल्पना थी।

मैंने अपनी आंखो से कुछ लामाओं को सहसा गाइब और प्रकट होते हुए देखा हैं। लामाओं को आकाश में उड़ते हुए भी देखा हैं। परकाया प्रवेश विद्या भी अभी तक लामाओं में पायी जाती है। ऐसी विद्याए सीखने के लिए कठोर अभ्यास किया जाता हैं। इसके लिए एकान्त वास अति आवश्यक हैं। इसके कई नियम है। जिन स्थानो में निवास किया जाता हैं उनको 'सम्स' कहते हैं। इनके कई प्रकार होते हैं। अभ्यास साधारण से उत्तरोत्तर कठोर होते जाते हैं। पहले इसके लामा अपनी कोठरी में अपने को बन्द रखता है। निश्चित समय पर ही वह कुछ समय के लिए कोठरी के बाहर आता है, धीरे-धीरे वह इसे भी कम कर देता है। यदि कोई उससे मिलने आता है तो पर्दे के आड़ में रहकर वह बात करता है। थोड़े दिन बाद वह केवल एक ही व्यक्ति से कुछ बोल सकता हैं। अन्त में पूर्ण रूप से वह मौन हो जाता है। कोठरी की खिड़कियां और दरवाजा धीरे-धीरे बन्द कर देता हैं। केवल एक छिद्र से आकाश का दर्शन करता है। कुछ दिनों बाद इससे भी अपने को वंचित कर देता है। उसके लिए दिन और रात एक समान होता हैं। केवल उसे भोजन पहुँचा दिया जाता है। इस प्रकार के तपोमय एकान्त जीवन व्यतीत करने की अवधि निश्चित रहती है। कोई-कोई तो इसका आजीवन व्रत ले लेते है। इस साधना के लिए गुफा या कोठरी किसी एकान्त स्थान में बनाई जाती है। जिसमे रहकर उनको घोर तपस्या करनी पड़ती है। उनका पूरा समय आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, जप आदि में व्यतीत होता हैं, इसलिए अकेलापन नही अखरता-गुरूओं द्वारा उनकी परीक्षा भी अति कठोर होती हैं। सिर पर दीपक रखकर चित्त की एकाग्रता की परीक्षा होती है।

इसी सन्दर्भ में मिस डेविड नील ने बतलाया कि, जितने प्रकार के तिब्बती योग हैं उनमें 'तुम मो' अति महत्वपूर्ण है। 'तुम मो' का अर्थ हैं शारीरिक मानसिक और आत्मिक उष्णता। यह तिब्बती ध्यान की एक विशेष प्रक्रिया हैं।

इस संबंध में यह बतला देना आवश्यक है कि लगभग तीस वर्ष पूर्व हारवर्ड मेडीकल स्कूल ऑफ अमेरिका के अनुसंधान कर्ता डॉ. हार्वर्ट वेन्सन अपने पाँच सहयोगी वैज्ञानिकों के साथ भारत आये थे। वास्तव में उन्हें दलाई लामा ने कतिमय ध्यान प्रक्रियाओं के परिणामों की परीक्षा के लिए खास तौर पर बुलाया था। डॉ. वेन्सन ने देखा कि तुम मो ध्यान से तीन लामाओं ने अपने शरीर का तापमान ज्यो का त्यो रहने दिया लेकिन एक घंटे के बाद शरीर का तापमान में १ से ८ अंश शतांश तक की वृद्धि कर ली। इससे यह सिद्ध होता है कि आधुनिक चिकित्सकों की यह धारणा कि मन का शरीर के स्वायत्त स्नायु तंत्र या नाड़ी तंत्र पर कोई नियन्त्रण नही होता, सही नही है। और इसे अवश्य बदला जाना चाहिए।

परीक्षण के पश्चात डॉ. वेन्सन ने अपने वक्तव्य में बतलाया कि ध्यानी लामा लोग 'तुम मो' ध्यान जिसे कि हम अन्तर्विहिन योग अथवा अन्तर्ज्योति योग कह सकते है, इसलिए करते है जिससे वे सारे मानसिक कषाय भस्म हो जायें। जो उन्हें सम्यक दर्शन नही करने देते। जीवन और जगत के बारे में साधारण मानव के दृष्टि कोण ही उसे परम सत्य का साक्षात्कार नही होने देते। इसीलिए मन को मोक्ष और बन्धन का कारण कहा गया है। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द की जीवन कथा 'दयानन्द सागर' में स्वेच्छा से शारीरिक तापमान बढ़ाने की घटना का वर्णन किया गया है। स्वामी दयानन्द 'तुम मो' के अच्छे साधक थे। स्थूल शरीर के स्तर पर शीतोष्ण आदि के प्रति गहरी सहन शक्ति योगियों के लिए बाये हाथ का खेल है। वे अपनी नाड़ी और हृदय की गति भी औसत से भी कम कर सकते है। ध्यान के समय तो वैसे भी शरीर में ऑक्सीजन की खपत कम होने या देह कोशिकाओं का निर्माण एवं ध्वंस अपेक्षाकृत न्यून होने से त्वचा की संरक्षण शक्ति स्वतः बढ़ जाती है। भारतीय आयुर्विज्ञान केन्द्र के डॉ. छिन्ना की रिपोर्ट इस सिलसिले में द्रष्टव्य है और स्वामी राम संबंधी साहित्य भी।

ध्यान के परिणाम के रूप में एक और उपलब्धि सर्वत्र स्वीकार की गयी है। खून मे लेक्टेट का जमाव बढ़ने से हमारा रक्त चाप बढ़ता है। चिन्ता जनित अथवा आवेश जनित स्नायु तनाव परेशान करता है। लेक्टेट की इस जमाव को ध्यान के जरिए तुरन्त घटाया जा सकता है। मुम्बई के प्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. वि. के. गोयल और डॉ. के. के. दाते इसकी ताइद करते है। योग से मधुमेह, दमा, त्वचा के विकार, कब्ज आदि बिमारियाँ भी ठीक हो सकती हैं। आजकल योग की रोग निवारण शक्ति पर कैवल्य धाम लोणावाला (महाराष्ट्र) में केन्द सरकार के अनुदान से शोध कार्य हो रहा है। वैसे तो प्रत्येक ध्यान प्रक्रिया सच्चे साधक, गुरु से ही सीखने पर ही कारगर सिद्ध होती है। किन्तु योग के श्रेष्ठ एवं प्रमाणिक साहित्य से भी उसके बारे में बहुत कुछ जाना जा सकता है। 'तुम मो' के बारे में भी यही बात हैं।

वास्तव में तुम मो के लिए संस्कृत शब्द तपस् है। साधक जब अनेक संयम पूर्वक यौगिक क्रियाओं से अपने मन को पवित्र कर लेता है और प्राण को अन्तः चेतना एवं मांत्रिक ध्वनि स्पन्दों से अन्तर्मुख करके ठीक तरह अन्तर मन में प्रस्तुत हो जाता हैं। तब उसका ध्यान मणिपूरक या नाभि चक्र पर समाहित होता है। और तभी कुछ अन्य प्रक्रियाओं द्वारा उसे सुषुम्ना नाड़ी के विस्तार एवं संकुचन तथा शून्यता में परिणति का असामान्य अभ्यास होता है। इसके दौरान जो अन्तर्ज्योति

प्रज्वलित होती है, वह योगी की इच्छानुसार सारे शरीर में ताप के रूप में त्वचा पर अनुभव की जाती है। इसकी परिसमाप्ति अन्य सारे जीवन कोषों में विपरिणीत के रूप में जानी जाती है। तभी ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी का विलय होता हैं। तपस की महिमा भारत में वैदिक युग से लेकर आज तक पायी जाती है। तप से मोह निद्रा भंग होती है। सारे उत्ताप नष्ट होते हैं। अन्तर्विहीन अन्तर्ज्योति इसी से प्रज्वलित और प्रद्योतित होती है। अन्तरतम् उसी से प्रकाशित होता हैं। अन्तः प्रेरणा से त्याग की वृत्ति इसी का एक सुफल होती है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में तपस ही बल माना जाता है। जो हमे सृष्ट और दृष्ट से परे ले जाकर परम तत्व तक पहुँचाता है। तपस् ही ऊर्जा, बल, अग्नि, शक्ति, ध्वनि, प्रकाश, उष्णता, आदि नाम रूपो का मूल अमूर्त स्त्रोत माना जाता है। भौतिक तापमान तो उसका एक स्थूल आयाम मात्र हैं। जिसकी माप से भौतिक विज्ञानी मूल तपस की कल्पना कर जाते हैं। काम-छंद, धम्म-छंद की लय गति आदि भी अलक्षित रूप से मूलतः तपस् के ही अधीन है। यहाँ तक की अध्ययन को परम तप माना गया है। सच्चा तपस्वी हुए बिना कोई मनस्वी और यशस्वी नहीं हो सकता। अन्नतोगत्वा तपस ही पूर्ण ज्ञान के रूप में महा प्रज्ञापरिमितो के रूप में मुक्ति अथवा निर्वाण का कारक हैं।

इस विषय के संबंध में मिस डेविड नील ने कहा - आज से हजार वर्ष पहले तिब्बती सन्त योगी कवि मिलरॅप ने भी तुम मो को आयत्त कर लिया था। उसी की सहायता से वे महीनों तक एक दम नग्न अवस्था में रहते थे। शीतोष्ण के दुखों से मुक्त। सामान्यतः मानव शरीर हमेशा ही अपने वाह्य परिवेश और परिस्थितियों के अनुरूप यथा शक्य दैहिक मानसिक या कहें कि तन-मन के तापमान और उत्ताप को सहने, घटाने, बढ़ाने की क्रिया द्वारा सन्तुलित करता हैं। योगी इसी की साधना द्वारा पूर्णता प्राप्त कर ले सकते हैं।

अब तक मिस डेविड नील ने तिब्बत के संबंध में वहाँ के लामाओं के संबंध में और उनकी विलक्षण और अविश्वसनीय साधनाओं के संबंध में जो कुछ बतलाया था, उसे सुनकर उसी समय मेरे मस्तिष्क के किसी कोने में लालसा जाग उठी थी तिब्बत यात्रा की। उनके एक-एक शब्द प्रेरणा दायक सिद्ध हुई मेरे लिए। इसके पहले भी तिब्बत और वहाँ के सिद्ध और साधक लामाओं के विषय में पढ़ा और सुना था मैं।

अधिकांश लोगों को तिब्बत की आध्यात्मिकता दिव्य दृष्टि और सुदरवर्ती मन को प्रभावित करने की क्षमता में विश्वास नहीं होगा, लेकिन ये बातें उतनी ही सत्य हैं। जितना सूर्य और सूर्य का प्रकाश। निश्चित ही तिब्बत में ऐसे सिद्ध

लामाओं की कमी नही है, जो हिमशिला पर निर्वसन बैठकर अपने शरीर का तापमान इतना अधिक बढ़ा देते हैं जिससे बर्फ गल जाती है। तिब्बत में ऐसे लामाओं का अभाव नही है जो जमीन से उठकर शून्य में अवस्थित रहते हैं। लेकिन ये सब सामान्य सिद्धियाँ है, और जो वस्तुतः सिद्ध पुरुष हैं वे इस तरह के चमत्करों से दूर रहते हैं। हमारी मान्यता है कि शरीर आत्मा को धारण करने वाला एक पिंजरा मात्र हैं। आवश्यकता केवल सीखने की होती है कि उस पिंजरे का द्वार उससे बाहर आया और जाया जा सके। ऐसा हो जाने पर शरीर से संबंध टूट जाते हैं। विचारों की गति के सहारे मनुष्य स्वेच्छा से सर्वत्र भ्रमण कर सकता है। विचार शक्ति की अपनी तरंगे है और पदार्थ जनीभूत शक्ति है। विचारों पर नियन्त्रण हो जाने पर कितनी भी दूर अवस्थित किसी भी व्यक्ति को अपनी मन शक्ति से प्रभावित करना कठिन नही हैं।

हम मानते हैं कि मनुष्य अमर हैं और शरीर का परिवर्तन उसी प्रकार होता है जिस प्रकार वस्त्र बदला जाता हैं। मृत्यु और जन्म परस्परावलम्बित और संबंधित हैं। जीवन एक चक्र के समान निरन्तर घूमता रहता है। शरीर नष्ट होने पर उसकी आत्मा नया शरीर धारण करती है।

हम यह नहीं मानते कि मनुष्य का पूर्व जन्मों के किये गये कर्मो के अनुसार नये जन्म में सुख दुख प्राप्त होता है। कर्म शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। आत्मा का अस्तित्व बना रहता हैं। आत्मा एक प्रकार की ज्योति है जो शरीर को भेद कर प्रकाशित होती है। वह ज्योति मृत्यु के समय मन्द पड़ जाती है। शरीर से निकलने के बाद अपनी स्वतंत्र प्रकृति के अनुसार आत्मा प्रेत का रूप धारण करती है और अनेक प्रकार के प्रलोभनो के चलते भटकती रहती हैं। हमे ऐसी अनेक धार्मिक क्रियाओं का ज्ञान है जिनके द्वारा इस प्रकार के प्रेतो का मार्ग दर्शन किया जाता है। पुनर्जन्म पर हमारा विश्चास है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह जन्म इसी पृथ्वी पर होगा। ऐसी अनन्त पृथ्वियां हैं जहाँ प्राणियों का निवास हैं। कुछ पृथ्वी के निवासी हमसे भी अधिक उन्नत स्थिति में हैं। तिब्बत में ऐसे भी लामा है जिन्होंने उन पृथ्वियों से संबंध स्थापित किया हैं। उनका कहना है कि वे हमे अजायब घरो के जीव जन्तुओं के समान देखते हैं। हम उनके लिए कौतूहल के विषय है।

मुझसे एक ऐसे लामा से भेंट हुई थी, जिसका पिछला जन्म सौर जगत की किसी पृथ्वी पर हुआ था। बाद में उसका पुनर्जन्म हुआ हमारी इस धरती पर। उनका कहना था कि इस पृथ्वी से उस पृथ्वी में काफी अन्तर हैं। यहाँ के समय से वहाँ के समय में भी काफी अन्तर हैं। वहाँ आयु भी अधिक है

और कर्म की स्वतंत्रता है वहाँ छल, प्रपंच, ईर्ष्या, कटुता, द्वेष आदि नहीं है। वहाँ का जीवन आनन्दमयय है।

शरीर का बंधन टूट जाने पर आत्मा इस बात के लिए स्वतंत्र हो जाती है कि जैसे भूत, वर्तमान और भविष्य वैसे ही लोक लोकान्तरों में भी समान रूप से विचरण कर सके।

यह स्वतंत्रता कठिन साधना द्वारा जीवित अवस्था में भी प्राप्त की जा सकती है और अनेक सिद्ध पुरुषों ने वैसी सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। ऐसे दो एक सिद्ध महापुरुषों से तिब्बत भ्रमण काल मे मेरी भी भेंट हुई हैं। उनमें हजारो वर्ष पीछे अतीत में प्रवेश करने की क्षमता थी और इसी प्रकार भविष्य में भी। निद्रावस्था में शरीर से अलग होकर जब आत्मा बाहर विचरण करती है तो एक अदृश्य रूपहले तार से शरीर और आत्मा का संबंध बना रहता है। इस तार को टूटने को ही मृत्यु संज्ञा दी जाती है। ये साधनाएँ और ये सिद्धियाँ अत्यन्त दुष्कर है। लेकिन उन्हें प्राप्त करने वाले भारतीय योगियों और तिब्बती लामाओ की कमी नहीं हैं आज भी। हां! यह अवश्य लाखों में से विरला ही कोई ऐसी सिद्धि पाने का अधिकारी बनता है।

ये सब पढ़ सुनकर सहज ही प्रश्न उठता है कि लामाओं में यदि ऐसी सिद्धियां है तो उनके देश की इतनी दुर्दशा क्यों हो रही है। इसके उत्तर में उनका कहना है कि - जो बात पूर्व निश्चित है वह अवश्य होगी। उसे टाला नहीं जा सकता।

यह निश्चित है कि तिब्बत में योग-तंत्र का जो विपुल भण्डार है उसे समय समय भारत ने ही भरा है। यह सत्य है कि विदेशियों के आक्रमण से भारत की जितनी हानि हुई उनमें भारत से आध्यात्मिक विद्याओं का लुप्त हो जाना भी एक प्रबल हानि है। लेकिन अभी भी योग-तंत्र जैसी आध्यात्मिक विद्याएँ कुछ सीमा तक अपने मूल स्वरूप में सुरक्षित है तिब्बत में, इसमें सन्देह नहीं।

इसी प्रसंग में तिब्बत के रहस्यमय और साथ ही अविश्वसनीय विज्ञान के विषय पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के डॉक्टर ऑफ साइन्स की उपाधि प्राप्त इवान्स वेट्ज ने तिब्बती योग का अच्छा अध्ययन किया है। स्वर्गीय लामा दवा सन्दूप की सहायता से, जो कुछ काल तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में तिब्बती भाषा के अध्यापक थे उन्होंने योग-तंत्र आदि की कई तिब्बती पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। इन पुस्तकों की भूमिका और टिप्पणियों में उन्होंने बड़ी विद्वत्ता के साथ इन जटिल विषयों की चर्चा की है। पहली पुस्तक टिब्बेटन बुक आफ दि डेड (तिब्बती मृतक शास्त्र) हैं। जिसमे मृत्यु के बाद जीव किस लोक में

रहता है और किस तरह दूसरे शरीर में उसका जन्म होता है। बतलाया गया है। दूसरी पुस्तक में वहां के प्रसिद्ध योगी मिलरॅप का जिसका जन्म सन् १०५२ में हुआ था, जीवन चरित्र है। तीसरी पुस्तक तिब्बती योग हैं। जिसमें वहां के योग तथा तंत्र की सात पुस्तकों का संग्रह है।

योग तंत्रादि की सिद्धियों के अतिरिक्त वहाँ भौतिक विज्ञान के भी ऐसे चमत्कार देखने को आते है। जिनसे आजकल के वैज्ञानिकों की भी बुद्धि चकरा सकती है। इस पर बीद अवर्ने ने कुछ प्रकाश डाला है। तिब्बत जाकर बड़े परिश्रम से उन्होंने खोज की है और अपने अनुभवों का संक्षिप्त वर्णन एक लेख में किया है, जो सन् १९४० के बिहार, उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी जर्नल में प्रकाशित हुआ है। इसमें आपने बतलाया है कि उनको वहाँ कितनी ही ऐसी घटनाएँ देखने को मिली जिनका प्रत्यक्ष कारण वैज्ञानिको की समझ में नहीं आ सकता, पर उसमें भी कार्य-कारण का नियम लागू हो सकता है, आवश्यकता है उचित अनुसंधान की। बड़े भारी पत्थरों को जिनको बिना यंत्र की सहायता से उठाना कठिन हैं, वहाँ के लोग सहज ही उठा लेते हैं। एक दस मन का पत्थर पड़ा हुआ था, एक लामा ने अपनी कटोरी से कुछ गाढ़ा तेल उस पर ताबें के तार की कूंची से छिड़का। पांच मिनट बाद जब अवर्ने ने उस पत्थर को उठाया तब उसका बजन लगभग एक सेर रह गया था। उन्हें आश्चर्यचकित देखकर लामा ने हंसते हुए कहा कि अब हमारी बातों पर विश्वास होगा। दो घंटे के बाद पत्थर का वजन पहले जैसा ही हो जायेगा। हुआ भी ऐसा ही। कारण पूछने पर लामा ने कहा - कुछ काल के लिए उसे पृथ्वी से सुला दिया गया था अर्थात् पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति को निश्चेष्ट बना दी गयी थी। इस कार्य में किसी मंत्र शक्ति का उपयोग नहीं किया गया था। यह कुछ रासायनिक द्रव्यों का प्रभाव मात्र था। जिस प्रकार पानी से आग बुझ जाती है। गरमी से पानी हवा बन जाता हैं। उसी प्रकार रासायनिक तेल के प्रभाव से भारी पत्थर भी हल्का हो गया। यदि आधुनिक विज्ञान इन द्रव्यों का पता लगा ले तो कितना काम बन सकता है?

ऐसे ही एक बार उन्होंने देखा कि एक वृद्ध लामा आठ इंच गोल किसी धातु की नली को एक तरफ की ठकनी को खोलकर अपने कान में लगा रहा हैं। क्षण भर बाद दूसरी ओर की ठकनी खोलकर और उसे अपने मुंह में लगाकर दो चार वाक्य धीरे-धीरे कह दिये। मि. अवर्ने को आश्चर्य में देखकर उसने कहा- इसके द्वारा मैं चार सौ मील की दूरी पर अपने मित्र एक युवक लामा से - जिसकी आयु कुल १२० वर्ष की है - बातचीत कर रहा हूँ। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि यह यंत्र तिब्बत में गुप्त दूत के नाम से प्रसिद्ध है। इसके जोड़े होते हैं। किन्ही

दो व्यक्तियों के पास एक-एक होने से उनके द्वारा सैकड़ो मील की दूरी से परस्पर बातचीत कर सकते है। बिना जोड़े के अकेला यंत्र बेकार हैं। कुछ धातु और वनस्पितियों से यह नली बनती हैं। जिससे शब्द पड़ने से वायु में स्पन्दन होता है। जिसका प्रमाण उसके जोड़े पर पड़ता है कुछ दिनो बाद यंत्र खराब हो जाता है। या कुछ रसायनो से उसकी मरम्मत हो सकती है। प्राचीन काल में 'ग्यालजो' नामक सम्प्रदाय के लोगों में इसका बड़ा प्रचार था। वे इसके बनाने की विधि गुप्त रखते थे। पर कुछ लोगो को इसका ज्ञान हो ही गया। आज भी वहाँ इसके बनाने वाले कुछ लामा मिलते हैं।

मैंने स्वयं अपने तिब्बत प्रवास काल में एक लामा के पास गुप्त दूत यंत्र को देखा था। यदि उसको बनाने की विधि का पता लगाया जाय तो यह यंत्र टेलीफोन-रेडियो आदि से कहीं सस्ता पड़ सकता है।

तिब्बत में पुल बांधने का एक विचित्र प्रकार देखने को मिला मुझे। किसी वृक्ष की जड़ का गेंद के बराबर एक गोला कुछ रासायनिक पदार्थो में भिगो दिया गया २४ घंटे तक। फिर वह गोला एक नाले के किनारे जो लगभग बीस फुट चौड़ा था, दो फुट की गहरायी में गाड़ दिया गया। दो दिन उसमें से कई लताएं फूट निकली जो आसपास की चट्टाने से बड़ी मजबूती से लिपट गई। वे सर्पाकार लताएं रेंगती और बढ़ती हुई प्रत्यक्ष दिख पड़ती थीं। जहाँ कहीं उनको जमीन मिलती उसमे धंस जाती थीं। और पत्थरो और चट्टानो को कस कर जकड़ लेती थीं। नाले के एक किनारे पर से पुल की चौड़ाई भर के ६-६ इंच की दूरी पर सन् के रस्से दूसरे किनारे पर बांध दिये गये और उस पर लताएं चढ़ा दी गयीं। दो तीन दिन में वे लताएं उस रस्सों के सहारे नाले के उस पार पहुँच गयीं। और खूब मोटी-मोटी हो गयी। एक सप्ताह के भीतर ४ फुट चौड़ा झूले का एक मजबूत पुल तैयार हो गया। यह भी मालूम हुआ कि थोड़े ही दिनों के भीतर ये लताएं रस्सें को खाकर केवल अपने सहारे रहेंगी। और जब तक नष्ट नही होगी तब तक उनका मूल सुरक्षित रहेगा। यदि पुल को शीघ्र नष्ट करना हो तो एक तार को 'एकोनाइट' में भिगोंकर जड़ में कोंच देने से २० मिनट के भीतर सारी लताएं सूख कर गिर जायेंगी। यह लता वहाँ सस्वा कहलाती हैं। इसका पता लगाकर दूसरी जगह लगाने से नदी नाले में छोटे छोटे पुल बनाने में कितनी सुविधा हो सकती हैं।

तिब्बत का सबसे ऊँचा पर्वत 'खोखुन पर्वत' हैं। उसकी ऊँचाई १८००० फुट है। एक दिन मैं, दो तीन लामाओ के साथ गन्धक की झील देखने गया। वहाँ बड़ी गहरायी में एक झील थी जहां लम्बी-लम्बी गुफाओं में होकर जाना

पड़ता था। उन गुफाओं के बीच सौ-सौ फुट के हाल थे। पर प्रकाश का कही नामों निशान भी नहीं था। गुफा में घुसने पर लामा ने एक घड़ियाल उठाई-जो ६ इंच की गोलाई में थी। उसके साथ लकड़ी की एक छोटी सी मुंगरी बधी हुई थी जो खूब चमक रही थी और उसके चारो ओर चांदी के तार की एक बड़ी सुन्दर झालर लगी हुई थी। घड़ियाल पर मुंगरी गिरते ही शब्द के साथ ६ स्थानों पर हल्के हरे रंग की रोशनी हो गयी। मिनट भर तो वही धीमी रही फिर तो एक स्थान पर ५०० मोमबत्तियों के बराबर प्रकाश हो गया। २० फुट की दूरी पर जमीन से ६ फुट की ऊँचाई पर दीवालों पर लगी लकड़ी को खूटियों के सहारे टंगी हुई किसी चीज से वह प्रकाश हो रहा था। अन्तिम रोशनी से आगे बढ़ने पर घड़ियाल पर फिर एक आवाज की गयी और आगे भी वैसा प्रकाश हो गया। अन्त में लामाओं के साथ झील पर पहुंचा जो १०० फुट लम्बी और ६० फुट चौड़ी थी। घड़ियाल पर दो बार आवाज की गयी और शब्द के साथ ही पचासो स्थानों पर प्रकाश जगमगा उठा। देखने पर पता चला कि वह प्रकाश ४ इंच के एक चमकीले पत्थर के टुकड़े से हो रहा था। जो किसी धातु की आधा इंच मोटी एक थाली में जड़ा हुआ था। वह तांबे के तार से लकड़ी के खम्भे पर टंगा हुआ था। पूछने पर लामा ने बतलाया कि घड़ियाल की ध्वनि थाली में प्रवेश करती है जिससे वायु में स्पन्दन शक्ति उत्पन्न होती है और उससे चमकीले पत्थर में प्रकाश प्रकट होता हैं। स्पन्दन शक्ति के वलानुसार प्रकाश घटता-बढ़ता हैं। यदि घड़ियाल किसी धातु की मुंगरी से बजाया जाय तो प्रकाश इतना तीव्र होगा कि आंखे उसे सहन न कर सकेगी, और फूट भी सकती हैं। इतने पर भी पत्थर में और न थाली में गर्मी का लेश मात्र अनुभव नहीं होता था। लामा लोग प्रायः दीर्घ, जीवि होते है। दूर की घटनाएं जान लेने, रोगों की मनः शक्ति के बल पर अच्छा कर देने, अत्यन्त शीत में भी रह सकने आदि के रहस्यो का उन्हें ज्ञान रहता है।

मि. अवर्ने ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों से जिनको ठीक पाया उन्ही का अपने लेख में वर्णन किया है। उनका कहना था कि विज्ञान इनके अनुसंधान से बहुत कुछ लाभ उठा सकता है। इन रहस्यों को जान लेने से वैज्ञानिक साधनों पर जितना व्यय हो रहा है वह घटाया जा सकता है और वे सर्व सुलभ भी बनाए जा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन भौतिक विज्ञान भी आधुनिक विज्ञान से कम आश्चर्य जनक न था। परन्तु आजकल के वैज्ञानिकों ने उसे टोना-टोटका भर ही समझ कर उपेक्षित कर दिया है। यह बात अवश्य है कि भौतिक विज्ञान के साथ-साथ उन दिनों योग और तंत्र की सिद्धियों का भी प्रभाव था। पर अब

उसकी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। धीरे-धीरे वैज्ञानिको को भी इसकी सत्यता समझ में आ रही है। यदि थोड़ी देर के लिए इसे न भी माना जाय तो भी भौतिक दृष्टि से प्राचीन विद्याओ के अध्ययन से आज भी बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है। कहा जा सकता है कि उन विद्याओ को गुप्त रख कर उनके ज्ञाताओं ने स्वयं ही उन्हें नष्ट कर दिया परन्तु इस संबंध में एक बात ध्यान रखने योग्य है केवल अधिकारी को ही किसी विद्या की जानकारी देना, यह सर्वत्र प्राचीन नियम था। यह इसलिए किया जाता था कि उसका दुरुपयोग न हो। दूसरी बात यह थी कि उन विद्याओं का उपयोग लोक सेवा में ही किया जाता था। उनसे निजी स्वार्थ की सिद्धि करना पाप समझा जाता था। अपने यहाँ आज भी साधु महात्मा लोगो को औषध के चुटकुले बतला देते हैं, पर यह शर्त करा लेते है कि उनसे धन न कमाया जाय। ऐसा करने पर यह निष्फल हो जायेगा। बड़े-बड़े वैज्ञानिक अविष्कार भी गुप्त रखे जाते हैं। उनके पेटेन्ट किये जाते हैं। पर उनसे कमाया जाता हैं और किया जाता है नरसंहार। इसे देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि ऐसी साधना गुप्त रखने में प्राचीन लोगों ने अपनी बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता का ही परिचय दिया था। यदि लोक हित की दृष्टि से अपना गर्व छोड़कर नम्रता के साथ आधुनिक विज्ञान इस ओर अनुसंधान में लगे तो बहुत कुछ सीख सकता है, लेकिन इसके लक्षण नहीं दीख पड़ते। प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को आजकल अन्धविश्वास समझकर अवहेलना की जा रही है और की जा रही है उपेक्षा। अस्तु

यह हुई तिब्बत की सिद्धियों और चमत्कारों की चर्चा अब मैं वहाँ के एक महत्वपूर्ण विज्ञान की चर्चा करूंगा। जिसका संबंध योग से है।

तिब्बती योग-तांत्रिक साधना से संबंधित जितने भी प्राचीन विज्ञान हैं, उनमे बहुत से लुप्त प्राय हो चुके हैं और जो बचे भी हैं वे अपनी मुमुर्षु अवस्था में हैं। जो मुमुर्षु अवस्था में है उनमें एक परम विज्ञान है 'नेत्र विज्ञान'। इस परम विज्ञान के ज्ञाता बहुत ही कम रह गये हैं तिब्बत में। जो है भी वे इस विज्ञान के संबंध में कुछ भी बतलाने के लिए तैयार नहीं होते। नेत्र विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है तीसरा नेत्र जिसका संबंध आज्ञा चक्र से हैं। आज्ञा चक्र के भेदन का अर्थ है तृतीय नेत्र का खुलना।

ऐतिहासिक गणना की दृष्टि से योग का इतिहास लगभग बीस हजार वर्ष का इतिहास हैं। और अपने बीस हजार वर्षो के जीवन काल में वह निरन्तर यही कहता आ रहा है कि आज्ञा चक्र से संबंधित मस्तिष्क का कम से कम आधा भाग निष्क्रिय और प्रसुप्त हैं। अगर मनुष्य को इस लौकिक जगत से परे

पारलौकिक जगत अथवा अन्य किसी जगत के विषय में कुछ जानना समझना है तो उस निष्क्रिय और प्रसुप्त भाग को सक्रिय और जाग्रत करना आवश्यक हैं। इतना ही नहीं यदि मनुष्य को अध्यात्म मार्ग पर चलकर परमात्म तत्व को उपलब्ध होना है तो उसके लिए भी उसे सक्रिय और जाग्रत करना अत्यन्त आवश्यक हैं। योग के अनुसार आज्ञा चक्र के मध्य में एक बिन्दु है, वही बिन्दु है तीसरा नेत्र। वह बिन्दु मस्तक में लगभग डेढ़ इंच भीतर होता हैं। वास्तव में वह रहस्यमय बिन्दु अतीत या भावातीत जगत की ओर खुलने वाला महत्वपूर्ण द्वार है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि नेत्र की बहुत सी सम्भावनाएं है जो सुप्त हैं। सच बात तो यह है कि मनुष्य की प्रत्येक इन्द्रिय की बहुत सी सम्भावनाएं हैं, जो सब सुप्तावस्था में पड़ी हुई हैं। इस संसार में मनुष्य को जो अविश्वसनीय चमत्कार दिखलायी पड़ते हैं वह वास्तव में सुप्त पड़ी सम्भावनाओं की एक साधरण-सी झलक मात्र होता है। परामनोंविज्ञान का कहना है कि सुप्त सम्भानाएं कहीं से और किसी रूप में कभी भी प्रकट हो सकती हैं। जिसे देखकर मनुष्य एक बारगी चमत्कृत हो उठता है। ज्ञात होना चाहिए वे सम्भावनाएं मनुष्य के भीतर ही है, बाहर नहीं। लेकिन उसका बाहर निकलने का मार्ग बन्द हैं। जैसे आधे मस्तिष्क के सक्रिय होने की बात है। यह योग की दृष्टि हैं और जैसा कि ऊपर कहा गया है योग की दृष्टि सौ दो सौ वर्षो की धारणा नही बल्कि पूरे बीस हजार वर्ष की परिपुष्ट धारणा हैं। आज के विज्ञान का तो कोई भरोसा नहीं, उसकी धारणा आज कुछ है तो कल है कुछ। लेकिन योग की यह परिपुष्ट दृष्टि हैं। जिसमें कोई परिवर्तन नहीं। अस्तु:

'आज्ञाचक्र' योग-तंत्र के षट्चक्रो में अपना विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिसके भेदन का अर्थ हैं तीसरे नेत्र का खुलना और अन्तर्जगत से संबंध स्थापित होना। लेकिन यह सब तभी सम्भव है जब प्रसुप्त और निष्क्रिय आधा मस्तिष्क जाग्रत और साथ ही साथ सक्रिय हो। तिब्बत ने इसके लिए एक विशेष प्रकार की शल्य क्रिया का अविष्कार किया। सच पूछा जाय तो यह अविष्कार तिब्बत ही कर सकता था। क्योंकि तीसरे नेत्र पर तिब्बत ने जितना परिश्रम किया है उतना परिश्रम और किसी देश की सभ्यता ने नहीं किया है। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो तिब्बत का सम्पूर्ण विज्ञान मानव जीवन के अनेक आयामों का विज्ञान है जो तीसरे नेत्र के ही विज्ञान पर आधारित है।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, तिब्बत ने शल्य क्रिया द्वारा बिन्दु को तोड़कर तीसरा नेत्र खोलने की जो पद्धति अपनायी वह पद्धती भारत भी जानता था। वह भी शल्य क्रिया कर सकता था और उसके द्वारा बड़ी सरलता से तीसरा

नेत्र खोल सकता था और कर सकता था आन्तर जगत में प्रवेश भी। लेकिन ऐसा कभी नहीं किया उसने। क्योंकि बाहर से तीसरा नेत्र खोलने में और भीतर से खोलने में जमीन और आसमान का अन्तर है और इस अन्तर को एक परम योगी ही समझ सकता है।

शल्य क्रिया द्वारा तीसरे नेत्र को खोलने की जो पद्धति है वह साधानागत नहीं है। साधानागत न होने के कारण आधे मस्तिष्क की सक्रियता के दुरुपयोग की सम्भावना हैं। क्योंकि व्यक्ति वहीं का वहीं हैं, जहाँ पहले था। उसकी चेतना में किसी भी प्रकार का कोई साधनागत अन्तर तो हुआ नहीं है, लेकिन शल्य क्रिया द्वारा तीसरा नेत्र खुल जाने पर उसके मस्तिष्क ने नये-नये काम करने शुरु कर दिये जो भौतिक स्तर पर सम्भव नहीं हैं, वह व्यक्ति देश के हित के लिए समाज के हित के लिए मनुष्य के हित के लिए और धर्म के हित के लिए बहुत ही कम कुछ कर पायेगा। उससे नैतिक आशा रखना व्यर्थ हैं। यदि वह यह जानता है कि भीतर से आज्ञा देने पर कोई भी कार्य हो सकता है तो इस बात की बहुत ही कम सम्भावना है कि किसी से वह अच्छा काम करवायेगा, कभी नहीं। वह भीतर से आज्ञा देकर किसी के द्वारा अनैतिक अथवा बुरा काम ही करवायेगा। इसकी सम्भावना अधिक हैं। शल्य क्रिया का सूत्र भारत भी जानता था, लेकिन इसीलिए कभी भी उसका प्रयोग नहीं किया, क्योंकि वह जानता था कि इससे अर्थ का अनर्थ हो जायेगा। बाहर से चेतना को विकसित करने अर्थ हैं बन्दर के हाथ में छूरी देना। क्योंकि बाहर से चेतना का विकास साधनागत नहीं हैं। ऐसी चेतना से उपलब्ध शक्ति अति भयंकर सिद्ध होती हैं इसमें सन्देह नहीं। आप ही समझिये नादान बालक के हाथ में दी गयी तलवार से किसी का भी मंगल हो सकता है भला? इसकी आशा करना व्यर्थ है।

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि शल्य क्रिया जैसे भौतिक उपकरणों द्वारा आज्ञाचक्र का भेदन और तीसरे नेत्र का जागरण से तिब्बत बहुत सी ऐसी बातों को जान समझ सका और बहुत से ऐसे अनुभवों को भी उपलब्ध हो सका, जो चेतन मन के तल पर अथवा बहिर्मुखी चेतना के स्तर पर सम्भव नही हैं, लेकिन फिर भी तिब्बत कोई नैतिक अर्थो में महान देश नहीं बन सका। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात हैं। मैं यह भी कहता हूँ कि तिब्बत ने आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत काम किया है लेकिन फिर भी नैतिक अर्थो में वह एक दिव्य महापुरूष को भी जन्म न दे सका। मैं यह भी कहता हूँ कि तिब्बत का ज्ञान बढ़ा, शक्ति बढ़ी, आश्चर्यजनक बातों का भी उसे पता चला, और लोक-परलोक के तथ्यों से भी वह परिचित हुआ-लेकिन उन सभी का उपयोग साधारण से साधारण कार्यो में हुआ, उनका उपयोग जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हुआ।

किसी भी आध्यात्मिक साधना की दिशा में भारत ने कभी भी कोई सीधा भौतिक प्रयोग नही किया। इसकी चेष्टा भी कभी नही की। उसने भीतर से चेतना को जागृत कर उसका क्रमिक विकास करने पर जोर दिया। भारत की जितनी भी साधनाएं हैं उनमें अधिकांश आन्तरिक हैं और उन्ही आन्तरिक साधनाओं में सबसे महत्वपूर्ण साधना हैं षट्चक्र साधना। यह साधना योग पर आधारित तंत्र विशेष की अत्यन्त गोपनीय और रहस्यमयी साधना हैं। प्रसुप्त चेतना को जागृत कर उसके द्वारा क्रम से एक-एक चक्रो का भेदन करते हुए उसका विकास करना इस परम साधना का परम लक्ष्य है जिसकी पूर्ति होती है चेतना से परम चेतना के मिलन में। इसी को तंत्र में कहते है 'सामरस्य भाव अथवा सामरस्य महामिलन। यह योग-तंत्र की परम उपलब्धि है। यह चेतना के विकास की साधनागत आन्तर्विधि हैं। योग की सदैव यही चेष्टा रही है कि भीतर की चेतना को एकत्र करके इतना एकाग्र किया जाय कि चेतना की शक्ति से ही तीसरे नेत्र का आवरण अपने आप अनावृत हो जाय। क्योंकि चेतना के प्रवाह को तीसरे नेत्र तक लाना एक बहुत बड़ा नैतिक उपक्रम हैं। साधारण मन की गति नीचे की ओर हैं, यह उसका स्वभाव हैं। और उसके इस स्वभाव के विरुद्ध ऊपर ले जाना हैं। वास्तव में यह अत्यन्त कठिन कार्य हैं। यही मूल कारण हैं कि षट्चक्र साधना विरले ही किसी के लिए सम्भव हैं।

षट्चक्रो में अन्तिम छठा चक्र, आज्ञा चक्र हैं। शरीर में दो रूप हैं चेतना के - बहिर्चेतना और अन्तर्चेतना। पहली चेतना तो शरीर में सक्रिय है और जबकि दूसरी चेतना प्रथम मूलाधार चक्र के प्रसुप्त अवस्था में हैं। तंत्र में प्रसुप्त अन्तर्चेतना को कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। विशेष प्रकार के प्राणायाम और विशेष प्रकार के ध्यान के अतिरिक्त गहन चित्त की एकाग्रता से वह प्रसुप्त आन्तर्चेतना जागृत होती हैं और विभिन्न योग-तांत्रिक क्रियाओं द्वारा क्रम से एक-एक चक्रों का भेदन कर अन्त में आज्ञा चक्र का भेदन करती हैं तो घनीभूत हुई चेतना की ऊष्मा से तीसरा नेत्र स्वयं अपने आप अनावृत्त हो जाता हैं और खुल जाता हैं योगी के लिए आन्तर जगत का रहस्यमय द्वार। आन्तर जगत में प्रवेश करने पर उसे जो मानवेत्तर शक्ति प्राप्त होती हैं और संसार के लिए अत्यन्त दुर्लभ जो आध्यात्मिक ज्ञान उपलब्ध होता हैं उसके लिए दिव्य और अलौकिक सम्पत्ति सिद्ध होती है वह! इसमें सन्देह नहीं।

तिब्बत में लामा योगियों की तरह भारतीय योगी और साधक हैं। जैसे लामा योगी गुप्त और प्रच्छन्न भाव से संचरण विचरण करते हैं उसी प्रकार भारतीय योगी और साधकों का भी अस्तित्व गुप्त और प्रच्छन्न रहता हैं। ऐसे उच्च कोटि

का दर्शन अति दुर्लभ हैं। वे शीघ्र किसी के सामने अपने आपको प्रकट नहीं करते। कहने की आवश्यकता नहीं अपने तीन वर्ष के तिब्बत प्रवास काल में सिद्ध लामा योगियों का सत्संग लाभ तो किया ही इसके अतिरिक्त उच्च कोटि के मानवेत्तर शक्ति सम्पन्न भारतीय सिद्ध योगी और साधको का भी दर्शन लाभ लिया मैंने। और उन तिब्बती और भारतीय महान आत्माओं द्वारा पूर्व संस्कार वश जो आध्यात्मिक सम्पत्ति मुंझे उपलब्ध हुई उन्हें तीसरा नेत्र और योगी और तांत्रिकों का रहस्यमय देश तिब्बत में समाविष्ट करने का प्रयास किया हैं मैंने!

यह कहना अनावश्यक न होगा कि योग तंत्र-मंत्र और भूत-प्रेत की दृष्टि से तिब्बत एक प्रकार से आज भी अपने आप में रहस्यमय है। लेकिन उसमें लेनिन के भौतिक वादी सिद्धान्तो का प्रवेश हो गया है इन दिनों तिब्बत पर, कम्युनिस्ट चीन का आधिपत्य हैं। तिब्बत का शासन दलाई लामा और धार्मिक जीवन पणछेन लामा के हाथ में रहा। वहाँ की यह धारणा रही है कि ये प्रधान लामा कभी नहीं मरते। मृत्यु होने पर उनकी आत्मा किसी दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है। ऐसा व्यक्ति खोजकर ही उनका उत्तराधिकारी बनाया जाता था। परन्तु अब तिब्बत का कायाकल्प हो रहा है। प्राचीन रहस्यमय देश तिब्बत को नया कम्युनिस्ट चोंगा पहनाया जा रहा हैं। लामाओं का देश लेनिन का देश होता जा रहा है। दोनों प्रधान लामाओं को चीन की राजधानी पीकिंग ले जाया गया और उन्हें वहाँ कई महीने रखकर कम्युनिष्ट सिद्धान्तों की व्यवस्थित रूप से दीक्षा दी गयी। जब दोनों लामा पहली बार भारत आये थे तो उनके रहन सहन में पूरी आधुनिकता दीख पड़ती थी। वर्तमान में तो दलाईलामा भारत में ही हैं और हैं पूरी तरह आधुनिकतम वातावरण में। ऐसी स्थिति में तिब्बत का प्राचीन ज्ञान-विज्ञान अब एक प्रकार से प्रत्यक्ष रूप में नष्ट ही समझना चाहिए।

विद्वद्गण शुभाकांक्षी

अरुण कुमार शर्मा

अध्यक्ष
आगम निगम संस्थान
बी० ५/२३ हरिश्चन्द्र रोड
वाराणसी - २२१००१
दूरभाष - ३१३७७५/३१२२९३

१

अध्याय

रहस्यमय देश तिब्बत

नेपाल की सीमा से लगा रहस्यमय देश तिब्बत को संसार का छत कहा जाता है। अति प्राचीन काल से यह एक अत्यन्त रहस्यमय देश रहा है। वहाँ की योग-तंत्र साधना और अनेक प्रकार के रहस्यात्मक चमत्कारों की बहुत सारी किम्वदन्तियाँ, दन्त कथायें और कहानियाँ समय-समय पर संसार के दूसरे देशों तक पहुँचती रही है। और उनके साथ ही साथ अनेक अलौकिक और चमत्कारपूर्ण घटनाओं का पहुँचता रहा है विवरण। वास्तव में चमत्कारों का देश है तिब्बत।

इटली के प्रसिद्ध सन्त ऑडरिक पहले यूरोपियन थे। जिन्होंने १३२५ ई० में रहस्यमय देश तिब्बत की यात्रा की थी, लेकिन १६३१ ई० के पूर्व पश्चिमी जगत को इस आश्चर्य जनक कौतूहलमय और रहस्यमय देश के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं हो पायी थी।

जानकारी तो तब हुई - जब अंग्रेज महिला डेविड नील ने 'विथ मिस्टिक ऐण्ड मेजीशिन्स इन तिब्बत' नामक पुस्तक लिखी। वह स्वयं ही सन्यासिनी के रूप में लगभग दस-बारह वर्ष तक तिब्बत में रहीं।

डेविड नील के अतिरिक्त ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के डॉक्टर इवान्स विट्ज ने भी तीन पुस्तकें लिखी - (१) दी टिबेटन बुक आफ दी डेड, (२) टिबेट्स ग्रेट योगी मिलरॅप, (३) टिबेटन योग।

इन सब के बावजूद भी तिब्बतीय चमत्कार और सिद्धियों के संबंध में विधिवत् जानकारी १६५६ ई० में हुई - जब तिब्बती लामा, 'लोबसांग रम्पा' ने अपनी जीवनी लिखी।

लोबसांग रम्पा की जीवनी पर आधारित उनकी विख्यात पुस्तक 'द थर्ड आई' के प्रकाशित होने पर अंग्रेजी प्रकाशन के संसार में सनसनी फैल गयी। कुछ ही समय में उसकी दस हजार प्रतियाँ बिक गयी। बाद में तो उसके २२ संस्करण छपे और अब तक दस लाख से भी अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं। उसका आधे दर्जन यूरोपीय भाषा में अनुवाद भी उपलब्ध है।

'द थर्ड आई' के बाद लोबसांग रम्पा की कई पुस्तकें प्रकाशित हुई। जिनमें तिब्बत के धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन का इतना सूक्ष्म और सांगोपांग विवरण दिया गया है जो अपने आपमें आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय है। कहने की आवश्यकता नहीं उन पुस्तकों ने न केवल इंग्लैण्ड बल्कि सारे यूरोप और अमेरिका में तहलका मचा दिया था। इसमें सन्देह नहीं।

डेविड नील ने अपनी पुस्तक में जो कुछ लिखा है - उस पर सहसा विश्वास नहीं होता। डॉ. अनवरसन फ्रान्स के विज्ञान तथा औषध अकादमी के सदस्य, इन्स्टीट्यूट आफ जनरल साइकालॉजी के अध्यक्ष एवं 'कालेज द फ्रान्स' के अध्यापक थे। वह डेविड नील की पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं "जो विद्वान वैज्ञानिक प्रयोगों में विश्वास रखते हैं, वे ऐसी बातों का मजाक ही बनायेंगे। डेविड नील से भेंट होने के पूर्व मैं भी ऐसा करता था। किन्तु उनसे बातचीत करने पर मेरे बहुत से भ्रम दूर हो गये। डेविड नील भी प्रसिद्ध दार्शनिक देकार्ते के सिद्धान्तों में विश्वास करती हैं। और प्रसिद्ध वैज्ञानिक क्लाड बर्नर्ड की शिष्या मानती हैं अपने आपको। बिना पहले से कोई धारणा बनाये हुए निष्पक्ष रूप से उन्होंने तिब्बत की योग-तांत्रिक सिद्धियों की जाँच की है। 'कालेज द फ्रान्स' में उनका जो भाषण हुआ उसमें उन्होंने अपना निष्कर्ष निम्न शब्दों में प्रकट किया - "तिब्बत की योग-तांत्रिक सिद्धियाँ निश्चय ही अलौकिक और दैवी शक्तियों से पूर्ण हैं। कुछ ऐसी भी योग-सिद्धियाँ है, जिनका वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण किया जाना सम्भव है। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी यौगिक क्रियाएँ हैं जिनका वैज्ञानिक रूप से अभ्यास किया जाय तो उनसे अभीष्ट फल की प्राप्ति सम्भव है। इसलिए उनके संबंध में मुझे जो जानकारी प्राप्त हुई है भले ही वह हमारे सिद्धान्तों से मेल न खाये - अनुसंधान का विषय अवश्य है"।

डॉ० अनवरसन के शब्दों में इससे स्पष्ट है कि तिब्बत की यौगिक क्रियायें वैज्ञानिक विषय हैं। इसे केवल अन्धविश्वास नहीं कहा जा सकता।

तिब्बत की रहस्यमयी योग-तांत्रिक सिद्धियों के विषय में सुनकर यह सहज ही प्रश्न उठता है कि फिर तिब्बत की वर्तमान में इतनी दुदर्शा क्यों हो रही है?

इस संबंध में तिब्बती लामाओं का कहना है कि जो बात पूर्व निश्चित है - वह अवश्य होगी। लामा लोबसांग रम्पा ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि तिब्बत

ने योग-तंत्र का ज्ञान भारत से प्राप्त किया है। यह कहना असंगत न होगा कि विदेशियों के आक्रमण के फलस्वरूप भारत का यह 'ज्ञान' वर्तमान अवस्था में प्रायः लुप्त सा है, लेकिन तिब्बत में वह अभी भी गुप्त रूप से जीवित है। राजनैतिक घटनाओं का प्रभाव अवश्य ही तिब्बत के सामाजिक और धार्मिक जीवन पर पड़ा है, किन्तु जहाँ तक उसके आध्यात्मिक स्वरूप का प्रश्न है - वह आज भी सुरक्षित है और है अपने मूलरूप में विद्यमान।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि तिब्बत जितना रहस्यमय है, उतना ही है दुर्गम। उसके जैसा दुर्गम देश इस संसार में कोई दूसरा नहीं है। वास्तव में उसके रहस्य की सुरक्षा उसकी दुर्गमता के कारण ही है। इतना ही नहीं, उसी दुर्गमता के फलस्वरूप शुरू से ही संसार से पृथक और अपरिचित भी रहा है। ल्हासा से उत्तर की ओर जो लगभग सौ मील की मरू भूमि है - वह तिब्बत को उत्तर की ओर से दुर्गम व अजेय बनाये हुए है। संसार का सर्वोच्च पठार है वह। जिसका अधिकांश भाग समुद्र की सतह से १६ हजार से १७ हजार फुट ऊँचा है। वैसे तिब्बत की ऊँचाई १८ हजार फुट है। इसी कारण वहाँ वर्ष में आठ महीने बराबर बर्फ की होती रहती है वर्षा। वातावरण बिल्कुल निस्तब्ध शांत और अनजाना लोक सा प्रतीत होता है। हमेशा एक धुन्ध-सा छाया रहता है चारों तरफ। दूर-दूर तक कहीं किसी पेड़-पौधों का नामोनिशान नहीं और न तो होगा पशु-पंक्षी का दर्शन ही। सिवाय याक के (एक प्रकार का भेंड)। याक का मांस, चमड़ा और बाल तिब्बत वासियों का मुख्य जीवनाधार है। उसका दूध तो उनके लिए स्वर्गामृत के समान है।

तिब्बत जैसा धर्म-भीरू देश संसार में कोई और दूसरा नहीं है। वहाँ के एक मात्र शासक दलाई लामा हैं जिन्हें अवतारी पुरुष समझा जाता है।

धर्म-भीरूता के कारण वहाँ मठों और आश्रमों की संख्या इतनी अधिक है कि अंग्रेज पर्यटक हड्सन तिब्बत को मठों और आश्रमों का ही देश समझ बैठा।

मेरी तिब्बत यात्रा के प्रेरणा स्रोत

भारत से तिब्बत जाने के लिए जितने मार्ग है, उनमें एक है दार्जलिंग तिब्बत मार्ग। इस मार्ग से ल्हासा की दूरी लगभग ३६० मील है। अन्य मार्गों से यह मार्ग थोड़ा सरल और सुविधाजनक है। वैसे तो बाल्यावस्था से ही योग-तंत्र में रुचि होने के कारण मेरे मन में तिब्बत-यात्रा की लालसा जागृत थी, लेकिन उस लालसा को साकार करने की मुझे मिली प्रेरणा महा पंडित राहुल सांकृत्यायन और मिस डेविड नील से।

राहुल जी तिब्बत में बहुत समय तक रहे थे। वहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म-दर्शन और तंत्र का विस्तृत और गहन अध्ययन भी किया था। इतना ही नहीं वापस लौटते समय काफी संख्या में तत् विषयक प्राचीन पुस्तकें और पाण्डुलिपियाँ भी ले आये थे। राहुल जी से मेरा प्रथम साक्षात्कार कलकत्ता के एक सांस्कृतिक समारोह में हुआ था। उनसे मुझे तिब्बत के भौगोलिक स्वरूप के अतिरिक्त वहाँ के मठों और योगाश्रमों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई। वहाँ के दलाई लामा के नाम एक पत्र भी लिखकर दिया मुझे उन्होंने।

मिस डेविड नील सबसे पहले १९१० ई० में गयी थीं तिब्बत। जैसा कि बतला चुका हूँ। मिस डेविड नील ने बौद्ध सन्यास ग्रहण कर तिब्बती लामाओं से योग शिक्षा ली थी। उन्होंने अपनी तिब्बत यात्रा का रोचक वर्णन अपनी पुस्तक 'माई जर्नी टू ल्हासा' में किया है, जिसका प्रकाशन १९२९ ई० में हुआ था। उस पुस्तक को कई बार पढ़ा मैंने। लेकिन कभी सपने में भी मैंने कल्पना नहीं की थी कि उस पुस्तक की लेखिका से मेरी भेंट होगी और वह भी वाराणसी में।

मैंने देखा गौरांग वदना उस वृद्धा का मुख मण्डल असीम अलौकिक तेज से दप्-दप् कर रहा था। और उनकी नील वर्णी आँखों में भी एक ऐसी ज्योति की चमक थी जो कभी किसी पहुँचे हुए योगी की ही आँखों में देखने की मिलती है।

कहने की आवश्यकता नहीं मिस डेविड नील ने मुझे तिब्बत के योग और तंत्र से संबंधित अपने मूल्यवान अनुभव तो सुनाया ही इसके अतिरिक्त वहाँ गुप्त भाव से निवास करने वाले योगी और साधकों और उनके अलौकिक चमत्कारों के विषय में भी बहुत कुछ बतलाया उन्होंने। जिसके फलस्वरूप और तीव्र हो उठी मेरी लालसा और एक दिन उसी लालसा के वशीभूत होकर तिब्बत की जीवन-मरण दायिनी हिम यात्रा पर निकल पड़ा मैं।

यात्रा का लक्ष्य

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मेरी तिब्बत यात्रा का एक मात्र लक्ष्य मनोरंजन नहीं, भौगोलिक दृष्टि से भ्रमण नहीं बल्कि योग-तंत्र साधना और संस्कृति के गंभीर एवं रहस्यमय स्वरूप से परिचित होना, उनके आध्यात्मिक तथ्यों की गहरायी को समझना और साथ ही वहाँ प्रच्छन्न भावों से निवास करने वाले मानवेतर शक्ति सम्पन्न योगी और साधकों का साक्षात्कार करना था। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अपने तीन वर्ष के प्रवास काल में मैंने तिब्बत में जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया वह निसन्देह योग-तंत्र साधना की दृष्टि से

अति मूल्यवान और अति महत्वपूर्ण उपलब्धि समझी जायेगी। साधारणतः लोगों की धारणा है कि तिब्बत में केवल बौद्ध धर्मावलम्बी लामा योगियों और साधकों का वास है। नहीं ऐसी बात नहीं है। यह भ्रम है। तिब्बत की हिम-भूमि में अनेक ऐसी हिम-गुफायें और गिरि-कन्दरायें हैं जिनमें सैकड़ों वर्ष से दीर्घ आयु सम्पन्न और कालञ्जयी योगी और साधकगण निवास करते हैं जिनसे स्वयं तिब्बत वासी भी अपरिचित हैं। वे मानवेतर शक्ति सम्पन्न परकाया प्रवेश सिद्ध और आकाशचारी दिव्य पुरुष हैं। उनका अपने सूक्ष्म शरीर, मनोमय शरीर और आत्म शरीर पर पूर्ण अधिकार है। अपने पार्थिव शरीर को कुछ समय के लिए छोड़ कर उपर्युक्त किसी भी शरीर द्वारा आकाशमार्ग से हजारों मील की यात्रा कर सकने में समर्थ हैं। इतना ही नहीं अपने आत्म शरीर के माध्यम से लोक लोकान्तरों में भी भ्रमण करते हैं वे लोग।

एक बौद्ध संन्यासिनी से साक्षात्कार

तिब्बत में इस प्रकार प्रच्छन्न भाव से निवास करने वाले योगी और साधकों की अपनी-अपनी मण्डलियाँ है जिन्हें शिष्य मण्डली कहते हैं। प्रत्येक मण्डली का एक अधिष्ठाता होता है। शिष्य मण्डली वास्तव में उन लोगों की मण्डली है, जो भौतिक शरीर की प्राकृतिक मर्यादा का उल्लंघन कर तथा जागतिक बंधन से मुक्त होकर अपने सूक्ष्म शरीर अथवा मनोमय शरीर द्वारा साधना मार्ग पर अग्रसर हैं। वे बराबर मानसिक सम्पर्क अपने अधिष्ठाता से बनाए रखते है। और अधिष्ठाता भी उन्हें बराबर साधना निर्देश प्रदान करते रहते हैं अगोचर रूप से।

तिब्बत यात्रा के पूर्व मेरी भेंट एक ऐसी ही साधिका से हुई थी जिसका मानसिक संबंध किसी मण्डली से था। नाम था पद्मगन्धा।

साधिका पद्मगन्धा

पद्मगन्धा बौद्ध सन्यासिनी थी और उन दिनों देव प्रयाग में निवास कर रही थी। पिछले किसी जन्म में वैशाली के एक नगर श्रेष्ठी की कन्या थी और भगवान तथागत से दीक्षा ग्रहण कर बौद्ध भिक्षुणी बन गयी थी वह। और तभी से साधना मार्ग पर चलती हुई उस भिक्षुणी का आत्मा अब ऐसे स्थान पर पहुँच गयी थी, जहाँ उसे अपने स्वरूप का बोध होता है और होता है पूर्ण तत्व ज्ञान का अनुभव।

अत्यन्त उज्ज्वल-वर्ण शरीर पर काषाय वस्त्र मुण्डित सिर बड़े-बड़े शांत और स्थिर नेत्र मुख पर साधना का प्रखर तेज। आयु तो सौ वर्ष के लगभग थी लेकिन देखने में अट्ठाइस-तीस से अधिक की प्रतीत नहीं होती थी वह।

प्रथम दृष्टि में ही मैं समझ गया कि कोई उच्च कोटि की साधिका है वह। सत्संग के लिए व्यग्र हो उठा मेरा मन। लेकिन उस बौद्ध सन्यासिनी से कुछ आध्यात्मिक चर्चा करने का साहस न जुटा पाया मैंने।

कार्तिक का महीना। साँझ का समय। उत्तर की ओर से आने वाली बर्फीली हवा से रह-रह कर काँप उठता था सारा शरीर। त्रिपथगा के तट पर एक कम्बल लपेटे बैठा था मैं। उसी समय न जाने किधर से धीरे-धीरे चलती हुई वहाँ आ गयी सन्यासिनी पद्मगंधा। उन्हें सहसा अपने निकट देखकर सकपका गया मैं एक बारगी। लेकिन निःसंकोच बैठ गयी वह मेरे बगल में। एक विचित्र सी अनुभूति हुई मुझे उस समय।

साँझ की स्याह कालिमा ढल कर रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में परिवर्तित हो चुकी थी। लेकिन थोड़ी ही देर बाद सुदूर हिम मण्डिल शिखरों और घने वृक्षों की ओट से शुक्ल पक्ष की अष्टमी का चाँद झाँकने लगा था। जिसकी रुपहली चाँदनी चारों तरफ फैलने लगी थी धीरे-धीरे।

प्रसंग चल पड़ा। पहले उस बौद्ध भिक्षुणी ने ही प्रश्न किया 'निवास स्थान कहाँ है'?

वाराणसी। मैंने सिर झुकाये उत्तर दिया।

यहाँ क्यों, किसलिए आए हो?

तत्काल कोई उत्तर नहीं सूझा मुझे। थोड़ा थम कर धीरे से बोला जीवन की खोज में आया हूँ यहाँ मैं। बस यही उद्देश्य है आने का और इस प्रकार दर-दर भटकने का।

जो प्राप्य हैं क्या वह जीवन नही है?

नहीं मेरी समझ में वह जीवन नहीं है। जीवन को पाने का एक मूल्यवान अवसर है। और उस अवसर को मैं समान और परिवार में रह कर नष्ट नहीं करना चाहता।

मेरी बात सुनकर पद्मगन्धा ने गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। न जाने क्या था उस दृष्टि में कि सारा शरीर सनसना उठा मेरा एकबारगी।

पूरी रात सो न सका मैं। बार-बार मेरे सामने थिरक उठती थी उस भिक्षुणी की देह्यष्टि।

कहने की आवश्यकता नहीं, उस दिन से नित्य उसी स्थान पर सायंकाल सत्संग होने लगा मेरा उस बौद्ध भिक्षुणी के साथ। कब पूरी रात गल-गल कर ढल जाती और कब शुक्ल पक्ष का रूपहला चाँद पहाड़ों और वृक्षों के पीछे से लुकता-छिपता अस्त हो जाता, इन सबका होश न मुझे रहता और न तो रहता उस साधिका को ही।

सत्संग

आपके शरीर पर काल अथवा आयु का प्रभाव क्यों नहीं है ? क्या रहस्य है इसका एक दिन प्रसंगवश पूछा मैंने।

प्रश्न सुनकर धीरे से हँस पड़ी पद्मगंधा। बोली कोई रहस्य नहीं है। 'प्राण' का ही दूसरा नाम काल है। 'प्राण' पर अधिकार प्राप्त होने पर स्वयं काल पर भी अधिकार हो जाता है जिसके फलस्वरूप आयु तो अपनी स्थान पर बढ़ती जाती है, लेकिन उसका शरीर पर प्रभाव नहीं पड़ता। हमेशा युवा बना रहता है शरीर।

शरीर और मन के आपस में अति घनिष्ट संबंध हैं। तब तो मन पर भी नहीं होगा आयु का प्रभाव? नहीं, ऐसी बात नहीं है। 'प्राण' का संबंध केवल शरीर से है। इसलिए मन पर काल का प्रभाव बराबर पड़ता रहता है।

'मन' का संबंध किससे है ?

आत्मा से। प्राण का प्रभाव शरीर पर शरीर का प्रभाव मन पर और इसी प्रकार मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है।

आत्मा से मन का संबंध होने के कारण मन का प्रभाव आत्मा पर तो पड़ता ही होगा? नहीं, आत्मा निर्लिप्त है, अप्रभावी है। उस पर मन की किसी भी अवस्था का प्रभाव नहीं पड़ता। आत्मा की जितनी अवस्थायें हैं वह सब उसकी अपनी स्वतंत्र अवस्थायें हैं। मन से उन अवस्थाओं का कोई नाता-रिश्ता नहीं।

मन की भी अपनी अवस्थायें होंगी?

नहीं, 'मन' की अपनी कोई स्वतंत्र अवस्था नहीं है।

आत्मा अपनी जिस अवस्था में होती है, उसका प्रभाव 'मन' पर अपने आप पड़ जाता है और उस प्रभाव के फलस्वरूप मन भी उसी अवस्था का अनुगामी हो जाता है। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो मन, प्राण और आत्मा इन तीनों का आपस में तादात्म्य मानव शरीर को छोड़ कर अन्यत्र दुर्लभ है। इसीलिए मानव शरीर की गरिमा और उसका महत्व है और इसीलिए उसे कहा गया है दुर्लभ!

योग-तंत्र की जितनी भी साधनाएँ हैं, वे सब क्रमशः प्राण, मन और आत्मा की साधनाएँ हैं, लेकिन बिना शरीर का आश्रय लिए यह सम्भव नहीं है। शरीर आधार है। आधार स्वस्थ और अनुकूल हो, इसके लिए योग में यम, नियम, आसन आदि बहिरंग क्रियायें बतलायी गयी हैं।

इसी प्रकारण में उस भिक्षुणी ने आगे बतलाया कि भौतिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो मानव शरीर मांस मज्जा, रक्त, अस्थि आदि से निर्मित एक यंत्र मात्र है - जो प्राण शक्ति द्वारा संचालित होता है। जब तक श्वास-प्रश्वास के रूप में प्राण शक्ति क्रियाशील है तब तक शरीर का भी उपयोग है। इसके पश्चात

नहीं। प्राण शक्ति, मनः शक्ति और आत्म शक्ति - ये तीनों शक्तियाँ मिलकर एक ऐसी शक्ति को जन्म देती है, जिसे 'चित शक्ति' कहते हैं। यही चित शक्ति तंत्र की महा-शक्ति है। मानव शरीर में इस महाशक्ति का स्थान हृदय है। जब तक यह शक्ति हृदय में अवस्थित है तब तक मानव शरीर 'शिव' है और उसके हटते ही वह 'शव' है। शिव और शव में बस इतना ही अन्तर समझना होगा।

मानव शरीर के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि कुछ और है। उस दृष्टि से भी मानव शरीर एक यंत्र ही है लेकिन उसका स्वरूप भिन्न है।

अध्यात्म के अनुसार मानव शरीर 'पिण्ड' है। और पिण्ड ब्रह्माण्ड का लघु संस्करण अथवा लघु रूप है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों अभिन्न हैं। जिन तत्वों से विश्व ब्रह्माण्ड की रचना हुई है, उन्हीं तत्वों से 'पिण्ड' का भी निर्माण हुआ है। विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ है वह सब पिण्ड में भी विद्यमान है, इतना ही नहीं, विश्व ब्रह्माण्ड के बाहर यानी विश्वातीत सत्य भी 'पिण्ड' का ही आश्रय लेकर प्रकट होता है।

प्राणतत्व, मनस्तत्व और आत्मतत्व इन तीनों तत्वों का जो समन्वय रूप है वह है अध्यात्म तत्व। अध्यात्म तत्व के अनुसार उपर्युक्त तीनों शक्तियों और तीनों तत्वों के आधार पर पिण्ड यंत्र को चतुष्कोण, त्रिकोण और षट्कोण के रूप में परिकल्पित किया गया है।

चित शक्ति (इस संबंध में आगे विस्तृत रूप से बतलाया जायेगा।) का दूसरा नाम 'चेतना' है। चेतना की क्रमशः सात अवस्थायें हैं जागृति, सुषुप्ति, स्वप्न, तुरीय, वैश्विक, भागदीय और ब्राह्मी। योग में इन अवस्थायों को 'सप्त भूमि' कहते हैं। विश्व ब्रह्माण्ड के सात स्तर यानी सात भाग हैं। जिसे सात लोक कहते हैं। प्रत्येक भाग अथवा लोक से क्रमशः एक-एक अवस्था का संबंध है। खैर! इस विषय में तुमसे फिर चर्चा करूँगी कभी। थोड़ा रुक कर पद्मगन्धा आगे बोली 'चेतना' की तीन मुख्य दशा हैं - (१) जीव दशा, (२) शिव दशा और (३) सदाशिव दशा।

जागृति, सुषुप्ति और स्वप्न, ये तीन अवस्थायें चेतना की जीव दशा हैं। 'तुरीय' अवस्था 'चेतना' की शिव दशा है।

प्रथम तीन अवस्था - जागृति, सुषुप्ति और स्वप्न को अधोगति 'त्रिकोण' के रूप में परिकल्पित किया गया है। इन तीनों अवस्थाओं में रहने वाली चेतना को 'जीवात्मा' कहते हैं। तंत्र के अनुसार जीव दशा पशु भाव है। यह दशा अथवा भाव, 'माया' है। और है जागतिक बंधन। यह हुई अधोगति त्रिकोण की बात। अब चतुष्कोण को समझना होगा। 'तुरीय' चौथी अवस्था है।

जागृति, सुषुप्ति और स्वप्न - के साथ तुरीय को ले लेने पर चार अवस्था हो जाता है। इन चारों अवस्थाओं को चतुष्कोण के रूप में परिकल्पित किया गया है। तंत्र में इसी का नाम भूपुर है। समझ गए न।''

तुरीय अवस्था में रहने वाली चेतना को आत्मा कहते है। जीवात्मा और आत्मा में बस यही अन्तर है। तंत्र में शिव दशा को वीर भाव कहते हैं। यह दशा अथवा भाव 'महामाया' है।

'तुरीय' की भी तीन अवस्थाएँ हैं। तुरीय की इन तीनों अवस्थाओं को ऊर्ध्व गति त्रिकोण के रूप में परिकल्पित किया गया है। तीनों अवस्थाओं में रहने वाली चेतना को क्रमशः शुद्धात्मा, विशुद्धात्मा और दिव्यात्मा कहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि एक ही चेतना के जीवात्मा, आत्मा, शुद्धात्मा, विशुद्धात्मा और दिव्यात्मा क्रमिक रूप हैं।

अधोगति त्रिकोण 'शक्ति' का प्रतीक है और ऊर्ध्व गति त्रिकोण है शिव का प्रतीक। दोनों का संयुक्त स्वरूप 'षट्कोण' है।

'चतुष्कोण' के भीतर षट्कोण की स्थापना करने पर जो स्वरूप बनता है वही स्वरूप आध्यात्मिक दृष्टि से पिण्ड का स्वरूप है।

तुरीय और वैश्विक के बीच का जो अन्तराल है उसे तुरीयातीत अवस्था कहते हैं। तंत्र के अनुसार यह परम अवस्था 'दिव्य भाव' है। तांत्रिक साधना में तीन भाव और सप्त आचार प्रसिद्ध हैं। सप्त आचार का संबंध चेतना की सातों अवस्थाओं से समझना चाहिए। खैर, जैसा कि स्पष्ट है दिव्य भावापन्न तुरीयातीत अवस्था परम अवस्था है।

देह में जो नाभि है वह पंच कर्मेन्द्रियों और पंच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त एक विशिष्ट इन्द्रिय है। इसकी पहली विशिष्टता तो यही है कि मृत्यु के समय जीवात्मा के निकलने के मार्ग कई हैं लेकिन गर्भस्थ शिशु के शरीर में उसके प्रवेश का मार्ग केवल मात्र यही है। उसके प्रवेश करते ही यह मार्ग बन्द हो जाता है, योग के अनुसार नाभि तुरीयातीत अवस्था का स्वरूप है। तंत्र की भाषा में इसे मध्य बिन्दु कहते हैं। चतुष्कोण स्थित षट्कोण के बीच में जिन बिन्दु की स्थापना होती है, वह मध्य बिन्दु नाभि है जो षट्कोण रूप शरीर यंत्र को धारण करती है, संचालित करती है और नियंत्रित करती है। वास्तव में मध्य बिन्दु देह चक्र का केन्द्र है।

तुरीयातीत अवस्था से आपका क्या तात्पर्य है?

जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति चेतना की ये तीन अवस्थाओं से हम सब लोग परिचित हैं। एक के अस्तित्व में दूसरे का बोध हमें होता है। एक साथ तीनों

का नहीं। इन तीनों के बाद दो अवस्थायें हैं एक है मृत्यु की अवस्था और दूसरी है तुरीय अवस्था पहली अवस्था साधारण लोगों को उपलब्ध होती है और दूसरी अवस्था उपलब्ध होती है योगियों को। दोनों अवस्थाओं में अन्तर है।

वह क्या? मैंने प्रश्न किया।

तुमको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि अपने गहरी अवस्था में पहुँच कर सुषुप्ति ही मृत्यु अवस्था में बदल जाती है। चैतन्य अवस्था में कभी भी मृत्यु नहीं होती है। जब होती है सुषुप्ति की गहरी अवस्था में होती है। इसी कारण मृत्यु का बोध नहीं होता। मृत्यु घटित हो जाती है, लेकिन उसका पता नहीं चलता।

मृत्यु अवस्था में क्या बोध होता है?

कुछ नहीं! हाँ। मृत्यु के बाद की अवस्था में बोध होता है और वह बोध होता है अपने अस्तित्व का, अपने आपका और अपने 'मैं' का (इस विषय पर विस्तृत अध्ययन के लिए पढ़ें मृत्यु विज्ञान) खैर, तुरीय अवस्था ठीक इसके विपरीत है। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो तुरीय एक प्रकार से मृत्यु अवस्था ही है। अन्तर मात्र यही है कि बेहोशी अथवा गहरी बेहोशी की अवस्था में नहीं बल्कि हम पूर्ण चैतन्य अवस्था में तुरीय में प्रवेश करते हैं।

सुषुप्ति की व्याख्या करते हुए उस साधिका ने आगे कहना शुरू किया न बाहरी जगत का बोध हो। न वस्तुओं का अनुभव हो। न तो वस्तुओं द्वारा निर्मित आकृतियाँ संग्रहित मन के संस्कार और उनसे निर्मित स्वप्नों की ही कोई प्रतीति हो। चेतना पूरी तरह सो गयी हो। किसी भी प्रकार का बोध शेष न रह गया हो। मतलब कि चेतना रहे लेकिन बोध न रहे, जीवन रहे लेकिन बिलकुल सुप्त हो जाय। किसी भी तरह की प्रतीति न हो। व्यक्ति ऐसा हो जाय जैसे जड़ हो। तात्पर्य यह कि जीवित रहते हुए भी जड़ जैसा हो जाय इसका नाम सुषुप्ति है।

जिस अवस्था को उपलब्ध होकर सभी दृश्य खो जाते है। न बाहर की वस्तुओं का ज्ञान रहता है और न तो भीतर के विचारों का। सभी दृश्यों का और सभी प्रकार के विचारों का प्रवाह बन्द हो जाता है। किसी भी प्रकार का बाह्य-आभ्यन्तर बोध नहीं रह जाता है। केवल रह जाता है एक मात्र शून्य, वह सुषुप्ति है। जिस अवस्था में हमें जब कोई भी विषय आन्दोलित करने को नहीं होता न बाहर, न भीतर और न वस्तुओं के जगत में न तो विचार के जगत में उसे भारतीय मनीषि सुषुप्ति कहते हैं।

सुषुप्ति अवस्था के भंग होने पर हम फिर जागृत अवस्था को उपलब्ध हो जाते हैं। यदि मृत्यु घटित होती है तो हम सुषुप्ति भंग होने पर इस लोक के बजाय किसी और ही लोक में जागृत हो उठते हैं, जहाँ का वातावरण हमारे लिए

बिल्कुल नया होता है जैसे हम आगृत होने पर स्वप्न को असत्य समझ बैठते हैं उसी प्रकार किसी अन्य लोक के अपरिचित वातावरण में जागृत होने पर यह लोक और यह जीवन यानी भौतिक जगत और भौतिक जीवन स्वप्न जैसा ही असत्य प्रतीत होता है।

यदि हम योग मार्ग के पथिक हैं तो 'सुषुप्ति' हमारे लिए समाधि बन जायेगी। तात्पर्य यह कि सुषुप्ति 'समाधि' में परिवर्तित हो जायेगी। लेकिन वह होगी जड़ समाधि। सुषुप्ति व जड़ समाधि में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जड़ समाधि में भी हम वैसी ही स्थिति में रहते हैं जैसे सुषुप्ति में।

उस बौद्ध भिक्षुणी ने आगे बतलाया कि लेकिन दोनों के परिणाम में भारी अन्तर है।

वह क्या? मैंने पूछा।

''जैसा कि स्पष्ट है'' सुषुप्ति भंग होने पर दो अवस्थायें उपलब्ध होती हैं पहली है जागृत अवस्था, दूसरी है मृत अवस्था। लेकिन योग मार्ग से चलकर जब हम सुषुप्ति को उपलब्ध होते है और वह सुषुप्ति जब जड़ समाधि के रूप में परिवर्तित हो जाती है तो उसके भंग होने पर हम जिस अवस्था को उपलब्ध होते हैं वह है तुरीय अवस्था।

चेतन अथवा आत्मा की यह विशेष अवस्था है। इस परम अवस्था में केवल ज्ञाता यानी जानने वाला रह जाता है। ज्ञेय अर्थात् जानने वाली सभी प्रकार की वस्तुओं का अभाव हो जाता है।

आपका क्या तात्पर्य है?

''आत्मा''। आत्मा ही एक मात्र ज्ञाता है।

सारे ज्ञेय पदार्थो और सारी ज्ञेय वस्तुओं का अभाव हो जाता है और केवल शेष रह जाता है ज्ञाता यानी जानने वाला। जिसे हम आत्मज्ञान कहते हैं, जिसे हम आत्मानुभव कहते हैं और जिसे हम कहते हैं आत्मसाक्षात्कार वह सब इसी परम अवस्था की परम उपलब्धियाँ हैं।

तुरीयातीत अवस्था क्या है ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उस महान साधिका ने बतलाया कि यह 'तुरीय' और 'वैश्विक' अवस्था के बीच की तुरीय की ही उन्नत अवस्था है। तुरीयातीत अवस्था में न मन का अस्तित्व रहता है और न तो रहता है किसी इन्द्रियों का ही अस्तित्व। जैसे तुरीय में ज्ञेय पदार्थो और वस्तुओं का अभाव हो जाता है उसी प्रकार तुरीयातीत में मन और इन्द्रियों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और ज्ञेय यानी आत्मा से विराट जगत तथा उसके विराट विस्तार से सीधा संबंध स्थापित हो जाता है।

समझा नहीं मैंने, तुमको मालूम होना चाहिए कि जागृत स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओं में विश्व से आत्मा का संबंध मन और इन्द्रियों के माध्यम से रहता है लेकिन तुरीयातीत अवस्था में उनके अभाव के कारण उसका सीधा संबंध स्थापित हो जाता है विश्व से।

थोड़ा रुक कर महान साधिका पद्मगन्धा समझाते हुए आगे बोली-हम सबके भीतर आत्मा है यानी चैतन्य। और हम सबके बाहर फैला हुआ है विराट जगत का अथवा विराट विश्व का असीम विस्तार। इन दोनों के बीच माध्यम का काम करती है मन द्वारा संचालित तमान इन्द्रियाँ। हमारी आत्मा को इस अवस्था में विश्व विस्तार के विषय में जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है वह सब इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होता है। समझ गये न। लेकिन इस प्रकार प्राप्त 'ज्ञान' अधूरा ही होता है और होता है आंशिक। किन्तु तुरीयातीत अवस्था में माध्यम का काम करने वाली इन्द्रियों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तो वही ज्ञान सम्पूर्ण रूप से आत्मा को सीधा उपलब्ध होता है।

क्या आप इसे विस्तार से समझा सकती हैं?

जैसा कि संकेत कर चुकी हूँ भीतर है चैतन्य यानी आत्मा और बाहर है विराट का विस्तार। इस विराट से संबंध स्थापित करने के दो उपाय हैं, एक है - परोक्ष, यानी इन्द्रियों के माध्यम से। दूसरा है - प्रत्यक्ष, यानी माध्यम हीन - अतीन्द्रिय अवस्था से प्राप्त अतीन्द्रिय ज्ञान ही परम ज्ञान है। आत्मा का वास्तविक भोजन यही इन्द्रीयातीत परम ज्ञान है, जिससे तृप्त होकर वह विश्वातीत अवस्था को उपलब्ध होती है। इसी को कहते हैं आत्म मुक्ति।

स्वभावतः इन्द्रियों से मिला हुआ ज्ञान वैसा ही है जैसे कहीं कोई घटना घटे और कोई आकर हमें खबर दे। हम वहाँ सीधा उपस्थित नहीं है। घटना और हमारे बीच संदेश वाहक है। निश्चित ही खबर हमें वैसी ही नहीं मिलेगी जैसी घटी है। क्योंकि संदेश वाहक की व्याख्या भी सम्मिलित हो जायेगी उसमें। हमारे सारे ज्ञान का माध्यम इन्द्रियाँ है। हमारा जानना इन्द्रियों के माध्यम से हैं। हमारी इन्द्रियाँ हमें जो भी जिनके संबंध में बतलाती हैं उसे स्वीकार करने के लिए विवश हैं हम क्योंकि हमारे पास जानने समझने के लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है, पर इन्द्रियों की खबर में इन्द्रियों की व्याख्या भी सम्मिलित हैं। लेकिन क्या ऐसा भी हो सकता है कि हम बिना इन्द्रियों के माध्यम से जगत को देख सकें। समझ सके और कर सके उसका अनुभव। क्योंकि बिना किसी माध्यम के हम जगत को देखेंगे तभी हमें सत्य दिखलायी देगा और हम तभी उस सत्य के मूल स्वरूप से भी भली-भाँति परिचित हो सकेंगे। इसलिए हमारे भारतीय ऋषियों की जो

गहनतम खोज है, वह यह है कि जब तक इन्द्रियों से हम जगत को जानते हैं तब तक जिसे हम जानते हैं वह जगत के ऊपर इन्द्रियों के द्वारा आरोपित प्रक्षेपण है। इसी का नाम 'माया' है।

तो एक मार्ग है इन्द्रियों के माध्यम से सत्य के विस्तार को जानने समझने का। इस सत्य को जानने से जो ज्ञान हमारी पकड़ में आता है जिन्होंने इन्द्रियों के पार भी जगत को देखा हैं, वे कहते हैं वह ज्ञान माया है। जब शंकराचार्य जैसा व्यक्ति कहता है, जगत माया है तो हम यह न समझें कि यह जगत नहीं है। ऐसी मुर्खतापूर्ण बात शंकराचार्य नहीं कह सकते हैं कि यह जगत नहीं है। यह जगत बिल्कुल है। लेकिन हमें जैसा दिखलायी पड़ रहा है वैसा नहीं है। वैसा दिखाई पड़ना हमारी दृष्टि है। वास्तव में वही दृष्टि इस जगत में 'माया' बनाये दे रही है। जैसा जगत हमें दिखाई दे रहा है, वह हमारी अपनी व्याख्या है इसलिए यह कहना उपयुक्त होगा कि इस जगत में एक माया नहीं है जितने इस जगत को जानने वाले हैं उतनी मायाएँ हैं। इस जगत का हर मनुष्य अपना जगत निर्मित कर उसमें जी रहा है। हर मनुष्य के चारों तरफ एक जगत है। हम अपने जगत में जी रहे हैं और हमारा पड़ोसी अपने। इन दोनों जगत का आपस में कोई सामन्जस्य नहीं है। और जब भी हम दो जगत को आपस में बाँधते हैं तो कलह होती है और होता है संघर्ष। एक पति-पत्नी के बीच एक बाप-बेटे के बीच जो संघर्ष है, वह वास्तव में दो जगत का संघर्ष है। इन दोनों के बीच कलह होना अनिवार्य है। इस संघर्ष को और इस कलह को कभी भी मिटाया नहीं जा सकता।

आत्मा की जागृत अवस्था

भारतीय मनीषी कहते हैं कि इस जगत को इन्द्रियों के द्वारा जानने की जो स्थिति है वह आत्मा की जागृत अवस्था है।

जागृत में जो वासनायें अपूर्ण रह गयी होती हैं उन्हें स्वप्न पूर्ण कर देता है। स्वप्न वास्तव में जागृत की पूर्ति है। स्वप्न और जागृत में यही अन्तर है। जागृत में वस्तु बाहर होती है रूप भीतर होता है। स्वप्न में वस्तु बाहर नहीं होती लेकिन रूप भीतर होता है। स्वप्न शुद्ध आकार है। कोई वस्तु नहीं है वहाँ। जिस व्यक्ति को हम स्वप्न में देख रहे हैं वह बाहर उपस्थित नहीं है। लेकिन उसकी आकृति अवश्य भीतर उपस्थित है। यह आकृति भी इन्द्रियाँ ही उत्पन्न करती हैं। मतलब यह कि स्वप्न भी इन्द्रिय जन्य ही है।

जागृत अवस्था-आत्मा की सक्रिय अवस्था है। बाहरी पदार्थ का अनुसंधान उसका स्वरूप है। सुप्तावस्था से निवृत्त होने पर बाहरी पदार्थ के प्रति जो जिज्ञासा

उत्पन्न होती है वह जागृत है। इसमें क्रिया की प्रधानता होती है। परन्तु सुषुप्ति अवस्था में क्रिया की प्रधानता नहीं रहती वह जड़ प्रधान निष्क्रिय अवस्था है। इन दोनों अवस्थाओं के अन्तराल में एक और दशा है। उसका नाम स्वप्न है। सुषुप्ति भंग होने के पहले तरह-तरह के मानसिक भेदमय विकल्प ज्ञान का उदय होता है - वही स्वप्न है। सुषुप्ति संसार के बीच की दशा है। स्वप्न संसार की उन्मेष दशा है। जागृत, संसार की गहरी और बढ़ी हुई दशा है। तुरीय इन तीनों दशाओं से सर्वथा अलग दशा है।

आत्मा और उसकी अवस्थायें योग-तंत्र का ऐसा विषय है जिस पर योग तांत्रिक साधनाओं का विशाल भव्य महल खड़ा है। वास्तव में योग तांत्रिक साधनाओं की मूल भित्ति हैं दोनों। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो आत्मा सभी भावों अथवा सभी अवस्थाओं से परे है। इसलिए वह निर्विकार द्वन्द्वातीत, निर्दोष और समरस है। परन्तु व्यवहार के कारण उसमें अवस्थागत् भेद दिखलायी देता है। उन अवस्थाओं के तो वैसे सात विभाग हैं। मगर उनके मुख्य विभाग पाँच ही प्रकार के माने जाते हैं। उन पांच अवस्थाओं में से जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओं से सभी लोग परिचित हैं। शेष दो की धारणा बिना योग-साधना पथ पर आरूढ़ हुए सम्भव नहीं है। योग द्वारा ज्ञान का उदय होने पर ही उन दोनों अवस्थाओं का परिचय प्राप्त हो सकता है। इस संबंध में ध्यान रखना होगा कि कोई भी अवस्था वास्तव में विशुद्ध आत्मा की नहीं, देह से संयुक्त आत्मा की है। और देह, संयुक्त आत्मा का ही दूसरा नाम जीवात्मा है। आत्मा और मन का संबंध, मन और इन्द्रियों का संबंध, तथा इन्द्रिय और विषय का संबंध जिस अवस्था में रहता है, उसे जागृत अवस्था कहते हैं। परन्तु जिस अवस्था में इन्द्रिय और विषय का संबंध नहीं रहता लेकिन बाकी दो संबंध पूर्ववत् रहते हैं, उस अवस्था को स्वप्नावस्था कहते है। इस प्रकार जिस अवस्था में इन्द्रिय और विषय का संबंध नहीं रहता तथा मन और इन्द्रिय का भी संबंध नहीं रहता केवल आत्मा और मन का संबंध रहता है, वह सुप्तावस्था है।

अज्ञान के सागर में आकण्ठ डूबा हुआ मनुष्य इन तीनों अवस्थाओं का क्रम से बराबर अनुभव करता रहता है। इन तीनों अवस्थाओं से मुक्त होना आवश्यक है। क्योंकि बिना इनसे मुक्त हुए तुरीय और तदन्तर तुरीयातीत अवस्था की अपलब्धि सम्भव नहीं। 'मुक्ति का उपाय क्या है', मेरे इस प्रश्न के उत्तर में महान साधिका ने बस इतना ही कहा योग। केवल योग मार्ग से चल कर ही माया की इन तीनों अवस्थाओं से निवृत्त हुआ जा सकता है।

मेरी एक जिज्ञासा है वह यहकि मृत्योपरान्त इन्द्रियों का अभाव रहता है तो उस अवस्था में विषयों का ज्ञान अथवा अनुभव कैसे होता है ?

जैसा कि तुमको बतला चुकी हूँ स्वप्न में वस्तु बाहर नहीं रहती लेकिन उसकी आकृति अवश्य भीतर रहती है। वह आकृति भी इन्द्रियाँ ही बनाती हैं। मतलब वह भी इन्द्रियजन्य ही है। इन्द्रियाँ इसे किस प्रकार उत्पन्न करती हैं इसे समझना होगा तभी तुम्हारी जिज्ञासा का भी समाधान हो सकेगा।

प्रत्येक इन्द्रिय अपने अनुभवों का बराबर संग्रह करती रहती है जिनका विशाल भण्डार मनुष्य की खोपड़ी में विद्यमान रहता है। हमारी खोपड़ी इन्द्रियों द्वारा संग्रहीत अनुभवों का भण्डार है। वे तमाम संग्रहीत अनुभव खोपड़ी के एक विशेष केन्द्र में पहुँच कर बाद में स्मृतियों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। इसी प्रसंग में तुमको एक बात-जो अपने आपमें अति महत्वपूर्ण है बतला दूँ। वह यह कि मानव मस्तिष्क इतना रहस्यपूर्ण है कि अभी तक मनुष्य किसी भी उपाय से उसका भेदन नहीं कर पाया है। मानव-मष्तिष्क में कुल सात करोड़ कोशिकाएँ हैं। योग विज्ञान ने अपनी सुविधा के लिए मानव मस्तिष्क को तीन भागों में विभक्त किया है। पहले भाग में दो करोड़ कोशिकाएं हैं। इन कोशिकाओं में इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध तमाम अनुभवों का संग्रह होता है। दूसरे भाग में तीन करोड़ कोशिकाएँ हैं, ये कोशिकाएँ उन अनुभवों को स्मृतियों के रूप में परिवर्तित कर उन्हें अपने आप में संग्रहीत कर लेती हैं। इसी प्रकार तीसरे भाग में दो करोड़ कोशिकाएँ है। इन कोशिकाओं का काम है उन स्मृतियों को संस्कार के रूप में परिवर्तित कर अपने आप में उन्हें एकत्रित कर लेना।

सारांश यह कि मस्तिष्क के पहले भाग में अनुभवों का, दूसरे भाग में स्मृतियों का और तीसरे भाग में संस्कारों का संग्रह रहता है। संस्कार ही मुख्य है। तुमको मालूम होना चाहिए कि संस्कारों का यह संग्रह हजारों जन्मों का है। उन जन्मों में मनुष्य ने जो कुछ समझा है, जो कुछ जाना है और जो कुछ देखा व सुना है वह सब तीसरे भाग में संस्कार के रूप में संग्रहीत है।

मृत्यु के बाद संस्कारों का यह विशाल संग्रह मन में समाहित हो जाता है और उस मन को लेकर मृतात्मा अगले शरीर की खोज में निकल पड़ती है।

इन्द्रियों की शक्ति वास्तव में मन की शक्ति है। आँख की देखने की शक्ति मन की शक्ति है, कान के सुनने की शक्ति मन की शक्ति है, नाक की सूँघने की शक्ति मन की शक्ति है इसी प्रकार सोचने, विचारने और समझने की शक्ति भी मन की शक्ति है। मतलब कि सब कुछ मन और उसकी शक्ति ही है। मरणोपरान्त मनुष्य संस्कार के अनुसार अपने मन की ऐन्द्रिक शक्तियों के द्वारा देखता, सुनता, समझता और बोध करता है।

रात्रि का अन्तिम प्रहर धीरे-धीरे समाप्त हो रहा था। हिमाच्छादित उत्तुंग शिखरों पर उषा की सफेदी फैलने लगी थी। पश्चिम के आकाश में शुक्र तारा

झिलमिलाने लगा था। कुछ देर उसकी ओर अपलक निहारने के बाद मेरी ओर सिर घुमा कर बोली वह बौद्धभिक्षुणी अब मैं चलूँगी। आज ही मुझे कर्ण प्रयाग के लिए प्रस्थान करना है।

मेरी जिज्ञासा शांत होने के बजाय अब और अधिक तीव्र हो उठी थी। मुझे अभी बहुत कुछ जानना समझना था। और बहुत कुछ पूछना भी था। लेकिन बोला न गया और न तो कुछ पूछना ही गया मुझसे। बस, इतना ही मुँह से निकल सका अब कब भेंट होगी ? क्या मैं आपके साथ चल सकता हूँ ?

चलना चाहो तो चलो, मुझे क्या आपत्ति - इतना कह कर धीरे-धीरे आगे बढ़ गयी वह बौद्ध साधिका।

रहस्यमय मस्तिष्क

पद्मगन्धा ने मेरे मस्तिष्क में एक विशेष सीमा तक योग-तंत्र के प्रति कौतूहल और जिज्ञासाओं की सृष्टि कर दी थी। इसमें सन्देह नहीं। उनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व भी कम रहस्यमय नहीं था मेरे लिए। पूरे दिन की कष्टदायिनी पर्वतीय यात्रा के बाद कर्ण प्रयाग पहुँचा मैं उनके साथ। रास्ते भर हम दोनों मौन साधे रहे। कोई किसी से नहीं बोला एक शब्द भी। मगर मेरा मस्तिष्क शान्त नहीं था। उसमें बार-बार एक ही प्रश्न उभरता था क्या वास्तव में इस बौद्ध भिक्षुणी ने भगवान तथागत से दीक्षा ग्रहण की थी?

क्या यह सच है?

आखिर रहा न गया मुझसे। कर्ण प्रयाग पहुँचने पर प्रश्न कर ही बैठा मैं क्या आपने वास्तव में भगवान बुद्ध से दीक्षा ग्रहण की थी?

अप्रत्याशित रूप से मेरा प्रश्न सुनकर उस भिक्षुणी ने एक बार स्थिर दृष्टि से देखा मेरी ओर और फिर शान्त स्वर में कहा... हाँ। मुझे उस समय की अपनी पूरी जीवन-कथा स्मरण है। मेरे मानस पटल पर उस कथा की एक-एक घटना अंकित है। इतना ही नहीं उसके बाद मैंने बाईस बार जन्म लिया और उन सभी जन्मों की स्मृति भी सुरक्षित है मेरे मस्तिष्क में। क्या कह रही हैं आप? एक बारगी सकपका कर बोल पड़ा मैं।

सब कुछ पूर्ण सत्य है - उस साधिका ने निर्विकार भाव से कहा कहीं किसी प्रकार का भ्रम नहीं है और न तो है सन्देह ही।

रहस्यमय मानव-मस्तिष्क

तुमको जो सन्देह है उसका एक मात्र कारण है अज्ञानता। इस विश्व ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहस्य परमात्मा अथवा ईश्वर है। वह एक रहस्य है और

उसके बाद कोई रहस्य है तो वह है मनुष्य। मनुष्य क्यों रहस्यमय है? इसलिए कि उसके पास मस्तिष्क है। सारे विश्व ब्रह्माण्ड का रहस्य भेदन सम्भव है, लेकिन मानव-मस्तिष्क का नहीं। इस संबंध में तुमको मुझसे जो कुछ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर उपलब्ध होगा - उससे तुम्हारा काफी हद तक संदेह मिट जायेगा और तुम इसके अतिरिक्त आगे की भी बातें भली-भाँति समझ सकोगे। थोड़ा रुककर पदमगन्धा ने आगे कहना शुरू किया मानव मस्तिष्क वास्तव में बड़ा ही विचित्र है। उसकी सूक्ष्म और जटिल संरचना अद्‌भुत है। मस्तिष्क कोशिकाएँ प्रायः प्रषुप्त अवस्था में ही रहती हैं। अधिक से अधिक उसका चालीस या पचास प्रतिशत भाग ही काम करता है। और शेष भाग मूर्छित पड़ा रहता है। इस प्रषुप्त भाग में से जो जितना अधिक अंश जागृत कर लेता है, वह उतना ही बुद्धिमान प्रज्ञावान और ज्ञानवान बन जाता है।

अंश जागृत कैसे होता है प्रश्न किया मैंने?

योग की विशेष साधना द्वारा।

वह विशेष साधना क्या है?

ध्यान योग। ध्यान योग की कई पद्धतियाँ हैं। सभी को वे सारी पद्धतियाँ मालूम नहीं है। उन्हीं में से एक पद्धति है अंशों को जागृत करने की भी।

तुमको मालूम होना चाहिए कि योग और तंत्र विशेष-ज्ञान यानी विज्ञान है। दोनों के संयोग से जिस विज्ञान का आविर्भाव होता है वह प्रकृष्ट विज्ञान हैं उसके सिद्धान्त और नियम अकाट्य और अपरिवर्तनीय हैं। एक प्रकार से वे शाश्वत हैं।

प्रकृष्ट विज्ञान का विषय क्या है?

कुण्डलिनी विज्ञान, षट्‌चक्र विज्ञान, ब्रह्माण्ड विज्ञान, नाद विज्ञान और शक्ति विज्ञान ये पाँच मुख्य विषय हैं। शक्ति विज्ञान का दूसरा नाम तंत्र विज्ञान है। ब्रह्माण्ड विज्ञान का एक विषय है मस्तिष्क विज्ञान। मस्तिष्क विज्ञान के अनुसार मानव-मस्तिष्क तीन भागों में विभक्त है। पूरे मस्तिष्क के बाहरी हिस्से में चारों ओर एक अज्ञात प्रकार का धूसर पदार्थ (ग्रेमैटर) विद्यमान है। जिसमें १८ अरब तंत्रिका कोशिकायें (न्यूरान्स) हैं। जैसा कि मैने कहा पूरा मस्तिष्क तीन भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग की क्षमता और कार्य प्रणाली अलग-अलग है। मस्तिष्क के मुख्य भाग (सेरी बेलम) में १२० अरब और में १ करोड़ ३५ लाख तंत्रिका कोशिकायें हैं। तुमको मालूम होना चाहिए इन समस्त तंत्रिका कोशिकाओं की सहयोगिनी रूप में अलग से १ खरब तंत्रिका कोशिकायें और हैं। जिस स्थान विशेष पर ये सहयोगिनी तंत्रिका कोशिकाँ अन्य तंत्रिका कोशिकाओं से मिलती

हैं उस स्थान विशेष को 'तंत्रिका बंध' (न्यूरॉग्लामा) कहते है। यह तंत्रिका बंध अत्यंत रहस्यमय हैं। इसका संबंध कपाल प्रदेश स्थित उस छिद्र से है जिसे योग की भाषा में 'ब्रह्म-रन्ध्र' कहते हैं।

मेरुदण्ड में स्थित १ करोड़ ३५ लाख तंत्रिका कोशिकाएँ छः केन्द्रों में विभक्त हैं। योग में इन्हीं छः केन्द्रों को 'षट चक्र' कहा गया है। प्रत्येक केन्द्र की तंत्रिका कोशिकाएँ हर समय एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न करती रहती हैं। योग के अनुसार प्रत्येक केन्द्र का संबंध इन्हीं तरंगों के माध्यम से किसी न किसी लोक लोकान्तर अथवा जगत से है।

योगीगण जिसे चक्र भेदन कहते हैं उनके तरंगों की सहायता से उनका संबंध केन्द्र से संयुक्त लोक लोकान्तर अथवा जगत से अपने आप हो जाता है। धूसर पदार्थ की १७ अरब तंत्रिका कोशिकाएँ मुख्य मस्तिष्क की १२० अरब और सहयोगिनी के रूप में क्रियाशील १ खरब लघु तंत्रिका कोशिकाएँ आपस में मिलकर एक ऐसी शक्ति को उत्पन्न करती हैं जिसे हम मस्तिष्कीय चेतना की संज्ञा देते हैं। भाव-विचार, इच्छा, कामना, लालसा, वासना आदि इसी मस्तिष्कीय चेतना में आविर्भूत होती हैं।

सबसे अधिक रहस्यमय मस्तिष्क का भीतरी भाग है। जिसके चारों ओर काले रंग की दो पट्टियाँ (टेम्पोरल कोरटेक्स) लिपटी हुई है। ये दोनों पट्टियाँ कनपटियों के ठीक नीचे हैं। मस्तिष्क विज्ञान के अनुसार उन दोनों काली पट्टियों का क्षेत्रफल २५ वर्ग इंच और मोटाई १ इंच का दशवां भाग है। तुमको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि उन दोनों पट्टियों में स्मृतियों का विपुल भण्डार भरा हुआ है जिनकी दो परतें हैं और उन दोनों परतों में अरबों स्मृति कोशिकायें हैं। पहली परत की स्मृति कोशिकाओं में तो केवल वर्तमान जीवन की ही स्मृतियाँ भरी हुई होती हैं, लेकिन दूसरी परत की स्मृति कोशिकाओं में पिछले सैकड़ों जन्मों की अच्छी बुरी स्मृतियाँ संचित रहती हैं।

पहली परत में स्थित वर्तमान जीवन की स्मृतियों को सजीव करने की सम्भावना है। उनकी कोशिकाओं को विद्युत प्रवाह के झटके से चैतन्य कर उसमें स्थिति स्मृतियों को पुनः सजीव करने में लोग सफल हुए हैं। मस्तिष्क के प्रख्यात शल्य चिकित्सक डॉ० विल्डर पेन फील्ड ने (आप फ्रांस के प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक हैं।) इन पट्टियों की खोज की है और वे पुरानी से पुरानी ऐसी स्मृतियों को जागृत करने में सफल हुए हैं जिन्हें सामान्य या उपेक्षणीय कहा जा सकता है। महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाली घटनायें तो प्रायः स्मरण रहती हैं। परन्तु जो दैनिक जीवन में ऐसे ही आँखों के सामने से गुजरती रहती हैं जिनको कोई विशेष

महत्व नहीं दिया जाता। वे विस्मृति के गर्भ में लीन हो जाती हैं। पुरानी हो जाने पर उन्हें याद कर सकना सम्भव नहीं होता। लेकिन फिर भी वे पूर्णतया विस्मृत नहीं कही जा सकती। डॉ० विल्डर ने कितने ही लोगों के मस्तिष्क के मर्मस्थलों का विद्युत धारा से स्पर्श कर इस प्रकार की स्मृतियों को जगाने में सफलता प्राप्त की है।

स्मरण शक्ति

पहली परत की कोशिकाओं में ६० लाख कोशिकायें ऐसी हैं जो स्मरण शक्ति से संबंध रखती हैं। उनका अपना क्षेत्र है। जब वह क्षेत्र प्राणशक्ति से प्रभावित होता है तो स्मरण शक्ति की विलक्षणता अपने आप प्रकट होने लगती है। प्राणों से स्मरण का अति घनिष्ठ संबंध है। योगाभ्यास द्वारा प्राणों की शक्ति बढ़ती है। वह शक्ति जितनी बढ़ेगी उसी मात्रा में स्मरण शक्ति भी बढ़ेगी। किसी-किसी व्यक्ति में नैसर्गिक रूप से भी स्मरण शक्ति की विलक्षणता देखने को मिलती है। और देखकर आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है। अमेरिका का रैवी एलिजा को दो हजार पुस्तकें कण्ठस्थ थीं। फ्रांस का राजनेता लियान को विक्टर ह्यूगो की रचनायें काफी पसन्द थीं। उनमें से उसने हजारों संदर्भ के पृष्ठ याद कर रखे थे। और उन्हें आवश्यकतानुसार धडल्ले से बार-बार दुहराता रहता था। इसमें एक भी शब्द आगे पीछे नहीं होता था पृष्ठ संख्या भी वह सही-सही बतलाता चलता था।

ग्रीक विद्वान रिचार्ड को भी पढ़ी हुई पुस्तके महीनों याद रहती थीं। जर्मनी का लायब्रेरियन मैथुरिन विसेरे दूसरे के कहे शब्दों की हूबहू पुनरावृत्ति कर देता था। जिन भाषाओं का ज्ञान उसे नहीं था उसमें वार्तालाप करने वालों की बिना चूक नकल उतार देने की उसे अद्‌भुत शक्ति थी। एक बार बारह भाषा भाषी लोगों ने अपनी बोली में अपने साथियों से वार्तालाप किए, मैथुरिन ने क्रमशः बारहों के वार्तालाप को यथावत दुहरा कर सुना दिया। इस प्रकार नैसर्गिक रूप से प्राप्त स्मरण शक्ति के बहुत सारे उदाहरण हैं।

मानसिक शक्ति का विकास

मस्तिष्कीय अथवा मानसिक विकास के संबंध में पूछने पर पद्‌मगन्धा ने बतलाया कि जो लोग यह समझते हैं कि मानसिक विकास अच्छी से अच्छी शिक्षण पद्धति पर निर्भर है यह भ्रम है। शिक्षा मात्र से मात्र केवल जानकारी बढ़ती है जिज्ञासाओं का समाधान होता है, और नये-नये प्रश्नों का जन्म होता है इसके

अतिरिक्त और कुछ नहीं। मानसिक शक्ति का विकास चित्त की समुचित एकाग्रता पर निर्भर है और यह ध्यान योग द्वारा ही सम्भव है। किसी बलिष्ठ मस्तिष्क की विद्युत शक्ति का प्रवाह यदि दुर्बल मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होने लग जाय तो उसके प्रभाव से भी भारी परिवर्तन हो सकता है। किसी-किसी महापुरुष या सन्त महात्मा का सिर पर आशीर्वाद स्वरूप अपना हाथ रखना इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। सिर पर हाथ का स्पर्श होते ही उनके शक्तिशाली ओर बलिष्ठ मस्तिष्क की विद्युत शक्ति प्रवाहित हो उठती है जिससे दुर्बल मस्तिष्क में भारी परिवर्तन की सम्भावना है। देवताओं, सन्त महात्माओं और सद्गुरुओं के चरणों पर मस्तक रखने या सिर झुकाने के पीछे भी यही रहस्य है। इनमें मानसिक विकास तो होता ही है इसके अलावा शरीर में प्रोटीनों की मात्रा की भी वृद्धि होती है।

मस्तिष्कीय पोषण और उसके विकास के लिए सुविकसित चेतना सम्पन्न मनस्वी, दार्शनिक और साधकों का सान्निध्य भी अत्यन्त उपयोगी है। उनकी प्रबल प्राण शक्ति दुर्बल मन-मस्तिष्क की चेतना के अभाव की पूर्ति करती है। प्रतिभाशाली लोगों का 'प्राण' भी दुर्बल मन-मस्तिष्क को बदलने में सहायक सिद्ध होता है।

फ्रांस के डॉ० जोजे ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि मस्तिष्क में बाहर से विद्युत शक्ति पहुँचा कर उसके कार्य केन्द्रों को उद्दीप्त और प्रषुप्त किया जा सकता है और उसके अनुसार प्राणी को इच्छित कार्य कराने और आज्ञा प्रालन के लिए विवश भी किया जा सकता है।

डॉ० जोजे ने अपने प्रयोगों की सार्वजनिक प्रदर्शनी करके दर्शकों को आश्चर्यचकित कर दिया था। उनके हाथ में एक विद्युत संचालक था और कुछ लोगों की खोपड़ियों में एक विशेष स्थान पर इलैक्ट्रोड लगा रखे गये थे। इस प्रकार यंत्र और प्राणियों के बीच रेडियो सम्पर्क स्थापित हुआ। प्रेरित सूचनाओं के अनुसार प्राणी ऐसे काम करने लगे जो उनकी सामान्य प्रवृत्ति के विपरीत था। योगीगण इसी कार्य को अपनी प्रखर प्राण शक्ति और विचार शक्ति के सम्मिश्रण से करते हैं। इनमें किसी भी प्रकार के बाहरी उपकरण की आवश्यकता नहीं। सब अदृश्य रूप से होता है और स्थायी रूप से होता है किसी को कुछ पता भी नहीं चलता। इसी कर्ण प्रयाग में ही एक ऐसी यौगी निवास करते हैं जो अपनी प्रबल प्राण शक्ति और विचार शक्ति के द्वारा हजारों मील दूर स्थित किसी भी व्यक्ति के विचारों और भावों को तत्काल अपने अनुरूप परिवर्तित कर सकने में समर्थ हैं।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वैज्ञानिकों ने अपने विशेष उपकरणों की सहायता से मनुष्य की इच्छा शक्ति नियंत्रित कर उसे अपने अनुरूप सोचने समझने

और कार्य करवाने की दिशा में सफलता अवश्य प्राप्त कर ली है, लेकिन योग और तंत्र की शक्तियों के सामने उनकी यह सफलता नगण्य ही समझी जायेगी। किसी को सम्मोहित करना अथवा किसी को वश में करना इलेक्ट्रोनिक्स यंत्रों द्वारा एक विशेष सीमा तक सम्भव हो गया है।

वह 'सीमा' क्या है?

जब तक वैज्ञानिक प्रयोग चलता रहता है तब तक उसके प्रभाव से व्यक्ति सम्मोहित और वशीभूत होकर अनुशासन अथवा आदेश का पालन करता रहता है। प्रयोग की पकड़ ढीली होने पर वह पुनः अपनी पूर्व स्थिति में वापस लौट आता है और अभ्यस्त स्तर का आचरण करने लगता है। तूला विश्व विद्यालय के डॉ० राबर्ट हीथ ने एक ऐसा यंत्र बनाया है जिसकी सहायता से व्यक्ति आवश्यकतानुसार अपने मस्तिष्क की कार्य क्षमता को एक सीमा तक स्वयं नियंत्रित कर सकता है और बढ़ा भी सकता है।

यह हुई वैज्ञानिकों की बात। तंत्र में बहुत सारी विद्यायें हैं। जिनमें सम्मोहन विद्या और वशीकरण विद्या भी है। अन्य तांत्रिक विद्याओं की तरह इन दोनों विद्याओं के मूल में मंत्र शक्ति है। साधक की प्राण शक्ति और मनः शक्ति, मंत्र शक्ति के साथ संयुक्त होकर संबंधित कोशिकाओं पर अपना प्रभाव डालती है जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति सम्मोहित अथवा वशीभूत होकर साधक के इच्छानुसार कार्य करता है। प्राण, बल और मनोबल के साथ मंत्र शक्ति संयुक्त होने से सम्मोहन अथवा वशीकरण का प्रभाव दीर्घकाल तक बना रहता है। तंत्र में ही एक विद्या है धूमावती विद्या। बड़ी ही विकट 'विद्या' है यह। जिनकी आत्म शक्ति प्रबल होती है और जिनमें मनोबल अधिक होता है उन्हें सम्मोहित अथवा वशीभूत करना कठिन समझा जाता है। लेकिन घूमावती विद्या द्वारा ऐसे व्यक्ति भी सम्मोहित और वशीभूत होकर साधक के अनुयायी हो जाते हैं, अदृश्य रूप से। तुमको मालूम होना चाहिए कि योग हो या तंत्र सभी का संबंध उन तमाम कोशिकाओं से है जिनकी चर्चा मैंने की है।

बहिर्चेतना और अन्तर्चेतना

मस्तिष्कीय चेतना दो प्रकार की है। पहले प्रकार की चेतना को बहिर्चेतना और दूसरे प्रकार की चेतना को अन्तर्चेतना कहते हैं। ये दोनों चेतनायें चेतन मन और अचेतन मन के रूप में प्रकट होती हैं। काली पट्टियों की पहली परत बहिर्चेतना अथवा चेतन मन की क्रीड़ा भूमि है। इसी प्रकार दूसरी परत अन्तर्चेतना अथवा अचेतन मन का रहस्यमय क्षेत्र है। पहली परत में लगभग २ अरब ८०

लाख कोशिकायें हैं। वैसे ही दूसरी परत में भी ३ अरब व ६५ लाख कोशिकायें हैं। पहली परत की कोशिकाओं का संबंध बहिर्जगत से और दूसरी परत की कोशिकाओं का संबंध अन्तर्जगत से है। दोनों परतों की कोशिकायें दोनों प्रकार की चेतनाओं की वाहिका हैं। इसीलिए उन्हें चेतनीय कोशिका और अचेतनीय कोशिका कहते हैं। इन दोनों प्रकार की कोशिकाओं में निहित चेतन अचेतन शक्तियाँ चेतन मन और अचेतन मन में प्रकट होती है।

विचारों की अदृश्य तरंगे

चेतनीय कोशिकाओं में ८० लाख ऐसी कोशिकायें है जो विचारों को जन्म देती हैं और उनका प्रक्षेपण करती हैं। इसी प्रकार ८० लाख ऐसी भी कोशिकायें हैं जो दूसरों के विचारों को ग्रहण करती हैं। योग विज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड की हर वस्तु में सिहरन है। ब्रह्माण्ड का प्रत्येक कण गतिशील है। हर पल के बाद हर कण, हर वस्तु का स्वभाव और स्वरूप बदल जाता है। हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका प्रत्येक पल बदल रही है। यही स्थिति हमारे विचारों की भी है। परामनो विज्ञान पर विश्वास करें या न करें पर यह सत्य है कि हर क्षण हम पर प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से दूसरे के विचारों का प्रभाव पड़ रहा है। हम इन विचारों के प्रभावों को पूर्वबोध या संयोग कह कर टाल देते हैं। पर वास्तविकता तो यह है कि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड कारण और परिणाम के नियमानुसार चल रहा है। और बिना किसी कारण के कोई न कार्य होता है और न तो उसका परिणाम ही सामने आता है।

सब दिशाओं से आने वाले सब तरह के विचार लगातार हमारे अवचेतन मन को बराबर प्रभावित करते रहते हैं। यदि प्रकृति ने हमारे चेतन मन को ऐसे विचारों का अवरोधी न बनाया होता तो हम इन विचार तरंगों के सतत आक्रमण से कभी के समाप्त हो गये होते। पर हमारे अवरोध के बावजूद भी इन विचार तरंगों का अस्तित्व तो है ही, रेडियो या टेलीवीजन के निष्क्रिय होने पर भी उन्हें सक्रिय करने वाली अदृश्य तरंगें उनके चारों ओर मंडराती रहती हैं।

मनुष्य को प्रभावित करने वाले बाहरी विचार जितने ही प्रखर और भावनापूर्ण होंगे, उनकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही प्रखर और आवेशमय होगी।

रहस्यमय कपाल प्रदेश और विचार शक्ति

मस्तिष्क तीन भागों में विभक्त है इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। मुख्य मस्तिष्क (सेरीब्रम) में मस्तिष्क की खोपड़ी कपाल के आगे, मध्य और

पीछे का हिस्सा रहता है। मस्तिष्क का यह प्रदेश इडा नाड़ी से जुड़ा हुआ है और जागृत अवस्था में यह सक्रिय रहता है।

गौण मस्तिष्क (सेरीबेलम) में मस्तक की खोपड़ी का नीचे तथा पिछला भाग का समावेश होता है। मस्तिष्क का यह प्रदेश पिंगला नाड़ी से जुड़ा हुआ है। स्वप्नावस्था में यह सक्रिय होता है।

तीसरा भाग है अधोस्थित मस्तिष्क (मेडुला ऑब्लोंगाटा) यह मेरुदण्ड यानि रीढ़ की हड्डी का शिखर है। मस्तिष्क का यह अत्यन्त रहस्यमय प्रदेश है। सुषुम्ना नाड़ी से जुड़ा हुआ है यह। सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत इन तीनों अवस्थाओं में यह रहस्यमय प्रदेश सक्रिय होता है। मस्तिष्क के इन तीनों भागों को एक सूत्र में बाँधने वाली एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नाड़ी है गुह्यनी नाड़ी। यह नाड़ी मस्तिष्कीय चेतना शक्ति की वाहिका है।

पहले तुमको थोड़ा अधोस्थित मस्तिष्क के विषय में बतला दूँ, तब तुम आगे कुछ समझ सकोगे। जैसा कि कह चुकी हूँ यह अत्यन्त रहस्यमय मस्तिष्क प्रदेश है। इसका मुख्य स्थान वहाँ है जहाँ शिखा रखने की परम्परा है। इसका आकार बड़े नींबू की तरह है जिसके अन्दर कोई अज्ञात द्रव भरा हुआ है और उस द्रव में डूबा हुआ बाल से भी पतला ज्ञान तन्तुओं का समूह है जो छल्ले के आकार में अपने स्थान पर एक हजार बार घूमा हुआ है। इसी को योगी गण सहस्रागार चक्र कहते हैं।

ज्ञान तन्तु समूह का एक सिरा ब्रह्मरन्ध्र में सुषुम्ना नाड़ी से और दूसरा सिरा गुह्यनी नाड़ी से जुड़ा हुआ है। इस नाड़ी का महत्व सर्वप्रथम इसी में निहित है कि इसमें बाह्य चेतना और अन्तर्चेतना दोनों का प्रवाह है। और यह महत्वपूर्ण नाड़ी भ्रू-मध्य स्थित आज्ञा चक्र में मिलती है और वहाँ से उसका दो भाग हो जाता है। पहले भाग को चित्रा नाड़ी और दूसरे भाग को पूषा नाड़ी कहते हैं। पहले नाड़ी बहिर्चेतना की और दूसरी अन्तर्चेतना की वाहिका है। इन दोनों नाड़ियों के द्वारा दोनों प्रकार की चेतनायें पहली और दूसरी परत की कोशिकाओं के समुद्र में पहुँच जाती हैं और पहुँच कर मानसिक शक्ति और परा मानसिक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। जैसा कि बतला चुकी हूँ, दूसरी परत अवचेतन मन अथवा परामानसिक शक्ति का क्षेत्र है जिसे योगी और तांत्रिकगण, कपाल प्रदेश कहते हैं। यह कपाल प्रदेश अतीत के अंधकार में आकण्ठ डूबा हुआ अत्यन्त रहस्यमय है। सम्पूर्ण प्रदेश अवचेतन मन का प्रदेश है। सुविधा के लिए इसे मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है। पहला है विचार जगत् का क्षेत्र और दूसरा है परामानसिक जगत का क्षेत्र तथा तीसरा है भाव जगत का क्षेत्र।

इन तीनों क्षेत्रों का केन्द्र भ्रूमध्य और उसके ऊपर है। मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड और तिलक इसलिए लगाया जाता है कि तीनों केन्द्रों का बराबर स्मरण बना रहे। इस संबंध में आगे विस्तार से चर्चा की जायेगी।

महाचिति शक्ति

विचार जगत का दूसरा नाम - 'आन्तर जगत' है। आन्तर जगत से हमारा तात्पर्य अभौतिक सत्ता यानी सूक्ष्म जगत से है। विचारों के एकीकरण, समीकरण और केन्द्रीकरण से उत्पन्न घनीभूत रूप ही विचार शक्ति है। इसका मूलबीज महाचिति-शक्ति है। यह समद्भूता महाशक्ति है। समष्टि रूप में यह महाशक्ति सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। सम्पूर्ण चराचर जगत इस महाशक्ति से अनुप्राणित है। योग तंत्र में इसी को ब्राह्मी शक्ति, आदि शक्ति, महाशक्ति, पराशक्ति, महामाया आदि नामों से संबोधित किया गया है।

महाचिति शक्ति का प्रथम स्फुरण, विचार शक्ति के रूप में अवचेतन मन में होता है। इसी प्रकार विचार शक्ति का भी प्रथम स्फुरण 'परावाक् के रूप में होता है। परावाक् ही क्रमशः पश्यन्ति वाक् मध्यमा वाक् और वैखरी वाक् के रूप में परिवर्तित होकर अन्त में 'शब्द' रूप में अभिव्यक्त होती है। अवचेतन मन में आविर्भूत होने वाली विचार शक्ति का क्षेत्र अन्तर्जगत है। अन्तर्जगत में विचार शक्ति की गति अकल्पनीय है। एक सेकेण्ड में कम से कम ४०,००० सं ४०००००००००००० मील इसकी गति है। इसके इस विलक्षण प्रवाह को कोई भी जड़ चेतन पदार्थ रोक नहीं सकता। हाँ सूर्य का प्रकाश अवश्य इसके स्पन्दन को बिखेर देता है। फलस्वरूप इसकी तीव्रता और गति कम हो जाती है। इसीलिए किसी भी प्रकार की साधना उपासना के निमित्त उषा काल, प्रदोष काल और रात्रि का मध्यकाल श्रेष्ठ बतलाया गया है। क्योंकि इस समय विचार शक्ति की गति स्वाभाविक रहती है - सूर्य के प्रकाश के अभाव में।

अभौतिक सत्ता यानी सूक्ष्म जगत जिसकी चर्चा अभी की गयी है वह अन्यत्र नहीं हमारे इसी भौतिक जगत में ही दूध-पानी की तरह मिला हुआ है। प्रकृष्ट विज्ञान के अनुसार पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की सीमा तक उसका विस्तार अथवा क्षेत्र है जिसके सूक्ष्मतम वायु मण्डल जिसे वैज्ञानिक ईथर कहते हैं, में जितने भी सन्त-महात्मा, साधु-सन्त, योगी, साधन, विचारक, बुद्धिजीवी आदि हो गये हैं, उन सभी के विचारों के सूक्ष्म कम्पन विद्यमान हैं। इतना ही नहीं उन लोगों के भी विचारों के कम्पन उसमें अपना अस्तित्व बनाये रखे हुए हैं, जो लोग दुष्ट, आततायी, दुराचारी और अत्याचारी प्रवृत्ति के रहे हैं।

साधारण मनुष्यों के अवचेतन मन की विचार शक्ति की गति प्रायः ४०,००० मील प्रति सेकेण्ड होती है। लेकिन इतनी ही गति के कम्पन इतनी तीव्र और प्रखर होते हैं कि उपर्युक्त लोगों के अच्छे-बुरे विचारों के सूक्ष्म कम्पनों को आकर्षित कर लेते हैं। वे कम्पन अन्तर्चेतना के क्षेत्र में पहुँच कर अवचेतन में पुनः अच्छे-बुरे विचारों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार हमारे अवचेतन मन में आकृष्ट होकर कितने कम्पन पुनः अच्छे-बुरे विचारों में परिवर्तित हो रहे हैं, यह हमारे लिए अज्ञात है। उनमें से कभी कोई विचार अन्तर्चेतना के क्षेत्र में प्रवेश कर पाता है तो उससे हमारा चेतन मन अनजाने में ही ऐसा अच्छा-बुरा काम कर बैठता है जिसका न कोई कारण समझ में आता है और न तो कोई प्रयोजन ही।

योग-तांत्रिक सिद्धियों के मूल में विचार शक्ति

चेतन मन में उत्पन्न होने वाले विचारों की गति प्रकाश की गति से कहीं अधिक होती है। प्रकाश की गति प्रति सेकेण्ड १,८०,००० मील है। विद्युत की गति प्रति सेकेण्ड २,८८,००० मील है। जबकि बाह्य जगत यानी भौतिक जगत में उपर्युक्त विचारों की गति प्रति सेकेण्ड २२,६५,१२० मील है। सूक्ष्म वायु मण्डल में विचारों की यह गति भी कम्पन उत्पन्न करती है। किन्तु मन की चंचलता के कारण वे कम्पन भी अस्थिर और विश्रृंखल होते हैं। इसलिए कभी कोई विचार किसी को प्रभावित कर पाने में समर्थ होते हैं।

योग में सर्वप्रथम चित्त वृत्तियों के निरोध पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसलिए कि चित्त से विचार का अति घनिष्ठ संबंध है। ध्यान से मन स्थिर और शान्त होने से विचार का अति घनिष्ट संबंध है। ध्यान से मन स्थिर और शान्त होता है और उसी के साथ अपने आप एकाग्र हो जाता है चित्त भी। चित्त वृत्तियाँ भी उत्पन्न नहीं होती। उनका भी प्रणाश हो जाता है। अन्त में एक ऐसी स्थिति आती है जब हमारा चेतन मन पूर्णतया बहिर्विचार से शून्य हो जाता है। उसमें किसी भी प्रकार का विचार रह ही नहीं जाता। .योगीगण इसी स्थिति को सविकल्प समाधि कहते हैं।

सविकल्प समाधि की उपलब्धि क्या है, मैंने प्रश्न किया?

मन की दोनों अवस्थाओं की थोड़ी चर्चा पहले की जा चुकी है। ज्ञात होना चाहिए कि चेतन मन में बहिर्विचार और अवचेतन मन में अन्तर्विचार उत्पन्न होता है। इन दोनों प्रकार के विचारों की जो शक्तियाँ हैं, वे ही दोनों मन की दोनों अवस्थाओं की भी शक्तियाँ हैं। मानसिक शक्ति और विचार शक्ति में अति सूक्ष्म

अन्तर समझना चाहिए। सविकल्प समाधि की अवस्था में अवचेतन मन का द्वार खुल जाता हैं। जिसके फलस्वरूप हमारा सीधा संबंध अवचेतन मन में स्थित उन रहस्यमयी शक्तियों से हो जाता है जो अन्तर्विचार से अवचेतन मन में उत्पन्न होती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं बाद में वे ही शक्तियाँ वर्णाक्षरों में नियोजित होकर चेतन मन के द्वारा वैदिक, पौराणिक और तांत्रिक मंत्रों की शक्तियों के रूप में प्रकट होती हैं और प्रकट होती हैं विभिन्न योग सिद्धियों के रूप में भी।

सविकल्प समाधि की दूसरी उपलब्धि यह है कि उस अवस्था में अन्तर्विचार की गति ४०,००० मील प्रति सेकेण्ड से आगे उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और उसी के साथ उक्त समाधि की अवधि भी बढ़ती जाती है। जब वह अवधि पूरे बारह घण्टे की हो जाती है तो वह गति प्रति सेकेण्ड ४०००००००००००० मील हो जाती है। उस समय मस्तिष्क की कोशिकाओं से अल्फा, बीटा, डेल्टा और थीटा ये चारों तरंगे तीव्र गति से निकल कर हमारे शरीर के चारों ओर गोलाकार रूप में एक विशेष प्रकार का मण्डल बनाने लग जाती हैं। तरंगों के अनुसार उस मण्डल का रंग लाल, पीला हरा और सुनहरा होता है। योग में इसी को प्रभामण्डल कहते हैं।

गति के अनुसार उसमें उत्पन्न होने वाले कम्पन भी तीव्र होते जाते हैं। अभौतिक सत्ता में गति से उत्पन्न होने वाले कम्पन ईथर में विद्यमान महापुरुषों के सद्विचारों और आध्यात्मिक विचारों के कम्पनों को आकृष्ट कर उन्हें पुनः विचारों में परिवर्तितत कर देते हैं लेकिन वे रहते हैं पहले अव्यक्त रूप में ही। जब समाधि भंग होती है तो चेतन मन में आकर व्यक्त हो जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं उन विचारों में निहित जो ज्ञान हमें प्राप्त होता है, वह इन्द्रियों के माध्यम से नहीं बल्कि सीधे अन्तर्जगत् से प्राप्त होता है। ऐसे ही ज्ञान को इन्द्रियातीत ज्ञान अथवा अन्तर्ज्ञान कहते हैं।

अन्तर्ज्ञान, वैज्ञानिकों की दृष्टि में

वैज्ञानिक आइंस्टीन 'अन्तर्ज्ञान' के संबंध में कहते हैं जब हम जीवन और ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानने का प्रयत्न करते हैं तो मन भय और शंकाओं से भर जाता है। पर हमें कभी किसी जिज्ञासा को कुण्ठित नहीं होने देना चाहिए। और सदा चकित रहना भी नहीं भूलना चाहिए। किसी अज्ञेय वस्तु या विचार का हमें थोड़ा भी ज्ञान है तो बहुत है। मैं जानता हूँ कि वैज्ञानिक प्रगति केवल अन्तर्ज्ञान से ही सम्भव है, भगवान या परम सत्य की खोज वैज्ञानिक विधियों से ही सम्भव है। ऐसा मैं मानता हूँ। ज्ञान वैज्ञानिक के लिए आवश्यक है, फिर

भी ज्ञान तो वहीं तक हमारा साथ दे सकता है, जहाँ तक वह 'जानता' और सिद्ध कर सकता है। पर एक स्थिति ऐसी भी आती है जहाँ मस्तिष्क एक छलाँग लगा कर बोध के उच्चतर स्तर पर पहुँच जाता है। इस स्थिति को सहजोपलब्धि या अन्तर्ज्ञान कुछ भी कह लीजिए। संसार के सब महान अविष्कार मानव प्रज्ञा के आगे की इस रहस्यमयी अनुभूति द्वारा ही सम्भव हुए हैं।

वैज्ञानिक एल्डुअस हक्सले का कहना है कि जिस परम सत्य की खोज़ में वैज्ञानिक लगे हैं, वह यथार्थता नहीं है जो हमें आँखों से दिखाई देती है। बल्कि वह यथार्थता है जो यथार्थ में निहित है। यदि बोध क्षमता के द्वारों को स्वच्छ और निर्मल रखा जाय तो हमें सब कुछ वैसा ही दिखाई देगा जैसा है अनन्त, अमित और अपार। जब तक ऐसा नहीं होता, सत्य-भाष और यथार्थता, नित्य और अनित्य एक से प्रतीत होते हैं।

मस्तिष्क की विचारणा शक्ति भौतिक पदार्थो को गति देने में सक्षम है इस संबंध में रूस के अग्रणी परा-मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर एल०एल० वेसिलियेव का कहना है कि यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि ब्रह्माण्ड में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसमें आकर्षण या विकर्षण शक्ति न हो। कुछ विशिष्ठ व्यक्तियों के मस्तिष्क की आकर्षण शक्ति भौतिक पदार्थों का ही एक मौलिक गुण धर्म है। कारण, आदमी का विकास भौतिक तत्वों की एक खास योजना के अन्तर्गत ही हुआ है, पर किस वस्तु द्वारा आकर्षण-विकर्षण की यह क्रिया सम्पन्न होती है, इसका उत्तर अभी हम वैज्ञानिकों को नहीं मिला है। भौतिक शास्त्रियों ने गुरुत्वाकर्षण शक्ति के लिए 'ग्रेविटो' तत्व की कल्पना की है। पर वे तत्व स्वयं क्या हैं? इसका उत्तर वे स्वयं नहीं जानते। एक भौतिक पिण्ड से उत्सर्जित, 'ग्रेविटो' दूसरे भौतिक पिण्ड के 'ग्रेविटो' को आकर्षित या विकर्षित कर सकती है तो यह भी माना जा सकता है कि मस्तिष्क की विचारणा शक्ति भौतिक शक्ति है और विशेष परिस्थितियों में अन्य भौतिक पदार्थों को गति प्रदान कर सकती है।

ब्रह्माण्डीय चेतना और परम ज्ञान

मैंने सुना है कोई निर्विकल्प समाधि भी है। वह क्या है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में पदमगन्धा ने बतलाया कि सविकल्प के ऊपर निर्विकल्प अवस्था है। यह योगियों की परम अवस्था है।

पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण की परिधि तक आन्तर्विचार की गति ४०००००००००००० मील प्रति सेकेण्ड रहती है। उसके बाद उसकी गति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और जब वह अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है तो उससे

उत्पन्न होने वाले कम्पन अदृश्य किरणों में परिवर्तित हो जाते हैं जिन्हें वैज्ञानिक "आल्ट्रावायलेट रेज" और अल्फावायलेट रेज कहते हैं। इन दोनों किरणों की गति सूर्य की किरणों की गति से चौगुनी होती है। जब वे अपनी गति से ब्रह्माण्ड में प्रवेश करती है तो उनमें से ऋण विद्युत चुम्बकीय शक्ति और धन विद्युत चुम्बकीय शक्ति उत्पन्न होने लग जाती है जिनके कारण ब्रह्माण्डीय चेतना से हमारी मस्तिष्कीय चेतना का संबंध अपने आप जुड़ जाता है। इसी अवस्था को योगीगण निर्विकल्प समाधि की अवस्था कहते हैं। इस अवस्था विशेष में ब्रह्माण्डीय चेतना से, जिसे परम चेतना अथवा शाश्वत चेतना भी कहते हैं, हमारी मस्तिष्कीय चेतना को जो ज्ञान उपलब्ध होता है, उसे ही योग की भाषा में परम ज्ञान कहते हैं। परम ज्ञान अपौरुषेय ज्ञान का ही एक विशिष्ट रूप है जो आगे चलकर "ब्रह्मज्ञान" में परिवर्तित हो जाता है। वेद, उपनिषद् आदि अपौरुषेय ज्ञान के अन्तर्गत आते हैं।

अन्तर्ज्ञान और परम ज्ञान

अन्तर्ज्ञान और परम ज्ञान में क्या अन्तर है? इस प्रश्न के उत्तर में पदमगन्धा बोली- भारी अन्तर है पहला ज्ञान आत्मा से संबंधित है जबकि परम ज्ञान परमात्मा का एक मात्र विषय है।

मनुष्य के शरीर में तीन महत्वपूर्ण केन्द्र है। पहला है- नाभि केन्द्र दूसरा है- हृदय केन्द्र और तीसरा है- मस्तिष्क केन्द्र। ये तीनों क्रमशः संकल्प भाव और विचार के केन्द्र हैं। संकल्प का नाभि में आविर्भाव होता है। भाव का जन्म होता है हृदय में, और इसी प्रकार विचार उत्पन्न होता है मस्तिष्क में।

अन्तर्ज्ञान आत्मा में आर्विर्भूत होकर सर्वप्रथम अवचेतन मन में प्रकट होता है। तत्पश्चात् क्रम से संकल्प और भाव में परिवर्तित होकर "विचार" का रूप धारण करता है। किन्तु शब्द की अपनी सीमा है और उस सीमा में अन्तर्ज्ञान पूरा का पूरा प्रकट नहीं हो पाता है। और यही कारण है कि अन्तर्ज्ञान भाव और विचार के रूप में ही प्रायः रह जाता है, जितना अंश शब्द के रूप में अभिव्यक्त होता है उसे भी ठीक-ठीक समझ पाना कठिन ही होता है। इसलिए कि आत्मा में जिस अर्न्तज्ञान का आविर्भाव होता है वह वास्तव में ईथर में दीर्घ काल से विद्यमान उच्च कोटि के सन्त महापुरुषों, योगी साधकों और महापुरुषों के विचारों का परिणाम है। वे सदविचार इतने गूढ़ और सघन होते हैं कि अन्तर्ज्ञान में परिवर्तित होकर भी शब्द रूप में पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं हो पाते। अन्तर्ज्ञान का तीन से भी अधिक भाग भाव के रूप में ही रह जाता है।

अन्तर्ज्ञान का अधिक से अधिक अंश प्रकट हो, इसके लिए उपर्युक्त तीनों केन्द्रों की साधना आवश्यक है। अब रही परम ज्ञान की बात। जैसा कि बतलाया जा चुका है परम ज्ञान परमात्मा का विषय है। उसे मस्तिष्कीय चेतना से आत्मा ग्रहण करती है तत्पश्चात् आत्मा से विसर्जित होकर वह ''सूक्ष्मावाक्'' अथवा ''परावाक्'' का रूप धारण करता है। यही उसका प्रथम और अन्तिम रूप है। पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी के रूप में वह परिवर्तित नहीं होता। इसीलिए सूक्ष्मावाक को तंत्र में परम ज्ञान रूपिणी कहा गया है। कहने की आवश्यकता नहीं परम ज्ञान रूपिणी सूक्ष्मावाक् ही षट्चक्र साधन की कुण्डलिनी शक्ति है। वास्तव में सूक्ष्मावाक् और कुण्डलिनी शक्ति एक दूसरे के पर्याय हैं। उपनिषदों की यह ''नाचिकेत'' अग्नि है। चैनिक योग दीपिका में इसे ''स्पिरिट फायर'' कहा गया है। पश्चिम के विद्वान भी इस शक्ति से परिचित हैं। वे इसे ''सरपेन्ट पावर या सरपेन्ट'' फायर कहते हैं। ऋषि शिष्या मैडम ब्लैवेट्स्की इसे विश्वव्यापी विद्युत शक्ति कहा करती थीं। इस महाशक्ति की गति प्रकाश की गति से अधिक ३५४०० मील प्रति सेकेंड है।

क्या ''परम ज्ञान'' को प्रकट करना सम्भव है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में साधिक् ने उत्तर दिया नहीं कदापि संभव नहीं। ''परम ज्ञान'' निर्विकल्प समाधि की विशेष अवस्था की व्यक्तिगत उपलब्धि है और यह उपलब्धि विरले ही किसी के लिए सम्भव है।

एक अस्तित्व का जगत् है जहाँ सब कुछ परमात्मा का है। एक मनोभावों का जगत् है जहाँ 'मैं' और 'मेरा' है। अन्तर्ज्ञान मनोभावों के जगत् का ज्ञान है। इसे व्यक्त किया जा सकता है। जिसे हम ''ज्ञान'' समझते है, वह वास्तव में किसी के विचार अथवा भाव होते हैं, ज्ञान नहीं। ज्ञान तो वह है जो स्वयं के मनोभावों से अपने आप प्रकट होता है।

''परम ज्ञान'' अस्तित्व के जगत का ज्ञान है। जो परमात्मा का है। इसे किसी भी साधन अथवा माध्यम द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। भाव, विचार और शब्द तीनों व्यर्थ हैं उसके लिए। इन तीनों में से वह परम ज्ञान किसी के भी द्वारा व्यक्त अथवा प्रकट नहीं हो सकता। वास्तव में ''परम ज्ञान'' मुक्ति का साधन है जिसे ''ज्ञानान्मुक्ति'' कहते हैं वह यही है। इसका प्राकट्य वहाँ सम्भव है, जहाँ वाणी नहीं है, शब्द नहीं हैं, जहाँ केवल मौन है। योग का यह वाक्य ''गुरोस्तु मौन व्याख्यानम्'' इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

जैसा कि आपने कहा- परम ज्ञान व्यक्तिगत उपलब्धि है, तो क्या कोई दूसरा उससे लाभान्वित नहीं हो सकता- मैंने प्रश्न किया।

क्यों नहीं हो सकता, लेकिन इसके लिए पात्रता चाहिए। योगी मात्र ही उससे लाभान्वित हो सकते हैं।

वह कैसे? मैंने पूछा।

मौन संवाद, आन्तर्सम्वाद यानी दूर बोध द्वारा।

क्या कभी कोई ऐसी घटना घटी है?

हाँ! क्यों नहीं, गीता इसका गरिमामय उदाहरण है।

गीता !

हाँ! गीता! गीता अपने आप में परम ज्ञान का अद्‌भुत उदाहरण है जिसका आविर्भाव श्री कृष्ण और अर्जुन के अन्तर्सम्वाद द्वारा हुआ है।

समझ में नहीं आया- मैंने कहा।

क्या कभी तुमने इस पर विचार किया है कि कृष्ण युद्ध के मैदान में गीता के अट्‌ठारह अध्याय अर्जुन को कैसे सुना सकते हैं? और कैसे कृष्ण गीता प्रवचन सुनाने का समय प्राप्त कर सकते है? जब कि सारी सेनायें भी वहाँ उपस्थित थी। ... तो क्या सभी सैनिक और सभी महारथी कृष्णार्जुन संवाद सुनने में व्यस्त थे? वह कैसा समय था?

कृष्ण से इतनी लम्बी चर्चा निश्चित ही प्रश्नवाची है। निश्चय ही प्रश्न उठता है। युद्ध के मैदान में, जहाँ कि तमाम योद्धा और महारथी तैयार हों लड़ने मरने और जूझने के लिए वहाँ ये अट्‌ठारह अध्याय यदि कृष्ण ने बिल्कुल उसी तरह कही हो जैसा की गीता भक्त पढ़ते हैं, सुनते हैं या दुहराते हैं, तो काफी समय लग गया होगा। अगर कृष्ण बिना रुके बिना थमे, आँख बन्द करके अनवरत बोलते ही चले गये हों तब भी काफी समय लगा होगा। इसमे सन्देह नहीं, लेकिन यह कैसे सम्भव हुआ होगा?

दीर्घ काल से यह प्रश्न लोगों के मानस में गूँजता आया है। इसलिए कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कह दिया कि गीता महाभारत में प्रक्षिप्त है। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि कृष्ण और अर्जुन में ''संक्षिप्त'' में बाते हुई होंगी। फिर उसको विस्तृत रूप से बाद में दिया गया। ये दोनों बातें सही नहीं है। यह सारा संवाद आमने-सामने हुआ हो वह सारा वार्तालाप, जैसे हम और आप वार्तालाप कर रहे हैं, ऐसा हुआ हो तो इसमें कृष्ण और अर्जुन ही भागीदार नहीं रह जाते, इसमें सारे सैनिक सारे योद्धा और महारथी भी भागीदार बन गये होते। मनुष्यों का भारी समुद्र था। लेकिन सभी उपस्थित लोग मौन साधे क्यों खडे मालूम पड़ते हैं? क्या इसमें कोई बीच में बोला नहीं? किसी ने इतना भी नहीं कहा कि यह वार्तालाप का, शंका समाधान का अथवा संवाद का समय नहीं है। युद्ध का समय

है। शंख बज चुके हैं। धनुष पर बाण चढ़ चुके हैं। लोग मरने-मारने के लिए तैयार खड़े हैं। पर कोई नहीं बोला।

क्यों? इसलिए कि वह चर्चा और वह वार्तालाप अन्तर्संवाद था। मौन संवाद था और था दूर बोध। वह चर्चा बिल्कुल गहरी और भीतरी थी। यही कारण था कि वहाँ उपस्थित लोग उसके साक्षी न बन सके।

गीता कृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ अन्तर्संवाद है। उसका कोई बाहरी प्रमाण नहीं है। इसलिए वह किसी को सुनाई नहीं पड़ी। लेकिन युद्ध के मैदान से काफी दूर बैठा संजय अवश्य सुन रहा था उस अन्तर्संवाद को, जो व्यक्ति इतनी दूर देख सकता है तो वह सुन भी सकता है। बाद में संजय से ही सारे लोगों ने गीता सुनी और उसके पश्चात् इतिहासकार, लेखक, कवि और विद्वान ज्ञानी लोग गीता से परिचित हुए। लेकिन सबसे पहले गीता को सुना और उससे परिचित हुआ एक मात्र अर्जुन। पर उसका सुनना आन्तरिक था और भीतरी था। कहने की आवश्यकता नहीं, ऐसे अन्तर्संवाद के समय का माप अलग है। उसे समझना आवश्यक है। बिना उसे समझे अन्तर्संवादन के गूढ़ लक्ष्य से परिचित नहीं हुआ जा सकता। कोई भी और कैसा भी काम हो, समय तो उसमें लगता ही है। लेकिन अन्तर्संवाद अथरवा दूर बोध ऐसी चीज है जिसमें समय की आवश्यकता नहीं। वह समय की सीमा से परे कालातीत है। उदाहरण के रूप में जैसे तुम सपने में देखते हो कि तुम्हारा विवाह हो गया। नौकरी लग गयी, तुमने मकान खरीद लिया। बच्चे बड़े हो गये। लड़के का विवाह है, शहनाई बज रही है और तभी तुम्हारी नींद खुल गयी। तुम घड़ी देखते हो, और तुम जानते हो कि मुश्किल से एक मिनट बीता है झपकी लगे। तब बड़ी कठिनाई होती है कि केवल एक मिनट में आधा जीवन समाप्त हो जाता है, जिस बात में तीन-चालीस साल का समय लग जाता है वह एक मिनट में कैसे हुआ? लेकिन बिल्कुल हुआ। सपने में समय की जो गति है वह बिल्कुल अलग है। एक-एक मिनट में पूरा जीवन देखा जा सकता है।

सपने का समय अलग है और जागने का समय अलग है। जागृत अवस्था में भी समय का स्केल एक सा नहीं होता। उसमें भी बराबर परिवर्तन होता रहता है जैसे- जब तुम दुःख में होते हो तो समय लम्बा हो जाता है और जब सुख में होते हो तो छोटा हो जाता है। घड़ी में उतना ही समय चलता है लेकिन तुम्हारे मन के समय की धारणा पूरे समय छोटी-बड़ी होती रहती है।

जीसस से किसी ने पूछा तुम्हारे प्रभु के राज्य में महत्वपूर्ण बात क्या होगी? जीसस ने उत्तर दिया वहाँ समय नहीं होगा। महत्वपूर्ण बात यही होगी। प्रश्न

करने वाले ने कहा अगर वहाँ समय न होगा तो फिर वहाँ का सब काम कैसे चलता होगा? उत्तर मिला आनन्द के क्षण में समय नहीं होता। अगर ध्यान का एक क्षण भी तुम्हारे भीतर उतरा है। कभी आनन्द का एक क्षण भी तुमको नचा गया है, तो उस क्षण समय नहीं होता। समय समाप्त हो गया होता है। इस संबंध में सारे संसार के लोग सहमत हैं। महावीर, बुद्ध, लाओत्से, जीसस, मुहम्मद सभी। इन सभी लोगों का एक स्वरं में कहना है कि वह जो क्षण है - आनन्द का, आत्मानुभव का, ब्रह्म का वह समय रहित क्षण है। वह कालातीत है।

आपके कहने का मतलब है कि दूरबोध के समय का माप यानी स्केल भिन्न है।

हाँ! क्षणभर में वह बात हो सकती है जिसे लिखने या बोलने में घण्टों का समय लगे। तुमने एक क्षण में जो सपना देखा है, उसे अगर लिखो तो तुमको कम से कम चार घण्टा लगेगा। तुम कहोगे बड़े आश्चर्य की बात है। देखा तो क्षण भर में और लिखने में चार घण्टा लग रहा है। क्या कारण है? कारण यह है कि जब तुम्हारे भीतर कोई घटना घटती है तब वह युगपत घटती है। जैसे मैं तुमको देख रही हूँ तुमको इकट्ठा देख रही हूँ एक ही क्षण में तो पूरा ही देखा। वह एक क्षण में एक साथ हो गया। कहीं मैं तुम्हारा नाम लिखूँ तो उसमें समय लग जायेगा। तो ... जब तुम सपना देखते हो तो तब युगपत घट जाता है और जब तुम उसको कागज पर लिखते हो तो लम्बाई में लिखते हो, तब वह युगपत नहीं रह जाता। एक-एक घटना लिखनी पड़ती है तब वह लम्बी हो जाती है। समय अधिक ले लेती है।

युद्ध के मैदान में होने वाले गीता विषयक कृष्ण और अर्जुन के बीच के अन्तर्संवाद को जब संजय ने धृतराष्ट्र को बतलाया तो उसमें उतना ही समय लगा होगा जितना तुमको पूरी गीता पढ़ने और उसके अर्थ को समझने में लगेगा। लेकिन कृष्ण और अर्जुन के बीच कितना समय लगा होगा? इसकी कल्पना करना भी कठिन सिद्ध होगा किसी के लिए।

"दूरबोध" एक ऐसी वस्तु है जिसमें समय को कोई मूल्य नहीं। एक प्रकार से समय का अभाव ही है वहाँ। इसलिए हो सकता है युद्ध के मैदान में उपस्थित किसी को पता भी न चला हो कि कृष्ण और अर्जुन के बीच क्या घटा? क्या बातचीत हुई? कौन सा संवाद हुआ?

सब कुछ एक क्षण में हो गया हो। रथ जाकर खड़ा हुआ हो, अर्जुन निढाल होकर बैठ गया हो और एक क्षण में वह सारी बातें हो गयी हों, जो हुई है।

वेदान्त की माया और धर्म ग्रन्थ

पूरा वेदान्त दर्शन ''माया'' शब्द से भरा पड़ा है। मगर ''माया'' का मतलब तुमने कभी समझने का प्रयत्न किया?

संसार ''माया'' है। पर वह माया कैसे हो सकता है? जो है, वह माया नहीं है, लेकिन जो है, उसे समय के माध्यम से देखने से वह ''माया'' हो जाता है और जो है, उसे समय के अतिरिक्त समय का अतिक्रमण करके देखने से वह सत्य हो जाता है। ''संसार'' के माध्यम से देखा गया जो ''सत्य'' है वह ''सत्य'', समय शून्य माध्यम से देखा गया ''संसार'' है। कहने की आवश्यकता नहीं, वेद से लेकर कुरान और बाइबिल तक जितने भी धर्म ग्रन्थ हैं वे सब इसी प्रकार दूरबोध अथवा अन्तर्संवाद के द्वारा ही इस संसार में अवतरित हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं।

निर्विकल्प अवस्था प्राप्त एक योगी

क्या आपकी दृष्टि में कोई निर्विकल्प अवस्था प्राप्त योगी हैं- मैंने प्रश्न किया।''

हाँ क्यों नहीं हैं। पद्मगन्धा ने कहा- इसी कर्ण प्रयाग में ही हैं। वह जो सामने पर्वत है न, उसी में एक गुफा है। उस गुफा से अभी तक कोई परिचित नहीं है। उसी में एक ऐसे योगी गुप्त भाव से निर्विकल्प समाधि में लीन हैं।

यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे।

क्या मैं उनका दर्शन लाभ कर सकता हूँ?

मेरा प्रश्न सुनकर पहले तो पद्मगंधा कुछ क्षण मौन रही फिर बोली सम्भव है, चलना मेरे साथ। कल मैं वहाँ जाने वाली हूँ।

दूसरे दिन दोपहर के समय लगभग तीन मील पैदल चलने के बाद पहुँचा मैं उस गुफा के द्वार पर। वह द्वार क्या था एक बड़ा सा सुराक था जिसमें थोड़ा झुक कर जाया जा सकता था। किसी प्रकार भीतर गया मैं। काफी अँधेरा था वहाँ। गुफा का रास्ता थोड़ा सँकरा था। पद्मगंधा के साथ किसी प्रकार धीरे-धीरे उस अँधेरे में आगे बढ़ता गया। थोड़ी दूर जाने के बाद मुझे एक चौड़ा स्थान मिला, जहाँ दुधिया प्रकाश फैल रहा था। वह प्रकाश कहाँ से आ रहा था, यह समझ में नहीं आया मेरे। उस चौड़े स्थान पर पहुँचते ही मेरी प्राण शक्ति अचानक बढ़ गयी और अपने आप में एक विचित्र सी अनुभूति होने लगी मुझे। वह अनुभूति कैसी थी, यह नहीं बतला सकता मैं। थोड़ा आगे बढ़ने पर मुझे एक पत्थर का चबूतरा दिखलायी दिया। काफी ऊँचा था वह चबूतरा। जिस पर एक महात्मा

पद्मासन की मुद्रा में बैठे हुए थे। उनके सिर पर न जटा थी, और न तो दाढ़ी मूँछ ही थी। सब कुछ सफाचट था। पूरा शरीर ढाँचा मात्र था। एक-एक हड्डी साफ दिखालायी दे रही थी। शरीर में कही कोई स्पन्दन नहीं था। लगता था जैसे कोई पाषाण की मूर्ति पद्मासन की मुद्रा में बैठी हुई हो। लेकिन पूरा मुख मण्डल तेजोमय था। मुख के चारों ओर वर्तुलाकार एक सुनहरा प्रकाश पुंज फैला हुआ था।

पद्मगन्धा ने बतलाया यही हैं निर्विकल्प समाधि में लीन वह योगी। पिछले साठ सत्तर वर्षो से मैं इन्हें इसी प्रकार और इसी मुद्रा में बैठे हुए देख रही हूँ। एक बात है, वह यह कि योगी की पार्थिव काया यहाँ है अवश्य लेकिन उसकी आत्मा नहीं। किसी लोक-लोकान्तर में भ्रमण कर रही होगी वह।

यह सुनहरा प्रकाश पुंज कैसा है?

यह योगी का प्रभा मण्डल है। सविकल्प समाधि की तरह निर्विकल्प समाधि की अवस्था में भी मस्तिष्क से अल्फा तरंगे निकलती हैं। तुम इस वातावरण में जो धवल प्रकाश देख रहे हो न वह उन्हीं तरंगों का परिणाम है।

विज्ञान की दृष्टि में प्रभा मण्डल

काफी देर तक निहारता में उस परम योगी के शान्त और निर्विकार मुख मण्डल की ओर। आश्चर्य चकित था मैं। सभी धर्म ग्रन्थों ने दिव्य पुरुषों और देवताओं का वर्णन करते समय उनके प्रभा मण्डल का भी उल्लेख किया है। देवी-देवताओं और दिव्य पुरुषों के चित्रों में भी प्राय: उनके चेहरे के पीछे दीप्ति चक्र के रूप में प्रभा मण्डल दिखलायी पड़ता है। लेकिन सपने में भी मैंने कल्पना नहीं की थी कि कभी प्रत्यक्ष रूप में भी वह प्रभा मण्डल देखने को मिलेगा मुझे। कहने की आवश्यकता नहीं। बाद में मैंने वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टिकोण से प्रभामण्डल पर खोज कार्य किया और उस खोज का जो परिणाम सामने आया उसको संक्षिप्त रूप में यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ-

प्रारम्भ में यह कहना असंगत न होगा कि अभी तक प्रभा मण्डल को देवी-देवताओं, महापुरुषों और सन्त महात्माओं के दिव्य चरित्र की एक काल्पनिक विशेषता तथा प्रतीक के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है लेकिन पिछले दस पन्द्रह वर्षों के भीतर प्रभा मण्डल पर जो वैज्ञानिक प्रयोग किए गए हैं उसके फलस्वरूप जो तथ्य सामने आये हैं, उनसे प्रतीत होता है कि यह प्रभामण्डल एक वैज्ञानिक तथ्य है।

प्रभामण्डल पर मेरी खोज शुरू होती है सन् १९५० ई० से। उन दिनों काशी के हनुमान घाट मुहल्ले में एक महात्मा निवास करते थे। नाम था स्वामी पूर्ण

गिरि। सत्संग की दृष्टि से कभी कदा उनके निवास पर चला जाया करता था मैं। वे मुझे शास्त्र मर्मज्ञ अधिक प्रतीत होते थे। साधना में भी उनकी गति है इस पर कभी ध्यान नहीं दिया मैंने। और न तो कभी इस संबंध में उनसे चर्चा ही की। दो-एक बात पर अवश्य ध्यान दिया था मैंने वह यह कि रात्रि के नौ बजे के बाद वे अपने निकट किसी को भी रहने नहीं देते थे। किसी न किसी बहाने लोगों को भगा दिया करते थे महाशय।

एक बार मैं न जाने किस भावना से प्रेरित होकर रात्रि में चला गया उनके यहाँ। उस समय शायद ग्यारह बजे होंगे। चारों तरफ सन्नाटा था। मैं धीरे-धीरे चलकर कोठरी के सामने पहुँचा। देखा भीतर से दरवाजा बन्द था। मुझे उस समय इस बात का ख्याल ही नहीं था कि गिरि महाशय नौ बजे के बाद किसी से नहीं मिलते। शायद दरवाजा भीतर से बन्द नहीं था। मेरे धक्का देते ही वह चीं-चीं की आवाज करता हुआ खुल गया। और उसके खुलते ही एक जोर का धक्का लगा मुझे। रोम रोम झनझना उठा मेरा। फिर मैंने सामने जो दृश्य देखा, उसने स्तब्ध कर दिया मुझे एकबारगी। कौतूहल और आश्चर्य के मिले-जुले भाव से भर गया मेरा मन।

सामने अपने आसन पर पद्मासन की मुद्रा में बैठे थे ध्यानस्थ गिरि महाशय। और उनके पूरे शरीर के चारों ओर लगभग एक फुट के फासले पर गहरे नीले रंग की दीप्ति चक्र मन्द गति से घूम रहा था। उसमें से प्रस्फुटित होने वाली रश्मियाँ इतनी प्रखर थीं कि उन पर आँखें ठहर नहीं पाती थीं। बार-बार चुंधिया जाती थीं। अधिक समय रुका न गया वहाँ मुझसे। दरवाजा धीरे से उढ़का कर वापस लौट आया मैं। गिरि महाशय केवल शास्त्रज्ञ और विद्वान् ही नहीं उच्च कोटि के साधक भी हैं यह समझते देर न लगी मुझे। इसे संयोग ही कहा जायेगा कि उस दिन दरवाजा भीतर से बंद नहीं था, वर्ना वह दुर्लभ दृश्य देखने को न मिलता मुझे कभी।

अपनी खोज में मुझे इस घटना से काफी प्रेरणा मिली। सर्वप्रथम मैंने इस दिशा में वैज्ञानिकों के विचारों को जानना समझना चाहा। सन् १९५३ में नोबल पुरस्कार विजेता आणविक वैज्ञानिक डॉ. हैरल्ड सी. उरे के नेतृत्व में अनेक वैज्ञानिक प्रयोग किए गए यह जानने के लिए कि आदि काल सें पृथ्वी पर अकार्बनिक पदार्थ और कार्बनिक पदार्थ कैसे बन जाते हैं? इन प्रयोगों से पता चला कि एमिनो एसिड के परमाणुओं में जीवन के चार तत्वों कार्बन, आक्सीजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन की विद्युत शक्ति का संचय इतना जोड़ का है कि वे सदा अचल अटल रहते हैं। डॉ. हैरल्ड सी. उरे का अनुमान था कि आदि काल में पृथ्वी के वायु मण्डल में आक्सीजन के स्थान पर अमोनिया, मिथेन, हाइड्रोजन

और पानी का प्राचुर्य था। उनके निर्देशन में उनके शिष्य डॉ० स्टेनले मिलर ने इन पदार्थों को एक जार में मिलाकर उसमें विद्युत शक्ति प्रवाहित की। कई बार विद्युत शक्ति का संचारण करने के बाद उन्होंने पाया कि उन पदार्थो ने एमीनो एसिड का रूप ले लिया है। प्रयोगों की समाप्ति पर डॉ. उरे ने घोषणा की कि पृथ्वी पर जीवन्तता सबसे पहली बार सौदामिनी वायुमण्डलीय बिजली के रूप में प्रकट हुई होगी। यही कारण है कि पृथ्वी पर रहने वाले सब जीवित प्राणियों के समान आदमी का भी अपना विद्युत क्षेत्र है। इन प्रयोगों के आधार पर अमरीका के डॉ. हेरल्ड एस. वर और डॉ. एफ. एस. सी. नार्थरोप ने जीवन के विद्युत्वैगिक सिद्धान्त का विकास किया। उनका तर्क था कि चूँकि निर्जीव पदार्थ की कण को क्षेत्र भौतिकी के सम्पूरणन की आवश्यकता होती है, इसलिए कार्बनिक पदार्थ के बारे में भी यही नियम लागू होता है। इसलिए अणु और परमाणु द्वारा संरचित प्रत्येक जीवित संघटनायें जहाँ पेचिदे रासायनिक व्यवहार सदा होते रहते हैं, वहाँ ऐसी किसी शक्ति का होना अनिवार्य है, जो कणों को सुव्यवस्थित रूप से रख सके तथा उन्हें निर्देशित कर सके। यह शक्ति एक मात्र विद्युत शक्ति ही हो सकती है।

सन् १६३५ में डॉ० वरने, डॉ० सी०टी० लेत और डॉ० एल०एफ० निम्स के सहयोग से अति संवेदनशील माइक्रोवोल्ट मीटर का निर्माण किया। यह माइक्रोवोल्ट मीटर प्रत्येक जीव के अन्दर मौजूद विद्युत की एक वोल्ट के दस लाखवें भाग की मात्र तक का अंकन कर सकता है। इस यंत्र की सहायता से आदमी तथा अन्य जीवों पर जो प्रयोग किए गए, उनसे यह प्रमाणित हो गया कि प्रत्येक जीव में विद्युत क्षेत्र मौजूद रहता है। पर इसकी मात्रा बराबर बदलती रहती है।

प्रयोगों से यह भी पता चला कि आन्तरिक (जैविक) और बाह्य (संसृति विज्ञान संबंधी) घटनाओं के परिणाम स्वरूप विद्युत क्षेत्र की शक्ति और चुम्बकीयता बदलती रहती है। ये परिवर्तन पहली बार वृक्षों पर वैज्ञानिक प्रयोग करके पाये गये। इसके बाद में ये प्रयोग ४३० व्यक्तियों पर किए गए। इन प्रयोगों के परिणामों ने अनेक अचिन्तनीय सम्भावनाओं के द्वार खोले, अनेक अन्धविश्वासों को वैज्ञानिक आधार मिला।

सम्मोहन कैसे होता है?

सन् १६५८ में येल विश्व विद्यालय के स्नायुरोग विशेषज्ञ डॉ० राबिदे ने 'अमेरिकन सोसायटी आफ क्लिनिकल हिप्नोसिस' की वार्षिक सभा में बताया कि प्रयोगों से उन्होंने यह मालूम किया कि सम्मोहन जिसे एक मानसिक प्रक्रिया

माना जाता है, वास्तव में स्नायविक परिवर्तन है। जो मस्तिष्क के कुछ केन्द्रों में विद्युतीय तरंगों के आधिक्य के कारण होता है। इसके विपरीत मस्तिष्क के एक अन्य केन्द्र "नियोकोर्टक्स" में, जिसका संबंध तर्क निर्णय, कामना शक्ति और विवेक से है, सक्रियता बहुत अधिक बढ़ जाती है। स्वाभाविक निद्रा की स्थिति में मस्तिष्क के ये दोनों केन्द्र भी सो जाते हैं। सम्मोहन में "नियोकोर्टेक्स" केन्द्र जागता रहता है तथा अन्य केन्द्र सो जाते हैं। डॉ० राबिदे का मत है कि सम्मोहन में स्वप्नावस्था की भाँति मस्तिष्क के कुछ केन्द्र जो उसके डायनमो का काम करते हैं, काफी सीमा तक निष्क्रिय हो जाते हैं और मस्तिष्क की विद्युत शक्ति उन केन्द्रों की ओर प्रवाहित हो जाती है जिनका संबंध उन चमत्कारों से है जो सम्मोहन की अवस्था में दिखाई देते हैं।

साधारणतया मस्तिष्क में विद्युत तरंग जब बढ़ जाता है तो तनाव भी बढ़ जाता है और उद्‌वेग भी। इसके विपरीत, इस प्रवाह के कम होने पर आदमी काफी शान्त और शिथिल हो जाता है। इस प्रकार यह वैज्ञानिक तथ्य है कि आदमी की भावनाएँ और उसका आचरण उसके मस्तिष्क के विद्युत क्षेत्र की तीव्रता या शिथिलता पर निर्भर करता है।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि आदमी सदा अनेकानेक अदृश्य शक्तियों, जिसमें विद्युत शक्ति भी है के स्पन्दी सागर में तैरता रहता है और उसके शरीर के अनेक अंग रिसिवरों और ट्रान्सफार्मरों की भूमिका अदा करके इन शक्तियों को अपने सामर्थ्य और अपनी आवश्यकता के अनुसार ग्रहण करते रहते हैं। जीवन के विद्युत वैगिक सिद्धान्त के अनुसार सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त विद्युत् क्षेत्र सब जीवों को प्रभावित करता है और जीवन इस विद्युत क्षेत्र से प्रभावित होते हुए स्वयं भी उसे प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक जीव प्रत्येक मानव सारे ब्रह्माण्ड से इस विद्युत क्षेत्र के माध्यम से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार वह पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र और उसके माध्यम से सूर्य, चन्द्र और अन्य ग्रहों के विद्युत क्षेत्र से भी संबंधित है। हम सब ब्रह्माण्ड के ही अंग हैं और उसके उतार-चढ़ावों से प्रभावित होते रहते हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि हम सब मात्र यांत्रिक कठपुतलियाँ हैं। हम सब की इस प्रभाव से प्रतिक्रियायें स्वभावानुसार अलग-अलग रहती हैं।

प्रभा मण्डल यानी विद्युत क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन

सोवियत यूनियन के १९६२ में प्रकाशित १४५ वें अंक में एक लेख के अनुसार सभी वैज्ञानिकों ने कुछ लोगों के चेहरे के पीछे दिखाई देने वाले प्रभा

मण्डल के बारे में प्रयोग कर के यह दावा किया कि वे उस प्रभामण्डल के छाया चित्र खींचने में भी सफल हो गये हैं, जो दिखाई नहीं देते। वे अमरीकी वैंज्ञानिकों के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि प्रभामण्डल की पीछे मनुष्य के विद्युत क्षेत्र में होने वाले नाना परिवर्तन ही हैं। उनका कहना है कि यदि ज्ञात दिशा में और शोध कार्य किया जाय तो जीवन के रहस्य की कुंजी का भी पता लग सकता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसकी पृष्ठभूमि में आइये प्रभामण्डल के कुछ उदाहरणों पर विचार करें, जो पिछले कुछ वषों में वैज्ञानिकों के सामने आये हैं।

जुलाई १६०५ में प्रकाशित 'एनालॉजीइन सांइसेज साइकिक्स' में उसके लेखक डॉ० चार्ल्स फोर ने लिखा है कि एक बार उन्होंने दो महिलाओं के सिर के पीछे नारंगी रंग का एक प्रभामण्डल देखा था जो दो घंटों तक रहा। दोनों महिलाएँ स्नायविक रोगों से पीड़ित थी तथा उस समय सोने की गोलियों के प्रभाव में थी।

१६३४ में इटली के पिरानो नामक स्थान के एक अस्पताल में अन्नामोनारो नाम की एक महिला के वक्षों के पीछे हल्कें नीले रंग का दीप्ति चक्र देखा गया जो काफी देर तक झिलमिलाता रहता था। जिस समय वह दिखाई देता था उस समय वह महिला सोयी हुई रहती थी और उसका सारा शरीर पसीने से भींग उठता था। साँस तेजी से चलने लगती थी। और दिल की धड़कन भी बढ़ जाती थी। इस संबंध में वैज्ञानिकों के दल के अनुसार इस दीप्ति चक्र के मूल में था वह विद्युत चुम्बकीय विकिरण जो महिला की त्वचा में पाये जाने वाले कुछ मिश्रणों के पारस्परिक प्रभाव से उत्पन्न हुआ था। एक अन्य वैज्ञानिक हरवर्ट थर्स्टन ने अपने 'फिजिकल फेनामेना आफ मिस्टिसिज्म' में ऐसे रोमन कैथोलिक सन्तों का वर्णन किया है जिनके लम्बे अर्से तक उपवास करने के कारण उनके चेहरे के पीछे प्रभामण्डल के दर्शन होने लगते थे। उनका कहना था है कि दीर्घ काल तक व्रत उपवास करने के बाद शरीर में सल्फाइडों; का प्राचुर्य हो जाता है जो प्रभामण्डल का कारण बनता है। अन्ना मोनारो की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है- अस्पताल में भर्ती होने के पहले अन्नाने कई दिनों तक उपवास किया था। उसके रक्त की प्रकृति 'अल्ट्रावायलेट' होने के कारण उसकी विद्युत चुम्बकीय तरंग भेजने की शक्ति साधरण से तीन गुना अधिक थी और इस शक्ति ने उसके शरीर के सल्फाइडों को साधारण रूप से विकसित और उत्तेजित कर दिया था। यही उत्तेजक दीप्ति चक्र के रूप में प्रकट होता था।

थर्स्टर्न ने जो धर्मोपदेशक भी हैं और रोमन कैथोलिक सन्तों का बहुत आदर करते हैं- कहा है कि उनके तेजस्वी और ज्योतिर्मय होने का जैविक कारण यही

है। इन वैज्ञानिक अनुसंधानो और व्याख्याओं की पृष्ठभूमि में यह भी समझा जा सकता है कि उपवास, हठयोग प्राणायाम तथा दैहिक साधनाओं अपना अधिकांश समय व्यतीत करने वाले दिव्य पुरुषों और पौराणिक देवताओं के प्रभा मण्डल का रहस्य यही था।

योगियों के चमत्कार

अमरीका में अन्तरिक्ष चिकित्सा अनुसंधान के प्रवर्तक डॉ० टांबी ने "लाइफ" के २ अक्टूबर १९६४ के अंक में विज्ञान लेखक अल्बर्ट को दी गयी एक भेंट में कहा कि "वैज्ञानिकों के सामने ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण आये हैं जो दृश्य अथवा अदृश्य प्रभामण्डलों से शोभित रहते हैं। उनके इस अलौकिक सामर्थ्य के पीछे कोई आत्मिक अथवा आध्यात्मिक रहस्य नहीं है। ये लोग अपने शरीर के विद्युतीय और चुम्बकीय विकास को कुछ क्रियाओं द्वारा असाधारण स्तर पर ले जाते हैं।" पहली बार विज्ञान ने इन चमत्कारों के रहस्य को वैज्ञानिक परीक्षण द्वारा जानने में रुचि दिखाई है और खुले दिमाग से यह परीक्षण आरम्भ किया है।

भेंट में आगे चलकर डॉ० टांबी ने चरम तापमानों में हिमालय में रहने वाले भारतीय योगियों और तिब्बत के लामाओं पर वैज्ञानिक प्रयोग करने की सलाह दी है। ताकि भावी अन्तरिक्ष यात्रियों को शीत निष्क्रिय करके उनकी दीर्घ और उबा देने वाली अन्तरिक्ष यात्राओं को भार रहित और सुखदायक बनाया जा सके।

ऐसे ही प्रयोग सोवियत रूस में भी पिछले बीस वर्षों से चल रहे हैं।

कुण्डलिनी और शक्तिपात में वैज्ञानिक दृष्टि

१९६३ में सोवियत रूस से लौटने के बाद शिकागो ट्रिब्यून के प्रतिनिधि नार्भा ने रहस्योद्घाटन किया कि रूसी वैज्ञानिक बड़े पैमाने पर अतीन्द्रिय बोध क्षमता पर जिसे वे जैविक-रेडियो संप्रेषण कह कर पुकारते हैं, प्रयोग कर रहे हैं। ताकि उनके शारीरिक और मानसिक निग्रह के स्वरूप और उसके दूरगामी प्रभावों का विधिवत वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सके। इन प्रयोगों ने "साइकोकाइनेसिस" या "टेलिकाइनेसिस" नामक विज्ञान की शाखा को जन्म दिया है। जिसके अनुसार मानसिक एकाग्रता के बल पर किसी भी अचल पदार्थ को चलायमान किया जा सकता है। परामनोविज्ञान के जन्मदाता डॉ० राइन के सहयोग से डॉ० कोनायक नामक वैज्ञानिक ने जो मनन चिन्तन किया उससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि योगी जिस कुण्डलिनी को जाग्रत करने का प्रयत्न करते हैं, वह सम्भवतः जीवन

विद्युत ही है। इस निष्कर्ष को वैज्ञानिक समर्थन देने के उद्देश्य से उन्होंने विधिवत योग की दीक्षा ली और कई सप्ताह तक निर्जल उपवास, प्राणायाम और यौगिक आसन करने के बाद अपनी आन्तरिक शुद्धि की और इस प्रकार सारे शरीर के रक्त प्रवाह को साधारण से अधिक आक्सीजन प्रदान किया।

कई सप्ताह बाद डाक्टर को सहसा अपने सारे शरीर में शक्तिशाली विद्युत तरंग का झटका अनुभव हुआ। डॉक्टर कहते हैं- मैं अपनी स्नायुओं में विद्युत शक्ति के प्राचुर्य का अनुभव कर सकता था। ... और जब कुछ दिनों के अभ्यास के बाद मैं इस शक्ति को इच्छानुसार प्रवृत्त करने और दिशा देने में सफल हो गया तो अपने से कुछ फीट की दूरी पर रखे हुए एक वजनी सन्दूक को तीन-चार फीट तक इधर-उधर कर सकता था। मेरे चेहरे पर उस समय एक असाधारण तेज था और थी आभा।

वैज्ञानिकों को अब यह विश्वास होता जा रहा है कि उपवास, प्राणायाम, ध्यान और समाधि आदि से मन और शरीर को शिथिल करके उसका विद्युतीय उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। अपने विद्युत क्षेत्र का प्रभाव बढ़ाकर ज्योतिर्मय और प्रभामण्डल युक्त तो बनाया ही जा सकता है, इसके अतिरिक्त अलौकिक मानसिक शक्ति का जिनका संबंध परामनोविज्ञान से है, स्वामी भी बनाया जा सकता है।

एक सन्त के विचार

उन दिनों काशी में एक महात्मा रहते थे। नाम था रामेश्वरानन्द बाबा। उन्हें लोग सन्त कहते थे। वास्तव में बाबा सन्त थे। निर्विकार, विरक्त और निस्पृह। सुना था बाबा कभी ब्रिटिश सेना में कोई अधिकारी थे। किसी कारणवश नौकरी छोड़कर हिमालय की ओर चले गये और जब वापस लौटे तो उनका भीतर-बाहर सब कुछ बदल चुका था तन भी, मन भी और आत्मा भी। चेहरे पर एक विशेष प्रकार की आभा फूट आयी थी। पूर्ण सन्त हो गये थे रामेश्वरानन्द बाबा। मेरे प्रति उनका विशेष लगाव था। एक दिन मैंने अपने खोज और उपलब्धि की चर्चा की। पहले तो बाबा मुस्कराये फिर बोले- मनुष्य के लिए प्रकृति की अनेक लीलाएँ रहस्यमय हैं। अनबूझ हैं। भौतिक जगत अथवा ब्रह्माण्ड विलक्षण घटनाओं से परिपूर्ण है। सच पूछा जाय तो हमारा यह विश्व न केवल कल्पित कथानकों से भी अधिक विलक्षण है बल्कि हमारी कल्पना शक्ति की क्षमताओं से भी कहीं अधिक विलक्षण है। प्रकृति में ही सब कुछ विद्यमान है। यह पार्थिव जगत विराट प्रकृति की ही एक अल्पांश है। इस पार्थिव जगत में जितनी भी रोमांचक विलक्षण

या अनबूझ घटनायें हैं, सब का संबंध प्रकृति से है, और भूत द्रव्य के व्यापारों से है। मानव बुद्धि के लिए रहस्यमय या विलक्षण प्रतीत होने वाली अनेकानेक घटनाओं के समाधान प्रकृति के परे जाकर किसी काल्पनिक जगत में खोजने की जरूरत नहीं है।

अब प्रश्न है- "क्या प्रकृति के ये तमाम रहस्य मानव के लिए बुद्धिगम्य हैं? दर्शन के इस मूलभूत प्रश्न को वैदिक चिन्तकों ने भी उठाया था विश्व कीं उत्पत्ति के बारे में कोई कुछ नहीं जानता। देवता भी बाद में हुए इसलिए कोई नहीं जानता और यदि कोई जानता है तो हमें आकर बताए।"

लेकिन बाबा मैंने कहा प्रकृति के रहस्य निश्चय ही बुद्धिगम्य हैं। तथ्य की साक्षी है। अतीत में जो अनेक प्राकृतिक घटनायें बुद्धिगम्य नहीं थीं - वे अब हस्तामलक की तरह स्पष्ट हैं। आज जो घटनायें हमारे लिए रहस्यमय हैं या हमें अलौकिक प्रतीत होती हैं, उन्हें देर-सबेर मानव बुद्धि निश्चय ही सुलझाने में समर्थ होगी।

विज्ञान का सरोकार भौतिक जगत से है। अध्यात्म क्या है इस प्रश्न का उत्तर भी वह भौतिक सीमा में ही खोजता है। लेकिन विज्ञान यह दावा नहीं करता कि उसने प्रकृति के सारे रहस्यों को जान लिया है। विज्ञान ने प्रकृति की अनेक गुत्थियाँ सुलझाई हैं। परन्तु अभी भी अनबूझ रहस्यों का विस्तार बहुत बड़ा है। ऐसी ही कुछ अनबूझ घटनाओं पर अलौकिकता का आरोपण किया जाता है और प्राय: कहा जाता है- विज्ञान के पास इनका कोई समाधान नहीं है। विज्ञान अपूर्ण है। कुछ लोग तो प्रकृति के अनुकूल रहस्यों के इतने अभिभूत हैं कि समूचे विज्ञान को ही नकारने लग जाते हैं।

आध्यात्म क्या है ?

थोड़ा रुककर कुछ सोचते हुए बाबा आगे बोले- तुमने विज्ञान की भाषा और उसके शब्दों में जो कुछ मुझे बतलाया वह सब अपने स्थान पर सही है। मगर एक बात मत भूलो कि विज्ञान आध्यात्म को मात्र कोरी कल्पना समझता है। वह यह नहीं जानता कि जिस सत्य की खोज में वह पागल है। वह आध्यात्म ही है। उसे यह नहीं मालूम कि आत्मा और उससे संबंधित जितने भी विषय हैं, उसी का नाम "आध्यात्म" है जिसे विज्ञान जैविक विद्युत शक्ति (बायो इलेक्ट्रिसिटी) कहता है, वह वास्तव में आत्म शक्ति है। आत्मा स्वयं अपने आप में विद्युत का एक विशाल भण्डार है। प्राण शक्ति, विचार शक्ति, मनः शक्ति-मानसिक शक्ति आदि जितनी भी शक्तियाँ हैं, वे सब की सब उसी विद्युत

के विभिन्न रूप हैं। विज्ञान के सभी क्षेत्र में विद्युत शक्ति का साम्राज्य है लेकिन विद्युत है क्या? इसका उत्तर आज भी वैज्ञानिकों के पास नहीं है। वास्तव में "विद्युत" अपने आप में एक रहस्यमयी पहेली है। जिसे कभी भी सुलझाया नहीं जा सकता।

शरीर और आत्मा

शरीर और आत्मा जैसी दो वस्तुएं नहीं हैं। आत्मा का जो छोर दिखाई पड़ता है- वह शरीर है। और शरीर का जो छोर दिखायी नहीं पड़ता- वह आत्मा है। इसी प्रकार परमात्मा और संसार जैसी भी दो चीजें नहीं है। परमात्मा औ प्रकृति जैसा द्वन्द्व नहीं है कहीं। परमात्मा का जो हिस्सा दृश्य हो गया है वह प्रकृति है और जो अब भी अदृश्य है वह परमात्मा है। कहीं भी कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ प्रकृति समाप्त होती है और परमात्मा शुरू होता है। प्रकृति ही लीन होते-होते परमात्मा बन जाती है। परमात्मा ही प्रकट होते-होते प्रकृति बन जाता है। अद्वैत का यही अर्थ है और यदि इस अद्वैत की धारणा हमारे सामने स्पष्ट हो जाय और उसकी प्रतीति हो जाय तो आध्यात्म को समझा जा सकता है।

प्राण शक्ति

प्राण शक्ति को छोड़ कर अन्य सभी शक्तियाँ स्थिर शक्तियाँ है। गति नहीं है उनमें। गति केवल प्राण शक्ति में है। जहाँ गति है वहाँ जीवन है। इसीलिए प्राण को जीवन कहा गया है। प्राण ही आयु है। प्राण विद्या, विश्वविद्या है। जीवन तत्व क्या है? पंचभूत प्राण और मन इन तीनों का समन्वय ही तो जीवन तत्व है। जो अपने आप में अत्यन्त रहस्यमय है। जहाँ भी जीवन है, उस स्थान को यज्ञ कहा गया है, जिसकाप्रारम्भ प्राण के श्वास प्रश्वास के स्पन्द से होता है। संसार में जहाँ भी गति है सब स्पन्दन का ही रूप है। वही प्राण है।

प्राण शक्ति सदा दो सहकारी रूपों में प्रकट होती है। जिनको धन और ऋण रूप कह सकते है। प्राण का स्वरूप स्पन्दन है यानी सिकुड़ना और फैलना। इस क्रिया से जो विद्युत उत्पन्न होती है, उसी का नाम प्राण शक्ति है। प्राण शक्ति गति शक्ति है यानी फोर्स। शरीर का संबंध प्राण से, प्राण का संबंध मन से और मन का संबंध आत्मा से है। प्राण की गति शक्ति से एक और शरीर को ओर दूसरी ओर मन को गति मिलती है। मतलब कि प्राण कि गति से दोनों शरीर भी और मन दोनों अनुप्राणित और गतिमान होते हैं। इसी के फलस्वरूप दोनों एक दूसरे से जुड़े भी रहते हैं। प्राण के निकल जाने पर दोनों का संबंध भी टूट जाता है, उसी का नाम मृत्यु है।

प्राण के कारण मन को गति मिलती है और उससे विचार को गति मिलती है और उस गति से मन, विचार, इच्छा आदि सभी में विद्युत उत्पन्न होती है। प्राण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म है। इन्द्रियों से उसे ग्रहण करना सम्भव नहीं। वही शक्ति जब स्थूल रूप में विकसित होती है तो उसे रयी या मैटर कहते हैं। दृश्यमान भौतिक जगत के मूल में यही एक मात्र तत्व है। विज्ञान जिस विद्युत शक्ति से परिचित है वह प्राण की विद्युत शक्ति की अपेक्षा बहुत ही स्थूल है और उसकी गति भी कम है। इसका कारण यह है कि विद्युत शक्ति भौतिक तत्वों के संघर्ष से उत्पन्न होती है जबकि प्राण की विद्युत शक्ति उसके स्पन्दनों के संघर्ष से उत्पन्न होती है। जैसे भौतिक विज्ञान का मूल आधार विद्युत शक्ति है, उसी प्रकार योग अथवा तंत्र विज्ञान का मूल आधार प्राण की विद्युत शक्ति है।

तुमको मालूम होना चाहिए वैदिक विज्ञान योग-विज्ञान, तंत्र विज्ञान आदि जितने भी आध्यात्म से संबंधित विज्ञान हैं उन सबके मूल में हैं मन, प्राण और वाक्। माइण्ड, लाफ, मैटर। ये तीन चीजें है। वाक् के कई पर्याय हैं, किन्तु यहाँ वाक् का मतलब "रयी" से यानी पदार्थ की मूल इकाई से है। मन, प्राण और वाक्, इन तीनों की विद्युतीय योग से एक नयी शक्ति जन्म लेती है जिसे वैदिक भाषा में वैश्वानर अग्नि कहते हैं। इस अग्नि का जो ताप है वह हमारे शरीर का ताप है। जो बराबर हर अवस्था में एक सा बना रहता है।

प्राण शक्ति का विकास और उसका परिणाम

जैसा कि मैंने बतलाया है -बाबा आगे बोले- आध्यात्मिक साधना का सर्वप्रथम लक्ष्य है- प्राण शक्ति का क्रमिक विकास। सभी के मूल में प्राण है। इसलिए प्राण की साधना प्रथम आवश्यक है।

इसके लिए क्या करना चाहिए- मैंने प्रश्न किया ?

अधिक से अधिक उपवास, फलों का आहार, रात्रि में दूध का सेवन। इन सबसे शरीर के ओज की वृद्धि होती है और प्राण वहाँ नाड़ी का शुद्धिकरण होता है।

इन्हीं सब के साथ है आसन और प्राणायाम। इन दोनों का अपना विज्ञान है। अन्त में है ध्यान। केवल आसनों से कोई विशेष लाभ नहीं, उनसे शरीर में स्फूर्ति आती है और कुछ सीमा तक रोग-व्याधि से बचा रहा जा सकता है। आसनों का संबंध प्राणयाम से अति घनिष्ठ है। प्राणायाम की किस क्रिया के साथ किस आसन का संबंध है, यह जानना अति आवश्यक है। इसी प्रकार ध्यान के विषय में भी जानना आवश्यक है।

मुख्य रूप से सोलह प्रकार के ध्यान हैं। उनकी अपनी भिन्न-भिन्न सोलह प्रकार की मुद्रायें भी हैं। और उन मुद्राओं से संबंधित सोलह प्रकार के आसन भी हैं। प्राणायाम का संबंध प्राण से और ध्यान का संबंध मन से है। जैसे प्राणायाम के लिए शुद्ध वायु मण्डल और एकान्त वास और ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। ध्यान का स्थान भी ऐसा ही होना चाहिए, जहाँ किसी प्रकार की आवाज न हो और पूरी तरह सुनसान हो। जो इन तमाम बातों से भलीभांति परिचित होते हैं, वे ही सफलता प्राप्त कर अन्त में प्राण शक्ति और मनः शक्ति से संबंधित सिद्धियों को उपलब्ध होते हैं। वे सिद्धियाँ तीन प्रकार की होती हैं- प्राणजन्य, मनोजन्य और आत्मजन्य। इनमें आत्मजन्य सिद्धि अत्यन्त दुर्लभ हैं। विरले ही किसी योगी के पास इस सिद्धि के दर्शन होते हैं। आकाश गमन, परकायाप्रवेश, जन्म जन्मान्तरों का ज्ञान, रूप परिवर्तन आदि कार्य इसी दुर्लभ सिद्धि के अन्तर्गत हैं। जड़ वस्तु को प्रभावित कर उससे अपने आदेश का पालन कराना, दूसरे को अपने अनुकूल करना, अपने शरीर पर आयु का प्रभाव न पड़ने देना, अपने को बराबर निरोग और स्वस्थ बनाये रखना, मीलों दूर बैठे लोगों की बातें सुनना, उनकी मति-गति को जानना, समझना, अपने इच्छानुकूल उनसे कार्य कराना, किसी के भी मन की बात जान लेना, अदृश्य रूप से किसी से अपने आदेश का पालन कराना, जटिल से जटिल समस्याओं का समाधान कर देना, तत्काल किसी को रोग व्याधि से मुक्ति दिला देना, बैठे ही बैठे सुदूर दृश्यों को करतलवत देखना, भविष्य में घटने वाली घटनाओं को जान लेना, सैकड़ों लोगों पर अपना प्रभाव डालकर उनको एक साथ वशीभूत कर लेना, अपना अनुयायी बना लेना, भयंकर विपत्तियों से मुक्ति दिलाना आदि कार्य प्राणजन्य और मनोजन्य सिद्धियों के अन्तर्गत हैं। इनके अतिरिक्त और भी सिद्धियाँ हैं जो समय-समय पर अपने आप आविर्भूत हो जाती हैं।

सूक्ष्म शरीर की यात्रा का विचित्र अनुभव

एक दिन अवसर देखकर संकोच भरे स्वर में मैंने बाबा से कहा- बाबा! आप सन्त हैं, महात्मा हैं और योगी भी हैं, इसमें संदेह नहीं। जिन सिद्धियों की चर्चा आपने की है उनका अनुभव तो आपको होगा ही। क्या किसी सिद्धि का दर्शन लाभ मुझे भी हो सकता है? अभी तक तो मैंने बस इन सबके बारे में केवल पढ़ा और सुना है, देखा कुछ भी नहीं है... क्या?

मेरा वाक्य पूरा न हो पाया। बाबा बीच में ही बोल पड़े- पहले तू यह बतला कि तू सिद्धि देखना चाहता है कि उसका अनुभव करना चाहता है? पता नहीं कैसे मेरे मुँह से अपने आप निकल पड़ा- अनुभव करना चाहता हूँ बाबा!

ठीक है मैं तुझे ऐसा अनुभव कराता हूँ जिससे तू एक बहुत बड़े सत्य से परिचित हो जायेगा। इतना कह कर बाबा ने मुझसे अपनी आँखों की ओर अपलक निहारने के लिए कहा। वैसा ही किया मैंने। चित्त को एकाग्र कर स्थिर दृष्टि से अपलक देखने लगा मैं बाबा की आँखों की ओर। कुछ देर तक तो कुछ नहीं हुआ लेकिन बाद में सिर भारी होने लगा। दोनों कनपटियाँ जलने लगीं। चाह कर भी पलकों को झपका नहीं पा रहा था मैं। धीरे-धीरे मुझ पर एक विचित्र सी तन्द्रा छाने लगी। और उसी के साथ चेतना शून्य भी होने लगा मैं! क्या उसे चेतना शून्य स्थिति कहा जायेगा? नहीं, भीतर से सजग और चैतन्य था। और उसी अवस्था में अपने आप में हल्कापन अनुभव करने लगा मैं। हल्केपन का वह अनुभव काफी विचित्र था। फिर कब और कैसे मैं अपने पार्थिव शरीर से अलग हो गया, पता नहीं चला मुझे। मेरा शरीर बाबा के सामने पद्मासन की मुद्रा में निर्विकार भाव से बैठा था। निर्लिप्त भाव से काफी देर तक देखता रहा मैं उसकी ओर और तभी मुझे पास ही कहीं रोने-चिल्लाने की आवाज सुनाई दी। मैं उधर चल पड़ा। शायद कोई मर गया था। समझते देर न लगी थी मुझे। मुहल्ले में एक अधेड़ उम्र के सज्जन रहते थे। नाम था बटुक शास्त्री। शास्त्री से परिचित था मैं। काफी लम्बे अर्से से बीमार थे वह। आँगन में शव रखा था। एकाएक मेरी नजर घूम गयी। एकबारगी चौक पड़ा मैं। अपने शव के निकट बटुक शास्त्री खड़े थे चुपचाप। उनके चेहरे पर आश्चर्य और कौतूहल का भाव था। मैं उनके निकट चला गया। मुझे देखकर शास्त्री जी बोले- भाई! यह सब क्या है? मेरी समझ में नहीं आ रहा है। ये लोग मुझे मरा हुआ समझ रहे हैं जबकि मैं जिन्दा हूँ।

मैंने कहा- शास्त्रीजी आप का कहना ठीक हैं। आप अपने लिए जीवित हैं लेकिन इन लोगों के लिए तो क्या पूरी दुनियाँ के लिए आप मर चुके हैं।

क्या इसी को मरना कहते हैं- शास्त्रीजी थोड़ा विषण्ण होकर बोले।

जी हाँ! मैंने कहा- अपने लिए जीवित रहना और संसार के लिए मर जाना यही मृत्यु है।

...तो क्या तुम भी मर गये हो? शास्त्रीजी ने मेरी और प्रश्नवाचक दृष्टि ऐसे देखते हुए पूछा?

नहीं मरा तो नहीं हूँ। मगर मरे हुए के समान ही समझें।

शव यात्रा शुरू हुई। मैं भी शामिल हुआ शव यात्रा में। शास्त्री जी भी मेरे साथ थे। बड़े ही आश्चर्य की बात थी। जिसकी शव यात्रा थी वह मेरे साथ था और अपनी शव यात्रा में भी शामिल था। दूसरे आश्चर्य की बात यह भी

कि मैं सभी को देख रहा था लेकिन मुझे कोई नहीं। सभी के लिए हम दोनों अदृश्य प्राणी थे।

हरिश्चन्द्र घाट का महाश्मशान। एक साथ कई लाशें जल रही थीं धूँ-धूँ कर।

काफी भीड़ थी वहाँ। लाशों के साथ आये हुए लोगों की भींड़ तो थी ही इसके अतिरिक्त एक और भीड़ थी, और वह भीड़ थी हम जैसे अदृश्य प्राणियों की।

शास्त्रीजी मूक दर्शक बने सब कुछ देख रहे थे। उनका चेहरा विषण्ण हो रहा था। मैंने उनसे धीरे से कहा- आइये चलें, लाली घाट की सीढ़ियों पर बैठे। शास्त्रीजी विषण्ण स्वर में बोले- अब मेरा क्या होगा?

जो होगा उसे ईश्वर की अनुकम्पा समझ कर आपको स्वीकार करना होगा। अपने पार्थिव शरीर के भस्म हो जाने के बाद शास्त्रीजी अपने आप में हल्केपन के साथ-साथ परम शांति का अनुभव करने लगे। बोले- मेरे मन में अब किसी भी प्रकार का लोभ-आकर्षण और मोह-माया नहीं रह गया है। अब मेरे लिये देश-समाज और परिवार का कोई मूल्य महत्व नहीं। मैं इस समय जिस स्वतंत्रता का अनुभव कर रहा हूँ, वह भौतिक जीवन में दुर्लभ ही है। अब तक मैं काफी भ्रम में था। सोचता था, मरने के बाद सब कुछ समाप्त हो जाता है। जीवन जैसा कुछ भी नहीं रहता। अब तक मैं जिसे जीवन समझता था वह एक प्रबल बंधन और घुटन के सिवाय और कुछ नहीं था। वास्तविक जीवन तो यह है जो मुझे अब उपलब्ध हुआ है। कितना आकर्षक, कितना मोहक, कितना उपयोगी है। इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। व्यर्थ ही लोग मृत्यु से भय खाते हैं।

मैं भी इस बात का अनुभव कर रहा था। हमारा स्थूल शरीर स्वयं एक बहुत बड़ी बाधा है। जैसे ही वह छूटता है, हमारा सूक्ष्म शरीर पहले से कई गुना अधिक गतिमान और सक्रिय हो जाता है। स्वयं इस बात का अनुभव कर रहा था मैं। मेरे लिए कोई भी पार्थिव वस्तु बाधक नहीं थी। मेरी गति तीव्र हो गई थी। क्षण मात्र में पच्चीसों मील की यात्रा कर सकने में समर्थ था मैं उस समय। लोगों के मन की बातों को तत्काल जान लेना मेरे लिए अति सरल था। मैंने एक बात का अनुभव किया कि लोग जैसा बाहर दिखाई पड़ते थे वैसे भीतर नहीं हैं। बाहर कुछ और भीतर कुछ और। जो परिचित लोग मर गये थे उन्हें मैं जीवितों की तरह इधर-उधर भटकते हुए देख रहा था। पहली बार मेरी समझ में आया कि वे लोग जिन्हें हम मरा हुआ समझ लेते हैं, वे वस्तुतः हमारे आस-पास

ही होते हैं। मृत बन्धु और स्वजन कुछ दिनों के लिए हमारी स्थूल दृष्टि से ओझल मात्र हो जाते हैं और हम व्यर्थ ही उनके लिए रोते-धोते हैं जबकि वे हमें देखते हैं और हमारे क्रन्दन पर आश्चर्यचकित होते हैं। वे यह नहीं जानते कि उन लोगों से उनका अब कोई भौतिक संबंध नहीं रह गया है। जितना मैंने पढ़ा और सुना था उसके अनुसार मैं समझता था कि सूक्ष्म जगत कहीं अंतरिक्ष में होगा। मगर यह भ्रम था मेरा। वास्तव में सूक्ष्म जगत पृथ्वी के बाहर कहीं नहीं बल्कि हमारे चारों तरफ ही फैला पड़ा है।

सूक्ष्म जगत में प्रवेश करने पर व्यक्ति को लगता ही नहीं कि वह मर गया है। वह उसी तरह देखता है, सुनता है, अपनी वस्तुओं को देखता है और अपने मित्रों और संबंधियों की बात-चीत को सुनता है। और आश्चर्य करता है कि लोग उसके नाम को क्यों रो रहे हैं। धीरे-धीरे वह उन बातों को समझता है जिससे उसे आभास होता है कि कुछ असामान्य घटा है। उदाहरण के लिए वह पाता है कि कमरे में रखे हुए सामान उसके लिए बाधा नहीं बन पा रहे हैं, और वह उनके आर-पार देख सकता है। जा भी सकता है। पहले से अधिक हल्का हो गया है। उसे लगता है कि वह क्षण भर में जहाँ चाहे वहाँ पहुँच सकता है।

मैंने यह भी जाना कि स्वर्ग, नर्क की धारणायें व्यर्थ और भ्रमक तथा मनगढ़न्त हैं। मृत्यु के पश्चात हमारे कर्म और विचार ही हमारे साथ रहते हैं और हम उन्हीं के अनुसार सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। कोई अन्य शक्ति या स्वर्ग-नर्क हमें सुख-दुःख नहीं देती।

हमने जो कुछ किया, जो कुछ कहा और जो कुछ सोचा- वही हमारे सामने आता है। वास्तव में धरती पर अपने जीवन काल में ही मनुष्य अपनी उस शैय्या का निर्माण स्वयं कर लेता है जिस पर उसे अन्ततः लेटना होता है।

सूक्ष्म लोक के अपने अल्प प्रवास में मैंने यह भी जाना कि इस लोक में मनुष्य की विद्या बुद्धि तथा विचार और अवधारणायें पृथ्वी लोक की तरह ही होती हैं, बल्कि पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की शक्ति यहाँ से कई गुनी अधिक बढ़ जातीर है। अगर वह पढ़ना चाहे तो सूक्ष्म लोक में वह बहुत कुछ और अधिक सरलता से और शीघ्रता से पढ़, समझ सकता है। बल्कि जो इस योग्य हैं, उन्हें वहाँ बहुत कुछ पढ़ाया लिखाया भी जा सकता है। शायद यही कारण है कि लोग जन्म से भिन्न भिन्न संस्कार और भिन्न-भिन्न विषयों में विशेष अभिरुचियाँ ले आते हैं। कोई पैदा होने के थोड़े दिन बाद ही साधु बन जाता है तो कोई डकैत। कोई गणित में गति रखता है तो कोई साहित्य में। यह सब यों ही नहीं होता। इसके पीछे सूक्ष्म लोक के शिक्षण एवं संस्कार भी होते हैं।

जो पूर्वजन्म के संस्कारों और अभिरुचियों को आधार बना कर गढ़े जाते हैं। सूक्ष्म लोक में जाते ही व्यक्ति को वह सारा शिक्षण प्रदान किया जाता है जिसकी उसे आवश्यकता है (विशेष अध्ययन के लिए पढ़ें लेखक की शोध अन्वेषण एवं अनुभव पर आधारित अनुपम कृति 'मरणोत्तर जीवन का रहस्य')।

सूक्ष्म लोक के संबंध में सारी बातें मैं कल्पना और अध्ययन के आधार पर नहीं कह रहा हूँ बल्कि मैं सब कुछ देख-सुन कर कह रहा हूँ। यही कारण है कि धर्म ग्रन्थों में इस संबंध में वर्णित विषयों पर मेरी विशेष आस्था नहीं रह गयी है। अल्पावधि में मैं सूक्ष्म जगत के जिन सत्यों से परिचित हुआ वे सत्य वास्तव में आप सबको अविश्वसनीय और मनगढंत प्रतीत होंगे।

आपको यह पढ़कर आश्चर्य होगा कि जहाँ मांस-मछली की बिक्री होती है, वहाँ मैंने ऐसे घृणित जीवों को भिनभिनाते हुए देखा है, जिन्हें लोग अपनी आँखों से देख लें तो मांसाहार ही छोड़ बैठें। मैं धार्मिक स्थलों, तीर्थो और मन्दिरों में सूक्ष्म लोक के निवासियों को भी धार्मिक अनुष्ठान और पूजा-पाठ करते हुए देखा। एक रमणीक स्थान पर स्थित एक मनोहारी सरोवर में मैंने कई देवकन्या जैसी नवयुवतियों को स्नान करते हुए भी देखा निःसन्देह वह रमणीक स्थान और वह मनोहारी सरोवर इसी धरती पर कहीं है। यह मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ। कहने की आवश्यकता नहीं, अल्प समय में ही मैंने इस प्रकार और जो कुछ देखा और समझा उन्हें लिपिबद्ध करना एक प्रकार से कठिन ही है मेरे लिए। लेकिन इसके बावजूद भी मैं यहाँ एक ऐसी घटना का वर्णन करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ जो अपन आप में अत्यन्त रहस्यमय और साथ ही अविश्वसनीय भी है। जब कभी वह घटना मुझे याद आती है तो मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठता है। कभी-कभी सोचता हूँ कि वे घटनायें और उनसे संबंधित तमाम दृश्य इसी धरती के थे या किसी और ही लोक के थे।

वह रहस्यमय रोमांचकारी दृश्य

मैं अपनेआप मे लीन और अपने आप में मग्न ऐसे स्थान पर पहुँच गया जहाँ वक्राकार रूप में एक पहाड़ी नदी बहती थी। नदी, बाढ़ पर थी और उसके दोनों किनारों के बीच से लाखों लहरें क्रुद्ध सर्पिणियों की तरह भागी जा रही थी। किनारे के अनेक पेड़ उखड़ कर उन दानवीय लहरों में बहे जा रहे थे। सुरमयी साँझ की काली स्याही अब धीरे-धीरे रात्रि के अंधकार में बदलती जा रही थी। उस सुनसान निर्जन स्थान में नदी का कर्ण कम्पी घोष बड़ा ही भयावना लग रहा था। थोड़े खुले में एक बड़ा सा पेड़ था, ऊँचा और घनी डालों और

पत्तियों से लदा हुआ। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं उसी पेड़ के नीचे बैठ गया चुपचाप।

रात बढ़ती गयी और साथ ही उसका अंधकार भी प्रगाढ़ होता गया। बारिश के कुछ छींटे पड़ें फिर बन्द हो गये। अंधेरा और बढ़ा, चाँद छिप गया। केवल तारे रह गये आकाश के स्याह पटल पर। मगर क्या रात थी वह? निर्जन प्रकृति का वह रौद्र सौंदर्य जहाँ प्रकृति को मनुष्य ने खण्डित नहीं किया था, जहाँ का सारा वन प्रान्त एक स्वर में कहाँ रहा था मैं भी निर्बन्ध हूँ। आज जब इस रात की छवि मानस पटल पर उभरती है तो मन करता है कि काश, उस स्थान पर फिर पहुँच जाता मैं।

लगभग आधी रात व्यतीत हुई थी। जब आधे दर्जन के करीब उल्लू पेड़ की डालों पर आकर बैठ गये। मैं डर गया किन्तु वह क्षणिक आवेग ही था। उल्लुओं का शायद वहाँ आवास था। पत्तों में सिर दबाये वे सो गये। हाँ! दूसरे आने वाले से अवश्य डर गया मैं। वह था चीता। यह सीधा पेड़ पर चढ़ा और मेरे ऊपर की एक शाखा पर उल्लुओं की तरह ही मौन अचल बैठ गया।

थोड़ी देर सन्नाटा रहा। अचानक एक भालू उस पेड़ के नीचे आया और इधर उधर चक्कर लगाने लगा। वह खाँसता और गुर्राता रहा। इसके बाद मैंने जो कुछ देखा उस पर आज भी विश्वास नहीं होता है। एक भीमकाय व्यक्ति वहाँ आया। काफी लम्बा था, लगभग सात फीट ऊँचा। बिल्कुल दैत्य सा लग रहा था वह। अंधेरे में मैं देख न सका कि वह बिल्कुल नग्न था या नहीं। आते ही उसने तीव्र घोष किया जो उस उफनती नदी के अट्टहास को भी भेदता हुआ क्षितिज के पार चला गया। इस हुंकार के साथ ही वहाँ दो आकृतियाँ उस वृक्ष के नीचे और प्रकट हो गयीं। दोनों ने न जाने किस भाषा में उस भीमकाय पुरुष की हुंकार का जवाब दिया। वाणी से लगा कि वे दोनों स्त्रियाँ थीं। वे नग्न थीं अथवा कुछ पहने थीं मैं देख न सका।

आते ही दोनों स्त्रियाँ उस भयंकर पुरुष के दोनों ओर खड़ी हो गयीं और वह भालू अब उस पेड़ के बजाय उस तीनों के आस-पास घूमने लगा। वे तीनों स्त्री-पुरुष पेड़ के नीचे बैठकर काफी देर तक बाते करते रहे। उनकी भाषा मेरी समझ में नहीं आयी किन्तु इतना अनुमान मैंने लगा लिया था कि वे तीनों उस पेड़ के बारे में भी कुछ कह रहे थे। अचानक वह भालू जो अभी तीनों का चक्कर लगा रहा था। आदमी के रूप में बदल गया। वह आदमी भी भीमकाय ही था फिर दोनों व्यक्तियों में भयंकर मल्ल युद्ध होने लगा। मल्ल-युद्ध समाप्त होने पर दोनों व्यक्ति हुंकार करते हुए सीधे नदी की ओर चले काफी तेजी से,

और धड़ाम से उस काल सर्पिणी नदी में कूद पड़े वे दोनों। स्त्रियाँ हँस हँस कर तालियाँ बजाने लगीं। मेरे आश्चर्य की ठिकाना न रहा।

थोड़ी देर बाद दोनों स्त्रियाँ आवेश में बाते करती हुईं न जाने कहाँ चली गयीं। मगर अचानक फिर उनकी आवाजें सुनाई देने लगीं और वे नदी के किनारे से होती हुई फिर उस पेड़ के नीचे आकर बैठ गयीं। काफी देर तक नदी के के शोर के सिवाय कहीं कोई ध्वनि सुनाई नहीं दी। बियाबान के अधिकारी वे उल्लू भी जैसे प्रगाढ़ निद्रा में सोये पड़े थे।

सहसा दूर एक अट्टहास गूँजा और उत्तर में उन दोनों स्त्रियों ने भी गला फाड़ कर आवाजें लगायीं। और ताली पीट-पीट कर नाचने लगी। वह अट्टहास बिजली की गति से निकट आता जा रहा था। मैंने चौंक कर देखा नदी में कूदने वाले वे दोनों पुरुष तेजी से पेड़ के पास चले आ रहे थे। जहाँ मैं बैठा था वहीं आकर वे दोनों ठहर गये। शायद मेरे अस्तित्व का आभास उन्हें नहीं था। दोनों ने अपने कन्धों पर से उन स्त्रियों की सहायता से धीरे-धीरे कुछ नीचे उतारे। एक स्त्री ने आग जलायी जिसकी हल्की पीली रोशनी में मैंने जो कुछ देखा उस पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। बस साँस खीचें देखता रहा। दो शव वहाँ पड़े हुए थे। एक पुरुष का था एक स्त्री का। दोनों पानी से भींगे हुए थे। दोनों ही शव दानव जैसे उन आदमियों ने अपने कंधों से उतारे थे।

चारों व्यक्ति बड़ी तत्परता से अपने-अपने काम में लग गये। एक स्त्री ने लकड़ियाँ एकत्र कर और अधिक आग जला दी। पहले से प्रकाश भी अधिक हो गया। अब चारों मिलकर स्त्री और पुरुष के शव के भीतर भरे पानी को निकालने में लग गये और जब पानी निकल गया तो एक पुरुष ने दोनों शवों पर कोई मंत्र पढ़ते हुए फूँक मारी, फिर गंभीर स्वर में किलकिारियाँ भरते हुए उन शवों के चारो तरफ घूम-घूम कर नाचने लगा। उसी समय पेड़ पर दुबका हुआ चीता धीरे-धीरे नीचे उतर कर आया और पलक झपकते एक सुन्दर पुरुष के रूप में परिवर्तित हो गया। उस सुन्दर और आकर्षक पुरुष का चेहरा भावहीन और निर्विकार था। उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें घुमाकर चारों तरफ ध्यान से देखा और फिर कोई संकेत किया जिसके फलस्वरूप वे चारों व्यक्ति दोनों शवों के चारों तरफ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर गोलाकार रूप में नृत्य करने लगे। धीरे-धीरे नृत्य की गति बढ़ने लगी। अन्त में वह ताण्डव नृत्य में बदल गयी। उस रोशनी की पृष्ठभूमि में वह विकराल नृत्याकृतियाँ ऐसी भयावह लग रही थीं कि स्वयं मृत्यु भी उसके सामने सहम जाय।

काफी देर तक वह वीभत्स नृत्य चलता रहा और वह सुदर्शन पुरुष उस नृत्य को बड़ी तल्लीनता से देखता रहा। नृत्य के बीच से ही एक स्त्री तेजी से

चलती हुई नदी की तरफ गयी और जब वह लौट कर आयी तो उसके हाथों में कुछ जंगली पौधे थे, जिनका रस दोनों शवों के मुखों में निचोड़ना शुरू किया उसकी यह क्रिया जैसे ही समाप्त हुई कि उन दोनों पुरुषों ने फिर दोनों शवों को अपने अपने कंधों पर उठा लिया। और कंधों पर उन्हें लटकाये हुए ही वे नाचने लगे। शनैः शनैः नाच की गति और स्पन्दन इतना तीव्र हो गया कि चारों तरफ नृत्य के लय के प्रचण्ड आवेग में दोनों पुरुष ही दिखलायी देने लगे। नृत्य के लय के प्रचण्ड आवेग ने दोनों को इतना विशाल बना दिया था कि जमीन से आसमान तक केवल उनकी ही व्याप्ति उनके ही अंग-प्रत्यंगों का विस्तार नजर आ रहा था। चारों दिशायें उससे अभिभूत थीं। सारे शून्य में एक निःसीम वृक्ष की भाँति उनकी आकृति छायी हुई थी।

दोनों स्त्रियाँ एकटक देखती रहीं दोनों पुरुषों की भाव भंगिमाओं को। वे बिल्कुल निश्चल बैठी थीं। इतनी अचल कि जैसे वे स्वयं दो शव हों।

काफी देर तक यही स्थिति रही। आखिर एक चीख सुनाई पड़ी उसके बाद फिर एक चीख कानों में पड़ी। वे दोनों चीखें किसी के कातर और विगलित कण्ठ से निकली थीं, ऐसा लगा मुझे। अब उन दोनों पुरुषो ने शवों को जमीन पर लिटा दिया था। सहसा दोनों शवों के मुख से एक साथ कराहने की आवाज निकलने लगी और वे अपने-अपने स्थान पर जोर-जोर से हिलने लगे। पहले वाला भीमकाय पुरुष बारी-बारी से उन शवों के मुखों में मंत्र पढ़-पढ़ कर फूँक मारने लगा। कराहट तीव्र और स्पष्ट होती जा रही थी और वे शव जीवन के आगमन की छटपटाहट से बार-बार अपने स्थान पर काँप उठते थे। उस विशालकाय व्यक्ति का मंत्रोच्चार और तीव्र होता जा रहा था। और उस भयप्रद ध्वनि से मुझे लगा कि मेरा ही नहीं समस्त जड़ चेतन के हृदय कम्पायमान थे। रात का गहन अंधकार अब धीरे-धीरे झीना होने लगा था। काली चादर भी धीरे-धीरे पारदर्शी होती जा रही थी। पेड़ों पर बैठे पक्षियों के सहमे हुए स्वर वायु मण्डल में लहराने लगे थे। वे दोनों शव अपने अंगों को बार-बार कभी जमीन पर पटकने लगते थे और कभी रह-रह कर हिलाने-डुलाने लगते थे। उस विकराल आकृति ने आसमान की तरफ देखा और विचलित भाव से दोनों स्त्रियों की तरफ इशारा किया। चारों उठ खड़े हुए और धीरे-धीरे चल कर उन पुनर्जीवित व्यक्तियों के निकट आकर चुपचाप खड़े हो गये। कुछ क्षण बाद चीता से मनुष्य बना वह सुदर्शन पुरुष भी उन नवजीवित किन्तु अचेत व्यक्तियों के पास आया और कुछ देर तक उन्हें घूर कर देखता रहा। सहसा वे दोनों पुनर्जीवित व्यक्ति अपने स्थान से उठे और जंगल की ओर भागने लगे। उनके पीछे दोनों स्त्रियों के साथ वे पुरुष भी उसी दिशा

में चले गये। मैं अपलक दृष्टि से उन सबको जाते हुए देखता रहा चुपचाप। जब वे लोग आँख से ओझल हो गये तो मैं सोचने लगा कौन थे वे लोग? कहाँ से आये थे? फिर कहाँ चले गये? जो कुछ मैंने देखा था उनकी पृष्ठभूमि में उन लोगों का उद्देश्य क्या था? अभी मैं इन सब बातों पर सोच विचार कर ही रहा था कि सहसा मुझे भीषण ताप का अनुभव हुआ और उसी के साथ मेरी बाह्य चेतना वापस लौट आयी। आँख खुली तो देखा सवेरा हो रहा था। बाबा बाहर चबूतरे पर टहल रहे थे। कहने की आवश्यकता नहीं पूरे तीस घण्टे उसी अवस्था में उसी मुद्रा में और उसी अन्तर्चेतनीय स्थिति में रहा था मैं।

जैसा कि मैंने इस प्रसंग के शुरू में कहा था- इतनी वष बाद आज भी जब उस काल रात्रि का स्मरण हो आता है तो मेरा रोम-रोम काँप उठता है। मेरा अन्तर्जीवन उस भयानक रात्रि के कितने अथाह विचित्र से मरा पड़ा था। ऐसा विचित्र जिसका हर कतरा मौत के स्पर्श से बर्फीला था जहाँ आँख भर खोलना। साक्षात् यमराज को देखना था।

जब वह बौद्ध भिक्षुणी अन्तर्ध्यान हो गयी

पूरा एक महीना हो गया था मुझे कर्ण प्रयाग आये हुए। ठंडक बढ़ने लगी थी। मेरा मन उचाट होने लगा था, अब! निश्चय ही पद्मगंधा का साधना संबंधी और साथ ही आध्यात्मिक ज्ञान अपने आप में गहन गम्भीर था किन्तु बराबर सान्निध्य में रहने के बावजूद भी उनका व्यक्तित्व मेरे लिए रहस्यमय ही बना रहा। भोजन तो वह करती ही नहीं थीं। कभी कदा दो-चार उवाला हुआ आलू नमक के साथ ले लेती थीं। या फिर दो एक गिलास बिना दूध की चाय। बस, इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं। सोते हुए तो मैंने उन्हें कभी देखा ही नहीं। कभी-कभी रात्रि में बाहर निकल जाती थीं वह और घण्टों ध्यानस्थ सी बैठी रहती थीं एकान्त में। बोलती भी बहुत कम थीं। जब कभी बोलतीं भी तो आध्यात्मिक विषयों पर ही बोलतीं। इसके अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर नहीं।

उस दिन साझ से ही हिम वर्षा होने लग गयी थी। मौसम काफी खराब हो गया था। चारों तरफ गहन अंधकार पसरा हुआ था। एक अजीब सी खिन्नता भरी उदासी छायी हुई थी वातावरण में। हिमपात के कारण ही शायद नहीं निकलीं बाहर उस रात पद्मगंधा। धर्मशाला की एक कोठरी में पदमगंधा का आसन था और उसके बगल वाली कोठरी में मैं ठहरा हुआ था। गहरी नींद में सोया था मैं। न जाने कैसे आधी रात के समय अचानक नींद खुल गयी मेरी। चौंक कर उठ बैठा मैं। बाहर पूर्ववत् हिमवर्षा हो रही थी। कुछ देर तक बिस्तर पर बैठा

रहा, फिर न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर पद्मगंधा की कोठरी की ओर बढ़ गये मेरे कदम। बाहर रात्रि का प्रगाढ़ अंधकार और काला हो गया था। कोठरी के भीतर झाँक कर देखा, आश्चर्य चकित रह गया मैं। भीतर अंधकार नहीं था। नीले रंग का हल्का-हल्का प्रकाश हो रहा था वहाँ। ध्यान से देखा मैंने। अपने आसन पर बैठी हुई थीं पद्मासन की मुद्रा में पद्मगंधा। शायद समाधीस्थ थीं वह। उनके सारे शरीर से हल्के नीले रंग का प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था और वह पूरी कोठरी में फैल रहा था। पद्मगंधा के पारदर्शक और प्रकाशमय शरीर की ओर स्तब्ध सा निहारता रहा मैं अपलक। आश्चर्य और कौतूहल से भर उठा था मेरा मन। फिर थोड़ी देर बाद मेरे देखते ही देखते पद्मगंधा का देदीप्यमान शरीर अपने स्थान पर धीरे-धीरे छोटा होने लगा और अंत में लुप्त हो गया वह। दूसरे ही क्षण पूरी कोठरी अंधकार में डूब गयी।

धर्म ग्रन्थों में ऋषियों और देवताओं के अन्तर्ध्यान होने की कथायें तो मैंने बहुत सारी पढ़ी थीं लेकिन प्रत्यक्ष रूप से कभी किसी को अपनी आँखों के सामने अन्तर्ध्यान होते हुए भी देखूँगा, इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी मैंने।

काफी पहले मैने विख्यात विज्ञान लेखक एच०जी० वेल्स का एक उपन्यास, जिसका नाम था- "द इनविजिबिल मैन" पढ़ा था। उस उपन्यास में एक ऐसे आदमी की कहानी कही गयी थी, जो अदृश्य होने में सफल हो जाता था। अदृश्य होने के ब़ाद उस आदमी पर क्या बीतती थी उसे किन-किन परेशानियों का सामना करना पड़ता था, जी हाँ, कल्पना के विपरीत अदृश्य आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता, इसका वर्णन वेल्स ने अपने इस हृदय ग्राही उपन्यास में बड़ी रोचकता से किया था। मेरी तरह कोई भी पाठक जब यह कहानी पढ़ना शुरू करता था तो उसे लगता था कि अदृश्य होकर आदमी सर्वशक्तिमान हो सकता है। वह कुछ भी कर सकता है। कहीं भी जा सकता है और कोई भी उसकी योजनाओं का विरोध नहीं कर सकता। सब उससे डरेंगे! पर वेल्स ने इस कहानी में यह दर्शाया था कि अदृश्य व्यक्ति से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं, वह बेचारा तो दया और सहानुभूति का पात्र है। एक अविस्मरणीय चरित्र की सृष्टि की है वेल्स ने अपने इस अद्वितीय उपन्यास में। उपन्यास पूरा पढ़ लेने के बाद मन में एक ऐसे अभागे आदमी की छाप अंकित रह जाती थी जिसकी अदृश्य होने की योग्यता उसके लिए एक शाप बन कर रह गयी थी।

वेल्स ने अदृश्यता के गुण को वैज्ञानिक समर्थन देने के लिए "दिक्परिवर्तित अभिसूचकों" का भी उल्लेख किया था।

इस उपन्यास ने इस प्रश्न को जन्म दिया था कि क्या आदमी अदृश्य हो सकता है किसी विधि से? और तब से अनेक वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न से जूझने

का प्रयास किया है। वैसे मनुष्य के यह प्रश्न एकदम नया नहीं हैं। सभी धर्म ग्रन्थों में देवताओं और विशिष्ट व्यक्तियों के अन्तर्ध्यान होने की कथा पढ़ने को मिलती है। क्या वे कथायें काल्पनिक हैं। या पुराने जमाने में लोग वास्तव में अन्तर्ध्यान हो जाया करते थे? यदि आधुनिक काल में भी लोगों के अदृश्य और अन्तर्ध्यान हो जाने के उदाहरण सामने न आते तो यही माना जाता कि पुरानी कथायें सब काल्पनिक हैं।

अदृश्य होने की घटनायें:

उदाहरण के रूप में यहाँ ऐसी ही दो घटनाओं का विवरण सुना रहा हूँ। यह स्पष्ट करने के लिए कि लोग आजकल भी अदृश्य हो जाते हैं। वास्तव में अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। दोनों घटनायें प्रामाणिक हैं और अनेक गणमान्य व्यक्तियों और वैज्ञानिकों ने उनकी जाँच करके इन्हें सच्चा पाया था।

पहली घटना पिछली सदी के उत्तरार्ध में घटी थी और अमेरीका के टेनेसां राज्य के गालाटिन नामक स्थान के डेविड लैंग नाम के एक धनी किसान से संबंधित है।

२३ सितम्बर १९८० की सुबह लैंग अपने नये बन रहे घर की ओर रवाना हुआ। जाने से पहले उसने अपनी पत्नी से कहा मैं पाँच दस मिनट में वापस लौट आऊँगा। ज्यादा समय नहीं लगेगा। पर अभागा लैंग कभी वापस नहीं लौटा। पाँच छ कदम ही आगे बढ़ा होगा कि सबके देखते ही देखते अन्तर्ध्यान हुआ था उसके आस-पास कोई ऐसी वस्तु, पेड़-झाड़ी या गट्ठा न था, जहाँ वह छिप सकता। इसलिए यह बात विस्मय-जनक ही थी कि लैंग कहाँ, कैसे गायब हो गया। उसकी खोज लगातार कई दिनों तक होती रही। लेकिन लैंग का कहीं पता न चला।

चूँकि लैंग एक सम्माननीय नागरिक था। इसलिए सरकार को इस मामले की बाकायदा जाँच करवानी पड़ी। जाँच करने वालों ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि लैंग किसी अज्ञात और रहस्यमयी विधि से सचमुच अन्तर्ध्यान हो गया है और उसके वापस आने की सम्भावना नहीं के बराबर है।

इस घटना के छः मास बाद एक और रहस्यमयी घटना घटी। लैंग के बड़े लड़के ने एक दिन देखा कि जिस स्थान पर उसके पिता अदृश्य हुए थे, वहाँ लगभग पन्द्रह फिट के घेरे में घास पीली पड़ गयी है। वह अपनी ग्यारह साल की बहन तारा के साथ वहाँ पहुँचा और वहाँ पहुँचते ही उन्हें कमजोर स्वर में अपने पिता की यह आर्तनाद सुनाई दी- मुझे बचाओ! मुझे बचाओ! यह आवाज क्रमशः क्षीण होती हुई अन्त में बिल्कुल बन्द हो गयी।

मनीला में सुप्रसिद्ध समाचार एजेन्सी यू०पी०आई० ने बाकायदा खोज करके एक ऐसे लड़के की कहानी प्रकाशित की थी जो बार-बार अदृश्य हो जाता था।

क्लोपा नामक १२ साल के लड़के में अदृश्य हो जाने का दौर सितम्बर १९५१ में शुरू हुआ था। एक दिन अपनी क्लास में बैठे-बैठे उसे लगा कि एक अदृश्य परी जैसी लड़की उसे अपने पास खेलने के लिए बुला रही है। उसे लगा जैसे वह सपना देख रहा है। पर वह सपना नहीं था। जैसे ही उसने उस लड़की पास जाने की इच्छा की उसे लगा कि वह एकदम हल्का और अदृश्य हो गया है और अदृश्यावस्था में उस लड़की के साथ खेल रहा है।

फिर तो यह उसका दैनिक क्रम बन गया। वह क्लास में बैठे-बैठे ही गायब हो जाता था और एक बर तो दो दिन तक गायब रहा। अन्त में एक पादरी के प्रार्थना करने पर कहीं उसके गायब होने का चक्कर समाप्त हुआ।

अन्तर्ध्यान विज्ञान की कसौटी पर

वैज्ञानिकों ने स्थान के तीन आयामों (लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई) के अलावा काल को चौथे आयाम के रूप में स्वीकार किया है, आइंस्टीन के सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार भौतिक जगत एक "संयुक्त चतुर्विस्तारीय दिक्काल जगत" है, जिसमें घटनाओं के बीच केवल एक ही अपरिवर्तनीय अन्तर होता है, और देश तथा काल में जो अलग-अलग अन्तर दिखाई पड़ते हैं, वे वास्तव में इसी अन्तर के प्रक्षेप मात्र हैं, देश-अक्ष और काल-अक्ष पर, दूसरे शब्दों में उनका मान निर्भर करता है। उस विशेष निर्देशांक-पद्धति पर, जिसके द्वारा उन्हें देखा जाये, देश और काल की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती और उसके परिणाम के बारे में बनने वाली धारणायें देखने वाले की गति और अवस्थिति पर निर्भर करती हैं। इस संदर्भ में उन अभागे व्यक्तियों के मामलों को समझने की कोशिश कीजिए जो किसी अज्ञात संयोग में "देश" और "काल" (स्पेस ऐण्ड टाइम) के "गड्ढ़ों" में पड़कर अदृश्य हो जाते हैं। या फिर ऐसे किसी आयाम में पहुँच जाते हैं जहाँ का जीवन हमारे जीवन से सर्वथा भिन्न है।

१९५७ में कैलीफोर्निया (अमरीका) विश्वविद्यालय के डॉ० राबर्ट सिरगी और उसके सहयोगियों ने एक ऐसे कम्प्यूटर का निर्माण करने का संकल्प किया था, जो चौथे आयाम के स्वभाव और स्वरूप को समझाने में सहायक हो सके। उस अवसर पर डॉक्टर सिरगी ने कहा था "हमारे बाहर जो जगत है वहाँ गतियाँ उन दिशाओं में भी हो सकती हैं, जिन्हें हम देख नहीं सकते, पर जिन्हें काल-परिवर्तन के रूप में ही जान सकते हैं। आदमी के सब वैज्ञानिक नियम

हमारे चारों ओर के वास्तविक जगत की त्रिआयामीय प्रतिच्छायें मात्र हैं, इन खण्ड और एकांगी नियमों के बल पर इस वास्तविक जगत के कार्यकलापों को समझना कठिन है।''

आइए, अब अदृश्यता के वैज्ञानिक पहलू को समझने की कोशिश करें-

आप रोज धूप को देखते हैं न। पर वैज्ञानिकों से पूछिये, तो वे कहेंगे कि धूप को कोई कभी नहीं देख सकता। उनकी भाषा में धूप सारे सौर मण्डल की वर्णक्रम (सोलर स्पेक्ट्रम) है, जो वास्तव में सूर्य द्वारा अन्तरिक्ष में की गयी तरंगों और स्फुरणों की बौछार की विस्तीर्ण पट्टी है, यदि इस पट्टी को एक सप्तक मान लिया जाय तो इस पट्टी के जो रंग हमें आँखों से दिखाई देते हैं- लाल से लेकर बैगनी तक उन्हें सप्तक के अन्दर के बीच का एक स्वरानुक्रम माना जा सकता है, अर्थात् धूप में ऐसे रंग भी मौजूद हैं, जो हमें आँखों से कभी नहीं दिखाई देते, ऐसे रंगों की संख्या १०,०००,०००,००० के करीब है।

धूप में ''इंफ्रा-रेड'' तंरगे भी होती हैं, जिन्हें हम देख तो नहीं सकते, पर अनुभव कर सकते हैं (धूप की जलन हमें इन्हीं तरंगों के कारण अनुभव होती है) आज विशेष फोटोग्राफिक फिल्मों की मदद से इंफ्रा-रेड के संसार की झाँकी ली जा सकती है। इस दुनिया में आकाश, जल काले दिखाई देते हैं और घास तथा पत्तियाँ एक दम सफेद।

चूँकि इंफ्रा-रेड तरंगे ''दूरी के धुँधलेपन'' को आसानी से काट सकती हैं। इसलिए उनका प्रयोग हवाई फोटोग्राफी में किया जाता है। पर जब इंफ्रा-रेड तरंगों की सहायता से आकाश से क्यूबा में रखे प्रक्षेपास्त्रों के फोटो खीचें गये तो सिगरेटों के जलते हुए सिरों के फोटो भी आये - वे सिगरेट, जो प्रक्षेपास्त्रों के इंजीनियरों ने पिछली रात पी थी।

अमरीका के एक व्यापारी ट्रेवर जैम्स ने विशेष इंफ्रा-रेड मूवी फिल्म (कोडक आई०आर० १३५ और का एफ० एक्स २) का प्रयोग कर, मौजावे रेगिस्तान में दिनरात आकाश और क्षितिज के फोटो लिए। उनका कैमरा था लाइका, ८४ फिल्टरवाला, जब फोटो छपकर आये, तो उनमें अनेक फोटो रेगिस्तान में उड़ने वाले अदृश्य पशु-पक्षियों के थे, ऐसे पशु-पक्षी, जो हमारी आँखें को दिखाई नहीं देते।

जैम्स का कहना है ''हमारी आँखें वर्णक्रम की अत्यन्त अल्प मात्रा ही देख पाती हैं। अणुवीक्षण यंत्र की मदद से हम लुप्त प्रायः अदृश्य-जीवाणुओं की दुनिया की गतिविधियाँ स्पष्ट देख सकते हैं। दूरबीन की मदद से हम अकल्पनीय दूरियों पर स्थित निहारिकाओं के दर्शन कर सकते हैं। ''इंफ्रा-रेड'' और ''अल्ट्रावायलेट'' फोटोग्राफी का मदद से हम एक ऐसे अदृश्य जगत में पहुँच जाते हैं, जो देश

और काल की कक्षा से बाहर स्थित है। इस अदृश्य जगत की और अधिक जानकारी अनेक रहस्यों को, जिनमें अदृश्य का रहस्य भी है, समझने में सहायक होगी।''

''अल्ट्रा-वायलेट'' फोटोग्राफी अँधेरे में भी देख सकती है। आज वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक, और परामनोवैज्ञानिक इस बारे में एकमत है कि प्रेत मानव के अभौतिक जीवन के दीर्घकरण की ही अभिव्यक्ति है और अल्ट्रा-वायलेट फोटोग्राफी की सहायता से दिखाई देने वाले प्रेत इस बात की ओर संकेत करते हैं कि अदृश्यता एक वैज्ञानिक संभावना हो सकती है।

सैद्धान्तिक रूप से, धूप की अदृश्य तरंगें हमारे शरीर, हमारे जीवन और यहाँ तक ही हमारी नियति को भी प्रभावित करती हैं और हमारे शरीर के विद्युत क्षेत्र से उनके संपर्क से अपर्वतनांक का जन्म हो सकता है, जो अदृश्यता का कारण बन सकता है।

''प्रापगेशन आफ शार्ट रेडियो बैण्ड'' नामक अपने शोध-प्रबंध में हर्बर्ट गोल्ड-स्टीन ने लिखा है कि ''वायुमण्डल में व्याप्त अपवर्तानांक-प्रवणता की पर्तों के पीछे जो दुनिया है, वह अदृश्य प्राणियों की दुनिया है। वे प्राणी जो हमें नंगी आँखों से सूक्ष्मातिसूक्ष्म यंत्रों की सहायता से भी नहीं दिखाई देते। उनकी वैज्ञानिक व्याख्या के लिए इस दिशा में और शोध कार्य होना आवश्यक है।

आइंस्टीन की यूनीफाइड फील्ड थ्योरी

अदृश्य होने के इस प्रसंग में मैं महान वैज्ञानिक आइंस्टीन की यूनीफाइड फील्ड थ्योरी की चर्चा संक्षिप्त में करूँगा।

यह सर्वविदित है कि आइंस्टीन अपने जीवन के अन्तिम अवस्था में अपने शोध और अन्वेषण को लेकर अत्यन्त चिन्तित और आशंकित हो उठे थे। उन्हें प्रतीत होने लगा था कि उनकी खोजों का प्रयोग भविष्य में मानव सभ्यता के विनाश के लिए हो सकता है। उनकी यह चिन्ता और आशंका निर्मूल नहीं थी। परमाणु बम के निर्माण में आइंस्टीन के अन्वेषणों और उनकी खोजो का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान था। उनकी जो आशंका थी उसको हिरोशिमा और नागासाकी के विनाश ने सिद्ध कर दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं आइंस्टीन महान वैज्ञानिक होने के साथ ही साथ मानवतावादी और दार्शनिक भी थे। उनके सापेक्षवाद का सिद्धान्त विज्ञान के क्षेत्र में मील का पत्थर समझा जाता है। ऐसी खोज करने वाले उस महान वैज्ञानिक का अभिमान नाम मात्र का नहीं था। वह दूरदर्शी और अत्यन्त विनम्र व्यक्ति थे। और सदैव मानवता के कल्याण और हित में ही सोचते थे।

संसार में यह बात बहुत कम ही लोगों को ज्ञात होगी कि आइंस्टीन अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रति अत्यधिक उदासीन हो गये थे। लेकिन उसके काफी पहले उन्होंने एक ऐसी आश्चर्यजनक और विस्मयकारी खोज कर ली थी जो इतिहास को बदल सकती थी। आइंस्टीन को इस बात की आशंका थी कि उनकी इस अविश्वसनीय और विस्मयकारी खोज का प्रयोग भविष्य में मानवता के अहित में होगा। इसी आशंका के कारण आइंस्टीन ने अपनी खोज को काफी लम्बे समय तक गोपनीय रखा था। सापेक्षवाद के सिद्धान्त को पीछे छोड़ती हुई आइंस्टीन की इस खोज का नाम था "यूनीफाइड फील्ड थ्योरी"।

अदृश्य होने की कल्पना मनुष्य को हर काल में रोमांचित करती होगी इसमें सन्देह नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं यदि अदृश्य होने की कोई ऐसी शक्ति मनुष्य को उपलब्ध हो गयी होती तो इतिहास की रूपरेखा ही कुछ और होती।

आइंस्टीन ने मनुष्य की उसी कल्पना को साकार करने का प्रयास किया था।

आइंस्टीन की "यूनीफाइड फील्ड थ्योरी" और कुछ नहीं "अदृश्यता का विज्ञान" था। आइंस्टीन ने ऐसी आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय खोज कर ली थी, जिससे वास्तव में ही किसी वस्तु अथवा इंसान को अदृश्य बनाया जा सकता था।

आइंस्टीन ने सोचा था कि वह अपनी इस सनसनीखेज खोज को सदा अपने तक ही सीमित रखेंगे और इंसान द्वारा उसके मत इस्तेमाल का खतरा नहीं उठायेंगे। किन्तु हालात ने उन्हें अपनी खोज का रहस्य प्रकट करने को विवश कर दिया। आइंस्टीन ने जिस विवशता से यूनीफाइड फील्ड थ्योरी नामक अपनी वैज्ञानिक खोज को अमरीकी सरकार के हवाले किया था, वह सम्भवत: हिटलर ही था। हिटलर की सेनाएँ जिस तुफानी गति से यूरोप के देशों को एक-एक कर रौंदती हुई आगे बढ़ रही थीं, उसको देखकर लगता था कि हिटलर का विश्वविजय का सपना पूरा हो जाएगा। आइंस्टीन हिटलर को मानवता के लिए सबसे बड़े खतरे के रूप में देखते थे। वह समझते थे कि हिटलर को हर कीमत पर शिकस्त दिया जाना आवश्यक था। हिटलर को युद्ध में शिकस्त देने के इरादे से ही आइंस्टीन ने अपनी सनसनीखेज खोज से अमरीकी सरकार को परिचित कराया था।

अक्टूबर १९४३ में अमरीकी अखबारों में इस प्रकार की खबरें छपी थीं कि अमरीकी नौ सेना फिलाडेल्फिया के नेवी यार्ड में गोपनीय प्रयोग कर रही है। इन गोपनीय प्रयोगों के बारे में खबरें बाद में विदेशी मीडिया ने भी प्रकाशित की थी। इन गोपनीय प्रयोगों को आम तौर पर "फिलाडेल्फिया एक्सपेरिमेन्ट" नाम दिया गया था।

फिलाडेल्फिया के नेवी यार्ड में होने वाले गोपनीय प्रयोगों के बारे में अमरीकी और दूसरे यूरोपीय देशों का मीडिया खबरें देता रहा, मगर अमरीकी सरकार और अमरीकी नौ सेना ने इस सम्बन्ध में भेदपूर्ण चुप्पी धारण किए रखी। फिलाडेल्फिया के नेवी यार्ड में गुपचुप क्या हुआ? इसके बारे में संसार को कुछ भी मालूम नहीं हुआ। फिलाडेल्फिया नेवी यार्ड में क्या कौतुक हुआ? यह बात एक ''टॉप सीक्रेट'' के रूप में अमरीकी रक्षा मंत्रालय की फाइलों एवं चन्द लोगों तक सीमित होकर रह गयी, किन्तु खोजें फिलाडेल्फिया के नेवी यार्ड में हुए गोपनीय प्रयोगों के रहस्य को जानने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहे।

गोपनीय प्रयोगों का रहस्य १९५५ में खुला था। इसको खोलने का श्रेय काफी हद तक विख्यात खगोलशास्त्री डॉक्टर मोरिस जेसप को जाता है। डॉक्टर जेसप ने रहस्यपूर्ण उड़न तश्तरियों पर महत्वपूर्ण अन्वेषण कार्य किया था। उड़न तश्तरियों पर अपनी खोजों को लेकर जेसप ने एक पुस्तक भी लिखी थी, जिसका नाम था ''द केस फार द यू.एफ.ओ.''। यह पुस्तक खूब बिकी और इसकी चर्चा भी हुई थी। जिस वर्ष १९५५ में जेसप की पुस्तक छपी, उसी वर्ष उसको डाक से कार्ल एम. एलन नामक किसी व्यक्ति का पत्र मिला। पत्र पर लिखने वाले का पता भी था, जिस पर कार्ल एम. एलन के बजाय पूरा नाम ''कार्लोस मिगुएल एलेन्डे'' लिखा था।

पत्र में लिखे हुए मजमून को पढ़कर जेसप स्तब्ध रह गया था।

पत्र लिखने वाले ने फिलाडेल्फिया के नेवी यार्ड और उससे लगते समुद्र में १९४३ में हुए गोपनीय प्रयोगों के रहस्य पर से एकाएक ही पर्दा उठा दिया था। पत्र में उन गोपनीय प्रयोगों के बारे में जो लिखा था, वह अविश्वसनीय सा था। पहले तो जेसप को लगा कि वह पत्र एक फ्राड है और उसमें लिखी कहानी कोरी गप के अलावा कुछ भी नहीं, मगर पत्र लिखने वाला तो हर बात का चश्मदीद गवाह होने का दावा कर रहा था।

फिलाडेल्फिया नेवी यार्ड और उससे लगे समुद्र में १९४३ में अमरीकी वैज्ञानिकों द्वारा किए गए गोपनीय प्रयोगों की जो कहानी कार्ल एम. एलन ने अपनी पत्र में लिखी थी, वह किसी विचित्र परिकथा से कम नहीं थी।

पत्र में लिखी कहानी के अनुसार, अमरीकी वैज्ञानिकों ने १९४३ में जो गोपनीय प्रयोग किए थे, वो एक विशाल समुद्री जहाज को उसके चालक दल के सदस्यों समेत 'अदृश्य' करने के बारे में थे। पत्र लिखनेवाले का दावा था कि प्रयोग तो सफल रहा था, किन्तु चालक दल के सदस्यों पर हुए प्रयोग के भयावह असर को देखकर वैज्ञानिक दहल गए थे।

कार्ल एम. एलन के अनुसार, जिस जहाज पर प्रयोग किया गया था, उसका नाम यू.एस. एस. एलब्रिज डी-१७३ था और वह अमरीकी नौ सेना डी-१७३ का एक विध्वंसक जहाज था।

कार्ल एम.एलन के शब्दों में "सब कुछ अद्‌भुत और अविश्वसनीय था। प्रयोग करने वाले वैज्ञानिक शक्तिशाली जेनरेटरों और दूसरे उपकरणों की सहायता से बन्दरगाह पर खड़े एक जहाज के इर्द-गिर्द तीव्र और अकल्पनीय कृत्रिम चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न कर रहे थे। यह चुम्बकीय क्षेत्र कम से कम एक सौ मीटर व्यास तक का था। जैसे ही वैज्ञानिकों को अपने प्रयोग में प्रारम्भिक सफलता मिलनी शुरू हुई, हरे रंग का एक कोहरा-सा जहाज के चारों तरफ फैलने लगा। इसके बाद जो हुआ, वह अविश्वसनीय था। बन्दरगाह पर खड़ा जहाज आहिस्ता-आहिस्ता आँखों से ओझल होने लगा। जहाज तो अदृश्य हो ही रहा था, उसके साथ-साथ उसके चालक दल के सदस्य भी गायब हो रहे थे। कुछ ही देर में जहाज हरे रंग के कोहरे में पूर्णत: अदृश्य हो गया। अब समुद्र में उसकी उपस्थिति का एहसास टूटती-बनती लहरों से ही हो रहा था।"

कार्ल एम.एलन के अनुसार वह अदृश्य हुआ जहाज कुछ समय बाद नजदीक के एक अन्य बन्दरगाह पर दोबारा प्रकट हुआ था। लेकिन प्रयोग में जुटे वैज्ञानिक अपनी कामयाबी का जश्न नहीं मना सके थे। इसकी वजह यह थी कि जहाँ तक जहाज को अदृश्य बनाने का सम्बन्ध था, प्रयोग को एकदम सफल माना जा सकता, किन्तु जहाँ तक जहाज पर सवार इंसानों की अदृश्यता का सवाल था, प्रयोग सफल होते हुए भी असफल कहा जा सकता था। जहाज पर सवार उसके चालक दल के सदस्य जहाज के साथ ही अदृश्य हुए थे, मगर उनमें से बहुत से दोबारा प्रकट ही नहीं हुए और हमेशा के लिए अदृश्य होकर शून्य में खो गए। जो अदृश्यता में से निकलकर अपनी पुरानी अवस्था में आये, वे अपना मानसिक संतुलन खोकर पागल हो गये और कभी भी ठीक नहीं हो सके। अदृश्य हुए चालक दल के कुछ सदस्य अलग-अलग जगहों पर थोड़े समय के लिए देखे गये और फिर से शून्य में विलीन हो गए।

इंसानों पर होने वाले प्रयोग के भयावह असर को देखकर वैज्ञानिक बुरी तरह दहल गए थे। उन्होंने अदृश्यता सम्बन्धी प्रयोगो को रोक दिया था और सारे मामले को वही दबाने की कोशिश की थी।

जेसप को पत्र लिखकर उक्त तमाम जानकारी देने वाले रहस्यमय सख्स कार्ल एम.एलन ने दावा किया था कि वह १९४३ में स्वयं अमरीकी नौ सेना में था और जहाज के अदृश्य होने के समय वह एक दूसरे जंगी जहाज में उपस्थित था, जो कि काफी फासले पर समुद्र में ही मौजूद था।

जेसप ने कार्ल एम.एलन के पत्र के जवाब में उसे एक पत्र लिखा और उससे मिलने की इच्छा जाहिर की। मगर कार्ल एम.एलन नामक रहस्यमय शख्स ने इससे इन्कार कर दिया और लिखा- "मैं व्यर्थ ही किसी मुसीबत और विवाद में नहीं पड़ना चाहता। मुझे जो कहना था, कह दिया। अब सत्य की जाँच करना आपका काम है। वैसे मैं एक बात दावे से कह सकता हूँ कि मेरी बात की सच्चई अमरीकी नेवी रिसर्च आफिस की फाइलों में कही दफन है।"

१९४३ में वास्तव में फिलाडेल्फिया के नेवी यार्ड में क्या हुआ था, यह जानने के लिए जेसप ने गहरी खोजबीन शुरू कर दी थी। जेसप ने अमरीकी नौ सेना के मुख्यालय से सम्पर्क बनाया। अमरीकी नौ सेन के मुख्यालय ने कार्ल एम. एलन की कहानी को कोरी कल्पना कहा और इस बात से स्पष्ट इंकार किया कि फिलाडेल्फिया के नेवी यार्ड में कभी कोई गोपनीय प्रयोग हुआ था।

अमरीकी नौ सेना के इंकार के बावजूद जेसप ने अपनी खोजबीन जारी रखी और इसमें उसको सफलता भी मिली। जेसप को अपनी खोजबीन के दौरान मालूम हुआ कि जिस जहाज को अदृश्य बनाने का जिक्र कार्ल एम. एलन ने अपने पत्र में किया था, वह १९४३ में अस्तित्व में था और अमरीकी नौ सेना में शामिल था। जेसप बीसों लोगों से मिला और उसने अमरीकी नौ सेना की गतिविधियों से सम्बन्धित सैकड़ों दस्तावेजों की जाँच की। अंततः इस नतीजे पर पहुँचा था कि १९४३ में वास्तव में ही फिलाडेल्फिया के नेवी यार्ड में गुचचुप कुछ हुआ था। वह यकीनन अदृश्यता के बारे में प्रयोग था। जो भी फिलाडेलिफया के नेवी यार्ड में घटा था, वह आइंस्टीन की यूनीफाइड फील्ड थ्योरी पर ही आधारित था। मगर अमरीकी सरकार इस बारे में हमेशा खामोश ही रही।

(पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित समाचारों पर आधारित।)

मानसरोवर का वातावरण

पद्मगंधा की प्रतीक्षा में कर्ण प्रयाग में रुकना मेरे लिए संभव नहीं था अधिक समय तक। लेकिन वापस लौटने के लिए अचानक मुझे ऐसा आभास हुआ, मानों पद्मगंधा मुझसे कह रही हैं- तुम यहाँ से मानसरोवर जाओ। मैं तुमसे वहीं मिलूँगी। उनके एक-एक शब्द मुझे स्पष्ट सुनाई दिए थे इसलिए किसी प्रकार के भ्रम का होना सम्भव नहीं था। कहने की आवश्यकता नहीं, हरिद्वार वापस लौटने के बजाय मानसरोवर के लिए रवाना हो गया मैं उसी दिन।

यदि मैं मानसरोवर का वर्णन अपने शब्दों में करने लगूँ तो एक नयी पुस्तक तैयार हो जायेगी। हाँ इतना अवश्य बतला दूँ- मुझे वहाँ हंस कहीं नहीं दिखलायी

दिए। मोती भी खोजने का प्रयास किया, वह भी कहीं नहीं मिले। मिले तो बस कुछ लाल रंग के छोटे जंगली बीज। जिनके ठीक बीचोबीच छेद था जैसे किसी माला के मनके हों और चारों तरफ बिखरा था बेशुमार छोटे अनगढ़ पत्थरों का अम्बार। जो पानी से रगड़ खाकर बड़े ही रुचिकर आकार में फैला पड़ा था जिनहें गहरा नीला पानी खंगाल रहा था। मानसरोवर की लहरें, सागर की लहरों के समान किनारे से टकराकर वापस चली जाती थीं शोर मचाती हुई।

विशाल मानसरोवर झील का पारदर्शी पानी बिल्कुल काँच की तरह चमकता हुआ था, जिसके किनारे एक हिस्से पर छोटे-छोटे तिनके पट्टी की तरह जड़े हुए थे। कुछ पानी घटने पर किनोर पर ही छूट गये थे और कुछ डूब उतरा रहे थे। आती-जाती लहरों के साथ वे तमाम तिनके भी आ जा रहे थे। पानी मीठा था और अत्यधिक ठण्डा, पर गले में लगता नहीं था।

मेरे सामने मानसरोवर था- विशाल! शांत! नशे की स्थिति तक बोझिल करता हुआ। होश में लाने वाली थी पचास-साठ कि०मी.० से भी अधिक की रफ्तार वाली सीटी बजाती हवा। जिसकी ठंडक हड्डियों तक पहुँच रही थी। या फिर सिर पर चमकता सूरज, इस सरोवर के तट को ऐसा चमका रहा था जैसे बाली द्वीप के समुद्र की चाँदी सी चमकने वाली रेत।

'मानसरोवर में हँस हैं'- यह सपना प्राय: प्रत्येक हिन्दू पालता है। भारतीय होने के नाते भी प्राय: लोगों की कल्पना बनती है पढ़-सुनकर लेकिन यह जलाशय इतना बड़ा है कि मैंने इसकी कल्पना भी न की थी। ८६ कि०मी० की परिधि, जिसमें तपतो और तीमसीरमा नामक दो द्वीप हैं और अगर इसके दूसरे छोरों पर ऊँचे-ऊँचे पर्वत श्रृंग दृष्टिगोचर न होते हो इसका अन्त नहीं दीखता।

मैंने स्वर्ग नहीं देखा। लेकिन मानसरोवर देखकर स्वर्ग की कल्पना करने वाले शायद गलत नहीं होंगे। मानसरोवर में मनुष्य की अहमियत नहीं रह जाती। वह एकाकार हो जाता है प्रकृति से।

मानसरोवर, जहाँ कभी आठ मठ थे

मानसरोवर पहुँचने के लिए एक छोटी सी बावड़ी पार करना पड़ा था मुझे जिसमें से होकर मानसरोवर का पानी राक्षस ताल में जाता है। ब्राह्मणी बत्तखें उड़ती हैं। अधिक पक्षी देखने के प्रयास में जंगली खरगोश नजर आते हैं, बस वहाँ भी हवा काफी तेज थी, लेकिन मैं पानी देखकर काफी प्रसन्न था। अत्यन्त स्वच्छ। वहाँ निवास करने वाले एक महात्मा ने बतलाया कि मानसरोवर का पानी बीच से ऊँचा है। किनारे पर नीचा। यानी यदि कोई छोटी नाव से बीचोबीच

मानसरोवर पार करना चाहे तो वह वापस धकेल दिया जाता है। पानी बीच में १०० मीटर गहरा है। रात्रि के समय वहाँ हवा की गति लगभग ६० कि०मी० प्रति घंटा हो जाती है। मानसरोवर की परिक्रमा ८६ कि०मी० की है।

मानसरोवर के चारों ओर कभी आठ मठ थे- गोसुल, छियू, चर्किय, पोनरी, सेरालांग, वर्न यो और चुगुल्हो। ये तमाम मठ अब वहाँ खण्डहर के रूप में भी नहीं हैं। जबकि ये कभी पहले सांस्कृतिक केन्द्र थे। यहाँ के पुस्तकालय, धन, संपत्ति अपने आप में एक अलग गाथा कहते रहे होंगे कभी। जो तात्कालिक सांस्कृतिक क्रांति की बलि चढ़ गये। मानसरोवर के दूसरे तट से लगभग ८-१० कि०मी० की दूरी पर था गोसुल मठ। पहले यह लगभग एक हजार मीटर की परिधि में था फैला हुआ। अब खण्डहर है। यह विशाल मठ पत्थर, कंक्रीट और मिट्टी का बना था। हिन्दू और बौद्ध देवताओं के भिन्न-भिन्न चित्र यहाँ पत्थरों पर खोद कर बनाये गये थे। इसका एक अंश अभी भी मानसरोवर के तट के साथ थोड़े टूटे-फूटे में विद्यमान है। कई गुफा भी हैं। तिब्बतीय लामाओं की कृपा से अभी पीतध्वज तो खैर फहरता ही है।

मेरे मानसरोवर पहुँचने के पूर्व वहाँ चार-पाँच साधू तम्बू लगाकर ध्यान-भजन में लीन थे। उस दिन कार्तिक पूर्णिमा थी। बेहद ठंडी हवा के बावजूद भी वे सभी साधु सम्मोहित से होकर जै कैलाशपति कहते हुए काँपते, थरथराते सरोवर के अन्दर एक डुबकी के बाद ही बिजली की तरह किनारे की ओर लपके। ठंड के कारण वे लोग दुबारा पानी में गिरे, दूसरी डुबकी जबरदस्ती वाली लग गयी। साधुओं का तम्बू किनारे पर ही था। सर्दी से बचने के लिए तम्बु के भीतर कपड़े बदले गये। उन साधुओं की देखा देखी मैंने भी एक बार डुबकी लगाई। एकबारगी सारा शरीर काँप गया। खून जमता सा लगा। अपने तम्बू में साधुओं ने दया कर मुझे भी आश्रय दे दिया था। साधुओं के मुखिया थे हर भजन बाबा। लम्बी चौड़ी काठी का शरीर। स्वस्थ, प्रसन्न। आयु यही सत्तर के आस-पास। मुझे डुबकी लगाते देखकर बाबा बोले- बेटा कहाँ से आना हुआ है?

"काशी से बाबा।"

"काशी धाम से- बाब आश्चर्य से बोले- इतनी कम आयु में मानसरोवर की यात्रा की क्यों सूझी तुम्हें बेटा।"

क्या कारण बतलाता मैं बाबा को। मौन साध गया।

मानसरोवर के पार सुदूर मान्धाता पर्वत के पीछे से कार्तिक पूर्णिमा का रुपहला चाँद झाँकने लगा था। हिम वर्षा के आसार नजर आ रहे थे। सोचा वर्षा न हो। भगवान कैलाशपति ने शायद मेरी बात सुन ली मन की। लेकिन सर्दी रात के साथ साथ बढ़ने लगी। तम्बु से सिर निकाल कर मैं बाहर झाँकने लगा।

कहाँ मिलेगा ऐसा नैसर्गिक आनन्द? थकान से शरीर क्लान्त था। हाड़-हाड़ शीत से काँप रहा था। लेकिन मन शांत था और आत्मा भी थी उस नैसर्गिक छटा को देखकर आह्लादित। मानसरोवर की बर्फानी लहरें और उन लहरों की अनवरत गर्जना रोम-रोम में बस गयी थी जैसे। आलोकित मन में न जाने कितने विचार आ रहे थे उस समय।

मानसरोवर के चारों ओर बिखरे छोटे-छोटे पत्थर कितने लाख वर्षों के इतिहास के साक्षी थे। कोई प्रागैतिहासिक युग- जब अनन्त समुद्र में से हिमालय धीरे-धीरे उभरा होगा- जब शिव नगाधिराज की लावण्यमयी पुत्री गौरी-पार्वती को ब्याह कर लाये होंगे और यहाँ त्रिशूल गाड़ा होगा। आज तो वैज्ञानिक उपकरण है पर तब कैलाश मानसरोवर के दर्शनार्थी तपस्वी यात्री कैसे आते रहे होंगे? इस देश की साधना की महिमा अपरम्पार है।

❖

२

अध्याय

पद्मगन्धा से भेंट और मानसरोवर की वह रहस्यमयी गुफा

ऊपर स्वच्छ निर्मल आकाश और नीचे मानसरोवर का स्वच्छ पारदर्शी नीला पानी। चारों ओर तरफ बिखरा धुन्ध। गहन नीरव वातावरण। धीरे-धीरे मोम की तरह गल रही थी चांदनी में डूबी हुई रात। तम्बू के भीतर साधु लोग गहरी नींद में सो रहे थे लेकिन मेरी आँखों में नींद कहां। चाँद काफी ऊपर उठ आया था आकाश में। मैं उसी की ओर अपलक नीहारते हुए पद्मगन्धा के विषय में सोच रहा था इस निर्जन हिम प्रान्त में कहा और कब भेंट होगी पदमगन्धा से ...। उन्हीं के अदृश्य संकेत से दर्जनों दुर्गम दर्राओं को पार करते हुए इतनी लम्बी जीवन-मरणदायिनी यात्रा कर पहुँचा था मैं मानसरोवर। योगी की मति-गति को कौन समझ सकता है भला। और तभी मुझे ऐसा लगा - मानों वह बौद्ध भिक्षुणी कहीं आस-पास ही विद्यमान हैं। उनका अस्तित्व बाहर बिखरे हुए धुन्ध में घुला मिला है। सहसा मेरे सामने एक आकृति उभरी फिर धीरे-धीरे स्पष्ट होती हुई मेरी ओर बढ़ने लगी। दूसरे क्षण मुझे सुनाई दिया - अरे। तुम इस तम्बू में पड़े हो मैं तो तुम्हें कब से खोज रही थी आओ चलो मेरे साथ...।

समझते देर न लगी मुझे वह आकृति पदमगन्धा की थी और वह स्वर भी था उन्हीं का। उस गहरे धुन्ध में भी तत्काल पहचान गया मैं उनको। फिर उनके पीछे-पीछे चल पड़ा मैं गोसुल मठ के बिखरे खण्डहरों की ओर। मानसरोवर के पार पहाड़ों के पीछे छिप गया था अब तक पूर्णमासी का चांद। सुदूर एवरेस्ट की सबसे ऊँची चोटी पर सिन्दूरी रंग धीरे-धीरे उभरने लगा था। खण्डहरों को पार कर पद्मगन्धा के साथ मैं जहां पहुँचा वहाँ एक गुफा थी। उनके साथ मैं

भी गुफा में प्रवेश कर गया। गुफा काफी लम्बी थी और थी अन्धेरे में डूबी हुई। बड़ी ही रहस्यमयी लगी मुझे वह गुफा लेकिन सम्मोहित सा आगे बढ़ता चला गया मैं। काफी दूर जाने पर काफी लम्बी - चौड़ी जमीन दिखलाई दी। वहा रुपहला प्रकाश फैल रहा था। वह प्रकाश कैसा था और कहां से आ रहा था यह मेरी समझ में नहीं आया। वातावरण में गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी। मैंने देखा वहां चारों ओर छोटे-छोटे पत्थर के साधना गृह बने हुए थे जिनमें पद्मासन की मुद्रा में पाषाणवत कई साधक बैठे हुए थे। सभी के शरीर कृषकाय और कंकाल मात्र थे। शरीर की एक-एक हड्डियां साफ दिखलायी दे रही थी। लेकिन सभी के चेहरे पर साधना का तेज था।

पद्मगन्धा ने बतलाया कि ये सभी तपस्वी दीर्घकाल से समाधि में लीन हैं। ये जीवित होते हुए भी प्राणहीन हैं। इनमें से कुछ की आत्मा में किसी अन्य लोक लोकान्तर में संचरण - विचरण कर रही होंगी और कुछ की आत्मायें संसार में भौतिक शरीर धारण कर साधना कर रही होंगी। यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। मैंने सिर घुमाकर मृतवत बैठे उन साधकों की ओर देखा - सभी के चेहरे पर साधना तेज के अलावा असीम शान्ति भी थी। कोई भी नहीं कह सकता था कि वे लोग मृत हैं।

पद्मगन्धा ने बतलाया कि इन सभी लोगों को समाधि की विशेष अवस्था उपलब्ध है। पार्थिव शरीर की, अपनी एक मर्यादा है और है एक सीमा और उस मर्यादा और सीमा में बंधकर साधना के उच्चतम शिखर का स्पर्श नहीं किया जा सकता। इसलिये विशेष अवस्था उपलब्ध इस प्रकार के साधकगण अपने सूक्ष्म शरीर का उपयोग करते हैं। क्योंकि सूक्ष्म शरीर की न कोई मर्यादा है और न तो है कोई सीमा। अब इन्हीं लोगों को लो। जैसा कि तुमकों बतला चुकी हूँ - दीर्घ काल से इन लोगों का ये पार्थिव शरीर यहां इस गुफा में सुरक्षित है। इनमें से कुछ जन्म और मृत्यु की यातना से बचने के लिये परकाया प्रवेश द्वारा किसी के स्वस्थ शरीर के माध्यम से साधना कर रहे होंगे। कुछ ऐसे भी हैं, जो परकाया प्रवेश के झंझट में न पड़कर, साधना के लिये संसार में जन्म ग्रहण कर नवीन शरीर उपलब्ध किये होंगे। जब उनका लक्ष्य सिद्ध हो जायेगा तो पुनः अपने इस शरीर में प्रवेश कर पुनर्जीवित हो उठेंगे।

पद्मगन्धा का पूर्व पार्थिव शरीर

जब परकाया प्रवेश द्वारा नवीन स्वास्थ प्राप्त कर सकते हैं और गर्भ में प्रवेश कर नया जन्म उपलब्ध कर सकते हैं तो इस अवस्था में अपने पूर्व शरीर में पुनर्जीवित होने की क्या आवश्यकता है इन लोगों को।

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में वह महान साधिका बोली- इसीलिये कि यह शरीर दीक्षा शरीर है। गुरू ने विशेष यौगिक क्रिया द्वारा इसे शुद्ध किया है। साधना की दृष्टि से भी इसका भारी महत्व है। "निर्णाण" कैवल्य मुक्ति, मोक्ष आदि जो कुछ भी आध्यात्मिक उपंलब्धि है वह सब इसी दीक्षित और शुद्ध शरीर द्वारा ही सम्भव है। भले ही साधक को साधना के लिये इससे भी सुन्दर स्वस्थ और युवा शरीर किसी भी माध्यम से उपलब्ध हो जाय मगर इस दृष्टि से उसका न कोई मूल्य है और न तो है महत्व। समझ गये न तुम। और फिर उन्होंने सामने पाषाण वेदी पर समाधिस्थ बैठी हुई एक साधिका की निर्जीव काया की ओर संकेत करते हुए कहा - जानते हो यह काया किसकी है।

नहीं। सिर हिलाकर कहा मैंने।

मेरी है।

ऐ : क्या कहा आपने आपकी है यह पार्थिव देह।

- मैंने आश्चर्य चकित भाव से पूछा।

हाँ। मेरी है। पूरे तीन सौ वर्षो से मेरी यह पार्थिव काया इसी मुद्रा में और इसी आसन में यहां बैठी हुई हैं। इस अवधि में मैंने तीन बार केवल जन्म लिया। यह मेरा तीसरा पार्थिव शरीर है, जिसे तुम देख रहे हो। इस शरीर में मेरी अवस्था इस समय नब्बे वर्ष की है। भविष्य में दो पार्थिव शरीर और ग्रहण करूंगी, उसके बाद तथागत की इच्छा...।

ये सारी अविश्वसनीय बातें सुन कर भौचक्का सा मुंह तांकने लगा पद्मगन्धा का।

मैं आगे कुछ पूछता कि उसके पहले ही वह बौद्ध भिक्षुणी गम्भीर स्वर में बोल पड़ी - तुमको मान सरोवर क्यों बुलायी और फिर यहां क्यों लाई ?

जानते हो।

नहीं, कुछं नहीं जानता मैं।

मनुष्य हर युग में हर काल में और हर स्थिति में संसार में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है।

हम तुम भी इस नियम के अन्तर्गत हैं।

थोड़ा रूककर उस तन्वंगी चिर यौवना साधिका ने आगे कहा - आत्मा स्वतंत्र है वह कभी भी परतंत्र नही हो सकती। मन परतंत्र है लेकिन उसकी स्वतंत्रता की सम्भावना है। रही शरीर की बात। शरीर हमेशा से परतंत्र है। वह कभी भी स्वतंत्र नहीं हो सकता। उसे स्वतंत्र करने का कोई भी उपाय नहीं है।

शरीर का मूल्य और महत्व

भौतिक दृष्टि से मानव के पार्थिव शरीर का बस इतना ही महिमा है कि जब तक शरीर जीवित है तब तक मनुष्य इस भौतिक जगत से जुड़ा हुआ रहता है। शरीर के मृत होते ही उसका सारा नाता रिश्ता समाप्त हो जाता है संसार से। फिर शरीर अर्पित हो जाता है अग्नि को। लेकिन इसके बावजूद भी मानव शरीर को उपलब्ध होने के लिए देवता से लेकर इस विश्व ब्रह्माण्ड में जितने भी प्राणी हैं, वे सबके सब तरसते रहते हैं। इसलिए कि इस विश्व ब्रह्माण्ड में जितने भी शरीर है, देवता से लेकर पशु तक, सब भोग शरीर हैं। एकमात्र, मानव शरीर ही एक मात्र ऐसा शरीर है जिसके द्वारा कर्म और ज्ञान दोनों को साधा जा सकता है। कर्म को ज्ञान में और ज्ञान को कर्म में आयत्त करने का एक मात्र साधन मानव शरीर ही है। रही बात अध्यात्म की। आध्यात्मिक दृष्टि से मानव शरीर और मानव जीवन का अत्यधिक महत्व और मूल्य है। इसके दो मुख्य कारण हैं।

प्रत्येक शरीर में, और प्रत्येक अणु - परमाणु में वह शक्ति विद्यमान है जिसका जगत का प्रत्येक प्राणी, इच्छा, क्रिया और ज्ञान के रूप में बराबर अनुभव करता रहता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त वह शक्ति मानव शरीर में कुण्डलिनी शक्ति के नाम से स्थित है। योग और तंत्र के जितने भी साधना मार्ग हैं, वे सब इस शक्ति की उपासना का प्रधान साधन मानव शरीर को ही मानते हैं। वैसे तो सभी जीव अथवा प्राणी उस शक्ति के आवास स्थल हैं। किन्तु केवल शक्ति का संचालन ही लक्ष्य नहीं है, उस शक्ति की सहायता से उच्चतम् अवस्था की उपलब्धि भी सम्भव है। समस्त प्राणियों में सवार्धिक श्रेष्ठ मनुष्य है। मनुष्य का शरीर - समस्त आध्यात्मिक उपलब्धियों और उनकी समस्त उच्चतम् अवस्थाओं की प्राप्ति के निमित्त योग तंत्र जैसे साधनाओं का उत्तम साधन है। परन्तु शरीर पाने मात्र से यह सब कुछ सम्भव नहीं। इसके लिये बाह्य और आन्तरिक साधना आवश्यक हैं। तात्पर्य यह कि समस्त आध्यात्मिक उपलब्धियों और समस्त सिद्धियों का आश्रय एक मात्र मानव शरीर है। इसलिये कि मनुष्य की वाणी, और मनुष्य का प्राण, मन, बिन्दु आदि सब अनन्त अपार शक्तियों का आश्रय, है। यह पहला कारण है। इसका दूसरा कारण भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

तुमकों मालूम होना चाहिए कि - पद्मगन्धा समझाते हुए आगे बोली - वैसे योग और तंत्र से संबंधित सभी साधनाओं की आशातीत उन्नति हुई। अनेक सम्प्रदाय बने अनेक साधना मार्ग बने और अनेक प्रकार के सिद्धान्त बनें। वास्तव में वह योग तंत्र का स्वर्ण काल था (इस सम्बन्ध में पढ़े - भारतीय संस्कृति

और साधना का इतिहास) उसी समय यह मान लिया गया कि परमतत्व जो पराशक्ति है - वह जिस प्रकार समस्त विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त व क्रियाशील है, उसी प्रकार पिण्ड यानी मानव शरीर में भी व्याप्त व क्रियाशील है। वैसे तो वह महाशक्ति अणु, परमाणु अथवा कण - कण में विद्यमान है लेकिन मानव पिण्ड में वह सर्वाधिक जाग्रत व चैतन्य है। मानवेतर योनियों में कम जाग्रत है या तो फिर सुप्तावस्था में है। मानव पिण्ड में यह महाशक्ति इच्छा, ज्ञान, और क्रिया - इन तीनों रूपों में क्रियाशील और चैतन्य है। इसलिये इस महाशक्ति को तंत्र में त्रिपुटीभूताशक्ति अथवा त्रिपुरा कहते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि देवताओं के भीतर भी यह महाशक्ति प्रायः प्रसुप्त अवस्था में ही है। क्योंकि देवता प्राकृतिक शक्तियों के रूप है। उनकी योनि, भोग योनि है। देवताओं को केवल मात्र भोगने की शक्ति है। वे जिस कार्य में निमित्त हैं, उस निमित्त से अधिक या कम की उनमें इच्छा ही उत्पन्न नहीं होती। जैसे अग्नि को ही लो। अग्नि जला सकती है। जलाना उसका गुण है। उससे जलाने के अलावा और कार्य नहीं हो सकता। इसलिये कि वह एक गुण के कारण एक ही क्रिया कर सकती है, दूसरी नहीं, वह भिगो नहीं सकती। जलाने के सिवाय दूसरी इच्छा उत्पन्न होगी ही नहीं तो क्रिया कैसे होगी दूसरी। एक ही गुण एक ही इच्छा और एक ही क्रिया होने के कारण देवताओं कुण्डलिनी शक्ति नहीं होती। इस ब्रह्माण्ड में केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसको - इच्छा, ज्ञान, क्रिया की त्रिधारा प्राप्त करने का सौभाग्य उपलब्ध है और एक मात्र कारण यही है कि परात्पर पुरुष, जिसे तुम परब्रह्म परमेश्वर भी कह सकते हो - को भी जगत के लिए कोई कार्य करना होता है तो उसे नर देह धारण करना पड़ता है। देह तो वह और भी धारण कर सकता है, पर नरदेह में उसका पूर्णावतार होता है। मतलब यह कि नर देह धारण किये बिना परब्रह्म परमेश्वर भी कोई लीला नहीं कर सकते। इसलिये देवता भी मानव शरीर प्राप्त करने के लिये बराबर लालायित रहते हैं। मानव शरीर वास्तव में अति दुर्लभ है। देवताओं की तरह अन्य योनि वाले प्राणी भी मानव शरीर को प्राप्त करने के लिये आतुर रहते है। कहने की आवश्यकता नहीं मानव देह की महिमा की यह दूसरी महत्वपूर्ण परिणति है।

मानव शरीर में महाशक्ति के दस केन्द्र

मानव शरीर ज्ञान और कर्म का प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टि से मानव शरीर को दो भागों में विभक्त किया गया हैं। कण्ठ के ऊपर पहला भाग है - इस भाग में सभी ज्ञानेन्द्रियां हैं इसलिये इसे ज्ञान क्षेत्र कहा जाता है। कण्ठ

के नीचे दूसरा भाग है इस भाग में सभी कमेन्द्रियों के होने के कारण इसे कर्मक्षेत्र कहते हैं।

ज्ञान क्षेत्र में पराशक्ति के तीन केन्द्र हैं और कर्म क्षेत्र में सात केन्द्र हैं। इस प्रकार कुल दस केन्द्र हैं। मानव शरीर में शक्ति को समझ गये न। तंत्र के अनुसार प्रत्येक केन्द्र की शक्ति को महाविद्या कहा जाता है तंत्र में दस महाविद्या प्रसिद्ध है। तंत्र की सगुणोपासना भूमि में इन विद्याओं के नाम हैं - मातंगी, भुवनेश्वरी, बंगला, धूमावती, भैरवी, तारा, छिन्नमस्ता, भगवती, श्यामा और रमा। तंत्र में मारण, मोहन वशीकरण, उच्चाटन, विद्धेषण आदि जितने अभिचार कर्म हैं, वे सब इन्हीं महाविद्याओं की शक्ति से अनुष्ठित होते हैं। और अपना प्रभाव प्रकट करते हैं। जब कभी तुम तंत्र का अध्ययन करोगे तो इस विषय में तुम्हें विस्तृत जानकारी मिलेगी (इस संबंध में पढ़े मारणपात्र)

ज्ञान क्षेत्र में शक्ति के जो केन्द्र हैं उनमें पहला केन्द्र आज्ञाचक्र है। आज्ञाचक्र का स्थान मस्तक पर दोनों भौंहों के मध्य मे है। जितने भी शक्ति केन्द्र हैं। उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण और साथ ही सबसे अधिक रहस्यमय आज्ञा चक्र का केन्द्र है। (इस संबंध में आगे विस्तार से बतलाया जायेगा) इस केन्द्र में जो शक्ति है, वह अचेतन मन की शक्ति के रूप में प्रकट होती है। अचेतन मन की शक्ति असीम है। इस शक्ति का सम्बन्ध अतीत की स्मृति कोशिकाओं से है।

वह अदभुत प्रकाश पुंज और तथागत का आत्म शरीर

थोड़ा रुक कर अपने पूर्व पार्थिव शरीर की ओर अपलक निहारते हुए उस महान साधिका ने आगे कहा तुमको मान सरोवर इसलिये बुलायी हूँ कि तुमने मेरे भगवान बुद्ध के समय के जीवन को जानना चाहा था। जैसे उस समय मेरा अस्तित्व था उसी प्रकार तुम्हारा भी था। जैसा कि बतला चुकी हूँ - हर युग में और हर काल में मनुष्य किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखता है। ...अच्छा तो तुम अब तैयार हो जाओ। पहले अपने चित्त को थोड़ा स्थिर करो। किसी भी प्रकार का सोच - विचार मन में मत आने दो। और मेरे सामने पद्मासन की मुद्रा में बैठो।

कहने की आवश्यकता नहीं - मैंने तुरन्त निर्देश का पालन किया और उनके सामने बैठ गया निर्विकार भाव से पद्मासन की मुद्रा में। क्या बतलाऊ? सामने बैठते ही दूसरे पल एक विचित्र शान्ति का अनुभव हुआ मुझे। मन का बाहर

भटकना धीरे-धीरे समाप्त हो गया। और तभी मुझे अपने दोनों भौंहों के बीच उस तन्वगी चिर यौवना बौद्ध भिक्षुणी की तर्जनी उंगली के कोमल स्पर्श का अनुभव हुआ। शायद किसी को विश्वास न होगा - उस स्पर्श का अनुभव होते ही मुझे कुछ विचित्र सा लगा। वह विचित्रसा क्या था - बतलाया नही जा सकता। मगर था "कुछ" अवश्य। फिर धीरे धीरे जिस स्थान पर मुझे स्पर्श का अनुभव हो रहा था वहा एक प्रकाश बिन्दु उभरतासा प्रतीत हुआ मुझे। वह रहस्यमय प्रकाश बिन्दु गहरे नीले रंग का था। बाद में वह एक प्रकाश पुञ्ज में बदल गया। उस प्रकाश पुञ्ज विभिन्न प्रकार के रंगों का मिश्रण था। धीरे-धीरे वह विभिन्न और रहस्यमय प्रकाश पुंञ्ज बढ़ने लगा। मैंने देखा उसके ठीक बीच में बादामी रंग की एक सुन्दर और कोमल आकृति उभर रही थी। जैसे-जैसे वह अभरती जा रही थी - वैसे ही वैसे मैं भी मुग्ध और सम्मोहित होता जा रहा था। उसकी ओर अन्त में वह सुन्दर कोमल और स्निग्ध आकृति भगवान तथागत के पदमासन की मुद्रा में बैठे हुए रूप में बदल गयी। अपलक मै निहारने लगा उस मनोहारी रूप की ओर फिर सब कुछ स्पष्ट हो गया मेरे मानस चक्षु के सामने। आप विश्वास करें या न करें - जो छवि स्पष्ट होकर उभरी थी वह थी - अपने युग के और अपने समय के महान शान्ति दूत और अहिंसा का उपदेश देने वाले शाक्य मुनि भगवान तथागत् की।

निश्चय ही उस आत्मवादी बौद्ध धर्म प्रवर्तक का आत्म शरीर ही होगा इसमें सन्देह नहीं। इतना मनोहारी इतना सुन्दर इतना सौम्य शान्त इतना निर्विकार और इतना निर्भाव कि उसका वर्णन करना असम्भव है मेरे लिये। जैसे एक गूंगा व्यक्ति गुड़ का स्वाद नहीं बतला सकता उसी प्रकार मैं भी उस रूप-छवि का शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। एक गूगें व्यक्ति की ही स्थिति समझे आप मेरी।

एक विशाल वृक्ष के तले, अपने शिष्यों से घिरे एक ऊंची वेदी पर अभय मुद्रा में समाधिस्थ बैठे हुए थे भगवान तथागत्। और वातावरण में बुद्धं शरणं गच्छामि धम्मं शरणं गच्छामि संघं शरणं गच्छामि का गम्भीर स्वर गूंज रहा था। उस समय भगवान तथागत् के पीछे नीलाभ् क्षितिज पर अरूणोदय काल की सिन्दूरी लालिमा की लम्बी रेखा भगवान भास्कर के आगमन की सूचना दे रही थी। वृक्षों की फुंनगियों पर पक्षी कलवर कर रहे थे और ग्राम बालायें बगल में कलश दबायें पनघट की ओर जा रही थी। हे भगवान! कितना सुन्दर और सुखद दृश्य था वह! सम्मोहित-सा देखता रहा मैं उस दृश्य को ! फिर न जाने कब और कैसे वह दुर्लभ दृश्य मेरे सामने से अदृश्य हो गया। अब जो कुछ देखा सुना और समझा अपने शब्दों में और अपने भावों में व्यक्त करूंगा मैं।

बौद्ध दीक्षा के पूर्व पद्मगन्धा की जीवन गाधा

काफी देर तक मेरा मानस पटल गहन अन्धकार में डूबा रहा। फिर धीरे-धीरे उसकी प्रगाढ़ता ढ़लने लगी। अन्त में धुंधला सा रह गया। कुछ क्षण बाद उस धुंधलके के पीछे से जो दृश्य उभरा वह था गंगा का काफी लम्बा - चौड़ा तट। धारा भी काफी चौड़ी थी गंगा की। फिर उस तट के किनारे मुझे दिखलायी दिया एक बहुत बड़ा और सुन्दर स्वच्छ नगर। जिसका नाम था वैशाली।

भूरे और दूध जैसे सफेद पत्थरों की बनी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएं, वुर्जियाँ चौबारे, खूब चौड़ी सड़कें, सजी-धजी दुकानें, मन्दिर और मठ जिनके स्वर्ण कलशों और कंगूरों पर लाल-पीली पताकाएं हवा में लहरा रही थीं।

अब मैं नगर के दक्षिणी प्रान्त को देख रहा था जहां नीले आकाश के नीचे एक काफी लम्बा विराट प्रासाद था जो अपने आप में उस समय की आधुनिक वास्तुकला का अत्यन्त आकर्षक नमूना था।

किसका था वह विशाल प्रासाद।

नगर श्रेष्ठी विरुढ़क का था वह रमणीक भवन। जो भी राहगीर उस मार्ग से जाता था - वह एक बार अपनी नजर उठाकर उस प्रासाद को क्षण भर के लिए अवश्य देख लेता था।

प्रासाद का आकर्षण तो था ही। इसके अतिरिक्त आकर्षण का एक और भी कारण था देखने का और वह था श्रेष्ठी विरुढ़क की इकलौती कन्या पटाचारा।

पटाचारा सोलह वर्ष की नवयौवना सुन्दरी थी। हल्की सी लालिमा लिये गोरा रंग, यौवन से तरंगित सुगठित देह दृष्टि, सावन भादों की काली घटा की तरह पीठ पर बिखरी केशराशि, पतली कमर, उन्नत वक्ष, अनार की कली की तरह रक्ताभ होंठ, नुकीली नांक, कजरारी आँखें और उन्नत ललाट। सचमुच विधाता ने अपने किसी एकान्त के क्षणों में रचा था पटाचारा को इसमें सन्देह नहीं।

रोज की तरह उस सांझ को भी पटाचारा खड़ी थी चौबारे के खम्भे से टेक लगाकर। उसके सुगठित वक्षस्थल पर नीले रंग की रेशमी चोली थी और उस पर थी पीले रंग की रेशमी ओढ़नी। तिरछी नजर से आते-जाते राहगीरों और मुसाफिरों को देख रही थी पटाचारा उस समय। उसकी तिरछी नजर से सहम कर उपाली ठिठककर खड़ा हो गया था। उपाली एक गुलाम था। श्रेष्ठी के प्रासाद में कुल छै गुलाम थे। उनमें उपाली सबसे सुन्दर युवा और लम्बी चौड़ी काठी का बलवान गुलाम था। उसकी बड़ी-बड़ी स्वप्निल आँखें हमेशा कुछ न कुछ

लाल रहती थी। इसका कारण यह था कि रात में कभी-कभी वह शराब पी लेता था। नगर के सबसे गन्दे शराब खाने में वह रात में दिखाई देता था। उस रात वह कुछ नहीं खाता-पीता था। शराब खाने से आकर महल के नीचे के हिस्से में गुलामों के लिये जो सोने का कमरा था उसमें वह सो जाता था। किसी को कुछ पता नही चलता था, श्रेष्ठी विरुढ़क को इसकी कोई जानकारी नहीं थी। पर पटचारा जानती थी यह बात।

श्रेष्ठी विरुढ़क

श्रेष्ठी विरुढ़क को कोई पुत्र नहीं था। केवल एक लड़की थी - पटचारा। यौवन काल में असाधारण बुद्धि तथा धैर्य से विरुढ़क ने धीरे-धीरे गुड़ बनाने के बीस यंत्र लगाये थे। वह उनके अकेले मालिक थे। उन बीस यंत्रों से जो शक्कर बनती थी उससे विरुढ़क केवल वैशाली की ही नहीं सारे लिच्छबी राज्य के शक्कर की आवश्यकता को पूरी करते थे। दाम या मुनाफे के बारे में उनको कभी बहुत लालच नहीं था। इसीलिये लिच्छबी के राजा उनके व्यापार में कभी कोई रोड़ा नहीं डालते थे। बल्कि व्यापारियों में उनको बहुत अधिक सम्मान ही देते थे। शुरू-शुरू में विरुढ़क और उनकी पत्नी गौतमी के मन में बहुत दुःख था कि उनके कोई पुत्र नहीं था। इसी दुःख के कारण विरुढ़क ने भिक्षुओं के संघ में जाकर पंचशील की दीक्षा ले ली थी। भगवान तथागत् की शरण में जाकर वह हत्या-चोरी, मदिरापान, झूठ बोलना आदि दुर्गुणों से निवृत्त होकर पंचशील में प्रतिष्ठित हो गये थे। कभी-कभी विरुढ़क संघ के सभागृह में जाकर भगवान बुद्ध के उपदेश भी सुनते थे। विरुढ़क उस समय के सबसे धार्मिक श्रेष्ठी थे।

स्वेच्छाचारिणी पटाचारा

विरुढ़क ने पुत्र की तरह लालन-पालन किया था पटाचारा का। पटाचारा जो भी कहती वही होता था। जो भी मांगती थी वही उसे मिलता था। अधिक लाड़ प्यार से वह जितनी हठी हो गयी थी उतनी ही मनमौजी भी। एक बार उसने बजाने के लिये दो सौ स्वर्ण मुद्रा का एक सितार खरीदा था। वैसा सितार लिच्छबी वंश की राजकुमारी के पास भी नहीं था। पटाचारा की इच्छा पूरी हुई। विरुढ़क ने अपनी लाडली पुत्री के लिये दो सौ स्वर्ण मुद्रा का सितार बनवाया। उस सितार का एक-एक पर्दा चार-पांच तोले सोने का बना था। पटाचारा ने सितार बजाना सीखा, पर न जाने एकाएक क्या हुआ कि उसने सितार बजाना बन्द कर दिया। उसे उठाकर रख दिया गया।

गौतमी कभी-कभी लड़की के हठ पर नाराज होती थी। एक दिन उसने विरुढ़क से कहा-ज्यादा लाड़ प्यार करके तुमने लड़की को बहुत सिर चढ़ा लिया है। इस लड़की से ही तुम्हारा सर्वनाश होगा।

विरुढ़क ने हंसकर कहा-सर्वनाश। भगवान बुद्ध के चरणों में मैंने जिस दिन अपने को समर्पित कर दिया उस दिन से मेरा अपना क्या है। पटाचारा मेरा क्या करेगी, उत्तर सुनकर और जल उठी गौतमी, बोली हंसी की बात नहीं है जी। औरतों का इतना हठी होना अच्छा नहीं होता। तुम्हारी लड़की हद से ज्यादा हठी हैं। विरुढ़क ने कहा-हठ करना इतना तो बुरा नहीं है। कम उम्र में, मैं भी बहुत हठी था। तभी तो इतना धन एकत्र कर सका। लड़की क्या अकेली मेरी ही है। तुम्हारी नहीं है।

अगर मैं उसे डाँटू तो तुम नाराज होगे। नहीं मैं नाराज नहीं होऊँगा। जरुरत हो तो तुम उसे अवश्य डाटो-फटकारो। पर यूँ ही उसे सजा मत देना। जो होना हो, हो। मेरी बला से। ... उस पर अब डांटने का कोई असर पड़ेगा भी।

तो जाने दो। भगवान तथागत् की जो इच्छा होगी वही होगी।

गौतमी ने आगे कुछ नहीं कहा। एकाएक उसने एक नौकरानी को सूखी लकड़ी न उठाने पर डांटना शुरू कर दिया। विरुढ़क समझ गये कि उसके मन में पटाचारा पर जो क्रोध था उसे वह नौकरानी पर निकाल रही थी। वह चुपचाप वहां से खिसक गये।

इस प्रकार पटाचारा बड़ी होती गयी। अपनी इच्छा ही उसके लिये संसार में सबसे बढ़कर थी। उसकी प्रबल इच्छा के कारण कोई भारी नुकसान हो जाय तो भी वह परवाह नहीं करती थी। आगे चलकर उसके जीवन में जो अनहोनी घटनाएँ घटी-उन सबका मूल था एक मात्र यही कारण।

क्रोध, अहंकार की प्रतिमूर्ति पटाचारा

उस दिन छज्जे पर खड़ी होकर पटाचारा ने इशारे से उपाली को बुलाया। उपाली के हांथ में गन्दे कपड़ों की गठरी थी। शायद वह उन्हें धोने के लिए ले जा रहा था। पटाचारा की तिरछी निगाह देखकर वह ठिठक कर खड़ा हो गया।

चारो ओर दोपहर का सन्नाटा छाया हुआ था। गौतमी आराम कर रही थी। विरुढ़क बाहर काम से गये हुए थे। नौकर चाकरों में से कोई आराम कर रहा था और कोई शाम का काम पहले से ही कर रहा था। गर्मी के दिन थे। धूप इतनी तेज थी कि राजपथ पर एक भी राहगीर नहीं दिखाई दे रहा था। इतनी

काफी गर्मी में इस समय कोई बाहर नहीं निकलता। केवल दो-चार अवारा कुत्ते और पेड़ की डाल और छज्जे पर दो एक कौवे दिखाई दे रहे थे।

पटाचारा की बड़ी-बड़ी आँखें न जाने किस खुशी से चमक रही थी। शायद इस खुशी का कोई कारण ही नहीं था। ऐसे ही बिना कारण प्रायः पटाचारा खुश होकर अपने आप खिलखिला कर हंस पड़ती थी। उसका स्वभाव ही ऐसा था।

उपाली रुका खड़ा था। पटाचारा ने उसे ठहरने का इशारा किया था। इस आज्ञा की अवहेलना करने की हिम्मत किसकी थी। इस घर के सभी नौकर चाकर श्रेष्ठी की लड़की पटाचारा से और उसकी सनक से डरते थे। कोई नहीं कह सकता था कि किस समय कौन सी सनक उस पर सवार हो जायेगी। जो नौकर या नौकरानी पटाचारा की आज्ञा का पालन नहीं करती थी, उसकी शामत आ जाती थी। कभी तो उसके हांथ के पास जो चीज होती थी-उसी से वह उसे मार बैठती थी। एक दिन सांझ के समय पटाचारा ने एक नौकर को भयंकर सजा दी थी। उसने उसे ठहरने को कहा था। पटाचारा अपना घाघरा बदलने लग गयी थी। देखकर नौकर मुस्कराया था। इस पर गुस्से के मारे पटाचारा लाल-पीली हो गयी। उसने उपाली को बुला भेजा और आज्ञा दी-बांध दो इस जानवर को।

उपाली ने उसे छज्जे के एक खम्भे से बांध दिया। फिर पटाचारा ने उसे मारने की आज्ञा दी। उपाली ने उसे मारा और तब तक मारता रहा जब तक कि वह बेहोश नहीं हो गया। फिर वह छोड़ दिया गया। वह नौकर कुछ कह नहीं सकता था। क्योंकि वह गुलाम था। उसका जीवन बिका हुआ था। जब विरुढ़क ने यह सब सुना तो वह बहुत असन्तुष्ट हुए। पटाचारा को काफी डांटा उन्होंने। वह थे पंचशील के भक्त। ऐसा काम उन्हें पसन्द नहीं था। पर पटाचारा पर कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने पिता से कह दिया कि उसकी आज्ञा न मानने पर ऐसा ही सजा दी जायेगी। विरुढ़क नाराज हुए। उन्हें काफी दुख भी हुआ। उन्होंने उस नौकर को बुलाकर पांच स्वर्ण मुद्रा दिये। वह और कर ही क्या सकते थे। लड़की उनकी जो लाड़ली थी। उन्होंने नौकर नौकरानियों को बुलाकर कह दिया कि वे पटाचारा की आज्ञा माना करें।

पटाचारा ने जब सुना कि पिताजी ने उस नौकर को पांच स्वर्ण मुद्रा दी है तो उसने उपाली को बुलाकर बीस स्वर्ण मुद्रा दिये क्योंकि उसी ने उस नौकर की मरम्मत की थी। उस रात उपाली शराब खाने गया। जिस नौकर को उसने मारा था उसे भी शराब पिलाने के लिए साथ ले गया। वह उस नौकर से माफी मांगना चाहता था और कहना चाहता था कि उसने केवल आज्ञा की पालन की थी। उसका इसमें कोई दोष नहीं था।

उपाली बलवान था पर था वह भला आदमी। उस महल में केवल उपाली ही ऐसा था जो किसी से डरता नहीं था। पटाचारा से भी कभी-कभी डरता नहीं था। किसी नौकरानी से पटाचारा को मालूम हो गया कि उपाली उस नौकर को शराब खाने ले गया था। दूसरे दिन खाना खाने के बाद उसने उपाली को अपने कमरे में बुला भेजा। उपाली के आने पर तेवर चढ़ाकर उसकी ओर देखा। उपाली ने देखा-पटाचारा की उभरी हुई छाती पर हरे रंग की चोली गुस्से और घमण्ड से और भी ऊँची हो रही थी।

तुम कल शराब खाने गये थे-पटाचारा ने पूछा। उपाली ने आँखे नीची कर ली। जी हाँ। उपाली की आवाज शान्त और सहज थी। तुम्हारे साथ और कौन था। किबिल। किबिल था उस नौकर का नाम। उसे क्यों साथ ले गये थे।

उपाली ने कहा-नौकर-चाकर तो शराब खाने जाते ही हैं। सेठजी की लड़की को क्या उसका वर्णन सुनना अच्छा लगेगा।

पटाचारा ने सीधी निगाह से उपाली को देखा।

नहीं : उपाली के सौम्य शान्त चेहरे पर भय का चिन्ह भी नहीं था। ताना मारकर पटाचारा बोली-अच्छे-बुरे की सीख क्या मुझको तुमसे लेनी होगी। उपाली ने शान्त स्वर में कहा - आपने मेरी बात गलत समझी। किबिल को मैं शराब खाने ले गया था मौज करने के लिये। उस मौज का वर्णन आपसे न करना ही बेहतर है। पटाचारा की जिद बढ़ गयी। नहीं, मैं सुनूँगी। जरुर सुनूँगी। तुम कहो।

उपाली ने पटाचारा की ओर देखा। मन ही मन उसे हंसी आई। बोला अगर आप न सुनती तो बेहतर होता। खैर, जब आप सुनना चाहती ही हैं तो सुनिये। दो कूल्हड शराब पीकर किबिल को नशा चढ़ गया फिर शराब खाने की एक दासी ने उसे लेकर तमाशा शुरु कर दिया।

पटाचारा की दृष्टि कोमल हो गयी। उसने उपाली के सुडौल बदन को बार-बार देखा। फिर मीठी आवाज में बोली - तुमने कितने कुल्हड़ पीये थे। उपाली। मैं ! उपाली मुस्कराया। मैने आठ कुल्हड़ शराब पी थी। पर उससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ा। मैंने ही नौकरानी को सिखाकर किबिल को बेवकूफ बनाया था। फिर क्या हुआ। आप न सुनें तो अच्छा हो। तुम कहो। निडर होकर कहो।

नौकरानी नाचना जानती थी। उसे मैंने दस पैसे देकर नचाया। किबिल भी उसके साथ नाचा। फिर - उपाली हंसने लगा। पटाचारा बोली - हंस क्यों रहे हो। फिर क्या हुआ। आगे मैं न बता सकूँगा। नहीं कहो। कोई भय की बात नहीं। किबिल ने दासी को गोंद में उठा लिया और बाद में दासी ने उसे नंगा कर दिया। पटाचारा हंसने लगी। ठीक किया। तुमने उसे दोबारा सजा दी। यह

लो मैं तुम्हें पांच स्वर्ण मुद्रा और देती हूँ। उसने एक नक्काशी दार छोटे-बक्से में से पांच स्वर्ण मुद्रा निकालकर उपाली को दिये। अब उपाली विस्मित हुए बिना न रह सका। बहुत दिनों से उपाली देख रहा था कि उसके साथ पटाचारा का व्यवहार कुछ दूसरा ही था.और किसी नौकर या नौकरानी की हिम्मत ही न होती कि मालिक की बेटी के सामने ऐसी बातें करें। ऐसा करने पर उसकी अच्छी तरह मरम्मत होती और वह निकाल दिया जाता। पर पटाचारा ने उसे काफी सिर चढ़ा रखा था। इसका कारण क्या था। सोचकर उपाली को आश्चर्य होता था। कभी-कभी तो उसके मन में भय भी होता था।

पटाचारा पत्थर की वेदी पर बैठी थी। बैठी क्या अर्ध लेटी सी थी। उसके बैठने का ढंग बहुत ही सुन्दर था। किसी भी पुरुष का हृदय उत्तेजित करने लायक था वह ढंग।

उपाली का बदन भी गर्म हो उठा। पर वह अपने पर काबू रख कर वैसे ही खड़ा रहा। पटाचारा असाधारण सुन्दरी थी। उसके कण्ठ में मानो शहद घोलकर कहा - बैठ जाओ, उपाली। थोड़ी सी हिचक के बाद उपाली पत्थर के फर्श पर सीधा बैठ गया।

पटाचारा ने हल्की लाली किए हुए पतले होठों को थोड़ा-सा खोलकर जम्हाई ली, मानों उसे नींद आ रही हो। कठिनाई से आँखों को खोलकर, उसने आराम करते हुए कहा-"तुमसे गपशप करना मुझे बहुत ही अच्छा लगता है, उपाली। दोपहर में मुझे कोई काम-काज नहीं रहता। सोने से तो गप-शप करना बेहतर हैं। अच्छा, उपाली तुम्हारी उम्र क्या है ?

यही तेईस या चौबीस का हूँ।

मेरी अठारह है।

यह तुलना उपाली को अच्छी नहीं लगी। वह चुप रहा।

पटाचारा ने फिर कहा-"तुम्हारी बात सुनकर ऐसा जान पड़ता है, कि तुम बिलकुल अनपढ़ नहीं हो।

उपाली मुस्कराया। "आपका ख्याल कुछ हद तक सही है।"

तुमने क्या बचपन में कुछ पढ़ा था ?

जी-हाँ। तक्षशिला के विद्यालय में कुछ दिन पढ़ा था।

तब तुम्हारी यह दशा क्यों ?

ठंडी सांस लेकर, उपाली ने कहा। मेरी किस्मत। मेरे जन्म के बाद मेरे पुरोहित जी ने हिसाब लगाकर बताया था कि मेरे भाग्य में दुख-ही-दुख है।

तुम्हारा घर कहां था ?

रोहिणी नदी के किनारे कोलि नगर में। कोलिनगर, कपिलवस्तु के उस पार है। वहाँ पर मेरे पिताजी आचार्य थे। हम लोग दस भाई-बहन थे। हम लोग बहुत गरीब थे।

तुम्हारी माँ भी थीं ?

नहीं। माँ का देहान्त हो गया था। घर में एक बुआ थीं। पिताजी की तरह सीधा आदमी मैंने नहीं देखा। उनमें हठ बहुत था, पर वह थे बहुत ही भलेमानस। हमारे यहाँ एक सेठजी थे। उन्होंने पिताजी से कहा कि उनको झूठी गवाही देनी होगी। पिताजी ने इंकार किया। वह सेठ थे वहां के सबसे प्रतिष्ठित धनी। वह नाराज हो गये। इतना ही नहीं, उन्होंने पिताजी से दुश्मनी भी ठान ली। उपाली म्लान भाव से मुस्कुराया। आप तो जानती ही हैं कि बनिकों की दुश्मनी कैसी भयंकर होती है। सो वैसा ही हुआ। पिताजी की नौकरी चली गयी। उस समय मैं तक्षशिला में था। खबर पाकर वहां से घर चला आया। आकर सब सुना, और यह भी समझा कि भूखे मरने पर भी पिताजी सेठजी के पास नहीं जायेंगे। मैं ही गया सेठजी के पास। बहुत मिन्नत की। पर उन्होंने मुझे बुरी तरह दुत्कार दिया, और घर से निकाल दिया। क्षणभर के लिए रूककर, उपाली ने कहा-"धन का घमण्ड बड़ा भयंकर होता है।" कौतूहल से पटाचारा उठ बैठी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में गम्भीर सहानुभूति थी। उपाली की ओर देखकर, धीरे से उसने कहा, फिर ?"

"फिर दुख शुरू हुआ। हमलोगों को केवल एक वक्त खाना मिलता। बहुत कोशिश करने पर भी पिताजी को दूसरी नौकरी नहीं मिली। शहर में किसी ने कुछ मदद नहीं की। उल्टे और लोग भी दुश्मनी करने लगे। सभी सेठ के तरफदार बन गये। मैंने पिताजी से कहा -"चलिए, यहां से किसी दूसरे शहर में चले। पर पिताजी का प्रण था कि वे घर छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे। फिर जो भयंकर विपत्तियों का रैला, आया कि उसकी कुछ न पूछिए।"

उपाली ने पटाचार की ओर देखा। उसकी आँखें जल रही थी।

कहीं से भी मुट्ठी भर चावल न मिलता। भूखे रहने के कष्ट की आप कल्पना भी नहीं कर सकेंगी। आँखों के सामने छोटे-छोटे भाई-बहन सूखकर काँटे होते जा रहे थे। मेरा भी सिर दिन रात जलता रहता था। सारे बदन में मानों किसी ने आग लगा दी हो। एक रात मेरी छोटी बहन रोते-रोत बेहोश हो गयी। मुझसे और सहा नहीं गया। उसी रात मैं घर से निकल पड़ा। रास्ते में ही वह रात बीती। दूसरे दिन सबेरे में मण्डी पहुँचा। सोचा कि चोरी से, डकैती से, या जैसे भी हो आज मैं कुछ लेकर ही घर लौटूंगा। घूमते-घूमते आपके पिताजी

से भेंट हुई। उसके साथ थीं पांच सौ बैलगाड़ियां। मुझे एक बात सूझी। उनसे मैंने कहा-"आप गुलाम खरीदेंगे ?"

उन्होंने ने कहा-अच्छा मिलने पर खरीद सकता हूँ।

तब मैंने कहा-मुझे ही खरीदिए। ज्यादा नहीं सौ स्वर्ण मुद्रा पर ही मैं राजी हूँ। वह राजी हो गये। क्योंकि उन्नीस साल का एक हट्टा-कट्टा जवान खरीदने के लिए और ज्यादा मुद्रायें चाहिए थे। फिर मैंने उनसे कहा-"इन मुद्राओं को कृपया मेरे घर पहुँचा दें। मेरा जिक्र आप नहीं करेगें।

उन्होंने स्वर्ण मुद्राओं को मेरे घर पहुँचा दिया। उस समय मैं बालिग हो गया था इसलिए मैं गुलाम खरीदने की तख्ती पर दस्तखत कर दिया।

इतना कह कर उपाली चुप हो गया। उसका चेहरा लाल था। आंखों में आँसू छलछला रहे थे। एक ठण्डी सांस लेकर, थकी आवाज में उसने कहा - इसके अलावा और मैं कर ही क्या सकता फिर भी मैं इतना तो जानता था, कि सौ अशरफियों से घरवालों के कुछ दिन कट जायेंगे। तब तक मेरे पिताजी को या किसी भाई को काम मिल ही जायेगा।

पटाचारा की आँखें जल उठी। बोली-उस सेठ को तुमने क्षमा कर दिया, उपाली ? उपाली ने गम्भीर आवाज में कहा-'नहीं, मैंने क्षमा नहीं किया। आज भी उनकी बात मुझे याद है, और उस याद से मेरे दिल में आग जलती रहती हैं। उसी जलन को बुझाने के लिए मैं शराबखाने जाता हूँ। न मालूम कब यह जलन बुझेगी ?

पटाचारा एकटक उपाली को ओर देख रही थी। बोली-"तुम्हारी बात सुनकर मैं मोहित हो गयी हूँ। उपाली।

उपाली चौंक पड़ा। पटाचारा की तन्मय, मुग्ध आँखों की ओर देखकर कहा मैं आपका गुलाम हूँ। पटाचारा ने और भी मोहित होकर कहा-'नहीं' तुम आदमी हो। इसलिए शायद मैंने अब तक तुमको और नौकरों की तरह नहीं देखा। आज मैं समझ गयी कि ऐसा क्यों हुआ। पिताजी भी तुम्हारी बहुत तारीफ करते हैं, उपाली।"

टूटी आवाज में उपाली ने कहा-'यह उनकी कृपा है, मैं जानता हूँ कि मैं अब केवल एक गुलाम हूँ - एक गुलाम, जिसमें कोई गुण नहीं हैं। "ढलते हुए सूर्य की धुंधली रोशनी में उपाली का चेहरा और भी म्लान दीखने लगा।

पटाचारा बोली-मेरी एक बात मानोगे, उपाली ?

उपाली ने जबाब दिया-आप जो भी कहेंगी, उसे मानने के लिए मैं बाध्य हूँ।

पटाचारा बोली-यह मेरा हुक्म नहीं, अनुरोध है। तुम अब शराब न पिया करो।

उपाली चुप रहा।

मैं जानती हूँ, उपाली, कि अपने पिछले दुःख की याद से तुम बेचैन हो जाते हो। तुम्हारा कष्ट, तुम्हारी जलन मैं समझती हूँ।''

उपाली अब भी चुप रहा।

जब तुम्हारा दुःख असह्य हो जाय, तो मेरे पास आ जाया करो। मैं तुम्हारे दुःख में तुम्हारा साथ दूँगी।

चौंककर उपाली ने आँख उठाई। ''यह आप क्या कह रही हैं ?''

ठीक कह रही हूँ। तुम अब शराबखाने न जाना। कहो, न जाओगें। बहुत देर तक उपाली चुप रहा। फिर बहुत सोच कर कहा-मुझे चालीस दिन का समय दीजिए। फिर मैं आपको बताऊँगा। अब मैं जाऊँ काम का वक्त हो गया।

उपाली चला गया।

पटाचारा वैसे ही बैठी रही। वह विस्मित और साथ ही विमोहित भी हो गई थी। कैसा विचित्र आदमी था उपाली।

चालीसवां दिन आया। दोपहर में छज्जे के पास खड़ी होकर पटाचारा ने उपाली को बुलाया। उपाली खड़ा था। खड़ा-खड़ा सोच रहा था कि जिस कारण उसने पटाचारा से चालीस दिन का समय लिया था, वह क्या वह जान पाया है ? क्या उसे विश्वास हो गया कि पटाचारा सचमुच उसके मन की पीड़ा दूर कर सकेगी ?

इशारा उसे मिला था, इन चालीस दिनों के अरसे में और भी मिला। पटाचारा ने बार-बार उसे बुलाया, बार-बार यूँ ही उसके साथ बातें, हंसी मजाक किया और कितनी अधिक बातें की, कि नौकरों के बीच ही इस बात पर काना फूसी होने लगी थी। हाँ, विरुढ़क या गौतमी के कानों तक अभी बात नहीं पहुँची थी। उन लोगों ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया। उनकी उम्र ढल गई थी अब वे अपने काम में ही मग्न रहते थे। और उनका बचा-खुचा समय भगवान तथागत् की चिन्तन में बीतता था। खासकर विरुढ़क धीरे-धीरे घर गृहस्थी से अगल होते जा रहे थे। संघ में भिक्षुओं के साथ ही वह अधिक समय बिताना चाहते थे। जैसे अनाथ पिण्डक ने चौंवन करोड़ स्वर्णमुद्रा लगाकर एक सुन्दर बिहार बनाया था, वैसे ही एक बिहार बनाने की इच्छा उनके मन में भी थी।

उतना धन वे भले ही खर्च न कर सके पर काफी बड़ी रकम खर्च करने की इच्छा उनकी भी थी। पटाचारा की उम्र अब यौवन में पहुँच गई थी, इस

ओर भी उनका ध्यान न जाता, यदि गौतमी उनको याद न दिलाती कि लड़की के विवाह का समय हो गया है।

अब विरुढ़क को होश आया। वह वर ढूंढने लगे। दो-एक जगह बात-चीत शुरू हो गई। पर वर के कुल, शील, स्थिति के विचार में ही समय बीतता रहा।

इसी समय पटाचारा उपाली को सिर पर चढ़ाने लगी। उपाली ने उसे मोहित कर लिया था। अब पटाचारा को मालूम हो गया कि बहुत पहले से ही वह उपाली से प्यार करने लगी थी। अब वह प्रकट हुआ। एक गुलाम को वह प्यार करती थी, इस कलंक की ओर उसका ध्यान एक बार भी न गया हो, ऐसी बात नहीं, उससे उसके जीवन में कोई भयंकर विपत्ति आ सकती थी। इस पर भी उसने विचार किया था। पर वह अपने को वश में नही रख सकती थी। जैसे-जैसे दिन बीतते गये वैसे-वैसे उपाली के प्रति उसकी आशक्ति बढ़ती गई। बचपन से ही वह अपनी इच्छा पर काबू रखने की आदि नहीं थी, इसीलिए इस समय वह बात सम्भव नहीं थी।

लेकिन उपाली शान्त था। जीवन से उसका वास्तविक परिचय था, इसीलिए वह जानता था कि एक श्रेष्ठी की लड़की से प्रेम करना उसके लिए केवल अनुचित ही नहीं बल्कि इसका परिणाम भयंकर भी हो सकता था। उसने अपने को भरसक काबू में रखा।

पटाचारा को यह बात बहुत ही खटकती थी। उपाली कभी-कभी जो उसकी उपेक्षा करता था, यह उसके लिए असहनीय हो उठा।

एक दिन जब सांझ को उपाली पटाचारा के कमरे में पीतल का दिया और चन्दन मिली धूप जला रहा था, तो पटाचारा ने उसे पास बुलाया। उपाली पास आकर खड़ा हो गया।

और पास आओ।

उपाली थोड़ा सा और पास आ गया।

और पास

अब उपाली आगे नहीं बढ़ा।

पटाचारा को गुस्सा आ गया। जो कहा करूं, सुना करो।

उपाली थोड़ा मुस्कुराया। कहिए, मैं सुन रहा हूँ।

पटाचारा ने खुद उसके पास आकर कहा -"एक बात याद आ गई, इसीलिए तुमको बुलाया।

कौन सी बात ?

पटाचारा ने फुसफुसा कर कहा -"तुम जब दिया जला रहे थे, तब तुम बहुत सुन्दर दीख रहे थे।

उपाली कांप उठा। पर, धीर, शान्त आवाज में उसने कहा। मालिक की लड़की से एक गुलाम को ऐसी बात सुननी नहीं चाहिए। और उसी समय कमरे से बाहर चला गया।

पटाचारा कुछ देर चुप खड़ी रही। फिर धीरे-धीरे कमरे के बीच एक पत्थर की बेदी पर बैठ गयी। उसका चेहरा मलिन था।

उपाली अपने को "गुलाम" "गुलाम" कहता रहता था। उसके लिए वह गुलाम नहीं था, यह बात पटाचारा उपाली को किसी तरह समझा नहीं पा रही थी। वह चिन्ता में डूब गयी।

बीच में मौका पाकर उपाली फिर उसके कमरे में आया। पटाचारा को पता नहीं चला।

देवीजी।

पटाचारा चौंक पड़ी। आंख उठाकर उसने देखा।

उपाली ने उसके मुख की ओर देखकर कहा - आप बहुत-ही सुन्दर हैं। मुझ जैसे एक मामूली गुलाम को इस तरह लालच न दीजिए।"

"लालच।" पटाचारा वैसे ही बैठी रही। उसका चेहरा पहले जैसा ही मलिन था।

उपाली कुछ देर और ठहरा। पटाचारा का मलिन चेहरा उसे बहुत खटक रहा था। काम के बीच-बीच हर समय पटाचारा का मलिन चेंहरा उसकी आंखों के आगे तैर जाता था। यह उपाली कैसे अस्वीकार कर सकता था ? फिर भी उसने अपने पर काबू रखा। बोला-"मुझसे अगर कोई अपराध हो गया हो तो माफ कीजिए।

पटाचारा ने अब पहली बार गम्भीर आवाज में कही -"नहीं" अपराध सब मेरा है। तुम जाओ।

सोच में डूबा हुआ उपाली धीरे-धीरे कमरे से निकल गया।

इसके बाद पटाचारा ने उपाली से फिर इस प्रकार की कोई बात नहीं की। आज दोपहर में उसने उपाली को ठहरने का इशारा किया। उपाली ठहर गया, पर पटाचारा ने उससे कुछ नहीं कही।

तब उपाली ने कहा-कहिए।

पटाचारा ने धीरे-धीरे रुक-रुक कर बोली - "आज तो तुम्हारी ही बोलने की बारी है। चालीस दिन का समय आज पूरा हुआ।" फिर अपने कमरे में जाते हुए बोली-कमरे में आ जाओ।"

उपाली चुपचाप उसके पीछे-पीछे कमरे में गया। वहां पहुँचकर पटाचारा पत्थर की बेदी पर बैठ गयी। उपाली खड़ा रहा। पटाचारा चुप रही, कुछ बोली

नहीं। उपाली समझ गया कि पटाचारा उससे कुछ सुनना चाहती हैं। उसने धीरे-धीरे कहा-"आपकी बात मैंने मान ली।"

"कौन-सी बात ?"

"अब मैं शराब खाने नहीं जाता। क्या आप जानती हैं कि आपके कहने के बाद मैं एकदिन भी वहाँ नहीं गया।"

"हाँ, जानती हूँ।"

"आपको कैसे मालूम हुआ ? मैंने तो आपको नहीं बताया।

पटाचारा हँस पड़ी। रहस्यमय थी वह हँसी। बोली-तुम्हारी सब बातें मैं मन-ही-मन जान जाती हूँ।

"कौन-सी बात ?"

"क्या तुम जानते हो, कि पिताजी ने मेरी शादी ठीक की है।"

"कहाँ ?"

कौशाम्बी के किसी श्रेष्ठी के पुत्र के साथ। वे लोग हमसे भी अधिक धनी है। उसका यह इकलौता बेटा है।

उपाली का चेहरा क्षणभर के लिए पीला पड़ गया। पर उसने मन का भाव छिपाकर कहा। "अच्छा तो है।"

पटाचारा एकाएक उतावली हो उठी। बोली-तुम कहते हो अच्छा है। क्या तुम जानते हो, उपाली कि वह मुझसे नाटा है।"

लम्बी पटाचारा की ओर देखकर, उपाली ने कहा-"कुछ भी हो, वह श्रेष्ठी पुत्र तो है मैं यह शादी नहीं करूँगी, उपाली, हर्गिज नहीं करूँगी।" सदा की तरह पटाचारा अशान्त हो उठी।

उपाली ने धीर, शान्त भाव से कहा-जो कि पूछने का अधिकार हमें नहीं, फिर भी मैं पूछता हूँ, कि आपकी आपत्ति का क्या कारण है ?"

पटाचारा बोली-"अधिकार तुम्हें है-अवश्य है। मैं कितनी बात तुमसे कहूँ कि यह अधिकार तुमको मिल चुका है।"

पटाचारा के उतावलेपन से उपाली भी विचलित हो गया। क्षणभर के लिए वह भी उतावला हो उठा। पर व धीरे-धीरे शान्त हो गया। बोला मुझे यही दुःख है कि आपके शादी के बाद अपनी एक भलाई चाहने वाली को सदा के लिए खो बैठूँगा। पर आपकी दया मुझे सदा याद रहेगी।"

दया। तुम इसे दया कहते हो उपाली ? दया मैंने तुम पर कभी नहीं की।"

अशान्त आवेग से पटाचारा आगे बढ़ गयी। दरवाजा बन्द करके उपाली का हाथ पकड़ कर खींचती हुई, वह बेदी के पास आयी। क्या पटाचारा पागल हो गयी थी ?

दया मैंने तुम पर नहीं की है उपाली, मैं ही तुमसे दया की भीख मांगती हूँ। तुम बड़े निर्दयी हो उपाली।''

अपने पर काबू रखकर उपाली ने कहा - बहुत बातें ऐसी हैं कि जानकर भी अनज्ञान बनने का बहाना करना ही पड़ता है।

नहीं, अब किसी बहाने की जरुरत नहीं। क्या तुम नहीं जानते, कि मैं तुमसे प्रेम करती हूँ ?

पटाचारा उपाली से लिपट गयी।

उपाली ने धीरे-से अपने को छुड़ाकर कहा - आप शान्त हो जाइये। मुझे जरा सोचने दीजिए।

पटाचारा ने बिनती की -तुम मुझे बचाओ उपाली। यह शादी मैं नहीं कर सकूँगी।

चिन्तित होकर उपाली ने कहा-मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं ठीक-ठीक समझा नहीं हूँ। मुझे जरा सोचने दीजिये। सोचने का मुझे कुछ समय दीजिए।

पटाचारा रुंधी आवाज में बोली-मैं अपना आत्म-सम्मान खो बैठी हूँ। मेरा अहंकार, अभिमान सब स्वाहा हो गया है। क्या तुम नहीं समझते, उपाली, कि दिन-पर-दिन तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कितना गहरा होता जा रहा है ? चाहों, तो मुझे मार डालो, नहीं तो मुझे बचाओ। और कहीं शादी होने से मैं बच नहीं सकूँगी, यह निश्चित है।''

पटाचारा की आयु कम थी। संसार का अनुभव भी उसे कम ही था। निर्दय संसार की कठोरता से उसका अभी सामना नहीं पड़ा था। इसीलिए उपाली को ही पटाचारा के लिए सोचना जरूरी था। गम्भीर चिन्ता में निमग्न होकर, उपाली ने धीरे-से कहा-''मैं सब जानता हूँ, सब समझता हूँ। फिर आप मुझे जरा सोचने का समय दीजिये। इतनी जल्दी कुछ कहना मेरे लिये उचित न होगा।''

पटाचारा की आँखें डबडबा आयीं। यह बात सच थी कि वह उपाली को प्यार करती थी इस प्यार के कारण ही उसकी हठी स्वभाव बहुत कुछ शान्त हो गया था। उसका अपने मन की करना भी कम हो गया था। यह उपाली ने भी देखा था। इधर गौतमी से भी पटाचारा का यह परिवर्तन छिपा नहीं रहा। उन्होंने सोचा कि उसके विवाह योग्य हो जाने के कारण ही यह परिवर्तन हुआ है, विरुढ़क से उन्होंने तभी कहा था कि जल्दी ही कोई वर ढूंढे।

कौशाम्बी का श्रेष्ठी पुत्र। हर तरह से वह पटाचारा के योग्य था। कद में थोड़ा नाटा था, तो इससे क्या हुआ? विरुढ़क ने शादी की बात करीब-करीब पक्की कर ली।

उपाली चला गया। आज पटाचारा को कुछ शान्ति-सी मिली। उपाली से उसने अपने मन की सब बातें कह दी थीं।

सात दिन बीत गये।

पटाचारा के विवाह की तैयारियाँ हो रही थी। घर में शोर-गुल मचा रहता। निश्चित हुआ कि कौशाम्बी में ही विवाह होगा। विवाह का दिन भी तय हो गया। जेठ के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को सन्ध्या समय विवाह संस्कार सम्पन्न होगा।

विरुढ़क सामान जुटाने में लगे हुये थे। गौतमी उन्हें जैसे-जैसे बताती जाती थी, वह प्रतिदिन उसी के अनुसार कुछ-न-कुद सामान खरीद लाते थे। जान पड़ता था, कि विरुढ़क इस विवाह में काफी खर्च करेंगे।

इतनी हलचल, इतना शोरगुल, पर पटाचारा थी अशान्त, मलिन। उसे देखने से मालूम होता था, मानों वह दीनता की प्रतिमूर्ति हो। उसमें ऐसा परिवर्तन वास्तव में आश्चर्यजनक था।

उपाली सब कुछ देख रहा था। डर के मारे वह पटाचारा के पास ही नहीं जाता था।

उस दिन रात में उपाली सबके बाद अपने कमरे में सोने जा रहा था। छज्जे से निकल कर सीढ़ी से उतरते समय न जाने क्या सोचकर वह लौट आया।

दबे पांव वह पटाचारा के कमरे की ओर बढ़ा। कमरे के पास पहुँचकर, वह रुक गया। दरवाजे की दरार से झांक कर देखा। पीतल की दीवट पर दिया जल रहा था। दीपक की रोशनी धीमी होती जा रही थी। उस धीमी रोशनी में उसने देखा-पटाचारा पत्थर बेदी पर गाल पर हाथ रखे, उदास बैठी थी।

देखकर उपाली के भीतर उथल-पुथल हो गयी। यही पहला अवसर था, कि उपाली अत्यधिक अशान्त हो गया।

उसने धीरे-से दरवाजे पर दस्तक दी।

अन्दर से पटाचारा की कोई आवाज नहीं आयी। धीरे-से दरवाजा खुल गया। पटाचारा ने दबी आवाज में पूछा कौन है ?

उपाली अन्दर आ गया। और आज उसने खुद ही दरवाजा बन्द करके सिटकनी लगा दी। उसके माथे पर चिन्ता की सिकुड़ने थीं।

पटाचारा धीरे उठकर उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। उपाली ने उसका कन्धा पकड़ कर कहा -"ये मेरी अन्तिम भेंट है। आज रात मैं यहाँ से भाग जाऊँगा।

क्यों ?

तुम जब चली जाओंगी, तो इस महल में रहना, मेरे लिए असम्भव हो जायेगा। इसलिये मैं भाग जाऊँगा। इस राज्य में रहने से मैं पकड़ा जाऊँगा और

गुलाम होकर भागने के जुर्म में मुझे दण्ड दिया जायेगा। इसीलिये मैंने निश्चय किया है कि श्रावस्ती के आलवीनगर को जाऊँगा। उस शहर को मैं जानता हूँ। वहाँ मेरा एक मित्र है। तक्षशिला में हम एक साथ पढ़ते थे।

पटाचारा चुपचाप उसके मुख की ओर ताक रही थी।

उपाली समझ गया। उदास होकर कहा-तुम शादी करके सुखी होओ, पटाचारा। आज पहली बार उपाली ने नाम लेकर उसको पुकारा।

पटाचारा हँस पड़ी। "क्या तुम समझते हो, कि मेरे पास मन जैसी कोई चीज है ही नहीं ?

है। पर मन को बस में किया जा सकता है।

नहीं किसी-किसी मौके पर मन को बस में नहीं किया जा सकता।

तब ? उपाली चिन्ता में पड़ गया।

पटाचारा हँसी। रुलाई से भी करुण थी उसकी हँसी। "तब और क्या ? कुछ नहीं। यह शादी मैं नहीं करूँगी। शादी से पहले मुझे कुछ करना ही होगा। उपाली जानता था, कि पटाचारा कितनी हठी है। उसने डॉटकर कहा, क्या करोगी?

"शायद" पटाचारा धीरे-धीरे बोली-शायद शादी से एक दिन पहले लोग मेरी लाश देखेंगे।

उपाली चौंक पड़ा। बोला - छिः, ऐसी बात मन में न लाओ। बोलो, मैं क्या करूं ?

क्या करने से तुम सुखी होओगी।

पटाचारा कुछ देर सोचती रही। फिर धीरे बोली-मैं जो कहूँगी, उस पर विचार करोगे ?

"हाँ, करूँगा।"

तो सुनो। "मैं तुम्हारे साथ चलना चाहती हूँ।"

उपाली फिर बुरी तरह चौंक पड़ा। मेरे साथ। कहाँ ?

जहाँ भी तुम जाओं। पटाचारा की आवाज दृढ़ थी।

पर -

पर क्या उपाली ?

मैं तो भागकर आलवी जाऊँगा। तुम भी मेरे साथ चलोगी ?

हाँ, चलूँगी।

मैं गरीब हूँ, पटाचारा। तुम्हें ले जाकर क्या खिलाऊँगा ?

क्षण भर सोचकर पटाचारा बोली-यहाँ से जो कुछ ले चलूँगी, उससे बहुत दिन काम चल जायेगा।

उपाली का चेहरा बहुत चिन्तित हो उठा। पर उसके बाद ?''

उसके बाद क्या हुआ तुम कुछ काम-काज नहीं पा जाओगे ?

नयी जगह पर क्या कर पाऊँगा ? पहले से कैसे बताऊँ।

कुछ व्यापार तो कर ही सकोगे। हो, सकता है, कि आगे चलकर तुम भी सेठ बन जाओ और पटाचारा हँस पड़ी।

उपाली से भी हँसे बिना नहीं रहा गया।

रात गहरी हो रही थी। महल में सन्नाटा था। बाहर अन्धकार छाया हुआ था। कृष्णपक्ष की दशमी की रात थी। आकाश भी पारस की तरह गहरा काला दीख रहा था। यदि तारे न चमकते होते, तो पता भी न चलता कि आकाश है भी या नहीं।

रास्ता भी सुनसान था। केवल बीच-बीच में पहरेदारों की आवाज सुनाई दे रही थी। उस आवाज को सुनकर पटाचारा ने कहा-अगर रास्ते में हमें कोई पकड़ ले तो ?

उपाली बोला-वह मैं देख लूँगा। रिश्वत देकर पहरेदारो को मिला लेना होगा। लिच्छवी राज्य की हद में मैं शायद कहीं पकड़ा जाऊँ। तब भी वही करना पड़ेगा?

चलोगे कैसे ?

सोचते हुए उपाली ने कहा-सब इन्तजाम मैं करूँगा। तबियत अच्छी नहीं है, यह बता कर कम तुम लेटी रहना। दोपहर को ही हम लोग निकल पडेंगे। शाम तक काफी दूर निकल जायेंगे। फिर शाम के बाद अगर चौकी में खबर पहुँच भी जाय, तो वे हमें पकड़ नहीं पायेंगे। रात के अंधेरे में किसी पहरेदार को भी हमारा पता नहीं लगेगा। सबेरे तक हम इस राज्य की सीमा पार कर जायेंगे। आर्यरवती नदी पार कर हम कौशल राज्य में पहुँच जायेंगे।

पटाचारा बोली- श्रावस्ती से वह कितनी दूर है ?

थोड़ा सोचकर, उपाली ने उत्तर दिया, करीब सत्तर कोस। तब हम निश्चिन्त होकर यात्रा कर सकेंगे। उधर का रास्ता मुझे कुछ-कुछ मालूम है।''

पटाचारा ने उपाली का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा -''लिच्छवी के राजा की ओर से यदि कौशल के राजा से हमें गिरफ्तार करने का अनुरोध किया गया, तो ?''

उपाली हँस पड़ा। यह असम्भव है। कौशल के राजा प्रसेनजित से लिच्छवी के राजा की दुश्मनी है। अगर अनुरोध किया भी गया, तो वे परवाह नहीं करेंगे।

पटाचारा की कोमल पीठ पर हाथ रखकर, उसे जकड़कर, उपाली ने कहा-अब मैं जाता हूँ, पटाचारा कल तैयार रहना।

एकाएक पटाचारा ने उसके चौड़ें सीने में अपना मुख छिपाकर कहा-मुझे भय-सा लग रहा है।

सीना और तानकर, उपाली बोला- भय कैसा ? मैं तो हूँ।

धीरे से पटाचारा से अपने को छुड़ाकर, उपाली चला गया।

उस रात उपाली सो नहीं सका।

पटाचारा को भी नींद नहीं आई।...

दूसरे दिन शाम से पहले ही उपाली आर्चरवती नदी के किनारे पहुँच गया। उपाली खुद ही गाड़ी चला रहा था। दो मजबूत बैंल उसने गाड़ी में जोत रखे थे। तेजी से गाड़ी चलाकर वह काफी रास्ता तय कर चुका था। गाड़ी में पर्दे के भीतर पटाचारा बैठी थी।

अब उपाली ने गाड़ी रोकी।

एकाएक गाड़ी रुक जाने से पटाचारा चौंक पड़ी।

उपाली ने पर्दे के भीतर झांक कर कहा - हम आर्चरवती नदी के किनारे पहुँच गये। उतरोगी ?

पटाचारा की जान में जान आयीं। मुख पर मुस्कान झलक उठी। बोली- लिच्छवी राज्य की सीमा पार कर चुके ?

उपाली हँस पड़ा। हाँ, आओ-उतर जाओ।

पटाचारा गाड़ी से उतर गयी।

आर्चरवती नदी के इस पार से श्रावस्ती नगर स्वप्न जैसा दिखाई दे रहा था। पटाचास कुछ देर मुग्ध आँखों से देखती रह गयी।

उपाली आकर उसके पास खड़ा हो गया। और चारों ओर कुछ ढूढ़ने लगा। पटाचारा ने धीरे से कहा -क्या देख रहे हो ?

देख रहा हूँ कि कहीं ठिकाना मिल सकता है या नहीं ?

उपाली की नजर एक जगह पर टिक गयी।

उधर कई झोपड़ियाँ दिखायी दे रही हैं। दे रही हैं न दिखाई ?

पटाचारा ने गौर से देखकर कहा - हाँ।

उपाली बोला- चलो, वहीं चलें। रात भर के लिए कहीं तो ठहरना ही पड़ेगा। नदी का किनारा खतरे से खाली नहीं हैं। डाकुओं का डर हैं।

पटाचारा डर गई। बोली-चलों, वहीं चलें। पहले जरा नदी के किनारे चलो। जरा मुँह हाथ धो लें। सिर जल रहा है।

पटाचारा को धर से बाहर धूप में निकलने की आदत न थी, सो उसे कष्ट हो रहा था। थकान से चेहरा सूख रहा था।

उपाली उसे नदी के किनारे ले गया। नदी के जल में वे दोनों मुंह-हाथ धोने लगे। जल ठण्डा था। बहुत अच्छा लगा।

उपाली ने हँसकर कहा- अगर कोई पूछे, कि मैं तुम्हारा कौन हूँ, तो क्या कहोगी? पटाचारा ने लजीली मुस्कान के साथ कहा-कहूँगी कि मेरे पति हैं।

अगर पूछे, कहाँ से आ रही हो, तब?

कहूँगी मैंके से...

उपाली बोला-"नहीं"। कहना कि महामारी के करण देश छोड़कर चली आयी। लिच्छवी राज्य में कभी-कभी महामारी होती हैं। वैशाली का नाम न लेना। कहना, वैशाली के पास जो जंगल हैं, उसी के किनारे हम लोग रहते थे। मेरे पति जंगल की देखभाल करने वाले थे। उस काम को छोड़कर अब दूसरी नौकरी की तलाश में हैं।

पटाचारा हँसने लगी। तुम कितनी बातें गढ़ लेते हो।

उपाली भी हँसा। क्या करूँ ? कोई और चारा जो नहीं हैं। सच बाते कहने से विपत्ति में पड़ जाऊँगा।

पटाचारा नदी के जल में देर तक मुँह हाथ धोती रही। उपाली ने जल्दी मचाई "चलो देर मत करो। शाम हो रही है।"

पटाचारा उठ आयी।

उपाली ने उन झोपड़ियों की ओर गाड़ी बढ़ायी। थोड़ी ही देर में वे झोपड़ियों के पास पहुँच गये।

उपाली उतर पड़ा। उसने पटाचारा को उतरने को मना किया। खुद एक झोपड़ी की ओर बढ़ गया। देखा-एक बुढ़िया दरवाजे पर बैठी थी।

वह एक प्याऊ था, और बुढ़िया वहाँ जल पिलाती थी। उपाली पास आया। बुढ़िया ने उसे गौर से देखकर कहा-क्या चाहिए बेटा ! जल !

उपाली ने जबाब दिया-नहीं, माता, ठहरने के लिए थोड़ी सी जगह चाहता हूँ। बुढ़िया ने उसे ओर गौर से देखकर कहा- क्या परदेशी हो ?

हाँ।

कहाँ से आ रहे हो ?

लिच्छवी राज्य से। जाऊँगा श्रावस्ती। बड़ी विपत्ति में पड़ गया हूँ। आज नदी पार करने का कोई उपाय नहीं है इसीलिए आपसे रहने की जगह मांग रहा हूँ।

बुढ़िया की आँख में सन्देह झलक उठा। वह बोली- मैं पास की झोपड़ी में रहती हूँ बिना यह जाने कि तुम कौन हो, मैं कैसे तुम्हें रहने दूँ ?

उपाली समझ गया, कि बुढ़िया उसे डाकू समझकर सन्देह कर रही है। उसने कहा-अच्छी बात है। मैं बाहर ही रात बिता लूँगा। आप मेरी स्त्री को थोड़ी रहने को जगह दे दीजिएगा।''

तुम्हारी क्या ? कहाँ है वह ?

बैलगाड़ी दिखाकर, उपाली ने कहा-''उस गाड़ी में हैं। अभी छोटी है। थक गयी है।

बुढ़िया उठ पड़ी। अरे, अभी तक क्यों नहीं बताया था ?

बुढ़िया ने खुद जाकर पटाचारा को गाड़ी से उतारा।

अरे, कितनी सुन्दर है बहू ? बेचारी का चेहरा उतर गया है, आओ, बेटी आओ। क्या नाम है तुम्हारा ?

पटाचारा।

कितना सुन्दर नाम है। आओ।

पटाचारा जेवर और स्वर्ण मुद्राओं का छोटा सा अपना लकड़ी का बक्सा लेकर बुढ़िया के पीछे चलने लगी। पीछे-पीछे उपाली जा रहा था।

उस झोपड़ी में रात भर के लिए उन्हें जगह मिल गयी।

झोपड़ी में जाकर, उपाली ने बुढ़िया के हाथ में दो मुद्रा देकर कहा-इन्हे रख लीजिए।

बुढ़िया ने मुद्राए लौटा दिये। नहीं, बेटा, यह नहीं हो सकता। भला मेहमानों से भी कोई पैसा लेता हैं ? आज तुम लोग मेरे मेहमान हो।

उपाली बहुत खुश हुआ।

पटाचारा का भी भोलापन बुढ़िया को अच्छा लगा।

शादी हुए कितने दिन हुए ?

लाज भरी आँखों से पटाचारा ने उपाली की ओर देखा, फिर कहा-साल भर। बुढ़िया बोली-मेरा बेटा इस समय होता, तो वह भी इतना ही बड़ा होता। मेरे घर में भी ऐसी ही सुन्दर दुलहिन आती। पर मैं ऐसी अभागिन हूँ, कि मेरे कोई नहीं है। कोई नहीं हैं। इस प्याऊ से पानी पीकर लोग जो दो-एक पैसे दे देते हैं, उसी से मेरा गुजारा होता है। मेरे जिन्दा रहने से क्या फायदा मौत भी मुझे भूल गयी है।'' बुढ़िया बहुत सीधी थी। पटाचारा को वह बहुत भायी।

बातचीत में शाम ढल गयी। बुढ़िया ने अपने हाथ से भोजन बनाया। खा-पीकर सो गये दोनों दूसरे दिन सबेरे उठकर उपाली बाहर आया। उनके रवाना होने का समय हो गया था पटाचारा भी सोकर उठी, और चलने के लिए तैयार हो गयी। पर बुढ़िया ने मना किया। बार-बार कहा दोपहर में खाना खाकर जाना। बच्ची मेरी, दिन भर कैसे भूखी रहेगी, बेटा ?

उपाली मुस्कुराया। क्या किया जाय ? श्रावस्ती जाकर सराय में खा-पी लेंगे। बुढ़िया नाराज सी हो गयी। बोली जो ठीक समझो करो। आजकल के लड़के बात नहीं मानते।

आप मेरी एक बात मानेंगी ? पटाचारा ने कहा।

कौन सी बात, बेटी ?

इस मुद्राओं को आप रख लीजिए। यह मेरी भेंट हैं ? कहकर, पटाचारा ने बुढ़िया के हाथ में मुद्रा रख दी।

बुढ़िया ने मुद्रायें ले ली। पटाचारा का मुख चूमकर, उसने उसे विदा दी।

वे रवाना हो गए। पर गाड़ी लेकर नदी पार करना सम्भव नहीं था। इसलिए घाट पर पहुँचकर उपाली ने बैलों के साथ गाड़ी बेचने की कोशिश की मल्लाहों ने ही उसे सस्ते में खरीद लिया और कुछ पैसे लेकर ही उनको पार करा दिया।

नदी पार करके वे चल पड़े। नदी से बस्ती कुछ ही दूर थी। उपाली और पटाचारा थोड़ी देर तक चलकर वहाँ पहुँच गये। वहाँ चेतवन के पास रुककर उपाली ने पटाचारा को अनाथ पिण्डक का बताया हुआ महा-बिहार दिखाया। पटाचारा इससे पहले कभी श्रावस्ती नहीं आयी थी। विस्मित होकर, वह चारों ओर देखने लगी। वैशाली की तुलना में वह शहर बहुत शान्त और सुन्दर था। पटाचारा को श्रावस्ती बहुत सुन्दर लगा।

पटाचारा अब पहले से बहुत शान्त हो गयी थी। कौन कह सकता था कि, वह वही रूवगर्विता, चंचला, वैशाली की श्रेष्ठी कन्या पटाचारा थी।

सराय में उनको एक कमरा मिल गया। वहाँ दोनों निश्चिन्त होकर आराम से बैठ गये।

सात दिन तक वो वहाँ ठहर सकते थे।

पटाचारा बहुत खुश थी। वहाँ से आलवी कितनी दूर हैं ?

माथे पर से पसीना पोंछकर, उपाली बोला-करीब सत्तर कोस होगा। उतनी दूर हम कैसे जायेंगे ?

हाँ, दूर तो है ही। बीच में बड़ा भारी जंगल भी पड़ता है। बैल गाड़ी से जाना पड़ेगा।

एकाएक उपाली की गोद में अपना हाथ रखकर, पटाचारा ने कहा-हम यहीं पर नहीं रह सकते ?

उपाली ने पटाचारा की भोली, बचपन से भरी आँखों को देखा। थोड़ा, सोचकर मुस्करा कर उसका हाथ पकड़ कर कहा - क्या यहाँ तुम्हें बहुत अच्छा लग रहा हैं ?

हाँ-बहुत।

यहाँ पर खर्च ज्यादा पड़ेगा। आलवी है छोटा सा शहर। श्रावस्ती से उसकी तुलना नहीं हो सकती है। इसीलिए सब चीजे मंहगी हैं।

होने दो।

अच्छा, मुझे थोड़ा सोच लेने दो।

तुम्हें तो कुछ सोचना ही सोचना रहता है। मैं तो यहीं पर रहूँगी। तुम एक मकान ढूढ़ों।

उपाली फिर मुस्कराया। अच्छी बात है, ऐसा ही करूँगा। पर तुम इतना उतावली क्यों हो रही हो ?

और उपाली उठ पड़ा। तुम दरवाजा बन्द करके आराम करो। मैं सब सामान लेकर आता हूँ।

पटाचारा ने लकड़ी के बक्से में से बिना गिने ढेर से मुद्राये निकाल कर उपाली के हाथ में दे दिये।

उपाली चला गया। पटाचारा दरवाजा बन्द करके कपड़े बदलने लगी। साथ में दो गठरियाँ थीं, जो ज्यादा भारी नहीं थीं। उपाली ही उन्हें ढोकर लाया था। पटाचारा ने गठरियाँ खोली। उसको कपड़ें वगैरह सब ठीक करने थे। सामान आने पर उसी को आज सब कुछ करना पड़ेगा। बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। उसके लिए यह एक दूसरा ही जीवन था। इसमें कष्ट था, साथ ही सुख भी।

पटाचारा ने ठंडी सांस ली। अब उसे अपने पिता याद आये। इस अधेड़ उम्र में क्या वह इतनी बड़ी चोट सह सकेंगे। पटाचारा अच्छी तरह जानती थी कि उसके पिता का चेहरा दु:ख से काला पड़ जायेगा। वह सोचेंगे, बहुत-कुछ सोचते रहेंगे फिर संघ में भिक्षुओं के पास जाकर बैठेंगे। उनके उपदेश सुनेंगे। सम्पूर्ण हृदय से भगवान बुद्ध की शरण लेगे। पिताजी बच जायेंगे वह मरेंगे नहीं। पर माँ ? माँ की याद आने से पटाचारा काँप उठी। इस चोट को वही नहीं सह सकेगी। वह बिस्तर से नहीं उठेगी, खाना नहीं खायेगी। दिन-ब-दिन दुबली होती जायेगी। शायद उसके प्राण भी निकल जायें।

पटाचारा अच्छी तरह जानती थी कि वह अपने माँ-बाप की कितनी लाडली, कितनी प्यारी थी। और उसी ने उन्हें इतनी बड़ी चोट पहुँचायी। वह जानती थी कि उसके पिता के पास कौशाम्बी के उस सेठ को देने लायक कोई जवाब ही नहीं रहेगा। शायद वह कहेंगे कि पटाचारा मर गयी।

वही कहें। हाँ, वह सचमुच मर गयी। पहले की पटाचारा अब नहीं रही। उपाली के प्रेम से पटाचारा का नया जन्म हुआ। यह पटाचारा बहुत ही शान्त, बहुत सहनशील हैं।

पटाचारा मन ही मन जान गयी थी कि उसे बहुत कष्ट सहना पड़ेगा। उपाली के साथ उसका जीवन सुख से बीतेगा, ऐसा सोचना ठीक नहीं था। पिता के घर में रहने और उपाली के साथ रहने में बहुत अमृत होगा। उसका इस समय का जीवन अनिश्चित था। और इस अनिश्चित वातावरण के लिये ही उसने अपने मन को तैयार किया। कुछ भी हो, उपाली से अलग होने की कल्पना भी वह नहीं कर सकती थी। उपाली को वह कितना प्यार करती थी यह केवल ईश्वर ही जानते थे।

पटाचारा की आँखें छलछला आयीं।

सब सामान ठिकाने से रखना रह गया। सब कुछ तितर-बितर पड़ा रहा। पटाचारा बहुत देर तक चिन्ता मग्न बैठी थी।

दिन ढलने लगा।

उपाली लौट आया। छोटी-मोटी चीजों के अलावा वह बिस्तर के लिये एक ऊनी चादर ही लाया था। कमरे में जाकर, वह सामान रखकर, उपाली ने पसीना पोंछा।

इस साल गर्मी बहुत ज्यादा पड़ रही थी। सारा शरीर मानो जल रहा था। बार-बार पसीना पोंछने से भी उपाली को आराम नहीं मिला।

उसने, पटाचारा से नहाने के लिये कहा।

हाँ, जाती हूँ। पटाचारा कुछ अनमनी-सी थी।

उपाली ने कहा- कहो तो, मैं ही पहले नहा आऊँ। तुम बात कभी नहीं मानती। उपाली का कहने का ढंग कुछ कठोर था।

पहले दिन ही उसे इतनी रूखाई से नहीं बोलना चाहिये था। पर वह लाचार था। धूप में रहने से उसका सिर जल रहा था। इसीलिए वह अपनी जुबान संभाल नहीं सका।

पटाचारा एकटक उसकी ओर देखती रह गयी। क्या यह वही पटाचारा थी ? उपाली भी क्या वही गुलाम था?

बहुत ही शान्त, गम्भीर आवाज में पटाचारा बोली- अच्छी बात मैं ही जाती हूँ। कहकर वह उठ पड़ी।

उपाली की समझ में आया, कि उससे अन्याय हो गया। पटाचारा का हुक्म न मानना उस समय भी उसके लिये ठीक नहीं था।

उसने पटाचारा के घाघरे का छोर पकड़कर खींचा।

पटाचारा की आँखों में उलाहना झलक उठा। बोली-छि:, छोड़ दो। उपाली उठकर उसके सामने आकर खड़ा हो गया। धूप में झुलसकर उसका चेंहरा काला

पड़ गया था। उस समय भी माथे पर से पसीना टपक रहा था। बोला-"एक बात सुनो।"

पटाचारा ने गम्भीर होकर कहा- बात सुनने का समय नहीं हैं। बहुत काम पड़ा है। मैं नहाँ आऊँ। फिर तुम नहाने जाओगे। तब तक देख आओ, रसोईघर बंद तो नहीं हो गया। हमारा खाना अभी तक नहीं लाया गया। सहज, गम्भीर स्वर में उसने यह सब कहा।

उपाली उसे ताकता रह गया। शायद वह यह सोच रहा था कि क्या यही पटाचारा है। उद्धत जीवन और लाल होठों वाली पटाचारा क्या यही है ? नहीं, उपाली वैसे पहली बार यह बात जान पाया कि वह पटाचारा मर चुकी है। उपाली को वह पटाचारा नहीं मिली। उसने जिसको पाया वह एक बहुत ही साधारण स्त्री है।

उपाली फिर ठगा गया। उसका हृदय वेदना से टीस उठा। जीवन-भर वह बार-बार केवल ठगा ही गया। कौन कह सकता था कि गुलाम की जिन्दगी से उसका यह जीवन और भी भयानक तथा कष्टकर न होगा।

दो वर्ष का दीर्घ समय बीत गया। पृथ्वी के परिवर्तन के साथ-साथ मनुष्यों में भी परिवर्तन होता ही है। यह परिवर्तन किसी के लिए दु:ख का होता है, किसी के लिये सुख का।

उपाली में जो परिवर्तन हुआ वह अत्यन्त कष्टकर था। उपाली अच्छी तरह समझ गया था कि इस जन्म के लिए उसके भाग्य की पुस्तक में दु:ख ही दु:ख लिखा हुआ है। पर उसी की ऐसी दयनीय दशा क्यों हुई ? संसार के और लोग क्या उसके दु:ख का कुछ अंश लेकर हल्का नहीं कर सकते थे ?

एक व्यक्ति ने कुछ अंश लिया था। वह थी पटाचारा। यही था उपाली का सबसे बड़ा दु:ख।

क्यों ऐसा अन्याय ? किस लिए इतना कष्ट ? उसने तो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा था। उसने केवल चाहा था एक छोटा-सा मकान और खाने को दो अन्न। इन्हीं से वह पटाचारा को सुखी कर सकता था।

पटाचारा की तुलना नहीं की जा सकती। उसने उपाली के लिए सब कुछ छोड़ा, उपाली को सब कुछ दिया। फिर भी उपाली पटाचारा को थोड़ा-सा भी सुख नहीं दे सका। पटाचारा केवल उपाली के साथ जीना चाहती थी। पर श्रावस्ती के लोगों ने उन्हें जीने का अधिकार तब नहीं दिया।

उपाली की आँखें जल रही थी। वह आज बेकार था-एकदम बेकार। उसके जीवन में सफलता का नाम-निशान भी नहीं था।

पटाचारा के सब जेवर लेकर उपाली ने व्यापार आरम्भ किया था। पटाचारा ने जेवर बदन पर से उतार कर दिया था। एक शब्द भी उसके मुख से नहीं निकला था। केवल उसने हंसकर उपाली के जाते समय कहा था- देखो, शायद कहीं-से कमा सको। अधिक लालच न करना। महीने के अन्त में यदि दस रुपये भी मिल जाये तो हमारा गुजारा हो जायेगा। मकान तो है ही।

हाँ रहने का एक मकान उसके पास था। पहले ही उपाली ने अधिक जमीन खरीद कर एक घर बना लिया था। सोचा था, यहीं पर सदा रहेगा। उस समय कौन जानता था कि दुनिया भर में उपाली की तरह अभागा दूसरा कोई नहीं था ? फिर भी पटाचारा उपाली को चाहती थी। यही बात उपाली के लिए असहनीय थी।

एक दिन उससे सहा नहीं गया। पटाचारा से बोला - मुझसे तुम घृणा करो, पटाचारा। मैं अभागा घृणा करने के ही योग्य हूँ। मुझसे घृणा करो। मुझसे प्रेम न करो, दुहाई है तुम्हारी, मुझसे प्रेम मत करो। उपाली रो पड़ा। पटाचारा को बाँहों में जकड़ कर रोता रहा। मीठी आवाज में धीरे-धीरे पटाचारा ने कहा-"तुम बहुत जल्दी उतावले हो जाते हो।

ठीक यही बात उपाली पटाचारा से कहता था। जब वे दोनों वैशाली में सेठ के घर में थे। उस समय उपाली था धीर, शान्त और पटाचारा थी चंचल, अधीर। समय का कैसा प्रभाव था। समय के बहाव ने इन दोनों के स्वभाव में कितना परिवर्तन ला दिया था।

उपाली फिर भी शान्त नहीं हो सका। बोला तुमने मुझसे प्रेम किया ? पटाचारा। जानती तो थी - मैं कितना अभागा हूँ।

पटाचारा ने बड़े प्रेम से उसका मुख ऊपर उठाकर, वैसे ही शान्त आवाज में कहा-इसीलिए तो प्यार किया था। विश्वास करो उपाली, मैं बहुत ही खुश हूँ।

उपाली चुप रहा। उसके पास कहने-सुनने को और क्या था ?

जेवर बेचकर उसने सारा रुपया व्यापार में लगा दिया था। जान की बाजी लगाकर कोशिश की थी। अथक मेहनत भी की थी। पर सब ब्यर्थ हुआ।

एक धनी सेठ ने ही फिर रोड़ा डाला। फिर एक सेठ से ही उपाली का पाला पड़ा। उपाली ने रूई का व्यापार शुरू किया था - ऐसी रूई का जिससे सूत काता जाता था। उस समय श्रावस्ती में रूई के व्यापार में जिस सेठ का एकाधिकार था, वह उपाली से जल उठा। सोचा, कौन है यह परदेशी ? रूई के व्यापार मं मेरा मुकाबला करना चाहता हैं ?

उपाली ने जिस भाव से रूई खरीदी थी, सेठ नुकसान उठाकर उससे कम दाम पर रूई बेचने लगा।

उपाली की आँखों के आगे अंधेरा छा गया। वह सेठ के पास गया। उससे उचित दाम पर रूई बेचने की मिन्नत की। सेठ ने उसको दुत्कार दिया। कहा कि, हिम्मत हो तो उसके मुकाबले में रूई बेचे।

उपाली को बहुत नुकसान हुआ। फिर एक बार उसके मन में यह बात आई कि यह सेठ लोग कितने निष्ठुर होते हैं ?

धीरे-धीरे सब जेवर उस व्यापार में स्वाहा हो गया। उपाली ने व्यापार छोड़ दिया। खाली हाथ बैठे-बैठे सोचने लगा कि अब क्या किया जाय ?...

उन दिनों पटाचारा की तबीयत अच्छी नहीं रहती थी। उपाली ने एक नौकरानी रखी हुई थी। काम करते समय पटाचारा को चक्कर आ जाता था। फिर भी वह मुंख से कुछ भी नहीं कहती थी।

उपाली सब समझता था। पटाचारा के चेहरे की ओर देखकर वह सब समझ जाता था। पर वह क्या कर सकता था ?

एक दिन उसने कहा- इस तरह अगर तबीयत खराब होती रही तो कितने दिन जीओगी।

पटाचारा हँस पड़ी-बोली, जीऊँगी क्यों नहीं ? और तबीयत क्या मेरा ही खराब है ? अपनी ओर भी देखा तुमने?

रसोई के लिए एक नौकर रख दूँ।

नहीं। क्या जरुरत है ?

सोचती हूँ, कि इस नौकरानी को भी छुट्टी दे दूँ।

क्यों ?

यूँ ही।

ऐसे ही। पटाचारा उपाली के पास आयी। उसके कन्धे पर टिककर कान के पास मुख ले जाकर कहा-ऐसे में तबीयत खराब होती ही है।

उपाली उसके मुख की ओर ताकने लगा। क्यों क्या बात है ?

हटों मैं नहीं जानती। क्या तुम नहीं समझते।

कैसे समझूं ?

वाह जी, वाह। अजीब आदमी हो। दिन-रात आमदनी के चिन्ता में लगे रहते हो। मेरी ओर देखने की भी फुरसत तुम्हें नहीं रहती।

ऐसी बात नहीं पटाचारा। जान बूझकर ही नहीं देखता। अगर देखता हूँ, तो तुम्हारा चेहरा देखकर दिल कराह उठता है। मालूम होता हैं कि मैंने ही तुमको मार डाला।

क्या बकते हो ? अच्छा बताओं तो लड़का होगा या लड़की ?

एकाएक उपाली का चेहरा खिल उठा। सच कह रही हो ?

पटाचारा का चेहरा लाल हो गया। उपाली ने फिर कहा-तब तो रसोई के लिए नौकर रखना और भी जरुरी है।

नहीं जी। अब तो कुछ रुपया-पैसे बचाने की कोशिश करनी चाहिए। आगे खर्च पड़ेगा न।

हाँ पड़ेगा तो। चिकित्सालय में पूछताछ करनी होगी कि इस हालत में कौन-कौन सी चीज खाने से तबीयत ठीक रहती है। इसके अलावा दाई की भी तलाश करनी होगी।

"तुम्हें" दौड-धूप करनी नहीं पड़ेगी। हमारी जो नौकरानी है न, वह सब कुछ जानती है।

वही सब करेगी। उसे कुछ देना पड़ेगा।

तुमने तो अभी कहा था कि उसे छुड़ा दोगी ?

यही तो सोच रही हूँ कि क्या किया जाय।

उपाली भी चिन्तित हुआ। वह समझ गया था कि नौकरानी रखने को अब उनके पास पैसा नहीं रहा। व्यापार में नुकसान होने के बाद बचा खुचा जो कुछ था वह भी शायद खत्म होने पर ही था। डर के मारे वह पटाचारा से कुछ पूछता ही नहीं था। यदि पटाचारा कह देगी, कि पैसा खत्म हो गया तो उपाली क्या करेगा ?

प्रतिदिन वह इधर-उधर नौकरी की तलाश करता। कुछ भी काम हो उसके बदले में उपाली को कुछ पैसे तो मिल जाते। पर कहीं कोई काम नहीं मिला। जिस सेठ के कारण उसका सब कुछ स्वाहा हो गया था उसके पास उपाली गया। रूई के व्यापार में उसका अच्छा अनुभव था। यदि सेठ उसको कुछ काम दे सके तो बड़ी कृपा हो। सेठ हँस पड़ा। पन्द्रह दिन बाद फिर मिलने को कहा। वही एक भरोसा था। मान-अपमान का ख्याल न था।

अब पटाचारा से यह नयी खबर सुनकर उपाली और भी चिन्ता में पड़ गया। अब तो कुछ करना ही पड़ेगा। पटाचारा के बच्चा होने वाला था। इस समय पास कुछ रुपये-पैसे होना जरुरी था। नौकरानी को भी किसी तरह रखे रहना ही पड़ेगा। अब उपाली पर और जिम्मेदारी आ पड़ी थी। वह अब बाप बनने जा रहा था। पर उसकी सन्तान का परिचय क्या होगा ?

इस प्रश्न के उत्तर उपाली के पास नहीं था। वह कैसे अस्वीकार करेगा कि उसकी सन्तान अवैध थी ? समाज उसे स्वीकार नहीं करेगा। किसी प्रकार नहीं अपनाएगा।

यदि लड़की हुई तो उसके शादी के लिए भयंकर विपत्ति का सामना करना पड़ेगा। शायद शादी होगी ही नहीं। शायद उसे नर्तकी या वेश्या होने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।

उपाली का माथा पसीने से भींग गया। क्या उसको अपनी आँखों से अपनी लड़की की यह दुर्गति देखनी पड़ेगी?

और यदि पुत्र हुआ तो ? तब तो भय की कोई बात नहीं। पुत्र ही हो। पुत्र होने से उसे शान्ति मिलेगी, संतोष होगा। ईश्वर करे उसको पुत्र ही हो। उपाली ने पटाचारा की ओर देखा।

क्या पटाचारा ने भी ये सब बातें सोची है ? वह तो अभी छोटी है। शायद इतनी गइराई तक उसने नहीं सोचा। खैर, न सोचना ही अच्छा था।

उपाली ने कहा- नौकरानी को न छुड़ाना। उसको रखे रहना ही पड़ेगा। पटाचारा चुप रही। चिन्ता से उसकी आँखें बन्द सी हो गयी। जैसे वह ऊँध रही हो।

उपाली ने बात पलटी- लड़का होने पर क्या नाम रखोगी ?

सचमुच लड़का ही होगा ? लड़का होना ही अच्छा रहेगा।

क्यों ?

पटाचारा ने कहा-लड़की होने से थोड़ी परेशानी होगी।

उपाली मानों कुछ नहीं समझा। बोला-कैसी परेशानी ?

पता नहीं।

पटाचारा उपाली से साफ-साफ कहना नहीं चाहती थी।

उपाली बोला-मैं भी अभी यही बात सोच रहा था। लड़का होना ही अच्छा होगा।

लड़का होने पर नाम रखूँगी-सुदत्त।''

ठीक है। सोचता हूँ कि लड़का होने पर तुम्हारे पिताजी को खबर भेजनी चाहिए।

क्यों ?

वह खुश होंगे।

पटाचारा का चेहरा मलिन हो गया। हाँ, शायद होंगे तो। पर इससे फायदा क्या होगा?

फायदा?...कम-से-कम वह जान तो जायेंगे कि तुम जिन्दा हो, तुम्हारे पुत्र हुआ है। तुम्हारी माँ भी खुश होंगी।

पटाचारा ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। धीरे-से कहा-कहीं नौकरी का कुछ पता चला ?

उपाली समझ गया कि पटाचारा अपने माँ-बाप के बारे में चर्चा करना नहीं चाहती। वह चुप रहा।

पटाचारा ने फिर कहा-जो कुछ है उससे ज्यादा दिन काम नहीं चलेगा।

क्या करूँ? कोशिश तो कर रहा हूँ।

कोशिश करने पर जरूर कुछ काम मिल जायेगा।

कुछ कहा नहीं जा सकता।

क्या कुछ भी उम्मीद नहीं ?

है तो।

कहा ?

रूई के व्यापार में जिसके मुकाबले में हार गया था उसी के पास नौकरी के लिये गया था। उसने उम्मीद दिलायी है।

पटाचारा का चेहरा और भी मलिन हो गया। वहाँ नौकरी न करना ही अच्छा होगा।

क्यों ?

वे लोग हँसेगे। जो मन में आयेगा तुमसे वही काम करायेंगे।

पर आदमी बुरा नहीं है।

सेठों को तुम नहीं जानते। मैं जानती हूँ।

उपाली मुस्कराया। मैं भी जानता हूँ। पर और उपाय ही क्या है ?

और कहीं पर क्यों नहीं कोशिश करते ?

हर जगह कुछ परिचय के बल पर ही जाना पड़ता है। और किसी से तो मेरा कुछ भी परिचय नहीं है। एकदम अनजान आदमी कौन नौकरी देता है ? मैं अपना सही परिचय भी तो नहीं दे सकता ?

क्यों ?

क्या परिचय दूँ ? नाम भी झूठ बताना पड़ता है।

झूठ न बोलना ही अच्छा है।

अगर झूठ न कहूँ और मालूम हो जाय कि मैं एक गुलाम था, तब ?

पटाचारा चुप रही।

उपाली ने कहा-"अच्छा, और कहीं तलाश करूँगा।

तीसरा पहर ढलने लगा। दूर की अमराई से ठण्डी-ठण्डी हवा आ रही थी।

उपाली ने खिड़की खोल दी। वह जरा ठीक से सांस लेना चाहता था। सोचते-सोचते मानो उसका दम घुटने लगा था।

पटाचारा ने खिड़की में से आकाश की ओर देखकर कहा-पिताजी को खबर दोगे क्या ?

उस समय उपाली का मन आकाश की तरह शून्य हो गया था। वह और सोच नहीं सकता था। सूनी आवाज में उसने कहा-जो ठीक समझो करो।

मैं क्या समझूँ ?

उपाली चुप रहा कोई जवाब नहीं दिया उसने।

खिड़की से वह पटाचारा के पास आया, और एकटक उसके मुख की ओर देखने लगा।

पटाचारा बोली- क्या देख रहे हो ?

इतनी ही शान्ति मुझे मिलती है।

कैसी ?

जब तुम्हारा मुख देखता हूँ, तभी मुझे शान्ति मिलती है।

पटाचारा के मुख पर मुस्कान झलक उठी। मेरी भी यही दशा है।

फिर भी न जाने क्यों मन में भय होता है।

भय। पटाचारा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें ऊपर कीं। भय कैसा ? भय ही तो पाप है। नहीं, भय मत करो। तुम ठीक कहती हो। उपाली उसके और पास आ गया। ठीक कहती हो तुम।

तुम्हीं ने तो मुझे जिन्दा रखा है, नहीं तो न जाने मेरे जीवन की क्या दशा होती? पटाचारा ने शान्त आखों से देखा। कितनी गहरी शान्ति उसके आँखों में।

कोशिश करके भी क्या उपाली संभल सका ? उसको प्रेम मिला, पर उस प्रेम को जीवित रखने के लिए मुट्ठीभर दाना क्यों न मिला ? दिन-पर-दिन उसकी दशा असहनीय होती गयी।

समय कुछ और बीत गया। पटाचारा को लड़का हुआ।

लड़का होने से दोनों खुश हुये। सुन्दर हृष्ट-पुष्ट लड़का। आँखों में शान्त दृष्टि थी। काली-काली आँखें बहुत सुन्दर। उपाली सोचता, कितना सुन्दर बच्चा है। पटाचारा ऐसी माँ ही सुन्दर बच्चा होना स्वाभाविक था।

ठीक तुम्हारी तरह है, उपाली बोला।

पटाचारा ने सिर हिलाया। उसके होठ पीले पड़ गये थे। फिर भी उसने हँसने की कोशिश करके कहा-नहीं, तुम्हारी तरह है।

उपाली ने अपने माथेपर से लम्बे-लम्बे, उलझे बालों को हटाकर कहा-यह तुम्हारी भूल है। आँखे तो देखो। कितना शान्त है। अच्छा, यह क्या रोना नहीं जानता ?

बच्चा बिलकुल रोता नहीं था। हाथ-पैर हिलाता था। खेलता था और बहुत भूख लगने पर थोड़ी-थोड़ी आवाज करता था-बड़ी मीठी-सी आवाज। रोने की आवाज जैसी नहीं।

पटाचारा बोली-हाँ, बताओ तो, यह रोता क्यों नहीं ?

तुम्हारा लड़का है न, इसीलिए।

नहीं मजाक नहीं। न रोने-से बच्चा मजबूत नहीं होता।

यह किसने कहा।

नौकरानी ने। कहती थी, शहद ज्यादा चटाओं। बदन गर्म होगा, तो रोयेगा। शहद से क्या बदन गर्म होता है?

हाँ। बहुत सर्दी में पिताजी भी चाटते थे।

क्यों ?... गर्म होने के लिये ?

हाँ। अम्मा भी कहती थी।

तो शहद चटाओं।

लाना पड़ेगा।

उपाली को धक्का-सा लगा। शहद लाना पड़ेगा। पर कैसे ? जो थोड़े-से धन थे, उनसे खाने-पीने का खर्चा चलाना ही कठिन था। फिर भी शहद लाना ही पड़ेगा। खाना वह खुद नहीं खायेगा, केवल पटाचारा, के लिये बनायेगा। लेकिन शहद तो लाना ही होगा।

उपाली ने कहा-हाँ, ले आऊँगा। आज तीसरे पहर जाऊँगा।

डरते-डरते पटाचारा बोली-कैसे लाओगे ?

जो कुछ है उसी से हो जायेगा। थोड़ा रुककर उपाली ने फिर कहा-क्या करूँ, बताओ ?

इतनी कोशिश करके भी कोई काम नहीं पा सका।

पटाचारा ने सोचकर कहा-मैं कहती हूँ, एकबार महाराज प्रसेनजीत से क्यों नही मिलते ?

डर लगता है।

क्यों ? कैसा डर ?

महाराज से डरता नहीं। डर इसलिए है कि वह जान जायेंगे कि मैं एक गुलाम रहा हूँ, और किसी सेठ की लड़की को भगाकर यहाँ आ बसा हूँ तो शायद लिच्छवि राज्य को इत्तला तो न देंगे पर स्वयं मुझे सजा देंगे।

क्यों ? सजा क्यों देंगे ?

हमारी शादी नहीं हुयी है इसलिए।

पटाचारा अवाक रह गयी। कौन कहता है कि हमारी शादी नहीं हुई ? शादी और किसे कहते हैं ?

ऐसी शादी को समाज नहीं मानता, राजा भी नहीं मानेगे। सजा देंगे। जानती हो, क्या सजा देंगे ?

क्या ?

फांसी न हुई तो चाबुक खाना पड़ेगा, या कैद होगी।

पटाचारा ने बच्चे को दबोच लिया। उपाली की ओर उससे और देखा नहीं गया। बिना देखे ही बात हलकी करने के लिए कहा-मुझे सजा नहीं देंगे ? नहीं। तुम्हें किसी आश्रम में भेज देंगे।

वाह। तुम्हारा दोष क्या था ? दोष तो सब मेरा था। मैं अगर जाकर कहूँ कि सारा दोष मेरा है, तब ?

तब क्या होगा, बता नहीं सकता। इससे पहले ऐसी घटना मैंने कभी सुनी नहीं। पटाचारा बोली-तब रहने दो। राजा के पास जाने की जरूरत नहीं।

निरूपाय होकर दोनों चुप हो गये, पटाचारा बच्चे को प्यार करने लगी। उपाली बैठा-बैठा देखता रहा। पर बैठे-बैठे दिन कैसे बीतेंगे ? उपाली के शरीर में ताकत थी। वह काम कर सकता था। फिर भी उसे काम नहीं मिला। अच्छा मजाक था।

कितनी भी तकलीफ क्यों न हो, पटाचारा के मुख पर सदा मुस्कान खेलती थी, पर अब मालूम होता था कि वह मुस्कान भी ओझल होने वाली थी। पटाचारा से अब और मुस्कराया नहीं जाता था। दारूण गरीबी से वह दुबली होती गयी, फिर भी हँसती रही, पर अब वह और हँस नहीं सकती थी।

उनकी दुर्दशा कैसी असहनीय हो गयी थी, पटाचारा का चेहरा देखकर इसका पता चलता था। कोशिश करके भी वह मुस्करा नहीं सकती थी, जब देखती थी कि दिनभर पसीना बहा कर उसके बच्चे के लिए उपाली थोड़ा सा जौ भी नहीं ला सकता था। दूध तो दूर, थोड़ा-सा जौ का पानी औंटाकर अगर बच्चे को नहीं पिलायेगी तो वह बचेगा कैसे ? बच्चे की चिन्ता से पटाचारा के मुख पर से मुस्कान गायब हो गयी।

अपनी तबीयत की वह परवाह नहीं करती थी। ढाई साल पहले वैशाली के महल पर, छज्जै के खम्भे से टेक लगाकर जो पटाचारा राहगीरों की दृष्टि आकर्षित करती थी जिसका अद्‌भुत यौवन, भौरें जैसी काली-काली आँखें किसी भी रूपवती को ईर्ष्यालु बना देती थी, वही आज फटे, मैले कपड़े पहले हुए एक श्रीहीन, निर्धन व्यक्ति की पत्नी थी। उसके होंठ उन दिनों रक्त जैसे लाल थे पर अब पटाचारा के शरीर में रक्त था ही नहीं। सिर उठाने में भी उसको कष्ट होता था।

कठिन सिर दर्द से पटाचारा रात में कराहती रही। पास में उपाली जागकर भी चुपचाप लेटा रहा। सुनकर भी नहीं सुना। वह बैद्य के पास गया पर बैद्य

के कथनानुसार अगर खाना नहीं खिला सकता तो वैद्य के पास जाना बेकार था। इसीलिए फिर नहीं गया। आँखों के सामने पटाचारा को कराहते देखकर भी वह चुपचाप लेटा रहता। जरा-सा भी नहीं हिलता था। उसे हिलने में भय होता था-कि कहीं पटाचारा को मालूम न हो जाय कि वह जाग रहा था, क्योंकि कराहने से जो थोड़ा-सा आराम पटाचारा को मिलता था, तब वह उसे भी दबा लेगी। उतना भी आराम बेचारी को नहीं मिलेगा तब।

भले ही पटाचारा सोचे, कि वह सो रहा है। वह निष्ठुर है, निर्दय है-यही पटाचारा सोचे। काश, ऐसे ही पटाचारा के मन में उसके प्रति कुछ घृणा का भाव आ जाय।

उपाली पाषाण हो गया था। वेदना सह-सह कर उसका मन पत्थर हो गया था। आजकल एक पत्थर-सा हृदय लिए उपाली घर पर पड़ा रहता था। घर छोड़कर वह चला जाना चाहता था। शायद अब तक वह चला भी जाता, पर उसे केवल पटाचारा की मृत्यु की प्रतीक्षा थी। उसके चले जाने से पटाचारा शान्ति से मर भी नहीं सकेगी। केवल इसीलिए उपाली अब तक घर छोड़कर गया नही था।

दिन बिताये नहीं बीतते थे। अब तो भूख के मारे बच्चे का रोना भी असहनीय हो गया। पटाचारा का चेहरा भी धीरे-धीरे पथराने लगा फिर भी वह मुख से कुछ नहीं बोलती थी। कभी-कभी वह सोचती थी कि उसे भीख मांगना ही पड़ेगा। इसके अलावा पटाचारा के लिए और चारा ही क्या था ? सेठ की लड़की की शायद यही अन्तिम दशा होगी। कोई उपाय नहीं था। बच्चे को बचाना ही होगा। बच्चे को बचाने के लिए पटाचारा सब कुछ कर सकती थी।

और उस दिन पटाचारा सचमुच सड़क पर निकल पड़ी। इधर-उधर घूमती रही। घूमते-घूमते सड़क के किनारे पेड़ के नीचे वह कई बार बैठी फिर भी वह भीख किसी से न मांग सकी। थककर घर लौट आयी। सामने दरवाजे पर ही उपाली बैठा मिला। उसे देखकर उपाली उसके सामने आकर खड़ा हो गया।

कहा गयी थी ?

उपाली के आवाज में कितनी रूखाई थी। क्या वह उस पर शक कर रहा था ? पटाचारा रो पड़ी। रोते-रोते वह गिरी जा रही थी। उपाली ने उसे थाम लिया।

रोने के बाद पटाचारा का दिल थोड़ा हल्का हुआ। अब उसने कहा- गयी थी भीख मांगने, पर मांग नहीं सकी- किसी तरह नहीं मांग सकी। होठ तक आकर शब्द अटक गये। पटाचारा फिर रोने लगी।

उपाली की आँखों में भी आंसू था। वह पटाचारा को पकड़कर कमरे में ले आया। जल पिलाकर, उसे स्वस्थ कर, उपाली ने धीरे-से कहा- सुनो, पटाचारा। एक उपाय शेष है।

बताता हूँ, सुनो।

कहो।

तुमको बचना ही होगा। बच्चे को भी बचाना होगा। चलो, मैं तुम दोनों को तुम्हारे पिता के पास पहुँचा दूँ। वह तुम्हें जरूर क्षमा कर देंगे। मुझे वह कभी क्षमा नहीं करेंगे, यह मैं जानता हूँ। इसलिए तुम दोनों का वहाँ पहुँचाकर मैं और कहीं चला जाऊँगा।

पर तुम्हें छोड़ कर-

नहीं-नहीं, पटाचारा, मेरे लिए चिन्ता मत करो। मैं भी अकेला ठीक रहूँगा। कभी-कभी बाहर से तुम्हें देख लूँगा। तुम बच्चे को लेकर छज्जै पर खड़ी हो जाना। मैं थोड़ा-सा देखकर चला जाऊँगा। जैसे भी होगा, मैं तुम्हें अपना पता-बता दूँगा।

तुम क्या करोगे ?

अभी कुछ निश्चित नहीं किया। कुछ-न-कुछ काम जुटा लूँगा। कुछ तो कर ही लूँगा। मेरे लिए चिन्ता मत करो। बच्चे को जीने दो। तुम जी जाओ। बच्चा जब बड़ा हो, उससे मेरी बात न कहना। सुनकर वह अपने पिता से घृणा करेगा। वह मेरे लिए असहनीय होगा। उससे कहना, कि तुम्हारे पिता मर गए।

उपाली के ऊबड़-खाबड़ गालों पर आँसू की धारे उतर आयी। उपाली रो पड़ा। पटाचारा भी रोने लगी। बोली-मुझे सबसे ज्यादा दुःख इस बात का है कि हम हार गये!

नही, हम हारे नहीं। हमारी जीत हुई है। हमारी इस सन्तान ने हमें जिता दिया। अब तुम्हारे पिताजी तुम्हारी शादी नहीं कर सकेंगे।

बच्चे के होठ पर उपाली ने अपनी एक उँगली रखी। बच्चा भूखा था। वह उपाली की अँगुली चूसने लगा। उपाली मुस्कराया। कैसी उदास, कैसी दर्द भरी थी उसकी मुस्कान।

उपाली बोला-जौ लाया हूँ। औटा दो।

पटाचारा ने धीरे-धीरे उठने की कोशिश की।

अच्छा तुम रहने दो। मैं ही औटाये देता हूँ।

पटाचारा फिर भी उपाली को पकड़ कर उठी। उसको बिठा दिया।

कहा-कब चलोगे ?

"कल ही चलो।"

इतने दिन बाद पटाचारा राजी हुई। बोली-अच्छी बात है...

दूसरे दिन सबेरे ही वे घर से निकल पड़े। पटाचारा ने कुछ-भी साथ न लिया। एक फटे घाघरे में बच्चे को लपेट लिया। उपाली ने भी कुछ साथ नहीं लिया। लेने का उपाय भी नहीं था। बैलगाड़ी से जाना नहीं होगा। पैसे थे नहीं। पैदल जाना पड़ेगा। खाली हाथ चलना आसान रहेगा। इसीलिए साथ कुछ न लेना ही अच्छा था। जाने से पहले पटाचारा अपनी सजी हुई गृहस्थी को बार-बार देखने लगी। बोली-लौटकर तुम यह सब बेच देना।

उपाली बोला-क्या मकान भी बेच दूँगा।

हाँ। उससे कुछ दिन तुम्हारा काम चल जायेगा।

उपाली ने कुछ नहीं कहा-शायद कह नहीं सका। इन सारी व्यर्थताओं के लिए उपाली ही जिम्मेदार था। वह जानता था कि जहाँ पर वह अपने स्त्री पुत्र को पहुँचा आयेगा वहाँ वह कभी मुख न दिखा पायेगा। फिर भी उसे उन्हें ले ही जाना पड़ेगा। कैसी निष्ठुर है नियति।

चलते-चलते पटाचारा को दो-बार रुकना पड़ा। वह बहुत ही कमजोर हो गयी थी उसके शरीर में जैसे खून था ही नहीं।

उपाली ने सोचा कि जरूरत पड़ने पर वह दोनों को गोद में उठाकर ले जायेगा। इतनी ताकत अभी भी उपाली में थी। वह बिल्कुल बेकार नही हो गया था। दोपहर में थोड़ा पहले ही वे आर्चरवती नदी के उस पार पहुँच गये। पटाचारा ने स्नान किया। उसको थोड़ा आराम मिला। उसने कहा-दोपहर भर आराम कर लें।"

नहीं। थोड़ी ही देर आराम करो। शाम से पहले ही हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिये।

कितनी दूर है ?

होगा कोई पचास कोस

पटाचारा डर गयी। एकदिन में इतनी दूर जा सकूंगी ?

हाँ, हाँ, क्यों नहीं ? बीच में अगर कोई बैलगाड़ी आती दिखायी देगी तो तुम्हें उस पर बिठा लेने को कहूँगा। तुम्हें देखकर शायद गाड़ी वाले को दया आ जायेगी।

अच्छी बात है।... हाँ, सुनो, उस प्याऊ में चलोगे ? वह बुढ़िया शायद वहाँ हो।

अच्छा, चलो।

आते समय जिस बुढ़िया की झोपड़ी में उन दोनों ने रात बिताई थी, अब नदी के किनारे से वे उसी ओर बढ़ने लगे। उपाली ने बच्चे को गोद में ले लिया। प्याऊ के पास जाकर देखा, वहाँ एक नौजवान बैठा था। उपाली पास गया। नौजवान ने पूछा-जल पियेंगे ?

उपाली ने चारों ओर देखकर कहा-यहाँ पर एक बुढ़िया रहती थी। वह कहाँ है ? नौजवान मुस्कराया। "वह तो मर गयी। अब इस प्याऊ पर मैं हूँ।"

उपाली को मानों काठ मार गया। पटाचारा भी कुछ कह नहीं सकी। वे वहाँ से लौट पड़े।

जाड़े की दोपहर थी। नदी किनारे के रेती-भरे मैदान में जोर-जोर की हवा बह रही थी। हवा के झोकों में मानो बुढ़िया का खेद सुनाई दे रहा था। चारों ओर दोपहर का गहरा सन्नाटा छाया हुआ था।

पटाचारा ने उपाली का हाथ पकड़ लिया। उसका हाथ बर्फ जैसा ठण्डा था। उपाली बोला-क्या हुआ ?

मुझे डर लग रहा है।

क्यों ?

मालूम होता है, जैसे वह बुढ़िया मेरे पीछे-पीछे आ रही है, पीठ पर जैसे उसकी सांस लग रही है।

उपाली ने पीछे मुड़कर देखा। हंसकर कहा-कुछ भी तो नहीं है। जाड़े की ठण्डी हवा है, और कुछ नहीं है। यह तुम्हारा बहम है।

कमजोर शरीर ढोती हुई, पटाचारा उपाली के साथ-साथ चलने लगी।

आर्चरवती नदी पीछे छोड़कर, वे जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर चल रहे थे। बीच-बीच में पटाचारा पीछे रह जाती थी। कभी-कभी थकान दूर करने के लिये बैठ जाती थी।

कमजोरी के कारण उसकी आँखें बन्द हो-हो जाती थी। क्या वह इतनी दूर चल सकेगी ?

पैर उसके बोझिल हो गये। सांस लेने में भी कष्ट हो रहा था। कमजोर सीना धौंकनी की तरह चल रहा था। वह फिर बैठ गयी।

उपाली भी उसके साथ आकर बैठ गया। उसके माथे पर से बालों को भिंगोकर पसीने की जो बूदें टपक रही थीं, उपाली ने उन्हें पोंछ दिया। धीमी आवाज से पूछा - बहुत कष्ट हो रहा है।

हाँफती हुई पटाचारा ताकती रह गयी। उससे कुछ बोला नहीं गया।

उपाली ने कहा-यहीं बैठो कुछ देर। देखूँ, शायद वैशाली को जाने वाली कोई बैलगाड़ी इधर से जाती दिखायी दे जाय। उस पर तुम्हें बिठा दूँगा।

बच्चे को पटाचारा की गोद में देकर, वह उठा। समय बीतता गया। किसी गाड़ी का नामोनिशान भी नहीं था। तो क्या उन्हें वही पर दिन बिताना होगा ?

और फिर रात आने पर वे कहाँ आश्रय लेगें ? कौन उन्हें आश्रय देगा ?

पटाचारा खुद उठकर खड़ी हो गयी।

उपाली ने पूछा-उठी क्यों ?

चलो। अब चल सकूँगी।

उपाली भी उठ पड़ा। उसका हाथ पकड़ कर, प्यार से कहा-थोड़ा और कष्ट करो फिर रात में महल में पहुँचकर अपने कमरे में लेटोगी, जी-भर कर खाओगी, सोओगी।

पटाचारा की आँखों में आशा की ज्योति झलक उठी। शरीर में उसके थोड़ी-सी ताकत आ गयी। फिर से वह राह पार करने लगी। राह का जैसे अन्त ही न हो। आते समय इतनी देर नहीं लगी थी। अब क्यों इतनी देर लग रही है? कब वे वैशाली पहुँचेगे ?

तीसरे पहर एक बड़े-से मैदान के पास पहुँचकर, वे आराम करने बैठ गये। पास की छोटी बस्ती से मिट्टी की हड़िया में उपाली दूध ले आया। बच्चा हाँफ रहा था। उसको दूध पिलाना जरूरी था।

ढेर-सा दूध था। बच्चे के लिए उपाली किसी गृहस्थ के घर से मांग लाया था। पटाचारा की आँखों में खुशी झलक उठी। उपाली भी खुश था।

बच्चे को पिलाकर दूध बच गया।

पटाचारा ने कहा-थोड़ा-सा तुम पी लो।

उपाली बोला-नहीं तुम पिओ।

दोनों एक-दूसरे को पिलाने की कोशिश करने लगे। अन्त में उपाली ने जबरदस्ती पटाचारा को पिला दिया। पटाचारा के शरीर में थोड़ी ताकत आयी।

अब ज्यादा दूर नहीं है, उपाली बोला-इस मैदान को पार करने के बाद वैशाली के पास पहुँच जायेंगे।

आशा-केवल आशा।

उन लोगों ने मैदान पार कर लिया।

सन्ध्या होने से पहले ही वे वैशाली पहुँच गए। उपाली ने अपना मुख आधा ढाँक लिया। ताकि कोई पहचान न ले।

जैसे-जैसे विरूढ़क का महल पास आता गया, वैसे-वैसे पटाचारा का मुख सूखने लगा।

उपाली के शरीर से सटकर चलते हुए, उसने कहा-चलो, लौट चलें। वहाँ आने की जरुरत नहीं।

उपाली मन की गहराई में डूबकर न जाने क्या सोच रहा था। चौंक कर कहा-क्यों ?

पटाचारा ने अपनी आँखें पोंछी। रूँधी हुई आवाज में बोली-तुम्हें फिर कभी देख जो न पाऊँगी।

उपाली की आँखें भी आँसू से भींग गयी। कठिनाई से अपने को संभालकर, उसने कहा-मैं आऊँगा। बीच-बीच में आता रहूँगा। अगर अच्छा नहीं लगे तो यहां से फिर निकल चलना।

फिर क्या निकल सकूँगी ? तुम कब आओगे ?

ठीक-ठाक कैसे बताऊँ ? एक काम करना। प्रतिदिन दोपहर के समय पहले जैसे अपने छज्जे पर खड़ी होती थी। वैसे ही खड़ी होती रहना। मैं आऊँगा।

महल की चहारदीवारी के पास एक बड़े से पेड के नीचे उपाली बैठ गया। बोला-अब तुम अकेली जाओ। मैं आगे नहीं जाऊँगा।

पटाचारा ने उपाली से विदा ली। चलते-चलते बार-बार पटाचारा पीछे मुड़-मुड़कर देखती जाती थी।

पटाचारा डरती-डरती जाकर, महल के सामने खड़ी हो गयी। इसी महल में पटाचारा ने कितने साल बिताये थे। इसी महल की लड़की थी वह।

धीरे-धीरे वह महल के सामने जाकर खड़ी हो गयी। बार-बार सोचने लगी कि अन्दर जायें या नहीं।

जाड़े की शाम थी, पर उसकी हथेलियां पसीज रही थीं। बदन सुन्न पड़ गया था। उससे और खड़ा नहीं रहा जा सकता था। अन्दर जाकर यदि मालूम हो कि उसके पिता जी नहीं हैं, तो ? यदि मां भी न हों, तो पटाचारा क्या करेगी ?

कौन ? यह कौन दरवाजे की तरफ आ रहा था ? बहुत ही धीमी चाल से यह कौन दरवाजा की तरफ जा रहा था ? विरूढ़क ही तो थे।

पिताजी। पटाचारा के मुख से किसी तरह आवाज निकली।

कौन ? विरूढ़क ने चौंक कर देखा।

दरवाजे के पास जाकर, पटाचारा पर उसकी नजर पड़ी। विरूढ़क बूढ़े हो गये थे। शायद बौद्ध संघ से अभी लौटे थे। चेहरा उनका शान्त था। पटाचारा की ओर देख कर कहा-कौन है ?

पिताजी। पटाचारा की आवाज रूंधी हुई थी।

पटाचारा का चेहरा देखकर पहचानना कठिन था। विरूढ़क और पास आये, गौर से देखा। फिर धीरे-धीरे पीठ फेर कर कहा-कौन हो तुम ?

मैं-मैं पटाचारा हूँ।

झूठ। पटाचारा तो मर गयी।

मैं लौट आयी पिताजी।

मेरी लड़की मर चुकी है। उसके लौटने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। बूढ़े विरूढ़क के आवाज में विचित्र दृढ़ता थी।

आपके पास आश्रय के लिये आयी हूँ, पिताजी।

बूढ़े विरूढ़क की आवाज उस अंधेरे में तीखी बरछी की तरह पटाचारा की छाती में चुभ गयी मेरे इस घर में तुम्हारे लिए जगह नहीं है। हाँ, बच्चे को छोड़ जा सकती हो।

पटाचारा वहीं पर बैठ गयी। उसके पैर थर-थर कांप रहे थे। उसकी आंखें खुश्क थीं। सारा शरीर जमकर बर्फ की तरह ठंडा हो रहा था।

धीमें पर अविचलित स्वर से पटाचारा बोली-"ऐसा ही हो। तुम्हारे नाती को छोड़े जा रही हूँ। इसका परवरिश करना। बड़ा होने पर इससे कहना कि इसके माँ बाप मर गये। मैं फिर कभी न आऊँगी।

बच्चे को जमीन पर बिठाकर पिता को प्रणाम कर पटाचारा उठ पड़ी। धीरे-धीरे अंधेरे में आगे बढ़ने लगी।

बूढ़े विरूढ़क ने जब अपनी पीठ फेरली। चादर के छोर से आँखें पोंछी। धीरे से आगे बढ़कर बच्चे को उठाकर सीने से जकड़ लिया। फिर वह महल के भीतर चले गये।

उपाली एक पेड़ के नीचे बैठकर इन्तजार कर रहा था। महल की ओर वह गौर से देखने की कोशिश कर रहा था। बच्चे को लेकर पटाचारा अन्दर गयी या नहीं, यही वह जानना चाहता था। पर कुछ दीख नहीं रहा था। क्या वह कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात थी।

उपाली उठ पड़ा। मुख अच्छी तरह ढककर, धीरे-धीरे आगे बढ़ा।

वह रहा महल। पर दरवाजे के पास तो कोई भी दिखायी नहीं दे रहा था। क्या वे अन्दर चले गये ?

उपाली का दिल जैसे सूना हो गया।

बहुत ही गौर से देखता हुआ, वह थोड़ा और आगे बढ़ा। यह कौन ? रास्ते में किनारे सिर ढक कर कौन बैठी थी ? तेजी से आगे बढ़ा, तो देखा वह पटाचारा थी। थरथर कांप रही थी पटाचारा। शायद उठने की भी ताकत नहीं थी।

उपाली ने एक शब्द भी नहीं कहा। पास जाकर उसे गोद में उठा लिया, और जल्दी से उसी पेड़ के नीचे ले आया। गोद में उसे लिटाकर, उपाली ने उसके मुख पर हाथ रखा।

पटाचारा के मुख से थोड़ी आवाज निकली-यन्त्रणा से रूंधी हुई आवाज।

बच्चा कहां है,

उसके नाना को दे आयी। पटाचारा की आवाज बहुत धीमी थी।

तुम नहीं रूकी।

पटाचारा के मुख से फिर कुछ आवाज सी निकली। रोने की आवाज नहीं थी वह। एक डरावनी, सी आह भरी आवाज थी।

थोड़ा-सा सोचकर, उपाली ने कहा-समझ गया। तुम्हें निकाल दिया।

दोनों हाथों से सीना दबाकर, पटाचारा कराह उठी।

क्या हुआ ?

सीने बहुत दर्द हो रहा है। सांस नहीं ली जाती।

उपाली डर गया। एक तो पटाचारा अस्वस्थ और कमजोर थी जिस पर दिन भी उसको चलना पड़ा। अब उसकी तबीयत बहुत खराब हो गयी थी। वहां पर टिकना खतरनाक था। जैसा भी हो वैशाली की सीमा पार करना ही होगा।

रात हो गयी थी। दीवार के बाहर-ही-बाहर चलना अच्छा था। पटाचारा को कन्धे पर उठाकर, उपाली जल्दी-जल्दी चलने लगा।

शहर के बाहर ही वह मैदान था-बढ़ा-सा अंधेरा मैदान। उस मैदान को पार किये बिना किसी दूसरे शहर में किसी के घर में आश्रय मिलना असम्भव था।

कन्धे पर पटाचारा को लिए उपाली तेज कदमों से आगे बढ़ा। जाड़े की वर्षा जैसी ठंडी हवा से उसका शरीर जकड़ा जा रहा था। वह बहुत ही तेज चल रहा था।

आश्रय चाहिये-थोड़ा-सा आश्रय। थोड़ा सा खाना। पटाचारा को बचाना ही होगा।

उपाली ने मैदान पार किया। दूर पर किसी शहर की रोशनी दिखायी दे रही थी। उपाली वहाँ पहुँच गया। ठंडी सांस लेकर, वह कंधे पर से पटाचारा को उतारने लगा।

पर वह क्या ? उपाली के दिल के भीतर सारा खून मानों जम गया। वह यह क्या देख रहा था ? पटाचारा के सारे शरीर को मानों काठ मार गया हो।

पटाचारा। उपाली चीख पड़ा।

उसकी गहरी चीख की आवाज मैदान की ठंडी हवा में फैलकर खो गयी।

उपाली फिर चीख पड़ा-पटाचारा।

पटाचारा चुप थी। अब वह फिर कभी नहीं बोलेगी। उपाली की मुख की ओर अब वह कभी नहीं ताकेगी।

अंधेरे मैदान में उपाली की ठंडी सांस हवा में मिल रही थी।

पटाचारा का शव कंधे पर उठाकर उपाली धीरे-धीरे चलने लगा। मानों किसी विराट शून्य को पार कर वह चल रहा था। वह केवल चल ही रहा था-न कुछ सोचता था, न कुछ देखता था, एक भारी शून्य में डूबा हुआ चला जा रहा था।

पौ फटने में अभी देर थी। आर्चरवती नदी के किनारे पर, उपाली खड़ा हो गया। फिर पटाचारा का शव दोनों हाथों में लेकर, धीरे-से नदी के जल में बहा दिया।

क्षणभर में वह धारा में पड़कर बह गयी।

उपाली चुपचाप खड़ा रहा।

पूरब की ओर आकाश में लाली छाने लगी। उपाली की लाल-लाल आँखों की तरह दिशायें लाल हो रही थीं।

उपाली धीरे-धीरे मुड़ गया।

आर्चरवती नदी के किनारे घने जंगल की ओर वह धीरे-धीरे चलने लगा।

भगवान तथागत् की शरण में

अब मेरे सामने थी आर्चरवती की धवल धारा- जो थोड़ी दूर आगे जाकर गंगा में मिल गयी थी वक्राकार होकर। मैंने देखा-पटाचारा का शव धीरे-धीरे बहता हुआ दोनों नदियों के संगम के पास पहुँच गया था अब तक। सवेरा हो चुका था। संगम के किनारे चार पाँच भिक्षु-स्नान ध्यान कर रहे थे। सहसा एक युवा भिक्षु की दृष्टि धारा में बहते हुये पटाचारा के शव पर पड़ी। उसने सोचा कि कोई स्त्री नहाते समय पानी में डूब गयी होगी और बेहोशी की स्थिति में बह रही होगी धारा में। पानी में तैर कर शव को बाहर निकाल लाया और उसका उपचार करने लगा होश में लाने के लिये। अब तक वहां अन्य भिक्षु भी आ गये थे। उपचार से लाभ हुआ। पटाचारा की सांस धीरे-धीरे चलने लगी। वास्तव में वह मरी नहीं थी। गहरी मूर्च्छा में थी। उपाली ने उसे मृत समझ कर नदी में प्रवाहित कर दिया था। थोड़ी देर बाद उसने आँखे खोल कर चारों ओर देखा और अपने आपको बौद्ध भिक्षुओं के बीच पाकर चौंक कर उठ बैठी वह। भिक्षु उसे भगवान तथागत् के पास ले गये।

भगवान तथागत का फिर वहीं शान्त सौम्य निर्विकार रूप प्रकट हुआ मेरे सामने। भिक्षुओं से घिरे हुये बैठे हुये थे पद्मासन की मुद्रा में वह। वातावरण में गहरी नीरवता और गहरी शान्ति बिखरी हुई थी चारों ओर।

पटाचारा तथागत के सम्मुख खड़ी हो गयी जाकर। उसका सिर झुका हुआ था और आँखों से झर-झर कर आँसू गिर रहे थे। निश्चय ही वे पश्चाताप और ग्लानि के आँसू रहे होंगे।

गौतम की अर्ध मिलित आँखे धीरे-धीरे ऊपर उठी आँसुओं में डूबे हुए पटाचारा के चेहरे पर स्थिर हो गयी। ऐसा लगा मानों वे स्थिर शान्त निर्विकार आँखें-जिन्होंने दुनिया के दुख कष्ट और पीड़ा की तह को पा लिया था-अपनी मूंक भाषा में बहुत कुछ कह रही हो।

मैं अपलक और स्थिर भाव से गौतम को देख रहा था। गहरी शान्ति का अनुभव कर रही थी मेरी आत्मा उस समय। काफी देर तक उनकी अभय मुद्रा सान्त्वना देती रही पटाचारा को और उनके तरासे हुये होंठ-पटाचारा की ओर देख कर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे मानों कह रहे हो -"ऐ" मेरे सामने खड़ी होने वाली असहाय नारी-तुम जिस कामना वासना और मोह के माया जाल में उलझी हुई हो, उससे हम खूब परिचित है। अचानक फफक-फफक कर रोने लगी पटाचारा और भगवान तथागत के चरणों के पास जा कर बैठ गयी। कहने लगी विचलित स्वर में - हें ! महानआत्मा! हे शाक्य मुनि: मुझे शान्ति दो शान्ति दो ! काफी दु:खी हूँ मैं। संसार दुख और क्लेश से भरा है। मैं संसार से मुक्ति पाना चाहती हूँ भगवन।

गौतम की मूक भाषा ने कहा- दु:ख क्लेश क्या है ? कुछ नहीं है। जो कुछ भी है - वह हमारा कर्म है, हमारा विचार है और है हमारा विश्वास। कर्म विचार और विश्वास - इन तीनों से मुक्त होना आवश्यक है। तभी वास्तविक शान्ति और वास्तविक आनन्द को उपलब्ध हुआ जा सकता है।

दृश्य के अन्तिम चरण में मैंने देखा भगवान बुद्ध अपने स्थान से उठ कर नदी की ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगे थे। उनके पीछे सैकड़ों भिक्षु और भिक्षुणियों की भीड़ थी। सबके पीछे थी पटाचारा। संघ में उसे स्वीकार कर लिया था। अब वह भिक्षुणी थी। बुद्धं शरणं गच्छामि - धम्मं शरणं गच्छामि संघ शरणं गच्छामि: की गम्भीर ध्वनियों से वातावरण गूंज रहा था। अन्त में धीरे-धीरे वह भीड़ मेरे मानस चक्षु से ओझल हो गयी और फिर पहले जैसा अन्धकार छा गया मेरे सामने।

एकाएक मेरी वाह्य चेतना जागृत हो उठी और उसी के साथ मेरा अस्तित्व लौट आया सुदूर अतीत से वर्तमान में। उस रहस्यमयी गुफा में पूर्ववत बैठा था मैं और मेरे सामने बैठी हुई पदमगन्धा। उस समय उनका चेहरा पहले की ही तरह शान्त और निर्विकार था। उनकी दृष्टि मुझ पर स्थिर थी। मन ही मन सोचने

लगा मैं, मेरे सामने बैठी हुई यह स्त्री क्या वही पटाचारा है, जिसका मोह-माया स्वाभिमान अहंकार और वासना कामना में आकण्ठ डूबा हुआ जीवन देखा है अभी अभी मैंने। कितना वैषम्य था ? कितना अन्तर था। हे भगवान कितना रहस्यमय है मानव। अन्धकार में कितना डूबा है उसका अतीत।

मैंने कुछ पूछना चाहा कि तभी उस रहस्यमयी गुफा के निस्तब्ध वातावरण में उस भिक्षुणी का गम्भीर स्वर गूंज उठा-तुम्हारी जो जिज्ञासा थी। जो कौतूहल था उसका समन हो गया न ?

हाँ। अब कुछ शेष नहीं रह गया है मन में। मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया।

मुझे संसार में लौटना नहीं है, अपने एक एक शब्द पर जोर देकर कहने लगी पदमगन्धा, इस शरीर का अन्त समीप है - यहाँ से मैं कैलाश जाऊँगी और वहाँ हिम समाधि लेकर इस शरीर का त्याग करूँगी तुम वापस लौटना चाहो तो लौट सकते हो।

यह सुनकर भीतर कुछ खाली-खाली सा लगा मुझे। फिर रहा न गया। विचलित कण्ठ से बोला-नहीं नहीं मैं भी चलूँगा आपके साथ। आपका साथ नहीं छोड़ सकता। छोड़ा ही न जायेगा मुझसे। आप के अन्तिम सांस तक रहूँगा आपके साथ मैं...

मुझे भी साथ ले चलिये...

पद्मगन्धा ने एक बार गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा और फिर कहा-साथ तो तुमको ले नहीं जा सकती लेकिन तुमको वहाँ अवश्य मिल सकती हूँ।

ठीक है, मैंने कहा जैसे यहाँ आया वैसे ही कैलाश भी पहुँचा जाऊँगा मैं।

गुफा के बाहर निकल कर देखा, सांझ की स्याह कालिमा फैल चुकी थी मानसरोवर के ऊपर। प्रतिपदा का चांद मान्धाता पर्वत के पीछे से झांक रहा था। साधुओं की टोली भी कैलाशयात्रा पर जाने वाली थी। दूसरे दिन मैं भी उस टोली के साथ कैलाश के लिये रवाना हो गया।

अत्यधिक शीत और अत्यधिक कठिन मार्ग। साथ में केवल एक कम्बल और एक झोला और उस झोले में जरूरत भर मामूली सामान। तीन दिन की अत्यन्त प्राणघातिनी यात्रा के बाद मैं एक नदी के निकट पहुँचा। नदी का नाम था काली नदी। वह ऊपर से जम गयी थी, लेकिन नीचे से पानी बह रहा था। सवेरे के नौ बजे थे। तापमान शून्य से दस डिग्री नीचे। एकाएक कैलाश दिखायी दिया। बादलों के बीच-स्वच्छ निर्मल - मन प्रसन्न हो गया एकबारगी। कुछ देर बाद कैलाश फिर छिप गया बादलों के बीच। टोली आगे रवाना हुई मैं भी काफी थका होने के बावजूद भी किसी प्रकार हिम्मत कर उसके पीछे पीछे चल

पड़ा। मार्ग में पड़ने वाले पहले पहाड़ को पार किया। आगे की यात्रा और अधिक कठिन थी। किसी प्रकार तारचेन पहुँचा। चारो तरफ बर्फ ही बर्फ। पेड़ पौधों का कहीं नामों निशान नहीं। लगभग छः किलो-मीटर चलने के बाद बिलकुल सामने आ गया कैलाश। एक टक देखने लगा मैं कैलास को। पलक झपकता ही नहीं था। हिलने का मन भी नहीं कर रहा था। सोच रहा था इतनी कठिना यात्रा न की होती तो यह छटा कभी नहीं देख पाता।

सचमुच अद्‌भुत छटा थी कैलास की। उस रहस्यमय वातावरण का, उसी गहरी नीरवता का-उस सन्नाटे का और उस एकान्त का, वर्णन नहीं किया जा सकता वहाँ अगर कोई सक्रिय चीजें थी तो कुछ कौवे और चील्हें। ६७१४ मीटर ऊँचा - काले पत्थर का लिंग रूपी पहाड़ जिसके ऊपर थी बर्फ की मोटी मोटी परते। यह भगवान शिव का स्थान था - जहाँ पार्वती भी थी। वैसे उनका मूल स्थान है - नन्दादेवी जहाँ से साफ दिखायी देता था। ''कैलाश'' इसका वर्णन हमारे पुराणों और काव्यों में मिलता है। विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण, हरिवंश पुराण, श्रीमद्‌भागवत, देवी भागवत, महाभारत तथा रामायण - सबने तो कैलास का वर्णन किया है, अपने अपने शब्दों में और अपने अपने भावों में। कैलाश की उत्पत्ति भगवान विष्णु ने की और मानसरोवर की ब्रह्मा ने। किसी ने भी की हो। कैलास देखकर तो एक बार वह नास्तिक भी शिव की अमूर्त कल्पना कर ही बैठेगा। जिसे हिन्दू धर्म का जरा सा भी ज्ञान होगा।

पवित्र पावन स्थल कैलाश

मैंने देखा मुख्य लिंग के पास छोटे-छोटे तीन चार और लिंग थे। नन्दीनुमा कुछ आकार भी था। जो इस रहस्य को और गहरा कर रहा था। इस पर मानव-चरण नहीं पड़े हैं। दक्षिण की ओर से यह लिंग दिखायी देता है। पश्चिम, दक्षिण की ओर से एक विशालकाय फण काढ़े नाग के समान। जहाँ पर बर्फ नहीं है। वह स्थल सूर्य की आँखों और दांत की तरह लगता है। पूर्व की ओर से परिक्रमा करने वालों को थोड़े समय-आधा किलो-मीटर तक पुनः लिंग जैसा लगता है। उत्तर की ओर से इसका पूरा रूप मन्दिर में स्थापित शिव लिंग जैसा नजर आता है।

चारों ओर से कमलदल से घिरा हो-ऐसा लगता है कैलाश। भूरी कत्थई रंग की पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा वह हिमाच्छिादित स्वयम्भू लिंग-वास्तव में कोणार्क और खजुराहों के मन्दिरों का आभास देता है-जो सम्भवतः इसी को देखकर तैयार किये गये होंगे। एक स्थान से वह मुझे बिल्कुल मन्दिर और उसके

गुम्बद के रूप में दिखलायी दिया। सारांश यह कि अगर कैलाश की परिक्रमा की जाय तो हर एक किलो-मीटर पर कैलास का रूप और उसका अन्दाज बदला हुआ दिखलायी देगा।

साँझ गहराने लगी थी। अत्याधिक बर्फिली हवा थी। कम से कम ७०-७५ किमी० की गति तो होगी ही। नीचे उतर कर "तारचेन" पहुँचा। सूरज पश्चिम की बर्फिली चोटियों के पीछे छिप चुका था। कैलास फिर भी साफ दिखलायी दे रहा था। लाल और पीले रंग के बादलों का झुण्ड उस पर से उठ रहा था फिर अंधेरा हो गया। सर्दी एकाएक बढ़ गयी।

साधुओं की टोली अब तक रूक गयी थी। चीलम से निकले हुए गांजे की गन्ध हवा में तैर रही थी। जै कैलास पति, जै भोले शंकर की ध्वनियों से वातावरण आध्यात्मिक हो उठा था।

एक साधु मुझे अपने पास बुलाकर कहा-बच्चा काफी ठंढ है, एक फूँक मार ले, बदन गरम हो जायेगा।

नहीं बाबा, मैं चीलम पीने कैलास नहीं आया हूँ। आप सब पीयो।

बाबा, बोला नहीं, बस हैरान सा मेरी ओर देखता रहा। मैं तम्बू के भीतर जाकर एक ओर सो गया। साधुओं की टोली आधी रात तक भजन कीर्तन करती रही। शायद ठंड से बचने के लिये।

तारचेन में कई गुफायें थी। जिनमें स्थायी रूप से चार पांच महात्मा निवास करते थे। उन्हीं महात्माओं में एक थे प्रणव गिरि। पिछले ६०, ६५ साल से रह रहे थे वहाँ। आयु काफी थी यही सौ के लगभग मजबूत कद काठी का स्वस्थ शरीर - जिसे देखकर सही, आयु का पता लगाना कठिन था। सिरपर जटाजूट। नंगा बदन। एक लंगोटी के सिवाय और कुछ नहीं। दप् दप् करता चेहरा। हँस मुँख मिलनसार। कोमल मधुर वाणी। एक योगी के प्राय: सभी लक्षण मिले उनमें मुझे।

कैलाश निवासी प्रवण गिरि

प्रवण गिरि से मुझे बहुत कुछ जानकारी मिली। उन्होंने बतलाया कि कैलास के चारों तरफ कभी पाँच मठ थे। आज एक भी नहीं है। केवल उनके नाम पर खण्डहर का आभास देता हुआ कुछ पत्थर है बस। तारचेन के निकट गेगंरू और शेर शुभं मठ था। यहां "तकलाकोट" के शिवलिंग मठ की तरह सम्पत्ति तो नहीं थी, लेकिन यहाँ काफी संख्या में लामा रहते थे। हर समय साधना पूजा में लीन रहते थे। अच्छा सा पुस्तकालय भी था। हर साल वैशाखी पूर्णिमा को

भारी मेला लगता था यहाँ पर। तब यहाँ के पुराने झण्डे निकाल कर नये झण्डे लगाये जाते थे। हर मठाधीश द्वारा यहाँ पूजा होती थी। मैंने अपनी आंखों से यह सब कुछ देखा है। अब तो यहां याक की टूटी हुई खोपड़िया और कुछ पत्थर भर हैं। लगता है किसी को दफनाया गया हो। कुछ पत्थरों पर तिब्बती भाषा में मंत्र उत्कीर्ण हैं। कैलाश परिक्रमा में तुमकों ऐसे पत्थरों के काफी ढेर मिलेगे। गिरि बाबा आगे बोले कैलास के पश्चिमी किनारे "छयु" नामक एक विशाल मठ था। जिसमें एक साथ सैकड़ों लामा रहते थे। सभी तांत्रिक थे। उनकी साधना पूजा वगैरह अत्यन्त रहस्यमयी थी। मठ के निकट डोलमा नाम की एक शिला है-जिस पर प्राचीन यात्रियों के दांत चिपके हुए हैं। अगले मांस से बर्फ जमने लगेगी यहाँ काफी मोटी मोटी परते होती हैं बर्फ की। धरती से आकाश तक बर्फ ही बर्फ दृष्टिगोचर होती है उस समय।

ऐसी स्थिति में आप सब लोग यहाँ कैसे रहते हैं - मैंने पूछा।

गुफा में रहते हैं, गिरि बाबा बोले - गुफा का मुंख पत्थरों से बन्द कर दिया जाता है।

पूरे तीन-चार महीने कैसे रहते हैं आप सब बन्द गुफा में ? मेरी बात सुन कर गिरि बाबा हँसे, फिर बोले - "बाहरी जगत से सर्वथा पृथक इस गुफा के जीवन का मूल्य है, बेटा। उसे एक योगी ही समझ सकता है। शरीर की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। मन भी स्थिर हो गया है। किसी भी प्रकार की इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं मन में। रही "आत्मा" की आवश्यकता। तीन चार महीने साधना में रहता हूँ। समय का पता ही नहीं चलता और आत्मा की आवश्यकता भी पूरी हो जाती है साधना से। गिरि बाबा की बातों का मर्म समझ में आ गया मेरे। बोला-बाबा। शायद शरद ऋतु के बाद ही अब मेरा लौटना हो। ऐसी अवस्था में क्या आप अपनी गुफा में प्रश्रय देंगे मुझे ?

थोड़ा रूक कर मन्तव्य स्पष्ट करते हुए आगे बोला-वास्तव में आप जैसे एकान्त सेवी योगी के सान्निध्य में रहना चाहता हूँ मैं कुछ दिन। अवसर सुन्दर है। बस आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है।

गिरि बाबा ने सिर हिला कर स्वीकृति दे दी।

दूसरे दिन गौरी कुण्ड के लिये रवाना हो गया मैं। गौरी कुण्ड में ही मिलने के लिये कहा था पद्मगन्धा ने। डोलमा शिला के निकट था गौरी कुण्ड। पूरे तीन घण्टे की कष्टदायिनी यात्रा के बाद पहुँच गया मैं वहाँ। वातावरण में गहरी नीरवता छायी हुई थी। चारों ओर सांय सांय हो रहा था। लगभग ४,५ कि०मी० की परिधि में फैला हुआ गौरी कुण्ड।

१०० मीटर गहरा। नीले रंग का स्वच्छ पानी। कटोरे के आकार का वह कुण्ड - विश्व के सबसे ऊँची झीलों में एक है।

आकाश के बीचों बीच सूरज चमक रहा था उस समय। जिसका प्रतिबिम्ब झील के नीले पानी पर पड़ रहा था। बड़ा ही मोंहक दृश्य था वह। आश्चर्य की बात है कि गौरी कुण्ड के पानी पर बर्फ नहीं जमती।

वह रहस्यमय अलौकिक मठ

गौरीकुण्ड पहुँचने पर जब मैं मन ही मन यह सोच रहा था कि इस बिया बान निर्जन और सुनसान बर्फीले इलाके में कब, कैसे और कहाँ भेंट होगी उस बौद्ध भिक्षुणी से तभी उसी समय कुछ फासले पर मुझे धुन्ध-सा दिखलाई दिया। हल्के बादलों जैसा था वह धुन्ध और धीरे-धीरे अपने स्थान पर बढ़ रहा था और साथ ही साथ घना और गहरा भी होता जा रहा था।

अब मैं जिस चमत्कारपूर्ण अद्‌भुत और रहस्यमय दृश्य का वर्णन करने जा रहा हूँ वह इतना विचित्र और साथ ही इतना अलौकिक है कि उस पर निश्चय ही किसी को सहसा विश्वास न होगा। मगर सत्य, सत्य है और उस सत्य का साक्षी मेरी आत्मा है या परमात्मा या फिर भगवान कैलासपति। खैर, मैंने देखा उस घने और गहरे धवल धुन्ध के भीतर धीरे-धीरे एक विशाल मठ का आकार उभरता हुआ दिखलाई दिया मुझे। निश्चय ही वह विशाल और अपने आप में रहस्यमय मठ कोई सिद्ध योगाश्रम था, इसमें सन्देह नहीं। संगमरमर के पत्थरों से बना था वह योगाश्रम लेकिन उसमें न दरवाजे थे और न तो खिड़कियाँ ही थी बस केवल एक छोटा सा प्रवेशद्वार था जिसमें से होकर विचित्र रूप रंग और विचित्र आकार-प्रकार के बहुत सारे बौद्ध भिक्षु भिक्षुणियां आ-जा रही थी। उन्हीं में से एक बौद्ध सन्यासी धीरे-धीरे चलकर मेरे समीप आया। कोंहड़ें जैसा उसका बेडौल सिर घुटा हुआ था। उसकी आँखों में तेज था। चेहरे पर साधना की आभा थी और व्यक्तित्व में योगियों जैसा आकर्षक था।

उस सन्यासी ने विचित्र ढंग से कुछ संकेत किया, जिसका मतलब था-मेरे साथ चलो। उसके पीछे-पीछे चलकर मैंने उस रहस्यमय मठ में प्रवेश किया और प्रवेश करते ही एक विचित्र सा अनुभव हुआ मुझे। मठ के वातावरण में सर्वत्र परम शान्ति व्याप्त थी। सैकड़ों की संख्या में भिक्षुओं की उपस्थिति में भी इतनी गहरी शान्ति का होना आश्चर्यजनक बात थी। कोई किसी से बोल नहीं रहा था। नेत्रों की भाषा में ही बात हो रही थी।

मठ में चारों तरफ रूपहला प्रकाश फैल रहा था। बड़ा ही मनोरम और सुखद लग रहा था वह स्वर्गीय प्रकाश। उसका मूल श्रोत कहां था, यह समझ में नहीं आया मेरे।

मठ के भीतर एक काफी लम्बा चौड़ा आंगन था जिसके बीचोबीच एक ऊँची वेदी थी। स्फटिक की थी वह वेदी। देखते ही देखते उस स्फटिक वेदी के ऊपर एक प्रकाश पुंज प्रकट हुआ।

निश्चय ही वह कोई दिव्य प्रकाश पुंज था। उसका रंग क्षण-प्रतिक्षण बदल रहा था। रंग कभी लाल हो जाता था कभी हो जाता था हरा और पीला। वह दिव्य प्रकाश, पुंज अपने स्थान पर तीव्र गति से चक्कर काट रहा था। सहसा वह दिव्य प्रकाश पुंज एक मनुष्याकृति में परिवर्तित होने लगा।

अब मेरे सामने प्रकाश पुंज के स्थान पर एक दिव्य महात्मा का तेजोमय शरीर था। महात्मा शब्द से आपके मन में जो कल्पना उभर रही होगी, वैसे नहीं थे वे महात्मा। उनका आकार-प्रकार और रूप रंग १०-१२ वर्ष के बालके के समान था। रंग तांबिया था और सारे शरीर से दिब्य आभा प्रस्फुटित हो रही थी। शरीर पर भोज पत्र का एक कौपीन मात्र था। सुखासन की मुद्रा में बैठे थे महात्मा। नेत्र मुंदे हुए थे। होंठ थोड़े से खुले हुए थे। सिर पर पीले रंग के बालों की जटा थी - जो वेदी पर चारों तरफ बिखरी हुई थी। दाढ़ी मूँछ सफाचट। खुले हुए होठों पर सौम्य मुस्कान थी।

जब मैं उस महान योगात्मा को आश्चर्य और कौतूहल के भाव से अपलक निहार रहा था, उसी समय जिस सन्यासी के साथ आया था मैं, उसने मेरे कान में धीरे से कहा-'ये योगात्मा योगी समाज की अमर विभूति है। ये अजर-अमर है। देवगण भी इनकी प्रशंसा करते हैं।

आयु कितनी होगी ? मैंने भी धीरे से ही पूछा।

इस सम्बन्ध में बतलाना कठिन है। महोदय। बस आप समझ लें-ये अमरत्व को उपलब्ध है और इनकी आत्मा जिस शरीर में है, वह वैन्दव शरीर है। (डॉक्टर गोपीनाथजी कविराज ने अपनी पुस्तकों में यत्र तत्र वैन्दव शरीर की चर्चा की है) वैन्दव शरीर जब कभी पार्थिव जगत में प्रकट होता है तो प्रकाशपुंज के रूप में दिखलाई पड़ता है और इच्छानुसार प्रकाश पुंज पार्थिव काया में कुछ समय के लिए परिवर्तित हो जाता है। इस समय ऐसा ही हुआ है बौद्ध भिक्षुणी पद्मगन्धा के लिए।

समझा नहीं।

समझने की आवश्यकता भी नहीं।

और तभी मैंने देखा न जाने किधर से धीरे-धीरे चलकर उस महान दिव्य योगात्मा के सामने खड़ी हो गयी पद्मगन्धा।

उस समय उस योगिनी की धनी केशराशि खुलकर पीठ पर बिखरी हुई थी। उनके चेहरे पर किसी भी प्रकार का भाव नहीं था। ऐसा लगा मानों पाषाण प्रतिमा हो वह।

महात्मा के नेत्र धीरे-धीरे खुले और पद्मगन्धा पर स्थिर हो गये। पद्मगन्धा ने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया। फिर एक अभूतपूर्व और चमत्कारी घटना घटी। महात्मा के नेत्र बन्द हो गये और दोनों भौंहों के बीच से एक प्रखर ज्योति अचानक प्रस्फुटित हुई। उसका रंग गहरा नीला था और प्रकाश रेखा की तरह आगे बढ़कर पद्मगन्धा के पार्थिव शरीर के चारों ओर वर्तुलाकार रूप में चक्कर काटने लगी और दो-तीन क्षणों बाद अचानक लुप्त हो गया वह। और उसी के साथ पदमगन्धा का पार्थिव काया भी न जाने कहां विलीन हो गयी।

उसके थोड़ी ही देर बाद वह महान योगी भी पुनः प्रकाश पुन्ज में परिवर्तित होकर निसर्ग में विलीन हो गये।

कहने की आवश्यकता नहीं उन सारे सत्यातीत यौगिक दृश्य को देखकर एकबारगी हतप्रभ और स्तब्ध रही गयी मेरी आत्मा। सोचने लगा अब कभी भेंट न होगी पद्मगन्धा से अब कभी दर्शन न होगा उस महान योगिनी का। सम्भव नहीं है। उसकी महान आत्मा भी वैन्दव शरीर को उपलब्ध हो गयी थी। उसका भौतिक जगत से अब किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रह गया था। पूरे तीन मास के सान्निध्य में पूरे तीन मास के सम्पर्क में उस महान योगिनी से जितना जो कुछ आध्यात्मिक लाभ मुझको हुआ था वह सब निस्सन्देह परम निधि समझी जायेगी भारतीय संस्कृति और साधना की।

...और जब मैं यह सब सोच रहा था-तभी मेरे चारों तरफ एक गहरा धुन्ध फैलने लगा फिर गहरा और गहरा होता चला गया और फिर बादलों का रूप धारण कर लिया उसने अन्त में। शायद आपको विश्वास न होगा मेरी बातों पर। बादलों के उस गुबार में अचानक वह विशाल मठ न जाने कहां गायब हो गया ऐसा लगा मानों वे बादल उस मठ को लेकर अन्तरिक्ष में कहीं चले गये। जिस स्थान पर मैं था वहां अब सिवाय बर्फीली जमीन के और कुछ नहीं था। जड़वत् अवाक् न जाने कब तक खड़ा रहा मैं वहाँ, पता नहीं।

जब चार हजार सैनिक गायब हो गये

अचानक मुझे किसी समाचारपत्र में प्रकाशित प्रथम विश्वयुद्ध से सम्बन्धित एक विवरण स्मरण हो आया। प्रथम विश्व युद्ध घमासान पर था। तुर्की सैनिकों

के विरुद्ध कारवाई में "मुहाल्वे" के समीप बरतानियां, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की संयुक्त कमान ने मोर्चा सम्हाल रखा था। दोनों ओर से जान-माल की काफी हानि हो चुकी थी। बरतानिया, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के सैनिकों के ताबड़तोड़ हमलों के पश्चात भी तुर्की के सैनिक पूरे मनोबल के साथ मोर्चे पर डटे हुए थें

२८ अगस्त, १९१५ के प्रातः बरतानिया की फर्स्ट फोर्थ रेजीमेण्ट ने आगे बढ़कर तुर्कियों को उनके मोर्चे से खदेड़ने का फैसला किया। जब बरतानिया रेजीमेण्ट के सैनिकों ने पोजीशन ले-ले कर तुर्कियों के मोर्चे की तरफ बढ़ना शुरु किया तब आसमान एकदम साफ था। मगर सहसा ही पश्चिम की तरफ से काले भूरे बादल उठे और उस जगह के ऊपर फैल गये जहाँ से तुर्की के सैनिक फायरिंग कर रहे थे। आगे बढ़ते हुए बरतानवी रेजीमेण्ट के चार हजार सैनिकों ने इस रहस्यमय बादलों को देखा अवश्य लेकिन अधिक महत्व नहीं दिया। लेकिन ज्यों ही बरतानवी सैनिक तुर्की सैनिकों के मोर्चे के समीप पहुँचे, आकाशपर छाये काले बादल नीचे झुकते हुए फैलने लगे और देखते ही देखते चार हजार बरतानवी सैनिक बादलों के आगोश में छिप गये। लगभग दो हजार गज की दूरी पर खन्दकों में मोर्चा लगाये बैठे न्यूजीलैण्ड के सैनिक इस कौतुकपूर्ण दृश्य को अपनी आँखों से देख रहे थे। जमीन पर झुकने के बाद वे रहस्यमय बादल जब दोबारा ऊपर उठे तो उन चार हजार बरतानवी सैनिकों का कहीं भी नामोनिशान नहीं था।

खन्दकों में छिपे हुए न्यूज़ीलैण्ड के सैनिकों की आँखों के सामने चार हजार बरतानवी सैनिकों को लीलते हुए रहस्यमय बादल तीव्रता से बल्गारिया की दिशा में गायब हो गये।

वे रहस्यमय बादल कहां से आये और कहां गये ? चार हजार बरतानवी सैनिकों का क्या हुआ ? यह आज भी एक जटिल और अनबूझ पहेली है। प्रथम महायुद्ध के दौरान और उसके बाद में बरतानवी सरकार ने अपने लापता सैनिकों की तलाश में कोई कसर उठा न रखी थी, मगर उनका नामोनिशान नहीं मिला।

क्या वैसी ही घटना यह थी ? मेरी आँखें धोखा नहीं दे सकती मुझे। काले भूरे बादलों से उठे गुबार के बीच एक लम्बे चौड़े विशाल मठ का प्रकट होना और फिर एकाएक उसी गुबार में गायब हो जाना क्या भ्रम था ? नहीं, नहीं भ्रम नहीं था वह सब। अनेक जिज्ञासाएं और अनेक प्रश्न उठ रहे थे उस समय मन में मेरे। मगर कौन था वहां उस हिममण्डित क्षेत्र में मेरी जिज्ञासाओं का समाधान करने वाला ? कौन था मेरे प्रश्नों का देने वाला उत्तर ?

पाँच प्रच्छन्न सिद्ध योगाश्रम

हिमपात बराबर बढ़ता ही जा रहा था। किसी प्रकार गिरता-पड़ता, लुड़कता पहुँचा मैं कैलास। गिरि बाबा प्रतीक्षा कर रहे थे मेरी। गुफा में घुसते ही उसका मुंह बन्द कर दिया गया। भीतर थोड़ी गर्मी थी। राहत मिली। एक-एक कर गिरि बाबा को सारी घटना सुना डाली मैंने। मौन साधे वे सब सुनते रहें। मैं अन्त में बोला-बाबा। मेरी समझ में नहीं आता ये सब कुछ। आप ही एक ऐसे महात्मा है जो मेरी जिज्ञासा का समाधान कर सकते हैं और दे सकते हैं मेरे तमाम प्रश्नों के उत्तर भी। जो कुछ तुमने देखा-सुना और अनुभव किया वह सब सत्य था गिरि बाबा बोले-निश्चय ही पद्मगन्धा से तुम्हारा कोई सम्बन्ध था पिछले जन्म का तभी वह तुमको मिली और कैलाश मानसरोवर तक ले आयी। इतना ही नहीं, अपने भौतिक जीवन की सारी कथा भी दृश्यवत् दिखा डाली उस योज्ञात्मा ने।

ऐं। क्या कहा आपने ?

मैंने जो कहा वह एक-एक अक्षर सत्य है बेटा। राजा, योगी और वेश्या की मति-गति को भला कौन समझ सका है ? बिना किसी गूढ कारण के ये तीनों किसी को न अपनाते हैं और न तो अपने रहस्यों से किसी को परिचित ही कराते हैं। थोड़ा रूककर गिरि बाबा आगे बोले-उस मठ के सम्बन्ध में उस परम महात्मा के सम्बन्ध में और उस प्रखर नील ज्योति के विषय में सर्वप्रथम बतलाऊँगा मैं तुझे।

जिस मठ को तुमने देखा और जिस मठ में तुम गये वह अभी भी उसी स्थान पर अवस्थित है - गिरि बाबा ने गम्भीर स्वर में कहना शुरू किया-पिछले चार हजार वर्षो से उसकी सत्ता गौरी कुण्ड में है।

पूरब से पश्चिम तक फैले विशाल हिम क्षेत्र में सर्वथा गुप्त रूप से अवस्थित पांच सिद्ध योगाश्रम है जिनमें से एक वह भी है। वे योगाश्रम चर्म चक्षु से परे चौथे आयाम के अन्तर्गत है। उन पांचों योगाश्रमों में भिन्न-भिन्न स्तर के योगीगण निवास करते हैं।

पहले योगाश्रम में (इसी योगाश्रम का नाम ज्ञानगंज मठ अथवा आश्रम है जिसका उल्लेख डाक्टर गोपीनाथजी कविराज ने यत्र तत्र प्रसंग वश किया है) शुद्ध और संस्कारी लोगों को योग मार्ग में प्रशिक्षित किया जाता है और योग विज्ञान, तंत्र विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, सौर विज्ञान, वायु विज्ञान, क्षण विज्ञान आदि विज्ञानों की गूढ़ शिक्षा भी दी जाती है। शिक्षा-दीक्षा आदि कार्य सम्पन्न और पूर्ण हो जाने पर साधक को लोक कल्याणार्थ संसार में पुनः भेज दिया जाता है। इस योगाश्रम के आचार्य महातपा है। वे सिद्ध और परमहंस अवस्था प्राप्त योगी है।

आचार्य के कई प्रधान शिष्य है, जो पूर्ण योगी है। वे भेष बदलकर ऐसे व्यक्तियों की खोज में संसार में भ्रमण करते हैं जो शुद्ध आत्मा और साधना सम्पन्न हैं। मिलने पर वे उन्हें किसी गुप्त मार्ग से अपने आश्रम में ले जाते हैं और वहां योग और विज्ञान की दीक्षा-शिक्षा देकर जैसा कि मैंने कहा पुनः उन्हें वापस भेज दिया करते हैं (डाक्टर गोपीनाथजी कविराज के गुरू स्वामी विशुद्धानन्दजी ऐसे ही व्यक्तियों में थे) खैर, दूसरे योगाश्रम में वे योगीगण निवास करते हैं जो पहले आश्रम से निकलकर संसार में किसी कारणवश नहीं आना चाहते है। ऐसे योगी इस दूसरे योगाश्रम में इच्छित काल तक निवास करते हुए साधना सोपानों का क्रमशः उल्लंघन करते हुए अपने परम लक्ष्य को उपलब्ध होते हैं अन्त में। इस प्रकार के योगियों में कुछ ऐसे भी होते हैं - जो संसार में जन्म लेकर यथा समय और यथावसर साधना का उपदेश देते हैं। प्रचार-प्रसार करते हैं। योग-तंत्र के तिमिराच्छन्न विभिन्न विषयों पर प्रकाश डालते है और तत्सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना भी करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, ऐसे महापुरुष संसार और समाज में अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट नहीं करते हैं। सर्वथा प्रच्छन्न भाव से निवास करते हैं। वे लोकानुगत कार्य करते हैं और योग्य शिष्य की खोज में भी रहते हैं ताकि उनके बाद वह उनके कार्य को अन्तिम स्वरूप प्रदान कर सकें।

वे दोनों आश्रम प्रच्छन्न भाव से तिब्बत के किसी हिमभाग में अवस्थित है। तीसरे आश्रम की स्थिति कहाँ है, यह तो नहीं बतलायी जा सकती, लेकिन सुना जाता है कि उसका नाम ब्रजेश्वरी मठ है। इस तीसरे आश्रम में धर्ममेध समाधि को उपलब्ध योगी, साधकगण, तन्त्रसाधना की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त करने के लिए निवास करते है।

समाधि की क्रमिक पाँच अवस्थाएं है। अन्तिम समाधि को धर्ममेध समाधि कहते है। इसी समाधि की चरम उपलब्धि "परम पद" अथवा परम निर्वाण है-जो तन्त्र द्वारा ही सम्भव है। योग जहाँ समाप्त होता है, तन्त्र वहाँ से शुरू होता है। तन्त्र साधना का प्रारम्भ सविकल्प अवस्था से होता है, इस बात का ख्याल रखना चाहिए। सविकल्प अवस्था से तन्त्र साधना शुरू होकर धर्ममेघ अवस्था में समाप्त होती है। (धर्ममेघ समाधि की चर्चा आगे की जायेगी)। सविकल्प अवस्था में साधक को सदगुरू महाशक्ति के स्वरूप से परिचित कराते है। इस अवस्था से निर्विकल्प अवस्था पर्यन्त महाशक्ति साधक के साथ साधना-पथपर उसकी रक्षिका रूप में रहती है, तत्पश्चात् धर्ममेध अवस्था पर्यन्त रहती है पथ प्रदर्शिका रूप में। "धर्ममेध" के अन्तिम चरण में महाशक्ति साधक के समक्ष अपने परम दिव्यरूप में प्रकट हो कर उसे "परमपद" का आशीर्वाद प्रदान करती है।

गिरि बाबा थोड़ा रूककर आगे बोले-केवल आशीर्वाद ही प्रदान करती है महाशक्ति, ''परमपद'' प्रदान नहीं करती बेटे। परम पद के लिए साधक को प्रतीक्षा करनी पड़ती है उनके अनुग्रह की। माँ महामाया महाशक्ति के आर्शीवाद और अनुग्रह में क्या भेद और रहस्य है, इसे एक साधक ही समझ सकता है। साधना के परिणाम स्वरूप आर्शीवाद तो प्राप्त हो जाता है, लेकिन माँ का अनुग्रह प्राप्त नहीं होता शीघ्र।

''प्रतीक्षा की अवस्था में साधकगण फिर क्या करते हैं ? मैंने पूछा।

''ऐसी अवस्था में -गिरि बाबा ने उत्तर दिया माँ की लीला-गान करने के लिए कोई-कोई साधक संसार में जन्म ले लिया करते हैं। जानते हो बेटे बामा खेमा रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि ऐसे ही लोगों में से थे। इसी प्रकार कोई-कोई साधक तन्त्र शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान के रूप में अवतरित होकर तन्त्र के गूढ़ विषयों पर ग्रन्थ की रचना करते हैं तो कोई कोई शक्ति पीठ की स्थापना कर भगवती की तिमिराच्छन्न साधना-उपासना पर प्रकाश डालते है और उसका उपदेशामृत प्रदान करते हैं। विभिन्न तन्त्र-ग्रन्थों की रचना और उनके प्रणयन के अतिरिक्त भारत में परम शक्ति स्थलों की स्थापना ऐसे ही लोगों द्वारा हुई है। कहने की आवश्यकता नहीं, ऐसे साधकगण संसार में अपना कार्य पूरा कर पुनः ब्रजेश्वरी मठ चले जाते हैं पार्थिव शरीर त्याग कर।

वैसे तो महाकाश मे अनेक मण्डल हैं किन्तु उनमे दो मण्डल, देवमण्डल और ऋषि मण्डल मुख्य हैं। इसलिए कि अन्य मण्डल इन्हीं दो मण्डलों द्वारा संचालित होते हैं। शेष दो सिद्धाश्रमों का संबंध इन्हीं दोनों मण्डलों से सम्बद्ध है।

वाईस प्रकार के शरीर और उनका संबंध

तुमको मालूम होना चाहिए कि योग के अनुसार बाईस प्रकार के शरीर है। मतलब की शरीर की संख्या २२ है, समझ गये न ?

कौन कौन से है वाईस शरीर ?

(१) आत्म देह (२) कर्म देह (३) चाँन्द्र देह (४) दिव्य देह
(५) कारण देह (६) शाक्त देह (७) सूक्ष्म देह (८) सौर देह
(९) स्थूल देह (१०) काम देह (११) कैवल्य देह (१२) भोग देह
(१३) महासिद्ध देह (१४) मिश्र देह (१५) वैन्दव देह (१६) ज्ञान देह
(१७) भाव देह (१८) हंस देह (१९) औपादुक देह (२०) लिंग देह
(२१) मनोमयदेह (२२) विशुद्ध ज्ञानमय देह।

मनुष्य से संबंधित आठ देह हैं वे ये है : कर्मदेह, कारण देह, सूक्ष्म देह, स्थूल देह, भोग देह, भाव देह; कामदेह और मनोमय देह।

पितरो से संबंधित केवल दो देह हैं - सौर देह और चाँन्द्र देह। साधकगण आत्म देह में निवास करते हैं। इसी प्रकार जो ज्ञान योगी है वे ज्ञान देह में निवास करते हैं। दैत्य, दानव और राक्षसगण मिश्र देह, शक्तिपात दीक्षाप्राप्त साधकगण शक्ति देह, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, देव आदि दिव्य देह में निवास करते हैं। वे दिव्य देहधारी पुरुष है। शेष शरीर अथवा देह में सिद्धगण निवास करते हैं।

परमैश्वर्य सिद्धैश्वर्य और ऐश्वर्य

सिद्धगण कौन है ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में मुझे जो कुछ सुनने को प्राप्त हुआ, वह निश्चय ही मूल्यवान आध्यात्मिक सम्पत्ति समझी जायेगी। बाबा बोले-परमैश्वर्य और सिद्धैश्वर्य दो चीजे हैं। इन दोनों के अतिरिक्त एक और चीज है और वह है मात्र केवल ऐश्वर्य। योग के अनुसार कुल चौबीस प्रकार की सिद्धियाँ हैं। प्रथम आठ प्रकार की सिद्धियों के समूह को परमैश्वर्य और दूसरे आठ प्रकार की सिद्धियों के समूह को सिद्धैश्वर्य कहते हैं। इसी प्रकार शेष आठ प्रकार की सिद्धियों के समूह को कहते हैं ऐश्वर्य।

इस प्रकार पूरी सिद्धियाँ ''परमैश्वर्य'', सिद्धैश्वर्य और ''ऐश्वर्य'' के रूप में विभक्त है। तुमकों मालूम होना चाहिए आत्मा की दो वृत्तियाँ हैं-आन्तरिक वृत्ति और वहिर्वृत्ति। पहली वृत्ति आध्यात्मिक और दूसरी वृत्ति भौतिक है। सिद्धैश्वर्य आन्तरिक अथवा आध्यात्मिक वृत्ति का परिणाम है, जबकि वहिर्वृत्ति का परिणाम है ''ऐश्वर्य''।

परमैश्वर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में किसी भी प्राणी को उपलब्ध नहीं है। यदि किसी को वह उपलब्ध है तो केवल परमात्मा को। इसलिए परमात्मा को परमेश्वर कहते हैं। जिसे परमैश्वर्य उपलब्ध है वह परमात्मा। महात्मा, परमात्मा का ही पर्याय है। महात्मा शब्द केवल परमात्मा के लिए ही प्रयुक्त है, अन्य किसी के लिए नहीं।

इसी प्रकार सिद्धैश्वर्य भी विश्व ब्रह्माण्ड में पूर्ण रूप से किसी को उपलब्ध नहीं है। यदि किसी को पूर्ण ''सिद्धैश्वर्य'' उपलब्ध भी है तो वह है मात्र केवल हनुमान। सिद्धैश्वर्य के अन्तर्गत आने वाली आठो सिद्धियाँ अष्टसिद्धि के नाम से प्रसिद्ध हैं। हनुमान को ही अष्टसिद्धि प्राप्त थी। उनके अतिरिक्त आज तक किसी को भी वह प्राप्त नहीं हुई। गिरि बाबा ने आगे कहा - जिस सिद्ध गणों की

चर्चा मैंने की है - उन्हें भी पूर्ण अष्टसिद्धियाँ उपलब्ध नहीं है। अष्टसिद्धि को प्राप्त करने का मतलब है सिद्धैश्वर्य को उपलब्ध होना। सभी ऋषिगण इसी सिद्धैश्वर्य को उपलब्ध होने के लिए कैवल्य देह, महासिद्ध देह, वैन्दव देह, हंस देह औपपादुक देह और विशुद्ध ज्ञानमय देह में से किसी एक को स्वीकार कर शेष दोनों आश्रमों में निवास कर रहे है। चौथे सिद्धाश्रम में वेन्दव देह, हंस देह, औपपादुक देहधारी सिद्धगण हैं। इसी प्रकार पाँचवे सिद्धाश्रम में केवल्य देह, महासिद्ध देह, विशुद्ध ज्ञानमय देहधारी सिद्धगण हैं।

इन दोनों आश्रमों की विशेषता यह है कि इनका अत्यन्त रहस्यमय सम्बन्ध दिव्य लोक-लोकान्तरों तथा वहां के निवासियों से है। चौथे आश्रम में निवास करने वाले सिद्धगण आकाशचारी है। वे शून्यमार्ग से प्रकाश की गति से कहीं भी गमन कर सकने में समर्थ है। वे धर्माचार्यो से समय-समय पर मानसिक सम्बन्ध स्थापित कर उन्हें धर्म और अध्यात्म की दिशा में उचित मार्गदर्शन करते रहते हैं। संसार में जो लोग पार्थिव शरीर में रहकर योग, तन्त्र-साधना में गुप्त रूप से रत है, उनसे भी वे कभी-कभी मानसिक अथवा आत्मिक सम्बन्ध स्थापित कर उन्हें निर्देश देते हैं।

तुमने जिस मठ को देखा था बाबा बोले वह योगाश्रम यानी सिद्धाश्रम था और जिस महापुरुष का दर्शन-लाभ किया था और जिनके भूमध्य से प्रस्फुटित नील वर्णा ज्योति में महायोगिनी पदमगन्धा का पार्थिव शरीर विलीन हो गया था। वे वैन्दव शरीर धारी तेजोमय महापुरुष उसी सिद्धाश्रम के आचार्य थे। उनकी अपनी शिष्य मण्डली भी है जिसमें उच्च कोटि के योगी गण है। वे विभिन्न परिवेश में संसार में भ्रमण किया करते है। और साधकों की आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान करते रहते हैं। साधारण लोग उन्हें न पहचान सकते हैं और न तो उन्हें समझ ही सकते हैं।

गिरि बाबा ने बतलाया कि पांचवा सिद्धाश्रम सबसे महत्वपूर्ण है। इसकी महत्ता इसी में निहित है कि इसका सीधा सम्बन्ध ऋषि राज्य, देवी राज्य और भाव राज्य से है। इन तीनों को क्रमशः ऋषि मण्डल, देव मण्डल और दिव्य मण्डल कहते हैं।

ऋषि और देवता दो प्रकार के होते है-नित्य और अनित्य। नित्य ऋषि और देवता अपने-अपने मण्डल के स्थायी निवासी है। इसी प्रकार अनित्य ऋषि और देवता उन मण्डलों के अस्थायी निवासी हैं।

अनित्य किसे कहते हैं ?

अनित्य ऋषि और देवता वे है जो कभी मनुष्य थे और आत्मोन्नति कर ऋषि और देवत्व को उपलब्ध हुए होते है और वहाँ निश्चित समय तक निवास करने के पश्चात पुनः मानव योनि में लौट आते हैं। पाँचवे सिद्धाश्रम से तीनों मण्डलों का बराबर सम्पर्क बना रहता है। देव मण्डल में ब्रह्म शरीर धारी और निर्वाण शरीर धारी दिव्य आत्माएँ निवास करती हैं। नित्य ऋषियों, देवताओं और दिव्य आत्माओं को जब कभी परमेश्वर की ओर से किसी विशेष कार्य के सम्पादन के निमित्त मानव योनि में जन्म लेने की प्रेरणा प्राप्त होती है तो वे सर्वप्रथम इसी पाँचवे आश्रम में आते हैं जहाँ आश्रम के निवासी मानव योनि को स्वीकार करने के निमित्त उनके उद्देश्य अथवा लक्ष्य को समझ कर उसके अनुसार "गर्भ" निश्चित करते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें मानव जीवन की शिक्षा देते हैं। मानव स्वभाव के विषय में बतलाते हैं और यह भी समझाते हैं कि उन्हें कैसे संसार में रहना होगा ? कैसा आचरण करना होगा ? कैसा व्यवहार करना होगा ? किसी प्रकार अपने आपको छिपाये रखकर सुख-दुःख झेलना होगा ? अन्त में वे उनकी आयु निश्चित करते हैं।

अन्त में गिरि बाबा हंसकर बोले - कोई-कोई संसार में जन्म लेकर भ्रमित भी हो जाते हैं। माया में फंस भी जाते हैं। ऐसी अवस्था में आश्रम के निवासी उन्हें सावधान और सतर्क भी करते हैं और उन्हें उनके स्वरूप से भी परिचित कराते हैं।

क्या इन मण्डलों के निवासी सीधे मानव शरीर धारण करते हैं ? मैंने प्रश्न किया। नहीं बाबा बोले-आत्मा के वाहक स्वरूप सात शरीर है-स्थूल शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनः शरीर, आत्म शरीर, ब्रह्म शरीर और निर्वाण शरीर। इनसे सम्बद्ध मानव शरीर में सात चक्र हैं। नीचे से पहला शरीर स्थूल शरीर है और ऊपर से है निर्वाण शरीर।

जिस प्रकार स्थूल शरीर धारी आत्मा क्रम से एक-एक शरीर का त्याग करती हुई अन्तिम शरीर निर्वाण शरीर को उपलब्ध होती है, वैसी ही निर्वाण शरीर धारी अथवा ब्रह्म शरीर धारी आत्मा भी क्रम से एक-एक शरीर को ग्रहण करती हुई अन्त में मानव शरीर को उपलब्ध होती है। योग में इसी को आत्मा का ऊर्ध्व गमन और अधोगमन कहते हैं। (देखे योग सारावली)

आपने परमैश्वर्य और सिद्धैश्वर्य की चर्चा की लेकिन ऐश्वर्य क्या है ?

मेरे इस प्रकार के प्रश्न में गिरि बाबा बोले यौगिक अष्टसिद्धि की तरह भौतिक अष्टसिद्धि भी है। यश, कीर्ति, विद्या, वैभव, धन, स्वस्थ शरीर, पतिव्रता पत्नी और आज्ञाकारी पुत्र, ये भौतिक अष्टसिद्धि है और इसी भौतिक "अष्टसिद्धि

का नाम ऐश्वर्य है। लेकिन संसार में किसे प्राप्त होता है यह ऐश्वर्य ? विरला ही कोई होगा। जिसे यह अष्टसिद्धि प्राप्त हुई होगी। किसी को एक या दो तीन तो किसी को चार या पांच। इससे अधिक नहीं। वैसे तो ये भौतिक अष्ट सिद्धियां बन्धन का कारण है। लेकिन गीता के अनुसार इनके प्रति अनासक्त भाव रखा जाय तो मुक्ति का कारण भी बन सकती है।

❖

३

अध्याय

काल विज्ञान और क्षण विज्ञान

प्रणव गिरि उच्च कोटि के साधक तो थे ही इसके अतिरिक्त शास्त्र मर्मज्ञ भी थे, इसमें सन्देह नहीं। अधिक से अधिक अपनी योग साधना परक जिज्ञासाओ का समाधान कर लेना चाहता था मैं उनसे। योग तंत्र से संबंधित जितनी भी साधनाएं है उनमें समय का सर्वाधिक महत्व है। इसलिए उसके विषय में मेरी जो जिज्ञासा थी वह सर्वाधिक प्रबल थी।

सुना है कि योग तंत्र के अन्तर्गत सोलह विज्ञान है, जिनमें काल विज्ञान और क्षण विज्ञान भी है। इन दोनों के संबंध में आपसे कुछ जानना समझना चाहता हूँ मैं, मेरी इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए गिरि बाबा बोले-काल विज्ञान और क्षण विज्ञान दोनों का मूल विषय वास्तव में एक ही है। और वह विषय अत्यन्त गूढ़ और अति गम्भीर है, उसको समझना सबके बस की बात नहीं। फिर भी तुमको थोड़ा बहुत बतलाने की कोशिश करता हूँ। इतना कह कर कुछ क्षण के लिए गिरि बाबा शान्त हो गये, फिर कहने लगे-समय शाश्वत है। उसकी शाश्वतता परमात्मा का स्वरूप है, इसीलिए गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि मैं अक्षय काल हूँ यानी शाश्वत समय हूँ। शाश्वत समय आकाश का है चतुर्थ आयाम। जो अक्षय है वह परमात्मा की अभिव्यक्ति है। काल, अक्षय हैं इसलिए वह परमात्मा की अभिव्यक्ति हैं। स्थूल अथवा भौतिक जगत अस्तित्व का जगत है और अस्तित्व में जो कुछ भी है वह सब क्षणिक है। सब कुछ क्षीण हो जाता है उसमें। सभी कुछ परिवर्तन होता रहता है बराबर, सिवाय परिवर्तन के। सब कुछ परिवर्तन हो जाता है। सब कुछ परिवर्तन शील है। कहीं भी कुछ शाश्वत दिखलाई नहीं देता। अस्तित्व में जो भी वस्तु है वह दूसरे क्षण वही नही रह जाती जो पहले क्षण थी।

आपके कहने का तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी है वह दूसरे क्षण नही रहता - मैंने कहा। जरा इस तथ्य को गहरायी से समझना है। गिरिबाबा बोले-काल विज्ञान के अनुसार एक ही नदी की धारा में दो बार उतरना सम्भव नहीं है। कैसे उतरा जायेगा एक ही नदी की धारा में दो बार। सम्भव नहीं। जब तुम धारा में दूसरी बार उतरने जाओगे तब तक नदी कब की बह चुकी होती है। पहली बार नदी के जिस पानी का तुमने स्पर्श किया था उस पानी का दूसरी बार स्पर्श नही कर पाओगे। नदी बराबर बहती ही रहती है। बहने का ही नाम नदी है। नदी की धारा का प्रवाह सतत् है। जीवन रूपी नदी की धारा का प्रवाह भी सतत् है। उसमें भी वैसा ही बहाव है। जीवन में भी दूसरी बार उसी बिन्दु पर खड़ा होना असम्भव है जिस बिन्दु पर एक क्षण पहले खड़े थे। इसी प्रकार एक क्षण पहले खड़े थे। इसी प्रकार एक क्षण पहले जो देखा था उसे दूसरे क्षण देखना असम्भव है। एक बार जो कुछ देख सुन लिया उसी को दूसरी बार देखना सुनना सम्भव नहीं।

मानव जीवन भ्रान्तिमय है। हर पल वह भ्रान्ति में जीता है और रहता भी है भ्रान्ति में ही। तुम सोचते हो कि कल जो सूर्य उदय हुआ था वही आज भी उदित हुआ है। रोज एक ही सूर्य उदय होता है। नही! यह तुम्हारा भ्रम है। सूर्य नित्य रूपान्तरित होता रहता है। कल जो सूर्य था, वह सूर्य आज नहीं है। प्रतिपल परिवर्तन होता रहता है सूर्य में।

दीपक की लौ भी प्रतिपल बदलती रहती है। रात्रि में जिस दीपक को तुम जलाते हो, प्रात:काल सोचते हो कि उसी दीपक को बुझा रहे है। नही यह तुम्हारा भ्रम है। रात्रि में जो दीपक जला था वह न जाने कितनी बार बुझ चुका। उसकी लौ प्रति पल खो रही थी आकाश में, और उसके स्थान पर दूसरी लौ प्रति पल स्थापित हो रही थी। वास्तव में परिवर्तन की क्रिया इतनी तीव्र गति से होती है कि दो पलों के बीच के खाली स्थान को देखना मानव दृष्टि के लिए असम्भव है। काल विज्ञान का कहना है कि वह खाली स्थान है वह स्थान चतुर्थ आयाम है आकाश का। हम यह स्वीकार करते है रात में जलायी गयी लौ और प्रात: बुझाई गयी लौ एक ही श्रृंखला की लौ है लेकिन वही लौ नही है। एक छोटे से दीपक की लौ इतनी त्वरित गति से परिवर्तित होती है तो सूर्य जैसा भयंकर अग्नि पिण्ड कितनी त्वरित गति से परिवर्तित हो रहा होगा? कल्पना करना कठिन हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार की प्रत्येक वस्तु और उस वस्तु के प्रत्येक कण में बराबर कल्पनातीत् गति से परिवर्तन हो रहा है। जड़-चेतन में जो कुछ भी है वह सब तीव्रतातितीव्र गति से चल रहा हैं। संसार में कोई

भी वस्तु अपने स्थान पर स्थिर नही है। उसकी गति इतनी तीव्र है कि जिसके कारण वह हम सबको स्थिर दिखलायी देती है। तुममें भी उसी प्रकार परिवर्तन हो रहा है रह क्षण और हर पल।

रात में सोते समय तुम जो होते है, वह प्रातः उठते समय नहीं होते। नदी की धारा के समान तुम्हारे जीवन की भी धारा सतत् प्रवाहित हो रही है। तुममें भी हर क्षण और हर पलपरिवर्तन हो रहा है। तुमने कभी सोचा है और कभी विचार किया है कि मां के गर्भ में 'तुम' परिवर्तित नहीं हो रहे हो। तुम्हारे भीतर परिवर्तन हो रहा है। तुम्हारे बाहर परिवर्तन हो रहा है। भीतर तुम्हारे विचार बदल रहे है, मन बदल रहा है, भाव बदल रहे हैं, इच्छाएँ बदल रही है हर पल और हर क्षण। इसी प्रकार बाहर तुम्हारे शरीर के कण-कण में, अणु-अणु में और रोम-रोम में भी परिवर्तन हो रहा है हर पल और हर क्षण। लेकिन ''तुम'' जो हो उसमें भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो रहा है जो परिवर्तनशील है, वह सत्य नहीं है और जो ''सत्य'' है वह परिवर्तनशील नहीं है। ''तुम'' ''सत्य'' हो लेकिन तुम्हारा शरीर सत्य नहीं है।

अपनी आदत के अनुसार थोड़ा रूककर गिरि बाबा आगे कहने लगे-तुमने कभी विचार किया है और कभी सोचा है कि मां के गर्भ में तुम्हारी जो आकृति थी, पहले दिन मां के पेट में जो ''अणु'' निर्मित हुआ था-जो तुम हो गये हो, यदि उसको तुम्हारे सामने रख दिया जाय तो तुम अपनी आंखो से देख भी न सकोगे। लेकिन यह तो निश्चित है कि तुम वही कभी थे। फिर एक दिन ''तुम'' मर जाओगे। श्मशान में तुम्हारे शरीर को जला दिया जायेगा और अन्त में शेष रह जायेगी एक मुट्ठी भर राख। यदि उस मुट्ठी भर राख को तुम्हारे सामने रख दिया जाय तो तुम इस बात को मानने के लिए कभी तैयार न होंगे

समय शाश्वत है

प्रत्येक वस्तु एक घटना है वस्तु नहीं। कोई वस्तु, वस्तु नहीं है घटना है। घटना का अर्थ है प्रक्रिया। इस जगत में प्रक्रियायें है। वस्तुए नहीं। घटनाएं है, वस्तुएं नहीं। सब कुछ हो रहा है। प्रवाह है। इस प्रवाह के बीच में अगर कोई वस्तु अक्षय है तो वह समय है। काल है। आश्चर्य की बात तो यह है कि अगर इस परिवर्तन के बीच कोई वस्तु स्थिर है तो वह परिवर्तन ही है। लेकिन जीवन के गहराई में उतर कर देखे तो सत्य के सभी विपरीत है। यदि ऐसा हम कहे तो समझ में आ जायेगा कि इस जगत में यदि कोई वस्तु नहीं मरती है तो वह ''मृत्यु'' है एक मात्र, और इस जगत में एक ही वस्तु अक्षय है जो क्षीण नहीं

होती "वह समय है" सब परिवर्तित होता रहता है। लेकिन ध्यान रहे, परिवर्तन की प्रक्रिया समय में ही घटती है। समय यदि न हो तो परिवर्तन भी नहीं हो सकता। आप अपने घर से दुकान या आफिस गये। जाने में एक घण्टा का समय लगा। अगर समय न हो तो आप वहाँ नहीं पहुँच सकते। एक घण्टा चाहिए तब आप वहाँ पहुँच सकते हैं। समझ लें, समय समाप्त हो गया। तो आप वहाँ से हिल भी न सकेंगे। क्योंकि हिलने में भी समय लगेगा। फिर आप श्वास भी न ले सकेंगे, क्योंकि श्वास लेने के लिये भी समय की आवश्यकता है। इस जगत में जो कुछ भी हो रहा है - उन सबके लिये समय अनिवार्य है। सब चीजें समय के भीतर हो रही हैं। सभी के होने में समय छिपा हुआ है। अस्तित्व समय के साथ है।

सब वस्तुएँ हर क्षण परिवर्तित हो रही हैं। और वह परिवर्तन समय के भीतर हो रहा है। समय भर नहीं बदलता क्योंकि समय किसके भीतर बदलेगा। समय को परिवर्तित करने के लिये फिर एक और समय चाहिए। यह तो व्यर्थ की बात हो जायेगी। समय को इस तरह अन्त तक खींचते जाय तो भी एक समय को हमे मानना ही पड़ेगा, जो नहीं बदलता है। इसे हम, इस तरह से समझे तो सरल हो जायेगा।

आप जमीन पर बैठे है। बैठने के लिये जगह चाहिए। बिना जगह के आप बैठ नहीं सकते। आपके होने के लिए आकाश चाहिए जगह चाहिए, स्थान चाहिए। तब एक प्रश्न उठता है। दर्शनशास्त्री कहते रहे है कि आकाश के होने के लिये कोई महाकाश चाहिए। लेकिन फिर यह अतिशयोक्ति होगी इसका कोई अन्त होगा। इसलिये वैज्ञानिक कहते है कि आकाश सब चीजों के लिये चाहिए। सिर्फ आकाश को छोड़कर। आकाश के लिये किसी स्थान की आवश्यकता नहीं। आकाश स्वयं स्थान है। सब चीजों के लिये आकाश आवश्यक है। आकाश के लिये कुछ और आवश्यक नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे परिवर्तन के लिए समय आवश्यक है, केवल समय के लिये परिवर्तन के लिये समय की आवश्यकता नही है। कहना चाहिये जैसे स्थान, आकाश है, वैसे ही परिवर्तन समय है। और समय के लिये किसी और वस्तु की आवश्यकता नहीं है।

वैज्ञानिक विशेषकर आइन्स्टीन समय और आकाश को जोड़ कर एक नयी धारणा निर्मित को है जो आधुनिक फिजिक्स की धारणा है। आइन्स्टीन ने एक नयी धारणा रखी - वैसे वह धारणा भारत के लिये काफी पुराना है, वह धारणा पश्चिम में काफी मूल्यवान सिद्ध हुआ। आधुनिक विज्ञान उसी प्रस्ताव के आस पास निर्मित हुआ है। वह धारणा यह है कि समय और आकाश भी दो नही

है। एक ही चीज है।... तो आइन्स्टीन ने कहा कि समय भी आकाश का एक आयाम है।

आइन्स्टीन ने आकाश के तीन आयाम कहा है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है-कोई भी चीज हो-उसकी लम्बाई होगी चौड़ाई होगी और गहराई होगी। किसी भी वस्तु के होने के लिये तीन आयाम आवश्यक है-लम्बाई, चौड़ाई व गहरायी। ये थ्री डायमेंशन आकाश के है। आइन्स्टीन के अनुसार चौथा आयाम समय है। किसी भी चीज के लिये एक चौथी दिशा भी है "परिवर्तन" लम्बाई चाहिए चौड़ाई चाहिए गहराई चाहिए और यदि वह चीज है तो एक परिवर्तन की प्रक्रिया भी चाहिए। वह चौथा आयाम है। टाइम यानी समय। आइन्स्टीन ने कहा "यह आकाश का चौथा आयाम है" और उस महान वैज्ञानिक ने एक ही शब्द निर्मित किया और वह शब्द है "स्पेसियो टाइम" ? क्योंकि किसी भी चीज के लिए परिवर्तन आवश्यक है।

अस्तित्व मात्र परिवर्तन का प्रवाह है।

सब चीजे समाप्त हो जाती है, समय नहीं समाप्त होता। सूरज, चाँद, ग्रह, नक्षत्र, तारे सब खत्म हो जाते हैं। समाप्त हो जाते है। पृथ्वी से लेकर सारी सृष्टि बिखर जाती है समाप्त हो जाती है। अगर हम इस विराट अस्तित्व में खोजने चले तो सभी चीजें बनती है बिखरती है और नष्ट होती है। केवल "एक समय ही ऐसा है जो बनने में उपस्थित रहता है, बिखरने और नष्ट होने में भी उपस्थित रहता है। जन्म में भी उपस्थित रहता है मृत्यु में भी उपस्थित रहता है। केवल समय ही मात्र अक्षय रूप में उपस्थित रहता है। उसकी उपस्थिति सदा है।

इसलिये महावीर ने तो आत्मा का नाम ही समय रख दिया। महावीर ने कहा आत्मा यानी समय। अस्तित्व यानी समय। जैनियों का एक शब्द है "सामाधिक" यह शब्द उनके लिये "ध्यान" से भी अधिक मूल्यवान है। सामाधिक से उनका तात्पर्य है - समय में प्रवेश कर जाना। आत्मा में लीन हो जाना। आत्मा में डूब जाना। वह जो अनन्त समय है उसके साथ एकाकार हो जाना। एक हो जाना। ध्यान से अधिक मूल्यवान यह शब्द इसलिये है कि जो व्यक्ति उस शाश्वत समय के साथ एकाकार हो गया - उसने परमात्मा से एकात्म स्थापित कर लिया।

हम समय से अपने आपको भिन्न समझते हैं। हम सब ऐसा समझते हैं कि समय कोई वस्तु है जिसमें से हम गुजर रहे हैं। या फिर यह समझते हैं कि समय कोई वस्तु है जो हमारे निकट से गुजर रही है। वास्तव में हमारी धारणा यही है। हम बैठ कर कहते हैं कि समय पास कर रहे हैं। समय व्यतीत कर रहे

हैं। समय काट रहे हैं। हमे इस बात का ज्ञान नहीं है कि हम समय को नहीं बल्कि अपने आपको ही काट रहे है। समय को हम कैसे काट सकते हैं। हम समय को नहीं काट सकते समय हमको काट सकता है। बैठ कर हम ताश खेल रहे है। शतरंज खेल रहे है और कहते है कि समय काट रहे हैं। हमको पता नहीं कि ताश या शतरंज खेल कर समय हमको ही काट रहा है।

हम समय का स्पर्श तक नहीं कर सकते। काटना तो बहुत दूर की बात है। समय का हमको अनुभव भी नहीं होता। समय को तो हम जानते तक नहीं अनुभव की बात तो करना ही व्यर्थ है।

संसार में लोग आते हैं - समय को काटने के बहाने अपने आपको काटते हैं और फिर विलीन हो जाते हैं। और समय की शाश्वतत्ता अपने स्थान पर बनी रहती है। समय शाश्वतत्ता है।

अक्षय का प्रतीक ''समय''

इस जगत में किसी वस्तु को अक्षय का प्रतीक माने तो वह है एकमात्र समय। समय अक्षय का प्रतीक है। समय के अतिरिक्त शेष वस्तुएं क्षय हो जाती है। समय में जितनी भी वस्तुएँ हैं उन सबका एक न एक दिन क्षय निश्चित है। समय पर मृत्यु का भी कोई प्रभाव नही है। इसलिये भारतीय प्रज्ञा ने समय और मृत्यु दोनों को एक मान लिया। इसीलिये हम समय को भी काल कहते हैं और मृत्यु को भी कहते हैं काल।

केवल समय की कोई मृत्यु नही है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर समय, मृत्यु से अलग होता तो समय की भी मृत्यु घटित होती। समय और मृत्यु एक साथ हैं। इसलिए मृत्यु की क्या मृत्यु होगी ? मृत्यु कैसे मरेगी ? इसलिए मृत्यु को भी ''काल'' की संज्ञा दी गयी। महावीर ने आत्मा को काल का नाम दिया। हमने समय को भी काल कहा। हमने मृत्यु को भी काल कहा। इसके पीछे कारण है।

मृत्यु भी एक शाश्वतता है और अगर हम विचार पूर्वक देखे तो मृत्यु केवल एक शब्द मात्र है। समय के द्वारा हम काट दिये जाते हैं। जब हम पूरी तरह काट दिये जाते हैं तो उस घटना को हम मृत्यु कहते है। इसके अतिरिक्त मृत्यु और कुछ भी नही है। काल के प्रवाह में हम नित्य कण-कण कर बह रहे हैं। जिस दिन हम पूरे बह जाते हैं उस दिन हम कहते हैं मृत्यु हो गयी। समय हमे प्रति पल बहाये लिये जा रहा है। हम प्रति पल बह रहे हैं। हम रूक नहीं सकते। यह नियति है।

जो काल के प्रवाह में बहने से लड़ने लगेगा वह और जल्दी टूट जायेगा। जो इस बहने को रोकने का प्रयास करेगा वह और भी जल्दी नष्ट हो जायेगा। उसका प्रयास वैसा ही होगा जैसे कोई नदी की धारा के विपरीत बहने का प्रयत्न करता हो।

समय के साथ एकता, परमात्मा के साथ एकता

समय के साथ एकता साधने का अर्थ है परमात्मा के साथ एकता साध लेना। लेकिन समय के साथ एकता साधने का अर्थ है परिवर्तन को स्वीकार करने की क्षमता जो भी हो जाय अच्छा या बुरा उसमें राजी हो जाने का गुण। जो भी घटित हो अच्छा या बुरा, उसके साथ पूरा आत्मैक्य। कहीं कोई विरोध न हो। समय जो भी सामने लाकर उपस्थित करे उसके साथ पूरा तालमेल। बिमारी आ जाय तो बिमारी। बुढ़ापा आ जाये तो बुढ़ापा। मृत्यु आने लगे तो मृत्यु। कहीं कोई विरोध नहीं। भीतर कहीं कोई विरोध नहीं। जो भी हो उसके साथ पूरा आत्मैक्य। पूरा तादात्म्य। तब आप जान समझ पायेंगे कि समय क्या है ? समय का प्रवाह क्या है ? लेकिन हम सब लड़ रहे है। हम सब समय की धारा के विपरीत बहने का प्रयास कर रहे हैं। यह आकांक्षा सम्भव नहीं। लेकिन हमारी चेष्टा वही है। काल की यह अक्षमता अनुभव में आ जाय तो परमात्मा का गहनतम रूप स्मरण में आना शुरू हो जाता है।

समय के लक्षण

समय के कुछ लक्षण है। आपको एक क्षण स अधिक नहीं मिलता। आपके हाथ में एक ही क्षण होता है। "जब वह एक क्षण निकल जाता है तब दूसरा क्षण मिलता है और जब वह दूसरा क्षण निकल जाता है तब आपको मिलता है तीसरा क्षण। आपके हाथ में दो क्षण कभी नहीं होते एक साथ। समय से ज्यादा गिनती करने वाला ठीक कोई नहीं दिखायी पड़ता। एक-एक व्यक्ति को एक-एक क्षण से ज्यादा कभी नहीं मिलता।

कोई कितना ही बड़ा योगी हो। कितना ही बड़ा ज्ञानी हो और कितना ही बड़ा धनी हो कितना ही बड़ा वैज्ञानिक हो वह समय को धोखा नहीं दे सकता कि उससे दो क्षण एक साथ ले ले। बस एक ही क्षण हाथ में आता है। आपने कभी रेत की घड़ी देखी है। रेत की घड़ी में से एक-एक कण नीचे गिरता है। उसमें कभी भूल हो सकती है क्योंकि वह मनुष्य की बनायी हुई घड़ी है और रेत के कण भी छोटे-बड़े होते हैं। कभी एक साथ दो कण भी गिर सकते

हैं ''लेकिन समय की घड़ी में कभी भी दो कण नहीं गिरते। एक ही क्षण आपके हाथ में होता है ''नपा-तुला'' और पूरा जीवन।

और क्षण विज्ञान की दृष्टि से एक-एक व्यक्ति के क्षण गिने हुए हैं। इस संसार में कोई भी व्यक्ति अपने गिने हुए क्षण से अधिक जीवित नहीं रह सकता। जीवन में जितना क्षण आपको मिला है उतने ही क्षण आप इस संसार में रहेगें। उससे अधिक नहीं। भारतीय प्रज्ञा के अनुसार जीवन की सीमा पिछले जीवन के कर्मो से नियत होती है। हमने पिछले जन्म में जो किया है वह हमारे इस जीवन के समय को निश्चित करता है। हम तो समय निश्चित कर चुके है। इसलिये ऐसा भी होता है। जैसे बुद्ध को ज्ञान हुआ। तब वे उस स्थिति को पहुँच गये कि उसके बाद जीने का कोई भी कारण न था। बुद्ध को जीने का क्या कारण ?

कोई वासना कामना न रही तो जीने का कोई भी कारण न रहा। लेकिन उन्हे चालीस साल जीना पड़ा। बुद्ध से किसी ने पूछा-''आप अब क्यों जी रहे हैं ? क्योंकि आपको न कुछ करना है न कुछ पाना ही है। जो पाना था वह पा लिया। जो करना था वह कर लिया। अब कुछ भी बचा नहीं शेष। आप पूर्ण हो गये।

बुद्ध ने कहा-वह पिछले जन्म में जो आयु पा ली है उसे पूरा करना पड़ेगा। क्योंकि समय न तो एक क्षण कम करता है और न तो एक क्षण अधिक।

ईश्वर का ऐश्वर्य और ईश्वर का अस्तित्व

ईश्वर क्या है ? ''जीवन का जो परम रहस्य है वहीं ''ईश्वर'' है। जीवन का जो परम आधार है वह ईश्वर है। हम ईश्वर का नाम बराबर लेते हैं। हम नित्य ईश्वर शब्द का प्रयोग भी करते हैं। प्राय: उसके विषय में हम सोचते विचारते भी रहते हैं। लेकिन हम इस बात पर विचार नहीं करते हैं। कि ''ईश्वर'' शब्द ऐश्वर्य का रूप है। जहाँ भी ऐश्वर्य प्रकट होता है जिस आयाम में भी वहाँ ईश्वर की झलक निकटतम् हो जाती है।

ऐश्वर्य का अर्थ है - किसी भी दिशा में और किसी भी आयाम में जो परम उत्कर्ष है जो अन्तिम सीमा है, जिसके पार नहीं जाया जा सकता है चाहे सौन्दर्य हो, चाहे प्रेम हो, चाहे भक्ति हो, श्रद्धा हो, चाहे सत्य हो कोई भी आयाम हो लेकिन जहाँ जीवन अपने अत्यन्त आत्यांतिक स्थिति का स्पर्श कर लेता है अपने चरम शिखर पर पहुँच जाता है वहाँ ईश्वर की सत्ता, ईश्वर का अस्तित्व प्रकट हो जाता है।

ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है। उस पत्थर में भी विराजमान है जो रास्ते में लावारिस पड़ा है, लेकिन नहीं जब वही पत्थर किसी कलाकार के हाथ में पड़ कर मूर्ति का रूप धारण कर लेता है तब उसमें ईश्वर का अस्तित्व अपने आप निकटतम हो जाता है।

वैसे ईश्वर कण-कण में है। लेकिन फिर भी उसके दो रूप है अव्यक्त रूप, छिपा हुआ गुप्त रूप जब वह दिखलायी नहीं पड़ता और अनुभव में भी नहीं आता, और व्यक्त अथवा प्रकट रूप जब उसकी अभिव्यक्ति होती है और वह दिखलायी पड़ता है। तात्पर्य यह कि ईश्वर के दो रूप है - अव्यक्त और व्यक्त।

ऐश्वर्य का अर्थ है जीवन के परम रहस्य की अभिव्यक्ति, की आखिरी सीमा।

वेद, पुराण, शास्त्र आदि सभी का कहना है कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है। सर्वत्र विद्यमान है। लेकिन आश्चर्य है कि जब भी उस ईश्वर की परम विभूति प्रकट होती है तो हम उसे पहचान नहीं पाते। आपको ज्ञात होना चाहिए, जिन लोगों ने जीसस को सूली पर लटकाया वे भी यही कहते थे कि कण-कण में ईश्वर हैं। लेकिन वे जीसस को न पहचान पाये। जिन लोगों ने बुद्ध को पत्थर मारे गालियाँ दी - वे लोग भी यही कहते थे कि ईश्वर सर्वत्र है। परमात्मा सर्वत्र छिपा है। लेकिन वे बुद्ध को पहचान न पाये। जिन लोगों ने महावीर को कानों में कीलें ठोक दिये वे भी यही सोचते समझते थे कि परमात्मा तो सर्वत्र है। लेकिन महावीर में उन लोगों को परमात्मा नहीं दिखायी दिया।

है न आश्चर्य की बात। जो लोग मानते हैं और कहते हैं कि ईश्वर सर्वत्र है। सब जगह छिपा हुआ है। वे भी, जब कभी किसी रूप में उसकी परम अभिव्यक्ति होती है तो उसे पहचानना तो दूर रहा बल्कि उसके विपक्ष में और उसके विपरीत खड़े हो जाते हैं।

जहाँ ईश्वर का अस्तित्व अव्यक्त है - वहाँ हम उसकी पूजा उपासना करने चले जाते हैं, लेकिन जहाँ परमात्मा व्यक्त होता है, और जहाँ उसका अस्तित्व प्रकट होता है वहाँ हम शत्रु हो जाते हैं कितनी भारी विडम्बना है।

हमारे और ईश्वर के बीच अहंकार

अवश्य इसका कोई गहरा कारण होगा। इस गहरे कारण को समझना चाहिए।

जहाँ ईश्वर अव्यक्त है - वहाँ हम कितना ही कहें कि ईश्वर हैं लेकिन हमारा अस्तित्व ईश्वर से ऊँचा ही बना रहता है। हम अपने आपको ईश्वर से

बड़ा समझे रहते हैं। और हमारे अहंकार को किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती। लेकिन जब ईश्वर अपने परम ऐश्वर्य में प्रकट होता है कहीं भी किसी रूप में तो हमारे अहंकार पर प्रहार होने लग जाता है। आघात पहुँचना शुरू हो जाता है। इसलिये कि हम अपने आपको छोटे समझने लग जाते हैं। अपने आपको नीचा अनुभव करने लग जाते हैं। हम पत्थर की मूर्ति में ईश्वर समझकर उसकी पूजा उपासना कर सकते हैं लेकिन जीवित बुद्ध को पत्थर मारेंगे ही। जीसस को सूली पर चढ़ायेंगे ही। फिर हम मरे हुए बुद्ध को और सूली पर चढ़े जीसस के नाम पर गुम्फा, बिहार बड़े-बड़े मन्दिर और चर्च बना सकते हैं और खड़े कर सकते हैं।

जीसस में बुद्ध में महावीर में, ईश्वर को पहचानना तभी सम्भव है - जब हम भगवान कृष्ण के इस वचन को समझने का प्रयास करें कि "जो व्यक्ति "तत्व" से मेरे परम ऐश्वर्य को पहचानता है...।"

"मान लेना परम्परा है। मानव स्वभाव है। सुन कर मान लेना अलग बात है। संस्कार से तात्विक पहचान नही है। क्योंकि वह पहचान क्षण भर में डगमगा जाती है। और सबसे अधिक वहाँ डगमगाती हैं जहाँ ईश्वर का ऐश्वर्य प्रकट होता है।

आप हम कृष्ण को भगवान समझते हैं। उन्हें ईश्वर मान लेना आज हमारे लिये सरल है। लेकिन जब कृष्ण थे उस समय लोगों के लिये उन्हें भगवान या ईश्वर मानना कठिन था। आज वे हमारे बीच नहीं हैं। अनुपस्थित है। क्योंकि हमारे अहंकार को कोई भी पीड़ा और किसी भी प्रकार का आघात नही है। लेकिन कृष्ण की उपस्थिति में उन्हें भगवान या ईश्वर मानना असम्भव था। शायद अर्जुन भी उन्हें भगवान न मानता रहा होगा। उसके हृदय के किसी कोने में उनके प्रति अवश्य सन्देह रहा होगा। उसके मन में कहीं न कहीं किसी अन्धेरे में छिपी रही होगी यह बात कि अन्ततः कृष्ण मेरे सखा ही है। मित्र ही हैं और इस समय मेरे सारथी भी है। सम्भव है भावना की किन्ही ऊंचाई के क्षणों में उसके मन को लगा हो कि कृष्ण अद्वितीय पुरुष हैं, लेकिन अहंकार के क्षणों में तो लगता ही होगा कि मेरे ही जैसे तो है।

यदि अर्जुन यह समझ जाता और मान लेता कि मेरा मित्र मेरा सखा और मेरा सारथी और कोई नहीं स्वयं भगवान है और है परमेश्वर तो सम्भवतः इतनी चर्चा कभी नहीं होती। गीता का आविर्भाव भी कभी नहीं होता।

कृष्ण को उसे इतना समझाना पड़ा, इतना तर्क देना पड़ा, और उसका इतना संशय दूर करना पड़! इसलिए कि अर्जुन कृष्ण के वचन को परमात्मा का वचन

नहीं मान रहा था। वह तो उस वचन को एक मित्र और एक सखा की सलाह समझ रहा था। तो इसलिये विवाद का होना आवश्यक था। चर्चा आवश्यक थी। संसार भर का तर्क कुतर्क भी आवश्यक था। यदि अर्जुन कृष्ण को ईश्वर समझ गया होता तो उसके मन में कभी सन्देह न उठता, वह विवाद भी न करता और कभी वह तर्क कुतर्क भी न करता।

ऐश्वर्य क सभी रूप परमात्मा है

ज्ञात होना चाहिए कि परमात्मा का परम ऐश्वर्य कई रूपो में प्रकट होता है। ऐश्वर्य के सभी रूप परमात्मा के रूप है। और जहाँ भी श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम दृष्टिगोचर हो भले ही दिशा कोई भी हो वहाँ परमात्मा स्वयं उपस्थित हो जाता है। पारदर्शी हो जाता है। चाहे कोई संगीतज्ञ अपने संगीत की ऊँचाई का स्पर्श करता हो। चाहे कोई चित्रकार अपनी कला की अन्तिम सीमा का स्पर्श करता हो। चाहे कोई योगी अपने मौन की गहरायी में डूबता हो। चाहे कोई कवि अथवा काव्यकार अपनी कल्पना की गहरायी में प्रवेश करता हो। चाहे कोई भी दिशा हो। जहाँ भी अभिजात्य है जहाँ जीवन किसी अभिजात्य का स्पर्श करता है वही ईश्वर अपने सघन रूप में प्रकट होता है प्रकाशित होता है और होता है पारदर्शी।

हमारे पैरो के नीचे भूमि पर भी ईश्वर है और हमारे ऊपर आकाश में भी है। लेकिन आकाश में झिलमिलाते तारागणों और नक्षत्रों की विभूति में उसे देखना हमारे लिये कठिन होगा। हमारे अहंकार पर उससे आघात लगेगा। भूमि में देखना हमारे लिए सरल होगा। इसलिये कि उससे हमारे अहंकार को चोट न लगेगी। उस पर आघात नहीं लगेगा। लेकिन कभी किसी समय संयोग वश मन्दिर की मूर्ति सजीव हो जाय और बोलने लगे तो हम उसके शत्रु हो जायेंगे। इसलिए कि उसकी सजीवता से हमारे अहंकार को चोट लगेगी।

दोस्तोवस्की की एक कथा है जिसमें उसने लिखा है कि जीसस को अपने मरने के लगभग अट्ठारह सौ वर्ष बाद विचार आया कि जमीन पर जब मैं पहले गया था तो सम्भवत: बे समय पहुँच गया था। वह ठीक समय न था। लोग तैयार न थे। मुझे मानने वाला भी कोई न था। मेरा अपमान हुआ और अन्त में सूली पर भी चढ़ना पड़ा। लोग मुझे समझ न पाये थे। मुझे पहचान न पाये थे। इसीलिये मुझे स्वीकार भी न कर पाये। अब ठीक समय है। आधा संसार ईसाइयत के अधिकार में है। हर स्थान पर मेरा चर्च है। पादरी है। मेरे नाम से हर चर्च में घंटा बजता है और मोमबत्तियां जलाई जाती है। अब लोग मुझे समझेंगे, पहचानेंगे मेरा सम्मान करेगे। समय और वातावरण दोनो अनुकूल है।

यह सोचकर जीसस अपने गांव बैथलम में उतरे रविवार का दिन था। सुबह का समय था। लोग चर्च से बाहर आ रहे थे अपने अपनी प्रार्थना पूरी कर। जीसस ने यह निर्णय कर लिया था कि अब वे अपनी ओर से यह नही कहेंगे कि "मैं जीसस क्राइस्ट" हूँ। क्योंकि पहले एक बार कहा था कि मैं जीसस हूँ। मैं ईश्वर का पुत्र हूँ। मैं तुम्हारे लिये ईश्वर का सन्देश लेकर आया हूँ परम जीवन का। और जो मुझे समझ लेगा, वह मुक्त हो जायेगा। क्योंकि सत्य मुक्त करता है। लेकिन इस बार तो अब लोग मुझे वैसे ही पहचान लेगे। घर-घर में मेरी तस्वीर है। अब तो मुझे कुछ कहने की आवश्यकता ही न पड़ेगी।

जीसस चुपचाप खड़े थे पेड़ के नीचे। लोगों ने पहचाना अवश्य। लेकिन गलत ढंग से पहचाना। लोग हंस हंस कर मजाक करने लगे बिल्कुल जीसस जैसे लग रहे हो, खूब स्वांग रचा है तुमने। कुशल अभिनेता हो।

अन्त में जीसस को कहना पड़ा - तुम लोग गलत समझ रहे हो। मैं कोई अभिनेता नहीं। कोई अभिनय नहीं कर रहा हूँ मैं। मैं वही जीसस हूँ जिसकी पूजा कर, जिसके सामने मोमबत्ती जला कर बाहर आ रहे हो।

यह सुन कर लोग और हंसने लगे। कहने लगे - तुम और जीसस भाग जाओ यहाँ से वर्ना बहुत मार खाओगे समझे।

यह सुन कर जीसस दंग रह गये। उन्होंने कहा क्या बोलते हो ईसाई होकर। पहली बार जब मैं आया था उस समय यहूदी थे। कोई ईसाई न था। इसलिए कोई पहचान न सका। यह स्वाभाविक था। लेकिन अब तो तुम सब लोग ईसाई हो। क्यों नहीं पहचान रहे हो मुझे ? उसी समय चर्च से बाहर पादरी आ गया। सड़क पर भीड़ लग गयी। जीसस पर जो लोग हंस रहे थे, वे पादरी को प्रणाम करने लगे। जीसस बहुत चकित हुए। फिर भी उनके मन में एक आशा थी कि लोग भले ही मुझे न पहचान पाये लेकिन मेरा पुजारी तो पहचान ही लेगा मुझे। मगर जब उसे यह मालूम हुआ एक व्यक्ति अपने आपको जीसस कह रहा है तो वह क्रोध भरे स्वर में बोला कौन है यह बदमाश ? जीसस एक बार आ चुके। अब दुबारा आने का कोई प्रश्न ही नही है।

लोगों ने जीसस को पकड़ लिया और उन्हें मारने लगे। जीसस को अट्ठारह सौ वर्ष पहले का ध्यान आया। ठीक ऐसे ही वे तब भी पकड़े गये थे और मार खाये थे। लेकिन तब पराये लोग थे। मुझे न समझने वाले और न पहचानने वाले लोग थे। मगर अब अपने ही लोग।

रात हो गयी। जीसस उसी पेड़ के नीचे पड़े रहे। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। तभी चर्च का वही पादरी आया और जीसस के चरणों में सिर

रख कर बोला ''मैं पहचान गया था''। लेकिन भीड़ के कारण आपको न पहचानने के लिए विवश था। हम लोगों ने अट्ठारह सौ वर्ष में आप के धर्म को ठीक से जमाया है। सब कुछ ठीक से चल रहा है। अब आपकी कोई आवश्यकता नहीं है। आप फिर सत्य की चर्चा करेंगे। फिर परम जीवन के संबंध में बतलायेंगे। जिसका परिणाम यह होगा कि सब बना बनाया अस्त-व्यस्त हो जायेगा। सब कुछ अव्यवस्थित हो जायेगा। सारे बने बनाये नियम भ्रष्ट हो जायेंगे। आपको यहाँ वापस आने की आवश्यकता नहीं। अगर आप वापस आ गये तो सभी स्वच्छन्द हो जायेंगे। आपको जो कुछ भी करना है वह सब पादरियों के द्वारा करिये। पादरी आपके और ईसाइयों के बीच कड़ी है। सेतु हैं। अगर आपने नहीं माना तो हम विवश होकर वहीं सब करेंगे - जो अट्ठारह सौ साल पहले दूसरे पुरोहितों ने किया था। आप फिर सूली पर चढ़ा दिये जायेंगे। हम आपकी मूर्ति की पूजा कर सकते हैं। आपकी तस्वीर के सामने मोमबत्ती जला सकते हैं। चर्च बना सकते हैं, आपके लिये। आपके क्रास को अपने गले में लटका सकते हैं। आपके नाम का गुणगान भी कर सकते हैं। पर आपकी उपस्थिति हमारे लिये असहनीय होगी।

कहने की आवश्यकता नहीं इस कथा का सारांश यही है कि जब भी ईश्वर अपने परम ऐश्वर्य में कहीं भी प्रकट होगा तब उसकी उपस्थिति खतरनाक सिद्ध होगी। उसका परिणाम भयंकर ही होगा। जब जब ईश्वर अपने ऐश्वर्य के साथ हमारे सामने आया है तब तब हमारा क्षुद्र अहंकार विचलित हुआ है। हम मरे हुए ईश्वर की पूजा अर्चना और उपासना कर सकते हैं, लेकिन जीवित ईश्वर को पहचान नहीं सकते। क्योंकि वह कठिन है हमारे लिये।

''ऐश्वर्य'' शब्द अत्यन्त गूढ़ है। पदार्थ में भी उसकी झलक मिलती है। एक फूल पदार्थ ही है, लेकिन जब वह जीवन्त होकर खिलता है महकता है तो उसमें पदार्थ के पार जो है वह व्यक्त होता है। वीणा भी पदार्थ है, लेकिन जब कोई संगीतज्ञ एकाग्र चित होकर उसके तारों को स्पर्श करता है तो उनमें से निकले स्वरों में भी उसका ही स्वर प्रकट होता है। जब भी कोई वस्तु श्रेष्ठता का स्पर्श करती है। अभिजात्य का करती है स्पर्श वहीं उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। लेकिन उसे देख पाना और समझ पाना कठिन है हमारे लिये। मंसूर को सूली पर क्यों चढ़ाया गया था ? उनके हाथ पैर क्यों काट डाले गये थे ? इसलिये कि उन्होंने अपने आपको परमात्मा कहा था। ''मैं ईश्वर हूँ'' यह कहा था।

जिस समय मंसूर को सूली पर लटकाया गया उस समय एक व्यक्ति जो वहाँ खड़ा था, ने आँख उठा कर मंसूर की तरफ देखा।

भीड़ थी। लगभग एक लाख व्यक्ति मंसूर को सूली देने के लिये एकत्र थे वहाँ। काफी दूर दूर से आये थे वे लोग। और मंसूर का अपराध केवल इतना ही था कि उन्होने घोषणा की थी कि "मैं मिट गया हूँ' और अब केवल "परमात्मा" हैं। उनकी घोषणा में केवल इतनी ही गलती थी कि उन्होने परम ऐश्वर्य को घोषित किया था।

जब कोई व्यक्ति मंसूर से कहता था कि तुम अपने को "ईश्वर" कहते हो। तो इस पर मंसूर कहता था "जब तक मैं था" तब तक मैंने अपने आपको आदमी भी नहीं कहा। जब से मैं नहीं रहा हूँ, तब से ही मैंने कहा है कि "ईश्वर हूँ" मैं नहीं हूँ ईश्वर ही है। हाँ तो भीड़ एकत्र थी। लेकिन किसी की भी आँखें मंसूर की ओर नहीं थी। सभी झुक-झुक कर पत्थर उठाने और मंसूर को मारने के धुन में थे। कोई भी मंसूर को देख नहीं रहा था। लेकिन मारने वालों की भीड़ में एक ऐसा भी व्यक्ति था जो पत्थर फेंक कर मार रहा था और मंसूर को देख भी रहा था ध्यान से। अचानक उसका हाथ रूक गया और वह आश्चर्य चकित होकर मंसूर को अपलक देखने लगा। मंसूर उस समय मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। वे आनन्द से भरे थे। वह व्यक्ति निकट चला गया और उसने मंसूर से पूछा - "मंसूर" तुम क्यों मुस्करा रहे हो? कौन सा आनन्द का अनुभव कर रहे हो तुम ? क्या तुमको पत्थर की चोट की पीड़ा नहीं हो रही है ? क्या तुम अपनी मृत्यु से भयभीत नहीं हो?

मंसूर खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले - मैं इसलिये प्रसन्न और आनन्दित हो रहा हूँ कि तुम्हारी आँखें और लोगों की आँखों से थोड़ी ऊपर उठ कर मुझे देख रही थी। मुझे देखने के लिए अन्य लोगों से। अब मेरा सूली पर चढ़ना सार्थक हुआ। मेरी प्रसन्नता का बस यही रहस्य है।

कहने का तात्पर्य यह है कि हम ऊपर देखने के अभ्यासी ही नही है। हमारी आँखें नीचे की ओर देखने की आदि हैं। ऊपर देखने में हमे पीड़ा होती है। अहंकार पर आघात लगता है। क्षुद्र को देख कर प्रसन्न होते हैं। श्रेष्ठ को देखकर हम विचलित हो उठते हैं।

एक बार महान विचारक नीत्से ने कहा था - अगर कोई ईश्वर है तो मैं उसे तभी बरदास्त कर सकता हूँ जब उसी के बराबर के सिंहासन पर मैं भी बैठूँ। अगर कहीं कोई ईश्वर है तो मैं इनकार करता ही रहूँगा तब तक जब तक कि मैं भी उसकी ऊँचाई पर न बैठ जाऊँ।

इसीलिए श्रेष्ठ को स्वीकार करना बड़ा कठिन है। श्रेष्ठ को स्वीकार करने में बेचैनी है। कोई निकृष्ट है - उसे स्वीकार करने में बड़ा सुख है।

इसका मूल कारण यह है कि हमे कोई बुरा दिखलायी पड़ता है तो हम अपने आपको बड़ा अनुभव करने लग जाते हैं। इसी प्रकार जब हमें कोई भला दिखलायी पड़ता है तो हम अपने आपको छोटा अनुभव करने लग जाते हैं यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है। श्रेष्ठ को देखने में हम असमर्थ हैं। इसीलिये ईश्वर को उसकी विभूतियों को भी देखने और समझने में असमर्थ हैं। यदि इस विकार को हम निकाल दें तो निश्चय ही हमें ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव अपने आप होने लगेगा।

ईश्वर क्या है ?

जब भी हम ईश्वर के संबंध में विचार करते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर "अस्तित्व" से अलग कुछ और है। यह विचार के मूल में कारण होता है। यह विचार के स्वभाव और प्रक्रिया के कारण होता है। जब भी विचार का उपयोग किया जाता है तो वस्तुएं दो भागों में खण्डित जाती हैं। विचार वस्तुओं को विश्लिष्ट करने का मार्ग हैं। इसलिये जब भी हम सोचते हैं ईश्वर के संबंध में तो जगत अलग और ईश्वर अलग हो जाता है। जब हम कहते हैं सृष्टि तो सृष्टिकर्ता अलग हो जाता है, लेकिन वस्तुतः अनुभूति में सृष्टि ठीक वैसी ही है जैसे मकड़ी अपने भीतर से जाले को निकाल कर फैलाती है। जगत का सारा विस्तार परमात्मा से वैसे ही निकला और फैला है जैसे मकंड़ी का जाला मकड़ी से ही निकलता और फैलता है। जगत और उसका विस्तार ईश्वर का ही विस्तार है। यह सारा विस्तार उससे पृथक नही है। एक क्षण के लिये पृथक होकर उसका अस्तित्व नही हो सकता। वह है उसकी ही उपस्थिति के कारण ईश्वर विद्यमान है इसलिये सृष्टि भी विद्यमान है। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व सम्भव ही नहीं। इसका अर्थ तब यह हुआ कि ईश्वर को जगत के अस्तित्व का पर्यायवाची माने। ईश्वर अस्तित्व है। और अस्तित्व ईश्वर है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है।

इस बात को वैज्ञानिक भी स्वीकार कर लेगा और नास्तिक भी। लेकिन दोनों यही कहेंगे कि फिर "ईश्वर" शब्द का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता। प्रकृति काफी है। जगत काफी है अस्तित्व काफी है।

जहाँ तक धर्म का प्रश्न है उसके लिये यहाँ विशेष शब्द के प्रयोग का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। प्रकृति जगत और अस्तित्व कहना काफी है। लेकिन इन शब्दों से हमारे हृदय में किसी भी प्रकार का आन्दोलन नहीं होता। प्राणों में कोई चीज संचारित नहीं होती। उनके और हमारे बीच किसी भी प्रकार का संबंध

निर्मित नहीं होता। लेकिन ईश्वर कहते ही परमात्मा शब्द का उच्चारण करते ही हमारा मन आन्दोलित हो उठता है। हमारा हृदय झंकृत हो उठता है। हमारा प्राण प्रकम्पित हो उठता है। ईश्वर अथवा परमात्मा इसलिए प्रयोजित है, क्योंकि "ईश्वर" है, इतना काफी नही है कहना, मनुष्य ईश्वर तक पहुँचे उसे प्राप्त करे यह भी आवश्यक है।

आपको मालूम होना चाहिए धर्म केवल तथ्यों की घोषणा नहीं है वरन् लक्ष्यों की भी घोषणा है। यही विज्ञान और धर्म में अन्तर है। "क्या है ? इतने से ही धर्म का संबंध नहीं है। "क्या होना चाहिए" और क्या हो सकता है उससे भी धर्म का संबंध है। "बीज" को विज्ञान "बीज" ही कहेगा और "धर्म" कहेगा यह फूल है। धर्म उसकी भी घोषण करेगा जो हो सकता है और जो होना चाहिए। अगर "बीज" फूल न बन सका तो वह अतृप्त रह जायेगा। विषाद और सन्ताप से भर जायेगा। अपने आप में अधूरापन अनुभव करेगा वह।

विज्ञान इतना कह कर सन्तोष कर लेता है कि अस्तित्व है। धर्म कहता है अस्तित्व और ईश्वर समनार्थी हैं। फिर भी हम अस्तित्व न कह कर ईश्वर ही कहते हैं। ईश्वर कहते ही बीज और फूल दोनों की घोषणा एक साथ हो जाती है।

ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है

हमें यह भी अनुभव नहीं होता कि ईश्वर हमारे भीतर भी उपस्थित है और हम हैं कि काबा में, काशी में, मक्का में, मदीना में, मथुरा आदि तीर्थ स्थानों में उसे खोजने निकलते हैं। यह विचार ही नहीं आता कि वह हमारे भीतर भी हो सकता है। क्या कारण है इसका ?

कारण बहुत ही सरल और सहज है।

जो अति निकट होता है वह विस्मृत हो जाता है। जो भीतर होता है उसका हमें ज्ञान नहीं होता। हमें उन्हीं चीजों का ज्ञान होता है जो हमसे दूर होती है। अलग होता है। "बोध" के लिये बीच में अन्तराल होना चाहिए। जिस बात के हम आदी हो जाते हैं वह हमारे ख्याल और विचार की पकड़ में नहीं आता। जो बात निरन्तर होती रहती है उसका बोध मिट जाता है। जो बात अचानक होती है उसका बोध हमें होता है। जो बात बराबर निरन्तर होती रहती है उसका बोध कभी नहीं होता हमें। ईश्वर और हमारे बीच भी ऐसी ही स्थिति है। हमारे दोनों के बीच कभी कोई ऐसी घटना नहीं घटती जिससे अपने भीतर ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव हो। अगर एक पल के लिये भी ईश्वर हमसे अलग हो जाये तो

अपने भीतर उसकी सत्ता का हमें उसी समय अनुभव हो जायेगा। वह दूर होता तो हम उसका किसी न किसी प्रकार पता चला ही लेते। वह तो इतना निकट है कि हमे उसका पता ही नहीं चलता। वह इतनी सघन निकटता है कि कभी नहीं टूटती।

दूरी कितनी ही लम्बी क्यों न हो पार की जा सकती है। अगर ईश्वर दूर होता तो हमने पार कर लिया होता। दूरी की यात्रा की एक विशेषता है कि रास्ता अपने आप बन जाता है। एक व्यक्ति पहुँच जाय तो सब पहुँच सकते हैं। लेकिन ईश्वर और हमारे बीच दूरी है ही नहीं इसलिये रास्ता कैसे बन सकता है।

ध्यान रहे, यदि रास्ता मजबूत हो तो आपको केवल चलना जानना ही आवश्यक है। धर्म की दृष्टि में कठिनाई यह है कि चलना तो सभी को आता है पर रास्ता नही है। प्रत्येक को रास्ता स्वयं बनाना पड़ता है। किसी दूसरे का रास्ता अपने लिये काम में नहीं आ सकता। अपने लिये स्वयं रास्ता बनाना पड़ता है। दूरी हो तो तभी दूसरे के रास्ते काम आ सकते हैं। यहाँ दूरी है ही नहीं। आपको यह बात विरोधाभासी लगेगा। जब दूरी होती है तो हम पहुँच सकते हैं। समझिये जैसे हमको आपके पास अगर आना है तो हम चल कर आयेंगे और अगर हमें अपने ही पास आना है तो चलने का फिर प्रश्न ही नही उठता। हमारे सामने सबसे बड़ी कठिनाई यही है और वह यह कि ईश्वर का निरन्तर उपस्थित रहना। इस भाषा को भी हम गलत मानते हैं। ''पास'' अथवा ''निरन्तर'' शब्द का प्रयोग करने पर भी थोड़ी दूर का अन्तर परलक्षित होता है। हम वही है, फिर भी हम भाषा में दो हो जाते हैं - मैं और ''वह'' इसीलिये ज्ञानियों ने कहा कि ''मैं ही हूँ'' - 'अहं ब्रह्मास्मि'। या तो फिर कहा कि ''तू ही है।'' या तो ''मैं'' ही हूँ और या तो ''तू'' ही है। क्योंकि दो का उपयोग करने पर अन्तर अपने आप उत्पन्न हो जाता है। हमारे और ईश्वर के बीच उतना भी अन्तर नही है।

ईश्वर सम्पूर्ण अस्तित्व में विद्यमान है इसलिए उसे खोजने की भूल में नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि उसे हमने कभी खोया ही नही है। जिसे हम खो दे उसे खोज भी सकते हैं। लेकिन ईश्वर को खोने का यहाँ प्रश्न ही नहीं है। आप ईश्वर को खो ही नहीं सकते। यदि इसकी परिभाषा की जाय तो परमात्मा या ईश्वर का अर्थ है आपका वह भाग जिसे आप खो नहीं सकते। जो जो आप खो सकते हैं वह आपका नहीं है। जिसे आप खो नहीं सकते वही बस आपका है। जिसे आप खो नहीं सकते वहीं ईश्वर हैं परमेश्वर है और हैं परमात्मा। अब इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वर को खोजना व्यर्थ है। खोज से हम थकते हैं

और रूकते हैं और जिस दिन हम थक जाते हैं और रूक जाते हैं पूरी तरह उसी दिन उसे प्राप्त कर लेते हैं। क्योंकि हम उसे पाये हुए हैं। वह हमारा अस्तित्व है।

जिसका अन्त हो जाय वह विभूति नहीं है। जिसका अन्त हो जाये वह "दिव्य" भी नहीं है। जिनका आरम्भ हो और अन्त हो वे सब सांसारिक है। विभूति और "दिव्य" शब्द का अर्थ ही है कि जिसका न कोई प्रारम्भ है और न कोई अन्त ही है। जिसका स्वभाव अनादि और अनन्त होना है, वहीं विभूति है और है वही दिव्यता। इस विश्व में हमें जहाँ-जहाँ प्रारम्भ मिल जाता है और अन्त मिल जाता हैं समझ लेना चाहिए कि वहाँ वहाँ संसार है, और है माया।

इसी प्रकार जहाँ प्रारम्भ और न मिलता हो वहाँ समझ लेना चाहिए कि ईश्वर के ऐश्वर्य की झलक है। और उस झलक को आपकी आत्मा तुरन्त समझ लेगी। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि हम ईश्वर को भी वस्तुओं की ही तरह देखने के आदि हो गये हैं। हम तो चाहते हैं कि ईश्वर भी वस्तुओं की तरह सामने आ जाय। एक नास्तिक कहता है कि कहाँ है आपका ईश्वर ? उसे सामने लाये तभी हम मानेंगे। एक प्रकार से उसका प्रश्न सार्थक है लेकिन है व्यर्थ। बिल्कुल व्यर्थ। क्योंकि वह ईश्वर शब्द की परिभाषा ही समझ नहीं पाया है।

ईश्वर की परिभाषा है जिसका कोई प्रारम्भ नहीं जिसका कोई अन्त नहीं जिसका कोई गुण नहीं फिर भी जो है और जितने भी गुण हैं, जितने भी आकार है और जितने भी रूप हैं उनके भीतर जो उपस्थित हैं। जैसे हम आपको एक फूल दूँ और कहूँ कि सुन्दर है। फूल तो मैं आपको दे सकता हूँ। फूल की परिभाषा भी हो सकती है, लेकिन सौन्दर्य की परिभाषा में कठिनाई खड़ी हो जायेगी। सौन्दर्य क्या है इसे हम भी जानते है और आप भी जानते हैं लेकिन यदि कोई सौन्दर्य की परिभाषा पूछे या पूछे कि सौन्दर्य क्या है तो इसका उत्तर न हमारे पास होगा और न तो होगा आपके पास ही। सौन्दर्य की परिभाषा बतलाना या बतलाना कि सौन्दर्य क्या है ? किसी के लिये सम्भव नहीं। सौन्दर्य का अनुभव सभी को हैं। ऐसा व्यक्ति खोजना कठिन है जिसने सौन्दर्य का अनुभव न किया हो लेकिन अब तक प्लेटों से लेकर बन्ड्रैन्ल रसेल तक सौन्दर्य के संबंध में चिन्तन मनन करने वाले लोग एक परिभाषा भी न दे पाये कि सौन्दर्य क्या है ?

ईश्वर या परमात्मा की परिभाषा अत्यन्त कठिन है। समय, प्रेम, सौन्दर्य, सत्य और शुभ - ये सब अलग अलग कठिनाईयां है। इनमें से किसी की भी परिभाषा नही हो सकती।

जरा सोचिये, हम इतनी छोटी चीजों की परिभाषा नहीं कर पाते और चलते हैं ईश्वर या परमात्मा की परिभाषा पूछने। शुभ क्या है ? पता नही चलता। सौन्दर्य क्या है ? पता नही चलता। सत्य क्या है ? पता नही चलता। प्रेम क्या है ? पता नही चलता। पूछते हैं ईश्वर या परमात्मा क्या है ? हमारे लिये यह कहना साधुतर होगा कि ये जो अपरिभाष्य है इन सब का जो जोड़ है वही ईश्वर या परमेश्वर है।

बुद्ध कहते थे कि यह मत पूछो कि ईश्वर क्या है ? यह पूछो कि ''ईश्वर'' को कैसे पाया जा सकता है ? ईश्वर की हम व्याख्या नहीं कर सकते। लेकिन अनुभव कर सकते हैं। जिन अपरिभाष्य चीजों की चर्चा की गयी है उनकी हम व्याख्या नहीं कर सकते। लेकिन उनका अनुभव तो हम कर ही सकते हैं।

ईश्वर को जब भी हम मापने चलते हैं तभी हम आकार देते हैं। जब भी हम पूछते हैं कि ईश्वर कहाँ है और कैसा है ? कैसा है उसका रूप ? कैसा है उसका रंग ? कैसी है उसकी आकृति ? तब हम गलत पूछ रहे हैं। सब रूप, सब रंग और सब आकृति जिसकी है वही है ईश्वर।

ईश्वर के लिये यह भी कहना ठीक नहीं कि वह ''है'' क्योंकि जितनी भी चीजों को हम कहते है ''हैं'' वे सभी नहीं हो जाती है। जिसको भी हमने कहा ''है'' वह कल नहीं रह जायेगा। और परमात्मा कभी भी ''नहीं'' नहीं होता। तो हमारा ''है'' शब्द काफी छोटा पड़ जाता है।

अब इस प्रसंग के अन्त में हम पाठकों से इतना ही कहना चाहेंगे कि जहाँ-जहाँ ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति अपनी चरम सीमा पर दिखलाई देती हैं। वहाँ-वहाँ ईश्वर की उपस्थिति समझ लेना चाहिए। ईश्वर भले ही न दिखायी दे, उसके ऐश्वर्य को ही समझ लेना चाहिए की वह है।

जैसा कि गीता में भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है - जहाँ-जहाँ ऐश्वर्य दिखाई दे, अगर ईश्वर नहीं भी दिखाई पड़ता तो बेहतर है कि तू ऐश्वर्य को ही देख।

ईश्वर और सृष्टि

परमात्मा जगत का सृजन करता है, तो कैसे करता हैं ? इस प्रसंग में यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है, जिस पर विचार करना आवश्यक है।

विज्ञान मानता है कि कुछ ऐसा भी सृजन है जब करने वाला कुछ भी नहीं करता। केवल उसकी उपस्थिति मात्र से सृजन हो जाता है। विज्ञान उसे कैटेलिटिक एजेन्ट कहता है। उसके बिना घटना नही घटती। उसकी उपस्थिति से ही घटना घट जाती है। वह स्वयं कुछ नही करता।

जैसे अगर हाइड्रोजन और आक्सीजन को हम आपस में मिलाये तो पानी नहीं बनेगा। यद्यपि हम पानी को तोड़े तो हाइड्रोजन और आक्सीजन के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। दोनों को साथ रख दे तो पानी नहीं बनता। यह बड़ी विचित्र बात है। क्योंकि पानी को तोड़ने पर दोनों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता। जबकि स्वभावत: दोनों के मिलने से पानी बन जाना चाहिए। लेकिन एक चीज है और वह है बिजली। हाइड्रोजन और आक्सीजन तब तक आपस में नहीं मिलते जब तक बिजली उपस्थित न हो। अगर बिजली उपस्थित हो तो दोनों मिल जाते हैं। और पानी बन जाता है। मगर आश्चर्य की बात तो यह है कि बिजली अपनी उपस्थिति के अतिरिक्त और नहीं करती कुछ भी। पानी में सम्मिलित नहीं होती वह। अगर सम्मिलित होती तो जब हम पानी को तोड़ते हैं तो बिजली भी मिलती चाहिए। लेकिन वह नहीं मिलती। मिलती है केवल दो चीजें हाइड्रोजन और आक्सीजन। अगर बिजली उपस्थित न हो तो पानी बनने की घटना भी नहीं घट सकती। उसकी उपस्थिति से ही घटना घट जाती है। बिजली नहीं, बिजली की उपस्थिति। बिजली की उपस्थिति को तोड़कर पानी पाया नहीं जा सकता। जब हम पानी को तोड़ेंगे तो बिजली उपस्थित थी पानी बनते समय। उसकी उपस्थिति को हम पानी से निकाल नहीं सकते।

परमात्मा की उपस्थिति से जगत निर्मित होता है। परमात्मा कैटेलिटिक ऐजेन्ट है। परमात्मा जगत का निर्माण नहीं करता। उसका उपस्थित होना ही सृजन का सूत्रपात है।

कृष्ण कहते हैं-मेरी उपस्थिति में ही सृष्टि की रचना प्रारम्भ हो जाती है। मैं सृष्टि का निर्माण नहीं करता। यह मेरा कृत्य नहीं है। मेरी यह उपस्थिति मात्र है। मेरे उपस्थित होते ही जीवन चल पड़ता है। जैसे प्रात: काल सूर्य उदय होता है। फूल अपने आप खिल जाते हैं। पक्षी गण अपने आप चहचहाने लगते हैं। सूर्य एक-एक फूल को खिलाता नहीं है एक एक पक्षी से चहचहाने को नहीं कहता। बस उसकी उपस्थिति।

सूर्य के उदय होने पर उसकी उपस्थिति होते ही अपने आप सर्वत्र जागरण फैल जाता है। सूर्य किसी के द्वार पर आकर दरवाजा नहीं खटखटाता। वह यह नहीं कहता कि उठो। बस उसकी उपस्थिति। मगर कैटेलेटिक एजेन्ट और भी सूक्ष्म बात है। वह तो इतना भी नहीं करता। बस केवल उस उपस्थित होता है। केवल उसकी उपस्थिति ही काम करती है। कोई रासायनिक प्रवेश नहीं होता। इसलिए जो निर्माण हुआ है अगर हम उसे तोड़े तो जिसकी उपस्थिति में हुआ

था, उसे हम कभी न खोज पायेंगे। और यही कारण है कि जगत में हम परमात्मा को कितना भी खोजे वह कभी न मिल पायेगा हमें। कभी नहीं मिल सकता है वह। क्योंकि हम हर चीज को खोज लेते हैं परमात्मा कहीं मिलता नहीं और अगर यह उसका सृजन है तो कहीं न कहीं उसकी सृष्टि में उसको मिलना ही चाहिए। लेकिन अगर भगवान कृष्ण का यह सूत्र याद रखा जाय तो विज्ञान अधैर्य नहीं दिखायेगा। क्योंकि विज्ञान भली भाँति जानता है कि 'कैटेलिटिक ऐजेन्ट' भी होते हैं। और उनकी उपस्थिति में भी घटनाएँ घटती हैं। और फिर घटी हुई घटना को तोड़ने से उसको पाया नहीं जा सकता।

तो क्रियेटर की तरह नहीं स्रष्टा की तरह नही उपस्थिति मात्र काम करती हो- ऐसे कैटेलिटिक एजेन्ट की भाँति परमात्मा काम करता है। जिस दिन वैज्ञानिक इस रहस्य को समझ जायेंगे उसी दिन परमात्मा की झलक उन्हें मिलनी शुरू हो जायेगी।

अब यह प्रसंग यहाँ समाप्त होता है और प्रणवगिरि का प्रसंग पुनः शुरू होता है। जैसे कि बतलाया जा चुका है प्रणवगिरि एक योग विभूति थे इसमें सन्देह नहीं। पूरे तीन महीने उनके सान्निध्य में रहा मैं और इन तीन महीनों में मुझे उनसे जो आध्यात्मिक लाभ हुआ वह अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति और साधना की अति मूल्यवान सम्पत्ति समझी जायेगी वह।

योगी आनन्द मोहन ब्रह्मचारी

उस दिन गुफा में मेरे और प्रणवगिरि के अतिरिक्त एक और महाशय थे जिनका नाम था योगी आनन्द मोहन ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारी जी व्यास कुण्ड से पधारे थे। वहाँ उनकी अपनी कुटिया थी। वे अभी युवा थे लेकिन साधना की ऊँचाई का स्पर्श कर लिया था उन्होंने अल्पकाल में ही। ब्रह्मचारी जी प्रायः समाधि की अवस्था में रहा करते थे और जब वे चैतन्य होते थे मुझसे साधना के विभिन्न विषयों पर चर्चा किया करते थे।

योग तंत्र का मुख्य विषय

ब्रह्मचारी जी को योग-तंत्र का विषद और गंभीर ज्ञान था। योग तंत्र का मुख्य विषय क्या है ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मचारीजी ने कहा - पंचकोष और षट्चक्र बस ये ही दो विषय है, मुख्य रूप से। योग-तंत्र की सारी साधना उपासना इन्ही दोनों को लेकर है।

मनुष्य का व्यक्तित्व

इस प्रसंग में ब्रह्मचारीजी आगे बोले-मनुष्य का व्यक्तित्व अनेक पर्तों से बना है। योग-तंत्र का कहना है कि साधना की दृष्टि से इन पर्तों का सम्यक बोध आवश्यक है और उनके पार भी जाना आवश्यक है। जिसमें हमें मुक्त होना हो उसे भली भाँति जान समझ लेना चाहिए।

पंचकोषों में पहला कोष है अन्नमय कोष। इसका जो विकास है - वह है भौतिक शरीर। यह पहली पर्त है। यह शरीर माता पिता से उपलब्ध होता है। यह हमारा नही है। यह पर्त हम नही है। यह पर्त एक लम्बी परम्परा है। हजारों शरीरों ने इस शरीर को निर्मित किया है। माता पिता से जो बीजाणु हमें प्राप्त होता है उसमें इस शरीर की सारी सम्भावनायें छिपी होती हैं। इस शरीर की जो लम्बी यात्रा है "हमें अपने माता पिता से मिला है और उनके माता पिता से उन्हें मिला है। लम्बी यात्रा है हजारों वर्ष की लम्बी यात्रा।

अन्नमय कोष (पार्थिव शरीर)

यदि हम अपने शरीर के पीछे लौटे तो प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में इस जगत का पूरा इतिहास छिपा है। यह जगत पहले दिन बना होगा उस दिन भी आपके और हमारे शरीर का कुछ भाग उपस्थित था। वही विकसित होकर आपका शरीर हुआ है। एक छोटे से बीज कोष में इस अस्तित्व की सारी कथा लिपिबद्ध है। वह आपका और हमारा नहीं है। उसकी लम्बी परम्परा है। वह बीज कोष न जाने कितने मनुष्यों से न जाने कितने पशुओं से न जाने कितने पेड़ पौधों से और न जाने कितने खनिजों से यात्रा करता हुआ आप तक आया है। यह आपकी पहली पर्त है। उस पर्त को हमारे ऋषि अन्नमय कोष कहते हैं।

अन्नमय कोष क्यों कहते हैं - मैने प्रश्न किया। अन्नमय कोष इसलिये कहते हैं कि उसके निर्माण की जो प्रतिक्रिया है - वह भोजन से होती है। उसका निर्माण भोजन से होता है। प्रत्येक व्यक्ति का शरीर सात साल में बदल जाता है। एक व्यक्ति यदि सत्तर साल जीता है तो दस बार उसके शरीर का रूपान्तरण हो जाता है। आप रोजाना जो भोजन ले रहे है वह आपके शरीर को बनाता है और रोजाना आप अपने शरीर से मृत शरीर को बाहर फेंक देते हैं। जब हम यह कहते हैं कि फलाँ व्यक्ति की मृत्यु हो गयी तो हम अन्तिम मृत्यु को कहते हैं। जब उसकी आत्मा शरीर को छोड़ देती हैं। वैसे यदि देखा जाय तो व्यक्ति का नित्य देहावसान हो रहा है। आपका शरीर मरे हुए हिस्से को नित्य बाहर फेंक रहा है। आप नाखून और बाल काटते हैं, दर्द नहीं होता इसलिये कि वह शरीर

का मरा हुआ हिस्सा है। शरीर को अन्नमय कोष कहा गया है क्योंकि वह अन्न से निर्मित होता है। और इसलिये बहुत कुछ निर्भर करेगा कि भोजन आप कैसा करते हैं। आपका भोजन और आपका आहार केवल जीवन चलाऊ नहीं है। वह आपके व्यक्तित्व की पहली पर्त निर्मित करता है। और उस पर्त के ऊपर बहुत कुछ निर्भर करेगा कि आप अपने भीतर की यात्रा कर सकते हैं या नहीं कर सकते हैं। क्योंकि सभी भोजन एक जैसा नहीं है।

भोजन वही उपादेय और उचित है, जो आपकी अन्तर्यात्रा में बाधक न बने। अन्तर्यात्रा का मतलब है ध्यान, धारणा आदि। कुछ भोजन ऐसे होते हैं जो आपको भीतर प्रवेश करने ही न देंगे। आपको बाहर ही दौड़ाते रहेंगे। कुछ भोजन ऐसे हैं जो आपके भीतर चैतन्य को जन्म ही न देंगे क्योंकि वे आपको बेहोश ही करते रहेंगे। कुछ भोजन ऐसे हैं जो कभी आपको शान्त होने न देंगे। क्योंकि उस भोजन की प्रक्रिया में ही आपके शरीर में एक बेचैनी उत्पन्न हो जाती है। भोजन चार प्रकार का है - रूग्ण भोजन, स्वस्थ्य भोजन, शुद्ध भोजन और अशुद्ध भोजन। शुद्ध भोजन किसे कहते हैं - प्रश्न ?

शुद्ध भोजन उसे कहा गया है जिससे आपकी साधना में आपकी अन्तर्यात्रा में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। बस शुद्ध भोजन का यही अर्थ हैं। शुद्ध भोजन वह है जिससे आपका शरीर कांच की तरह पारदर्शी हो जाय ताकि आप बाहर भी चलते रहे और भीतर भी चलते रहे। जिस भोजन से आपको अपने भीतर की झलक मिले वह शुद्ध भोजन है।

सात्विक और असात्विक आहार

सात्विक और असात्विक का बस इतना ही अर्थ है। जिस भोजन से आपका शरीर निर्मल शुद्ध और पारदर्शी बना रहे और जिसके फलस्वरूप आपको दूसरी पर्त की झलक मिलती रहे वह सात्विक भोजन है। साधारणत: किसी को यह पता नहीं चलता कि शरीर के भीतर और भी शरीर है। इसका और कोई कारण नही है। शुद्ध सात्विक भोजन करने वाला एक योगी को ही पता चलता है कि शरीर के भीतर एक और शरीर है।

जैसे पहले शरीर को पारदर्शी बनाने का उपाय है वैसे ही दूसरे शरीर को भी पारदर्शी बनाने का उपाय है। फिर तीसरे शरीर को भी पारदर्शी बनाया जा सकता है। तो चौथा शरीर है : और चौथा भी पारदर्शी हो जाय तो पाँचवा। और जब पाँचवा शरीर होता है तो शरीर के बाहर जो है - शरीर के पास जो है, अशरीरी जो है, उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है।

इसलिये योग-तंत्र पहले से शुरू करता है अन्नमय कोष। पहली पर्त अथवा पहला शरीर सम्पूर्ण रूप से भोजन से निर्मित है। इसमें कुछ भी नही है जो भोजन के बाहर से आया हो। सम्भव है वह भोजन आप के पिता ने किया हो और उनके पिता ने किया हो। इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस शरीर में ऐसा कुछ भी नहीं है जो बाहर से आया हो। तुमको ज्ञात होना चाहिए, ब्रह्मचारी जी बोले मनुष्य का जो जीव कोष है, जिसमें गर्भ निर्धारण होता है उसका विश्लेषण करने पर सिवाय भोजन के तत्वों के और कुछ भी नहीं मिलता है। भोजन का सारभूत हिस्सा जीव कोष में संग्रहीत होता है।

इस बात को वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि भोजन के रूप में शरीर के भीतर जो कुछ भी जाता है वह शरीर को बदल देता है। एक स्त्री और एक पुरुष के शरीर में केवल थोड़े से हारमोन्स का अन्तर है। इसके अलावा और कुछ नहीं। आपको मालूम होना चाहिये, हारमोन्स भी भोजन से ही निर्मित होता है। अगर स्त्री के शरीर में हारमोन्स की कमी हो जाय तो वह पुरुष के शरीर में परिवर्तित होने लगेगी। इसी प्रकार अगर पुरुष के शरीर में हारमोन्स की कमी हो जाय तो वह स्त्री के शरीर में परिवर्तित होने लग जायेगा। हारमोन्स भोजन है। वह भोजन से निर्मित सार तत्व है।

भोजन में थोड़ा सा फर्क पड़ जाय तो बुद्धि भी क्षीण हो जाती है या प्रगाढ़ हो जाती है। बुद्धि का भी संबंध भोजन से समझना चाहिये। क्योंकि बुद्धि के लिये कुछ अनिवार्य भोजन के तत्व है। जो प्राप्त होना चाहिए। अगर वे न पहुँचे तो बुद्धि क्षीण हो जाती है। बुद्धि की क्षमता भी होगी तो भी बुद्धि प्रकट नहीं हो पायेगी। क्योंकि प्रकट करने के लिये भी अन्नमय कोष की सहायता चाहिए।

पिनियलग्लैण्ड

आप यह जान कर आश्चर्य करेंगे कि एक छोटा सा तत्व आदमी के पिनियलग्लैण्ड - जिसे योग की भाषा में तीसरा नेत्र कहते हैं - मैं पैदा होता है। अगर वह पैदा न हो तो बुद्धि बिल्कुल क्षीण हो जाती है। वह तत्व क्या है - प्रश्न ?

ब्रह्मचारीजी बोले - इस संबंध में पहले आपको मैं एक घटना सुनाता हूँ। भगवान बुद्ध ने पूरे पच्चीस वर्ष तक बोधिवृक्ष की पूजा की। लोग इसे ना समझी की बात कहेंगे। यही कहेंगे कि इसे संयोग ही समझा जायेगा कि बुद्ध उस वृक्ष के नीचे बैठे थे पूरे पच्चीस वर्ष तक। इसमें पूजा जैसा भला क्या हो सकता था ? वे कहीं और बैठ सकते थे। लेकिन नही बात कुछ और थी। और थी

काफी महत्वपूर्ण। अभी आपसे मैने जो पिनियलग्लैण्ड की चर्चा की है। वह मानव मस्तिष्क की अतिमहत्वपूर्ण ग्रन्थि है। समझे न आप। जैसा कि मैने बतलाया - योग की भाषा में इसी को तीसरा नेत्र अथवा शिवनेत्र कहा गया है। मानव शरीर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है यह ग्रन्थि। मानव शरीर के भीतर जो चैतन्य है उसका अविर्भाव इसी ग्रन्थि में उत्पन्न होने वाले एक विशेष प्रकार के रस तत्वों से होता है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उस ग्रन्थि में जिस रस तत्वों का जन्म होता है और जिसके बिना मनुष्य के भीतर चेतना का जन्म नहीं होता बुद्धि का अविर्भाव नहीं होता - बड़े आश्चर्य की बात है कि वह रस तत्व वट वृक्ष में सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध है।

इसमें आश्चर्य की बात न होगी कि बुद्ध का उस वृक्ष के नीचे बैठना और बोधि को उपलब्ध होना इसमें उस वृक्ष का भी सहयोग हो। वह वृक्ष सिर्फ संयोगिक नही है। उसका सहयोग सम्भव हो सकता है बुद्ध को बुद्धत्व की प्राप्ति की दिशा में।

हमारे देश में वट वृक्ष की भाँति पीपल की भी पूजा होती है। यह सर्व विदित है। पीपल ही संसार में एक अकेला वृक्ष है पूरी वनस्पतियों में जिसके नीचे रात्रि में सोया और बैठा जा सकता है। एक पीपल को छोड़ कर अन्य किसी भी वृक्ष के नीचे रात्रि में सोना बैठना खतरनाक है। दिन में सारे वृक्ष आक्सीजन छोड़ते हैं इसलिये उनके निकट होना जीवन के लिये कल्याण कारी और लाभप्रद है। वहीं सारे वृक्ष रात्रि में कार्बन डाईआक्साईड छोड़ते हैं जो जीवन के लिये खतरनाक है। अकल्याणकारी है। सिर्फ पीपल ही एक अकेला वृक्ष है जो रात दिन चौबीस घण्टे आक्सीजन छोड़ता रहता है। उसके निकट किसी भी समय रहे, वह जीवनदायी है।

तो भारतीय मनीषियों ने पीपल और बरगद के वृक्ष को - इतने वृक्षों के बीच पूज्य भाव से देखा है, किसी अनुग्रह के भाव के कारण देखा है। भारतीय मनीषी आध्यात्मिक तो थे ही। वैज्ञानिक भी थे इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। बुद्ध का बरगद के वृक्ष के नीचे बैठ कर बुद्धत्व को उपलब्ध होना केवल संयोग मात्र नहीं है। वास्तव में इस वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान करना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

भारतीय मनीषियों ने जहाँ-जहाँ अनुग्रह खोजनी चाही, वहाँ-वहाँ उन्हें अनुग्रह प्राप्त हुआ। सर्वत्र उन्हें अनुग्रह की किरणों के दर्शन हुए। आपको मालूम होना चाहिये जहाँ से भी अनुग्रह का संबंध जुड़ जाता है मनीषियों ने उसी स्थान को

देवता कहा है। जहाँ से अनुग्रह प्राप्त हो - वह देवता है। भले ही वह वृक्ष हो पर्वत हो या हो वह नदी। जड़ हो या हो चेतन।

देवता का अर्थ ही है जिसनें हमें दिया ही हो और हमसे उसके बदले कुछ लिया न हो। देवता का मतलब है कि जिससे हमें सदा सदैव मिला है और सदा सदैव मिलता ही रहा है। हमने नहीं भी माँगा तो भी मिलता रहा है। हमने आभार भी प्रदर्शित नहीं किया तब भी मिलता रहा है। तो मनीषियों ने उसे देवता कहा है।

हाँ तो मैने जैसा कहा ब्रह्मचारीजी थोड़ा रूक कर आगे बोले - पीनियल ग्लैण्ड में रस तत्व उत्पन्न न हो तो बुद्धि एक दम क्षीण हो जाती है। एक आदमी शराब पीता है नशा करता है किसी प्रकार का उत्तेजक नशा, तो चेतना पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चेतना तक किसी भी नशे का प्रभाव नहीं पहुँचता। बुद्धि पर प्रभाव पड़ता अवश्य है नशे का लेकिन दूसरे रूप में।

किसी भी प्रकार के उत्तेजक नशे का प्रभाव वास्तव में पीनियल ग्लैण्ड पर पड़ता है जिसके फलस्वरूप उसमें जो रस पैदा होते हैं वे पैदा होने बन्द हो जाते हैं। बस बुद्धि सो जाती है। काम करना बन्द कर देती है। बुद्धि पर कोई परिणाम नहीं होता लेकिन अन्नमय कोष का जो हिस्सा है जिससे बुद्धि का संबंध है वह हिस्सा सो जाता है बस।

आप को ज्ञात होना चाहिए। पश्चिम के देशों में एक गहरी नशीली वस्तु का निर्माण किया हे। जिसका नाम है एल.एस.डी.। यह बड़ा ही घातक नशीली वस्तु है। इसका तत्काल प्रभाव पीनियलग्लैण्ड पर पड़ता है और उसमें रस तत्वों का बनना भी तत्काल बन्द हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं वर्तमान में प्राय: सभी देश की युवा पीढ़ी एल.एस.डी. का प्रयोग कर रही है जिसके परिणाम स्वरूप प्राय: सभी देश की पूरी की पूरी सभ्यता धूल में मिलती जा रही है। क्योंकि वह सारी सभ्यता जिस बुद्धि के आधार पर खड़ी है। उसे नुकसान पहुँच रहा है।

उस रहस्यमयी गुफा के बाहर चारों तरफ भयंकर हिम वर्षा हो रही थी इसमें सन्देह नहीं। गुफा का तापमान निरन्तर गिरता जा रहा था। दोनों महात्मा अचानक गहरी समाधि की अवस्था में प्रवेश कर गये। व्याकुल हो उठा मैं। गहन एकाकी मन का अनुभव होने लगा मुझे उस रहस्यमयी गुफा में। क्या करूँ ? समझ में नहीं आ रहा था मुझे कुछ।

और तभी मुझे एक दिव्य गन्ध की अनुभूति हुई गुफा में। सिर घुमा कर देखा, पर इस बात का पता न चल सका कि वह दिव्य गन्ध उस गुफा में कहाँ से आ रही थी ?

वह रहस्यमय दिव्य गन्ध

पूरे सात दिन तक दोनों योगी समाधि में स्थित रहे। और पूरे सात दिन तक मैं भी उस अनर्वचनीय दिव्य गन्ध के सागर में डूबा रहा। कैसा था वह दिव्य गन्ध ? बतला नहीं सकता मैं। धीरे धीरे मेरे नासापुट में भरने लगा वह। फिर न जाने कब और कैसे चेतना शून्य हो गया मैं उसके प्रभाव से और उसी स्थिति में देखा मैंने उस गुफा में दो अशरीरी योगी बैठे हुये थे। दोनों युवक थे। उनका शरीर पार दर्शक था। साधना की आभा से उनका दप्-दप् कर रहा था उनका मुख मण्डल। चेहरा निर्भाव था। आँखे थोड़ी मुंदी हुई थी। शायद उन्हीं के शरीर से वह दिव्य गन्ध प्रस्फुटित हो रहा था। उन दोनों योगियों की ओर निर्भिनेष दृष्टि से देख रहा था मैं। एक विचित्र सी अनुभूति हो रही थी मुझे उस समय।

सहसा काँच की तरह छन्न से टूट गया सब कुछ। और उसी के साथ मेरी चेतना वापस लौट आई। देखा दोनों योगी भी समाधि से उबर गये थे। जो कुछ देखा था और जो कुछ अनुभव किया था वह सब बतलाया मैंने। ब्रह्मचारीजी बोले वे दोनों अशरीरी योगात्मायें थी। हिमालय में ही उनका कही स्थान है। वे दोनों एक साथ रहती हैं और एक ही साथ संचरण विचरण भी करती हैं। कभी कदा इस गुफा में भी उपस्थित हो जाया करती हैं।

दो प्रकार का बुद्धि स्वातन्त्रय

यह सुनकर एक बारगी स्तब्ध रह गया मैं। सोचने लगा-कौन सा संस्कार है मुझमें कि ऐसे दिव्य लोगों के दर्शन हो जाते है मुझे। समझ में नहीं आता।

ब्रह्मचारीजी, पिछले विषय को आगे बढ़ाते हुऐ कहने लगे - निश्चित ही बुद्धि के निष्क्रिय हो जाने के फलस्वरूप मनुष्य बुद्धि विचार और विवेक इन तीनों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इन तीनों का अपना बन्धन है और है उनकी अपनी मर्यादा भी। नशीले पदार्थो का सेवन कर मनुष्य कुछ समय के लिये उस बंधन से और उस मर्यादा से अपने आपको मुक्त कर लेता है। इस मुक्ति को वह स्वतन्त्रता समझता है। लेकिन यह उसकी भारी भूल है। पूरब और पश्चिम का युवा समाज इस भूल के सागर में आकण्ठ डूबता जा रहा है, इसमें सन्देह नहीं।

आपको मालूम होना चाहिए बुद्धि की स्वतंत्रता दो प्रकार से फलित हो ती है, मर्यादा के पार हो जाने से भी फलित होती है और मर्यादा के गिर जाने से भी फलित होती है। मर्यादा के गिर जाने से जो स्वतंत्रता है वह केवल पागनपन

है मूर्खता है। मर्यादा के पार उठकर जो स्वतंत्रता फलित होती है वहीं वास्तविक स्वतंत्रता है और है वास्तविक मुक्ति। योगी गणो ने इसी को परम अवस्था कहा है।

बुद्धि विचार और विवेक इन तीनों की अपनी अपनी मर्यादा है और मर्यादा का ही दूसरा नाम बंधन है। मर्यादा से ऊपर उठकर उस बंधन से मुक्त हो जाने पर आत्मा जिस अवस्था को उपलब्ध होती है उसे ही परम अवस्था कहा गया है। पर यह योग तंत्र मार्ग से ही सम्भव है। नशीले पदार्थो के सेवन से नहीं। उसके सेवन से हम बुद्धि विचार और विवेक से नीचे गिर जाते है। उनसे शून्य हो जाते हैं। उनसे ऊपर उठते नहीं।

हाँ तो यह हमारा जो शरीर है, जो पहली पर्त है वह भोजन की ही पर्त है। इसलिये भोजन का विवेक भी महत्वपूर्ण है। अन्धविश्वास नहीं है। एक विशुद्ध शाकाहारी भोजन शरीर को एक तरह की लोच देता है। जो मांसाहारी शरीर को उपलब्ध नहीं होता। मांसाहारी के शरीर की पर्त धीरे धीरे ठीक जानवरों जैसी हो जाती है।

आपने कभी सोचा नही है कि आप जिस जानवर का मांस खाते हैं वह मांस उस जानवर के शरीर की निर्मिती है। उस मांस को आप अपने शरीर में ले जाते है तो आप धीरे-धीरे अपने शरीर को उस जानवर जैसी व्यवस्था भीतर से देना शुरू कर देते हैं। बाद में वही व्यवस्था आपके व्यक्तित्व को प्रभावित करने लगेगी।

जानवरों के भीतर बुद्धि का विकास नहीं हुआ है उसका बहुत कुछ कारण उसका अन्नमय कोष है। वास्तव में आप जानवर का मांस खाकर अपने अन्नमय कोष को उसके जैसा अन्नमय कोष बना लेते हैं।

शरीर विज्ञान के आचार्यो का कहना है कि मनुष्य के मस्तिष्क का विकास इसलिये हो सका कि वह दो पैरों पर खड़ा हो गया। यदि वह चारों हाथ पैर पर जानवरों की तरह चलता होता तो उसका मस्तिष्क कभी भी विकसित नहीं होता। क्या हम कभी सोच सकते है कि इतनी छोटी सी बात-इतना विवेक का अन्तर कर देगी- मनुष्य और जानवर के।" एक आइस्टिन में और एक बन्दर में कितना फासला है ? इतना फासला - एक छोटी सी बात का परिणाम है। और वह यह कि मनुष्य दो पैरों पर खड़ा हो गया। यह इसलिये फलित हुआ कि दो पैरों पर खड़े होने के कारण मनुष्य के खून की गति उसके मस्तिष्क की ओर कम हो गयी। हृदय पम्प करता है जिससे खून का प्रवाह ऊपर की ओर जाता है, लेकिन मस्तिष्क तक पहुँचते पहुँचते वह प्रवाह कम हो जाता है।

खून की गति में शिथिलता आ जाती है। जिससे मनुष्य के मस्तिष्क के सूक्ष्म तन्तुओं का विकास हो पाया। अगर खून की धारा तेज होती तो मस्तिष्क के सूक्ष्म तन्तु टूट जाते कभी भी विकसित न हो पाते।

इसके ठीक विपरीत जानवरों की रक्त-धारा सतत मस्तिष्क की तरफ रहती है। इसलिये कि चारों पैरों पर चलने के कारण उनका मस्तिष्क सामने की ओर रहता है ऊपर की ओर नही। मनुष्य के मस्तिष्क में रक्त प्रवाह कम और पशु के मस्तिष्क में रक्त प्रवाह अधिक बस इतना ही कारण है मनुष्य की बुद्धि के विकास में।

मनुष्य और पशु की नींद में कोई अधिक अन्तर नहीं है। दोनों के जागरण में अन्तर है। एक मनुष्य सोया है और एक पशु सोया है आप कितनी भी खोज करें दोनों में कोई अन्तर नहीं बता पायेंगे आप। अन्तर शुरू होता है दोनों के जागने पर।

एक महात्मा सो रहा है और उसके पास ही एक पापी भी सो रहा है। दोनों गहरी नींद में है। क्या आप अन्तर बता सकते हैं ? नहीं। बताया ही नहीं जा सकता दोनों में कौन महात्मा है और कौन पापी है समझ पाना कठिन है। क्योंकि सुषुप्ति में कोई भेद नहीं किया जा सकता। सुषुप्ति में भेद रहता ही नहीं। सारा भेद जागरण में है।

क्या आपने कभी ख्याल किया है कि नींद को ठीक से लाने के लिये सिर के नीचे तकिया क्यों रखना पड़ता है ? आप तकिया न लगाये तो नींद आनी कठिन है। इसका कारण है और वह यह कि तकिया न लगाने से सिर नीचा हो जाता है और खून की धारा तीव्रता से मस्तिष्क में प्रवाहित होने लग जाती है। फलस्वरूप मस्तिष्क तन्तुओं को समुचित विश्राम नहीं मिलता। तन्तुओं का विश्राम ही नींद है। जिनके मस्तिष्क तन्तु जितने सूक्ष्म होते हैं वे अधिक से अधिक तकियों का उपयोग करते है। क्योंकि उनके बिना उन्हें नींद नहीं आ सकती।

एक छोटी सी धटना ने मनुष्य और पशु में अन्तर पैदा कर दिया। इस घटना के कारण मनुष्य और पशु में आमूल रूपान्तर हो गया।

इसे हम छोटी घटना इसलिये कह रहे हैं कि आप समझ सके कि भोजन छोटी घटना नहीं है। इसलिये कि उससे हमारे शरीर का निर्माण होता है।

समाज शास्त्री कहते हैं कि मनुष्य सीधा खड़ा हो गया इसलिये परिवार का जन्म हुआ। अन्यथा परिवार का कभी जन्म ही न होता। आप सोच भी नहीं सकते कि सीधे खड़े होने से परिवार के जन्म का क्या संबंध है ? और अगर परिवार न जन्मे तो न कोई सभ्यता है और न कोई है संस्कृति। क्योंकि सभ्यता और संस्कृति परिवार का ही विस्तार है। लेकिन कभी इस बात की कल्पना भी

की जा सकती है कि मनुष्य के सीधे खड़े होने से परिवार का भला क्या संबंध हो सकता है ? समाज विज्ञान के आचार्य कहते हैं कि मनुष्य सीधा खड़ा हुआ इसलिये प्रेम उत्पन्न हुआ। नहीं तो प्रेम कभी उत्पन्न ही नहीं होता। आप सोच भी नहीं सकते कि सीधे खड़े होने से प्रेम का क्या लेना देना ? लेकिन हुआ। इस तथ्य पर सभी खोजकर्ता एक मत हैं। सभी पशु जब सम्भोग करते हैं तो उनके चेहरे आमने सामने नहीं होते। क्योंकि वे सम्भोग पीछे से करते हैं। मनुष्य जब सम्भोग करता है तो चेहरे आमने-सामने होते हैं क्योंकि वह खड़ा है। और जब हम किसी के चेहरे को देखते हैं तभी व्यक्तित्व का ख्याल उत्पन्न होता है। नहीं तो कोई ख्याल उत्पन्न नहीं होता। और जब एक पुरुष एक स्त्री के सामने से सम्भोग में उतरता है तो तत्काल ही उसके चेहरे के द्वारा आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं।

बड़े आनन्द की बात है कि बाकी सब शरीर तो एक ही जैसा है उसमें बहुत अन्तर नहीं है। चेहरे में ही अन्तर और भेद है। चेहरे में ही व्यक्तित्व है। क्योंकि जो रूप है व्यक्तित्व है का वह चेहरे पर है। चेहरा सम्भोग के समय आमने सामने पड़ा। इसलिये कामवासना धीरे-धीरे प्रेम में परिवर्तित होने लगी। और उसके आधार पर व्यक्तिगत संबंध निर्मित हुए। परिवार का निर्माण होना शुरू हो गया। धीरे-धीरे बाकी शरीर गौण हो गया। और चेहरा महत्वपूर्ण हो गया। पशुओं के लिये चेहरा बिल्कुल महत्वपूर्ण नहीं है। चेहरे से उनका कोई गहरा संबंध निर्मित नहीं होता। शरीर ही उनके लिये महत्वपूर्ण है।

समाज शास्त्री कहते है-मनुष्य सीधा खड़ा हुआ इसलिये परिवार इसलिये समाज इसलिये प्रेम इसलिये सभ्यता और इसलिये संस्कृति।''

सोचिये आप, इतनी छोटी सी बात इतनी महत्वपूर्ण हो सकती है। तो भोजन छोटी बात नहीं है, बड़ी बात है।

अब तक की चर्चा से लगा कि ब्रह्मचारीजी ने योग का ही केवल नहीं बल्कि अन्य शास्त्रों का भी विषद् अध्ययन और चिन्तन मनन किया है। मगर यह सब कैसे सम्भव हो सका। जबकि उन्होंने स्वयं कहा था एक बार कि बाल्यावस्था से ही मैं हिमालयवासी हूँ। संसार और समाज में कभी भी मैंने प्रवेश नहीं किया। तो फिर .....।

आत्मा के लिये ''पुरुष'' शब्द का प्रयोग क्यों ?

ब्रह्मचारीजी ने थोड़ रूक कर आगे कहना शुरू किया हमारे शरीर के निर्माण में सात करोड़ सेलो का सहयोग है। वे सभी सेल हमारे भोजन से जीवित क्रियाशील और शक्तिशाली हैं। पूरे सात करोड़ सेलों का अपार भीड़ है हमारे भीतर। पूरा

नगर बसा है उनका हमारे भीतर। आपको मालूम होना चाहिये हमारे यहाँ आत्मा के लिये एक शब्द है ''पुरुष''। पुरुष का अर्थ होता है एक बड़े पुरम् के बीच में रहने वाला। सात करोड़ सेल की जनसंख्या वाले नगर (नगर को ''पुर'' भी कहते हैं) के बीच रहने वाला पुरुष। सात करोड़ सेलों की अपनी माँग है। आप उनको कौन सा भोजन देते हैं ? उनकी माँग आपके शरीर की माँग है। आपके शरीर का निर्माण है। आपको उनके साथ बंधकर जीना पड़ता है। यहाँ आपके लिये शरीर का बंधन है जो ध्यान की अवस्था में आपको अपने ही भीतर जाने में बाधा उत्पन्न करता है।

सात्विक राजसी और तामसी भोजन के लक्षण

सात्विक भोजन के लक्षण क्या है ?

ब्रह्मचारीजी बोले - सात्विक भोजन हम उसे कहते हैं जो शरीर को ऊर्जा प्रदान करता हो। नशा न देता हो। इस अन्तर को ठीक से समझ लेना चाहिए। जो शरीर को ऊर्जा देता हो, लेकिन शरीर में आलस्य न पैदा करता हो और नशा न देता हो। जो शरीर की आवश्यकता की पूर्ति करता हो। शरीर का विलास न बन जाता हो। जो पदार्थ जिस मात्रा में शरीर के लिये मूर्च्छा पैदा करता है उसी मात्रा में आपका अन्नयय कोष विकृत होता है। पर हम इसका चिन्तन नहीं करते। इस पर विचार नहीं करते हम क्या खा रहे हैं? इसकी हमें कोई चिन्ता नहीं है। लोग जो खाते पीते चले जा रहे हैं वही हम भी खाते पीते चले जा रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, भोजन के संबंध में और खान पान के विषय में भारत ने जितना चिन्तन मनन किया उतना अन्य किसी देश ने नहीं किया। इसलिये कि भारत को ही सर्वप्रथम यह ध्यान आया कि यदि शरीर के भीतर प्रवेश करना है तो शरीर को आमूल बदलना होगा। क्योंकि जैसा कि यह शरीर है वह काफी नही है।

आपका भोजन और आप

आयु बुद्धि बल आरोग्य सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रस युक्त चिकने स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय ऐसे आहार सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे लवण युक्त अति गरम तथा अति तीक्ष्ण सबसे दाह कारक एवं दुख चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं। और जो भोजन अधपका, रस रहित, दुर्गन्ध युक्त बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी, वह तामसी पुरुष को प्रिय होता है। त्रिगुण के अनुसार

भोजन के विभाजन का बोध साधक के लिये बड़ा ही उपयोगी है। उससे अपनी परीक्षा करने में और अपने को कसौटी पर कसने में सुविधा होगी।

कैसा भोजन आपको प्रिय है ? क्योंकि जो भी आपको प्रिय है वह अकारण प्रिय नहीं हो सकता। वह आपको प्रिय है। आपके संबंध में सूचना देता है। आप जो भोजन करते हैं वह सूचना देता है कि आप कौन हैं आप कैसे उठते हैं ? कैसे बैठते हैं ? कैसे चलते हैं? उससे आपके भीतर की चेतना की सूचना मिलती है। आप कैसा व्यवहार करते हैं ? कैसे सोते हैं ? उन सबसे आपके संबंध में संकेत मिलते रहते हैं।

राजसी गुण वाला व्यक्ति ऐसा भोजन पसन्द करेगा-जिससे जीवन में उत्तेजना आये। त्वरां उत्पन्न हो। शक्ति उत्पन्न हो। गति उत्पन्न हो। इसलिये उसका भोजन उत्तेजक आहार होगा। जो तामसी गुण वाला व्यक्ति है वह ऐसा भोजन करेगा जिससे नींद आये, आलस्य आये, उत्तेजना न हो पैदा, बासी, जूठा, ठण्डा जिससे कोई उत्तेजना उत्पन्न न हो, केवल बोझ उत्पन्न हो और वह सो जाय।

तमोगुणी व्यक्ति नींद को खोजता रहता है। अगर उसे लेटने का अवसर मिले तो वह बैठेगा नहीं। अगर उसे बैठने का अवसर मिले तो वह खड़ न होगा। अगर खड़े होने का अवसर मिले तो चलेगा नहीं। अगर चलने का अवसर मिले तो दौड़ेगा नहीं। वह हमेशा उसी को चुनेगा, जिससे अधिक से अधिक नींद की ही सुविधा हो। तन्द्रा की सुविधा हो। और तन्द्रा के लिये बासी भोजन बहुत उपयोगी है। क्योंकि जितना गरम भोजन होता है उतनी जल्दी पच जाता है जितना बासी भोजन होता है - उतना पचने में देर लगता है उसे । क्योंकि पचने के लिये अग्नि चाहिए। अगर भोजन गरम हो। तत्क्षण तैयार किया गया हो तो भोजन की गरमी और पेट की गरमी मिलकर उसे जल्दी पचा देती है। इसीलिये पेट की अग्नि को हम "जठराग्नि" कहते हैं।

लेकिन अगर भोजन बासी हो। ठण्डा हो। काफी देर का रखा हो। तो पेट की अकेली गरमी के आधार पर ही उसका पचना होता है। तो जो भोजन छः घण्टे में पच जाता है-वह बारह घण्टे में पचेगा। और पचने में जितनी देर लगती है उतनी ज्यादा देर तक नींद आयेगी। क्योंकि जब तक भोजन न पच जाय तब तक मस्तिष्क को ऊर्जा नहीं मिलती।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि तीन तल है शरीर मन और आत्मा। मानव व्यक्तित्व के ये तीन तल है। शरीर पहले है। क्योंकि उसके बिना न तो मन हो सकता है और न तो आत्मा ही रह सकती है। शरीर आधार है। शरीर जड़

है। शरीर मूल है। उसके बिना न मन का अस्तित्व है और न तो अस्तित्व है आत्मा का।

शरीर जड़ है। मन फूल है और आत्मा फल है। जड़ ही नष्ट हो जायेगा तो फूल और फल का आविर्भाव फिर कहाँ से होगा ?

यही अर्थशास्त्र शरीर के भीतर भी है। आप भोजन करते हैं तो सारी शक्ति भोजन को पचाने में लगती है। इसीलिये भोजन के बाद नींद मालूम पड़ती है। क्योंकि मस्तिष्क को जितनी शक्ति मिलनी चाहिए वह नहीं मिलती।

बुद्धि से जीवन का संबंध नहीं है। बिना बुद्धि के भी जीवित रहा जा सकता है। पशु पक्षी जी रहे है। पेड़ पौधे जी रहे है। लाखों करोड़ों लोग बिना बुद्धि का जीवन बिता रहे हैं। बुद्धि कोई अनिवार्य वस्तु नही है जीवन के लिये। हाँ। जब शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाय और ऊर्जा बचे तो फिर वह बुद्धि को मिलती है और जब बुद्धि भी भर जाय और ऊर्जा बचे तो वह आत्मा को मिलती है।

तामसी भोजन के कारण तामसी व्यक्ति के मस्तिष्क को कभी ऊर्जा नही मिल पाती। इसलिए तामसी व्यक्ति बुद्धि हीन होता है। बुद्धिमान होने के लिये तामसी भोजन का त्याग करना होगा। तामसी व्यक्ति शरीर के तल पर ही जीता है। शरीर ही उसके लिये सब कुछ है। उसमें नाम मात्र की बुद्धि होती है। बस, इतनी ही कि जिससे वह अपने लिये भोजन की व्यवस्था कर सके। आत्मा के संबंध में तो वह कुछ जानता ही नही। आत्मा का सपना भी उसे नहीं आता। उसके लिये कैसी आत्मा और कैसा परमात्मा ? राजसी व्यक्ति का कैसा भोजन है यह बतलाया जा चुका है। वह महत्वाकांक्षी होगा। उसको जीवन भर दौड़ना है। उसे नींद नहीं चाहिए। नींद तामसी व्यक्ति को चाहिए। राजसी गुण वाला भोजन महत्वाकांक्षायें पैदा करता है। वह दौड़ता है। भागता है। राजसी व्यक्ति को धन पाना है। पद पाना है। अपनी सारी महत्वकांक्षायें पूरी करनी है। तामसी व्यक्ति गहरी नींद सोता है। राजसी व्यक्ति ठीक से कभी भी सो नहीं पाता। वह रात को सोयेगा भी तो करवटे बदलता रहेगा। हाथ पैर इधर उधर पटकता रहेगा।

ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें दिन में भी उबाई आती रहती है। दिन में भी सोते हैं ठीक से। फिर भी उन्हें नींद कम ही मालूम पड़ती है।

जो व्यक्ति आठ घण्टे से अधिक सोने की इच्छा रखता हो समझिये वह तमस से भरा है। ध्यान रखिये, आयु के साथ नींद का अनुपात घटता जाता है। एक बच्चा पैदा होता है तो २२ घण्टे सोता है। यह उसकी आवश्यकता है। अगर

२४ घंटे सोये तो तमोगुणी है। फिर जैसे जैसे वह बड़ा होगा उसी के अनुसार निद्रा का समय कम होता जायेगा। सात वर्ष की आयु में बच्चे की नींद ८ घंटे पर आ जानी चाहिए। यह सन्तुलित स्थिति है। फिर यह ८ घंटे पर टिकेगी, जीवन के बड़े हिस्से पर। लेकिन मरने के सात वर्ष पहले फिर घटनी शुरू होगी। छः घंटे रह जायेगी ५ घंटे रह जायेगी, ४ घंटे रह जायेगी।

जिस दिन नींद ८ घंटे से नीचे कम होनी शुरू हो जाय उस दिन समझ लीजिये मृत्यु का पहला चरण आप की ओर उठ गया। उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी आपको। क्योंकि नींद शरीर निर्माण के लिए है।

माँ के पेट में बच्चा २४ घंटे सोता है बिना श्वास का जीवन होता है उसका। २४ घंटे सोना बच्चे की आवश्यकता है। शरीर का निर्माण हो रहा होता है। प्रकृति का बहुत बड़ा काम हो रहा होता है। नींद से उस काम में सहयोग मिलता है। नींद टूटने पर बाधा होती है। यदि गर्भ में बच्चे की नींद टूट जाय तो वह गर्भ नहीं रह सकता तुरन्त गर्भपात हो जायेगा। गर्भपात का प्रायः यही कारण होता है।

युवा व्यक्ति के लिये ८ घंटे की नींद काफी है। उतनी देर में शरीर अपना पुर्ननिर्माण कर लेता है। मरे हुए सेल फिर से बन जाते हैं। रक्त शुद्ध हो जाता है। शक्ति पुनरूज्जीवित हो जाती है। प्रातः व्यक्ति फिर ताजा हो जाता है।

लेकिन वृद्ध व्यक्ति के शरीर बनने का काम बन्द हो जाता है। मरे सेल फिर बन नहीं पाते। नींद कम होने लगती है। क्योंकि नींद प्रकृति की व्यवस्था है।

जैसा कि मैं बतला चुका हूँ - ब्रह्मचारीजी आगे बोले तमस के लिये शरीर ही सब कुछ है। वह शरीर को महत्व देता है। उसका जीवन शरीर के तल का जीवन है। मन और आत्मा का कोई महत्व नहीं है उसके लिए। रजस के लिये मन ही सब कुछ हैं। वह मन को महत्व देता है। उसका जीवन मन के तल का जीवन है। शरीर और आत्मा का कोई महत्व नहीं है उसके लिए।

सात्विक इन दोनों से भिन्न है। वह सन्तुलित है। वह आत्मा को महत्व देता है शरीर और मन उसके लिये महत्वपूर्ण नहीं है। उसका जीवन आत्मा के तल का जीवन है। उसकी आयु स्वभावतः अधिक होगी। क्योंकि वह प्रकृति के अनुसार जीता है। उसका जीवन प्रकृति के समरसता में है। उसकी बुद्धि स्वभावतः शुद्ध होगी। तीक्ष्ण होगी। स्वच्छ होगी। निर्मल होगी। क्योंकि वह शुद्ध सात्विक भोजन करता है।

तमस का भोजन आलस्य बढ़ाता है। रजस का भोजन क्रोध बढ़ाता है। सात्विक का भोज प्रीति प्रेम स्नेह को बढ़ाता है।

शरीर भोजन से ही बना है। इसलिए बहुत कुछ भोजन पर ही निर्भर है। योगीगण सात्विक आहार ग्रहण करते हैं। इसलिये आपको उनमें प्रीति प्रेम स्नेह की गन्ध मिलेगी। एक मिठास होगी। उनके बोलने में उनके उठने बैठने में एक संगीत होगा। एक लयबद्धता होगी। क्योंकि उनका शरीर भीतर भोजन के साथ लयबद्ध है। एक योगी की बहुत बड़ी पहचान है यह। तमस व्यक्ति आलसी होते हैं इसलिये वे प्रेम नहीं कर सकते। वे प्रेम की माँग करते हैं। वे कहते हैं मुझे प्रेम करों। उनकी शिकायत है कि उनसे कोई प्रेम नहीं करता।

राजसी व्यक्ति न प्रेम करते हैं और न तो प्रेम माँगते हैं। उनको समय कहाँ ? इस धैर्य में पड़ने की। उनके लिये प्रेम के अलावा और भी बहुत कुछ है। प्रेम गौण है उनके लिये। वे आकांक्षी होते हैं। न प्रेम चाहते हैं और न तो किसी से प्रेम करते ही हैं। उन्हें समय नहीं। महत्वाकांक्षा के सामने पत्नी, पुत्र आदि सब गौण है उनके लिए। और यही कारण है कि ऐसे लोगों के बच्चे सत्व की तरफ नहीं बढ़ पाते। पिता को फुरसत नहीं है। वह धन एकत्र कर रहा है। हालाकि वह कहता यही है कि बेटे के लिये एकत्र कर रहा हूँ। लेकिन बाप से बेटे का मिलना ही बहुत कम होता है। बाप भाग दौड़ में है। जब कभी संयोग वश बेटा सामने आ भी जाता है तो बाप जरा पीठ थपथपा देता है। वह भी उसे ऐसा लगता है कि यह बेकार का काम है।

हाँ तो मैंने जैसा कहा महत्वाकांक्षी व्यक्ति मन की दौड़ में जीता है। न वह प्रेम करता है और न तो प्रेम माँगता ही है। जबकि सत्व को उपलब्ध व्यक्ति के जीवन में प्रेम का दान है। वह माँगता नहीं वह केवल प्रदान करता है।

तमस माँगता है। सत्व देता है। रजस् को अवकाश नहीं। पूर्ण सत्व से भरा सात्विक भोजन करने वाला व्यक्ति ऐसी गहन तृष्टि से भर देता है कि आप एक विशेष प्रकार के आनन्द का अनुभव करने लग जाते हैं अपने आपमें।

अगर आप सात्विक व्यक्ति के आहार को तामसी व्यक्ति को दे तो वह कहेगा क्या है यह घास पात ? इसमें तो कुछ भी नहीं है। यह क्या भोजन है ? अगर राजसी व्यक्ति को दे तो वह कहेगा - कैसा है यह भोजन ? इसमें तो कोई स्वाद ही नहीं है। मिर्च मसाला का अभाव है इस भोजन में ध्यान रखिये जो लोग मिर्च मसाले पर जीते हैं वे यह न समझे कि वे स्वाद ले रहे हैं। मिर्च मसाले की आवश्यकता ही इसलिये है कि उनका स्वाद मर गया है। उनकी जीभ इतनी मुर्दा हो गयी है कि जब तक वे उस पर जहर न रखें तब तक उन्हें पता ही नहीं चलता, इसलिए मिर्च रखनी पड़ती है। मिर्च मसाले को वे स्वाद समझते हैं। मगर जिनकी जीभ जीवित है उन्हें मिर्च मसाले की आवश्यकता नहीं। वे बर्दाश्त न कर सकेंगे उस जहर को। जिनका स्वाद जीवित है वे साधारण फलों

से सब्जियों से इतने अनुठे स्वाद को ग्रहण कर सकेंगे वह कोई सोच भी नहीं सकता। वास्तव में सात्विक व्यक्ति स्वाद के लिये भोजन नहीं करता। लेकिन जितना स्वाद वह लेता है, संसार में कोई भी नहीं लेता। सात्विक व्यक्ति परम स्वाद लेता है, इसमें सन्देह नहीं।

सात्विक व्यक्ति प्रकृति के अनुकूल चलता है। इसलिए वह भोजन का स्वाद तो लेता ही है। इसके साथ साथ जीवन का भी स्वाद लेता है। सभी दिशाओं में उसकी संवेदना खुल जाती है। उसकी सारी इन्द्रियाँ अधिका अधिक संवेदनशील हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह कि सत्व को उपलब्ध व्यक्ति परम संवेदनशील होता है। इसलिये मैं आपसे कहता हूँ, बुद्ध पुरुष जितनी आयु प्राप्त करते हैं उतनी आपको प्राप्त नहीं होती। सत्व को उपलब्ध पुरुष जितना जीते हैं उतने आप नहीं जीते। आप तो जीने का बहाना कर रहे हैं। बुद्ध पुरुष यानी सत्व को उपलब्ध पुरुष प्रगाढता में जीते हैं। फूल उन्हें अधिक गन्ध देते हैं। हवा उन्हें अधिक शीतलता देती है। परम नीरवता को वे सुनते है। साधारण से साधारण भोजन भी उन्हें परम स्वाद देता है। साधरण और कुरूप मनुष्य भी उन्हें परम सुन्दरता की प्रतिमा लगते हैं। उन्हें सारा जगत सुन्दर लगता है। वे सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् को उपलब्ध हो जाते हैं।

प्राणमय कोष (प्राणमय शरीर)

शरीर की दूसरी पर्त है प्राणमय कोष जिसे प्राणमय शरीर कहते हैं। प्राणमय शरीर को शरीर विज्ञान कहता है एनर्जी बॉडी यानी वाइटल बॉडी। एक फूल और एक पत्थर में जो अन्तर है वहीं अन्तर पहली और दूसरी पर्त में है। पत्थर के पास एक ही पर्त है जबकि फूल के पास दोनों पर्त है। सबेरे जब सूरज निकलता है तो पत्थर, पत्थर ही रहता है। रात में भी पत्थर और दिन में भी पत्थर लेकिन पौधा रात में कुछ और रहता है और प्रातः कुछ और ही हो जाता है। पौधा के भीतर एक जीवन धारा है। एक प्राण है। एक गति है। जिसके कारण सूरज निकलने पर वह आनन्द से भर उठता है। जीवन्त हो जाता है। उसके फूल अपने आप खिल जाते हैं। सूरज से जो ऊर्जा मिलती है वह उसके प्राण शरीर को मिलती है। पत्थर के पास प्राण शरीर नहीं है। इसलिये वह रात में भी पत्थर है और दिन में भी पत्थर ही है। उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं होता।

जहाँ भी वृद्धि होगी। गति होगी। विकास होगा। वहाँ प्राणमय कोष होगा। वृद्धि, गति और विकास प्राण में होता है। पदार्थ में नहीं होता। प्राण शरीर ऊर्जा निर्मित है। और वह ऊर्जा मिलती है सूरज से। वह ऊर्जा मिलती है वायु से।

वह ऊर्जा मिलती है ब्रह्माण्डीय चेतना से। ब्रह्मचारीजी बोले - प्राणमय शरीर का पोषण प्राणहार से होता है। उसे अन्नाहार की नही प्राणाहार की आवश्यकता है। हिमालय में बहुत से ऐसे योगी है जो प्राण के आहार की कला को जानते हैं। इसलिए वे अन्न से मुक्त है। मुझे ही लीजिए गिरिबाबा को ही देखिए। हम लोग अन्न की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते। हम लोग प्राणाहार पर आश्रित हैं।

यह कैसे सम्भव है ? मैने पूछा ?

एक विशेष प्रकार की योग कला है जिसकी सहायता से प्राण को आहार बना कर उसके द्वारा दीर्घ काल तक जीवित रहा जा सकता है। योगीगण जैसे-जैसे प्राणाहार की मात्रा बढ़ाते जाते हैं वैसे ही वैसे अन्नाहार की मात्रा भी कम होती जाती है। निकट की एक गुफा में एक महात्मा निवास करते हैं। पिछले साठ साल से उन्होंने अन्न ग्रहण नहीं किया है। लेकिन पूर्ण स्वस्थ हैं। वे प्राण ऊर्जा को पदार्थ में परिवर्तित कर ग्रहण करने की कला से परिचित हैं। इसमें सन्देह नहीं।

वैज्ञानिक पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तित करने की पद्धति से परिचित है लेकिन ऊर्जा को पदार्थ का रूप दे सकने में अभी असमर्थ हैं। आइस्टिन के बाद यह बात साफ हो गयी कि विज्ञान का सबसे बड़ा फामूर्ला यही है कि शक्ति और पदार्थ दो चीजे नही है। दोनों एक ही चीज है। एक ही चीज की दो अवस्थायें है। पदार्थ शक्ति बन सकता है और शक्ति बन सकती है पदार्थ।

जैसे स्थूल शरीर को शुद्ध करने की आवश्यकता है वैसे ही प्राणमय शरीर को भी शुद्ध करने की आवश्यकता है। शुद्ध होने पर ही शरीर पारदर्शी होता है और होता है निर्मल। आपको मालूम होना चाहिए कि प्राणायाम के सभी प्रयोग और सभी क्रियाएँ प्राणमय शरीर को शुद्ध निर्मल और पारदर्शी बनाने के लिए ही है। शरीर में जितनी प्राण वायु जाती है उतना ही प्राणमय शरीर शुद्ध निर्मल और पारदर्शी होता है जितना कार्बन डाईआक्साइड शरीर में जाता है उतना वह अशुद्ध और दूषित होता है वह।

ऊर्जा निर्मित होने के कारण प्राणमय शरीर प्राणवायु से प्रभावित होता है। स्वच्छ वातावरण में और स्वच्छ स्थान पर रह कर जितनी गहरी श्वास ली जा सके उतना हितकर है। उतना ही प्राणमय शरीर शुद्ध निर्मल स्वस्थ और विकसित होगा। योग के अनुसार ब्राह्ममूहुर्त में गहरी श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिए। यदि इस कार्य को सहज बना लिया जाय तो अति उत्तम। आपकी श्वास जितनी गहरी होगी उतने आप प्राणवान होंगे। उतनी आपकी आयु बढ़ेगी। उतनी आप

की बुद्धि बढ़ेगी। उतनी आपकी मेघा मुखर होगी। और उतनी अधिक मानसिक शक्ति भी बढ़ेगी। इतना ही नहीं आपके सोचने विचारने और समझने की भी क्षमता बढ़ेगी।

सूक्ष्म शरीर की झलक

प्राणमय शरीर की झलक हमें आँख में मिलती है। इसलिए आँख से अधिक जीवन्त अंग और कोई दूसरा नहीं है शरीर में। आँख को छोड़कर शरीर का शेष भाग मृत मालूम पड़ता है। अगर आपकी आँख बुझी बुझी सी है तेज हीन है और अस्थिर है तो समझ लीजिये आपका प्राणमय शरीर निर्बल और रोगी है। अगर आपकी आँख में तेज है प्रखरता है और स्थिरता है तो समझ लीजिए आपका प्राणमय शरीर जीवन्त शक्तिशाली और स्वस्थ है। आपको मालूम होना चाहिए जितने भी प्रकार के भाव है वे सब प्राणमय शरीर में उत्पन्न होते हैं और उन तमाम भावों को हमारी आँख व्यक्त करती है। वास्तव में हमारी आँख हमारे प्राणमय शरीर की भाषा है। हमारे भीतर क्या हो रहा है और क्या घट रहा है इसकी सूचना बराबर हमारी आँखे देती रहती हैं।

श्वास का विज्ञान

श्वास का भी अपना विज्ञान है। श्वास दो प्रकार की है उथली और गहरी। उथली श्वास कभी न ले। इससे जीवन और आयु पर कुप्रभाव पड़ता है। बुद्धि विवेक और मेघा ये उन्नत नहीं हो पाती स्त्रियाँ अगर बुद्धिमानी में पुरुषों से पिछड़ गयी। उसके बहुत से कारणों में एक कारण है उथली श्वास लेना भी।

उथली श्वास लेने का क्या मतलब है आपका - मैंने पूछा।

उथली श्वास का मतलब है पेट से न लेकर छाती से श्वास लेना। इसी प्रकार गहरी श्वास का मतलब है पेट से श्वास लेना।

प्राय: स्त्रियाँ उथली श्वास लेती है। इसलिये उनकी छाती शरीर के अनुपात से बड़ी होती है। यदि स्त्रिया पेट से श्वास ले तो उनकी छाती उतनी ही बड़ी होगी जितनी शरीर के लिए आवश्यक है।

यदि किसी पहलवान को अपनी छाती चौड़ी और बड़ी करनी होती है तो वह अपने श्वास को पेट तक नहीं ले जायेगा। उथली श्वास लेगा। इसलिये प्राय: पहलवान बुद्धिमान नहीं होते। क्योंकि बुद्धि के विकास के लिए प्राण ऊर्जा का घना होना आवश्यक है। पेट से श्वास न लेकर छाती से श्वास लेने के कारण आप देखेंगे कि पहलवानों की छाती तो चौड़ी और बड़ी होती है लेकिन पेट सिकुड़ता रहता है।

आप किसी बच्चे को श्वास लेते हुए देखे। बच्चा जैसा श्वास लेता है वही सम्यक श्वास है। जैसे एक योगी श्वास लेता है। वैसे ही एक बच्चा भी लेता है। बच्चे का पेट ऊपर उठता है और नीचे गिरता है। छाती नहीं। बच्चा वैसा ही श्वास लेता है जैसी प्रकृति ने चाही है कि श्वास ली जाय।

आपके कहने का तात्पर्य यह है कि प्राणमय शरीर का भोजन अथवा आहार शुद्ध प्राण वायु है। प्राणायाम के द्वारा वह जितनी मात्रा में मिले उतना ही प्राणमय शरीर का विकास शुद्धिकरण और वह पारदर्शी होता है।

हाँ। जैसे भौतिक शरीर के लिए शुद्ध शाकाहारी भोजन है उसी प्रकार प्राणमय शरीर के लिये आवश्यक है शुद्ध प्राण वायु।

दर्शन और सत्संग का प्रभाव

जिस स्थान पर उच्चकोटि के सन्त महात्मा और योगी रहते हैं वहाँ उस स्थान पर उनकी प्राणमयी काया की ऊर्जा तरंगे बराबर विकीर्ण होती रहती है। आप बस उनके निकट चले जाइये। आपका प्राणमय शरीर अपने आप उनकी तरंगों को ग्रहण करने लग जायेगा। उसकी सघनता बढ़ती जायेगी। वह प्रगाढ़ होता जायेगा बिना किसी प्रयास के।

दर्शन बहुत बड़ी चीज है। भारतीय संस्कृति में दर्शन का भारी महत्व है। जो उपलब्धि बातचीत करने से नहीं होती वह उपलब्धि मात्र दर्शन से हो जाती है। आप किसी प्राण प्रतिष्ठित देव स्थान पर जाइये। देव प्रतिमा से आप बातचीत तो नहीं कर सकते लेकिन उसका दर्शन तो कर ही सकते हैं। वहाँ भी दैवी प्राण ऊर्जा बराबर विकीर्ण होती रहती है। आप दर्शन करते हैं भक्ति से लेकिन आपका प्राणमय शरीर अनजाने में वहाँ विकीर्ण हो रही ऊर्जा तरंगों को ग्रहण कर लेगा। आप वहाँ से लौटेंगे तो बहुत कुछ लेकर लौटेंगें - हल्का पन लेकर लौटेंगे, शान्ति लेकर लौटेंगे, अपने आप में एक विशेष प्रकार की आनन्दानुभूति लेकर लौटेंगे और लौटेंगे एक बहुत मानसिक बोझ उतार कर भी। इसका कारण क्या है ? बस कारण एक मात्र यही है कि वहाँ जाकर आपके प्राणमय शरीर ने देव प्रतिमा के चतुर्दिक विकीर्ण हो रही देवी ऊर्जा तरंगों को ग्रहण कर लिया है। जिसका पता आपको नहीं है। आपको मालूम होना चाहिए भारतीय संस्कृति और साधना के अन्तर्गत जितने भी विज्ञान है उनके एक "पीठविज्ञान" भी है। पीठ विज्ञान वास्तव में अत्यन्त गम्भीर और रहस्यमय विज्ञान समझा जाता है। इस विज्ञान के अनुसार जिस स्थान पर वैदिक और तांत्रिक विधि विधान के अनुसार मूर्ति अथवा प्रतिमा के रूप में दैवी शक्ति पीठ का निर्माण हुआ रहता है, वहाँ दैवी ऊर्जा तरंगों का अस्तित्व बराबर बना रहता है।

दैवी शक्ति पीठ का मतलब है भू-राज्य से भाव-राज्य अथवा दैवी राज्य का अगोचर संबंध। इस संबंध के कारण वहाँ उस स्थान पर बराबर हर समय दैवी ऊर्जा तरंगों का विकीरण होता रहता है। आपकी जो मनोकामना पूरी होती है उसकी पृष्ट भूमि में एक मात्र ये दैवी शक्ति की ऊर्जा तरंगे ही हैं। आप जितना अपने चित को एकाग्र कर दैवी शक्ति पीठ के सामने बैठेंगे और उसका ध्यान करेंगे, उतना आप का मन उन तरंगो को ग्रहण करेगा और उसी के अनुसार आपकी कामना भी पूरी होगी (इस विषय की अधिक जानकारी के लिये पढ़े ''कालपात्र'')।

देवी प्राण ऊर्जा तरंगों की तरह मानवी प्राण ऊर्जा तरंगे भी होती हैं। साधु सन्त महात्मा योगी आदि लोगो के चतुर्दिक विकीर्ण होने वाली तरंगों को मानवी प्राण ऊर्जा तरंग कहते हैं। साधु सन्तों योगी महात्माओं का प्राण शरीर अत्याधिक जीवन्त होता है। उनके चारों तरफ के वायु मण्डल में वे तरंगे बराबर विकीर्ण होती रहती है। आप उनके निकट बैठ जाइये फिर देखिये क्या होता है ? अपने आप आपको अपने भीतर प्रफुल्लता का अनुभव होगा। रोम रोम आपका प्रकम्पित हो उठेगा। एक भारी बोझ सा उतरता हुआ अनुभव होगा। सारा शरीर पुलकित हो जायेगा।

यह है मात्र दर्शन लाभ का फल। सत्संग से इससे अधिक लाभ होता है और वह लाभ होता है आपकी आत्मा को। आत्मा की आवश्यकता है ज्ञान। साधु-सन्तों व योगी महात्माओं के सत्संग से आपकी आत्मा की आवश्यकता की पूर्ति अनजाने में हो जाती है। आप जब ''सतसंग'' से लौटते हैं तो कुछ और ही होकर लौटते हैं।

प्राय: साधु सन्यासी मानव सभ्यता से दूर एकान्त में पहाड़ों पर चले जाते हैं। ऐसा क्यों ? किसलिए ? जहाँ जितने मनुष्यों की भीड़ होती है - उतनी वहाँ शुद्ध और अशुद्ध तरंगे विद्यमान रहती है। भीड़ में प्राय: दूषित तरंगों की मात्रा ही अधिक पायी जाती है। इसीलिए भीड थकाने वाली होती है। कभी आपने विचार किया है कि जब आप भीड़ से लौटते हैं तो आप थोड़े कम होकर लौटते हैं। आपकी प्राण ऊर्जा कम हो गयी होती है।

हमारे कहने का तात्पर्य यह कि साधु-सन्यासियों और योगी महात्माओं का जंगलों और पहाड़ों पर जाने का एक मात्र यही उद्देश्य है कि भीड़ के दूषित वातावरण और भीड़ में उत्पन्न होने वाली अशुद्ध ऊर्जा तरंगो से वे बचे और शुद्धतम प्राण ऊर्जा को प्राप्त करें।

कहने की आवश्यकता नही इसी उद्देश्य से मोहम्मद पर्वत पर चले गये। बुद्ध और महावीर जंगलों में भटक गये।

अन्नमय शरीर और प्राणमय शरीर के विषय में उपनिषद में लिखा है
अन्नकार्माणा कोषान समूहोऽन्नमय कोष इत्त्युच्चते।
प्राणादि चतुर्दश वायु भेदा अन्नमय कोषे
यदा वर्तन्ते तदा प्राणमय कोष इत्तयुच्चते।
अर्थात्-

अन्न से बनने वाले कोषों के समूह रूप शरीर को अन्नमय कोष कहते हैं। इसी प्रकार प्राण आदि चौदह प्रकार के वायु इस अन्नमय कोश में संचार करते हैं तब उसे प्राण मय कोष कहते हैं।

मनोमय कोष (मनोमय शरीर)

शरीर की तीसरी पर्त है मनोमय कोष। जिसे मनो-मय शरीर कहते हैं। जब प्राणमय शरीर निर्मल हो जाता है तब इस तीसरे शरीर की झलक मिलनी शुरू होती है।

मनोमय शरीर का निर्माण होता है भाषा से शब्द से और विचार से। विचारों का योगदान सर्वाधिक है मनोमय शरीर के निर्माण में। इसीलिए कहा गया है कि हम जैसा सोचेंगे वैसा हो जायेगा। हम जैसा हो गये हैं वह हमारे सोचने का ही परिणाम है। मनुष्य जितना सुसंस्कृत, सुशिक्षित और चिन्तन-मनन शील होता है, उतना ही उसका मनोमय-शरीर स्वच्छ और स्वस्थ होता है। लेकिन यह शरीर भी हमें दिखलायी नहीं पड़ती, इसलिये हम बिना कुछ सोचे समझे अपने मनोमय-शरीर के भीतर कुछ भी डालते चले जाते हैं। हम अखबार पढ़ते हैं। दीवारों पर लगे पोस्टर पढ़ते हैं। विज्ञापन पढ़ते हैं। हम ख्याल भी नहीं करते उन सबके जो शब्द है वे हमारे मनोमय शरीर के भीतर जा रहे हैं। और उनसे हमारे मन पर प्रभाव पड़ रहा है। और वह प्रभाव हमारे मनोमय शरीर का निर्माण कर रहा है। हमारा पूरा जीवन नाना प्रकार की परेशानियों झंझटों और उपद्रवों से भरा है क्यों ? इसलिए कि हम अपने मन के निर्माण में असावधान रहते हैं बराबर हर समय। जाने अनजाने हमारे मन में जो भी प्रवेश कर जाता है वह उसका हिस्सा बन जाता है। हमे इसका बोध ही नहीं है कि हम जो पढ़ते हैं जो सोचते विचारते हैं और जो सुनते हैं उन सबसे हमारा मनोमय शरीर प्रति पल निर्मित हो रहा है। यदि किसी का कहा हुआ कोई शब्द और किसी का व्यक्त किया गया विचार हमारे मनोमय शरीर के भीतर चला गया तो उसे निकालना सरल नहीं है। प्रयत्न करके देखा जाय तो पता चल जायेगा इसका। यदि हम उस शब्द को या उस विचार को निकालने का प्रयत्न करते भी हैं तो वह और

गहरे में चला जायेगा और गहरे में बैठ जायेगा। क्योंकि उसे जितना भी निकालने का प्रयास करेंगे उतना ही उसे याद करना पड़ेगा। जिसे हम भुलाना चाहते हैं उसे भुलाने के लिए भी तो याद करना पड़ता है। हर बार याद करके हम उसे और मजबूत किये चले जाते हैं।

इसीलिए तो इस संसार में जब कोई किसी को भुलाना चाहता है तो भुलाना असम्भव हो जाता है। कोई भूल जाय बात अलग। भुलाना अत्यन्त कठिन है और जो भूल भी गया होता है वह भी ऊपर ऊपर से ही भूल गया होता है। वास्तव में यदि सच पूछा जाय तो भीतर से कुछ भी नहीं मिटता। हमारा चित् कुछ भी नहीं खोता। चित् बहुत बड़ा संग्राहक है। मनोमय कोष बहुत सूक्ष्म संग्रह करता चला जाता है। जन्मों-जन्मों तक इसने विचार तरंगो के रूप में जो कुछ भी पाया वह सब एकत्र कर लिया है। योगियों का कहना है - हमारे मनोमयकोष में सूक्ष्म रूप से हमारे पिछले सैकड़ों जन्मों की विचार तरंगे विद्यमान हैं।

शरीर और मन ये दो अति महत्वपूर्ण वस्तुएँ है। स्थूल शरीर और मनोमय शरीर के बीच में स्थित है प्राणमय शरीर। शरीर और मन को जोड़ने वाला सेतु रूप एक मात्र प्राण है। प्राण बीच में न रहे तो शरीर और मन कभी भी आपस में मिल न सकेंगे। दोनों का मिलन ही जीवन है। प्राण ही एक मात्र ऐसा सूत्र है जिससे शरीर और मन आपस में बंधते हैं। श्वास जब बन्द हो जाता है। प्राण बीच में से जब हट जाता है और सूत्र जब टूट जाता है तो स्थूल-शरीर यही पड़ा रह जाता है और मनोमय शरीर अपनी नयी यात्रा पर निकल जाता है। इसी अवस्था का नाम मृत्यु है। मृत्यु में स्थूल शरीर नष्ट हो जाता है। मनोमय-शरीर नष्ट नहीं होता (इस संबंध में मरणोत्तर जीवन का रहस्य) मनोमय शरीर तो केवल समाधिस्थ व्यक्ति का ही नष्ट होता है। जब एक आदमी मरता तो उसका मन नहीं मरता। केवल शरीर मरता है। और वह मन एक नयी यात्रा पर निकल जाता है सारे पुराने संस्कारों का बोझ लिये दिये। वह मन फिर उन्हीं संस्कारों के ढाँचे पर नये जीवन का निर्माण कर लेता है। फिर खोज लेता है नया शरीर और फिर खोज लेता है नया गर्भ।

शरीर और मन के बीच जो जोड़ है, वह है "प्राण"। इसीलिये बेहोशी की स्थिति में हम किसी को मरा हुआ नहीं समझते। लेकिन श्वास बन्द हो जाय तो हम कहेंगे, मर गया। क्योंकि श्वास के निकलने के साथ ही शरीर और मन का संबंध टूट जाता है। लेकिन यह भी जान लेना चाहिए कि श्वास के साथ ही शरीर और मन का संबंध भी प्रतिपल परिवर्तित होता है।

वह कैसे मैने पूछा ?

क्रोध के समय झगड़ा के समय वाद विवाद के समय तर्क-कुतर्क के समय शान्ति-अशान्ति के समय तुरन्त श्वास की लय बदल जाती है। क्योंकि ये सारे विषय मन से संबंधित है। मन का संबंध प्राण से और प्राण का संबंध शरीर से है। यही कारण है कि मन में संवेदना की तरंगे उठते ही प्राण में कम्पन होने लगता है जिसका सीधा प्रभाव शरीर पर पड़ता है। यदि शरीर भी बेचैन है तो भी श्वास की लय में परिवर्तन हो जाता है। श्वास का जो कंपन है वह पूरे समय परिवर्तित होता रहता है। क्योंकि इधर शरीर बदला तो उधर मन बदला। इसी प्रकार उधर मन बदला तो इधर शरीर बदला। यही कारण है कि जैसे परमात्मा के बाद आत्मा को महत्व दिया गया वैसे ही आत्मा के बाद प्राण को दिया गया महत्व। और एक मात्र यही कारण है कि योग के सारे सिद्धान्त और उन सिद्धान्तों पर आधारित सारी योग साधनायें प्राण पर ही आधारित है। योग साधना का मतलब है प्राण साधना और प्राण साधना का मतलब है योग साधना। दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं।

जो लोग प्राण की गरिमा को और उसके महत्व को समझ जाते है और जो लोग श्वास की लय बद्धता से भी भलीभाँति परिचित हो जाते हैं। वे लोग शरीर और मन के बड़े गहरे स्वामित्व को उपलब्ध हो जाते हैं।

विचार भी पदार्थगत है

जैसा कि बतलाया जा चुका है - प्राण का भी अपना विज्ञान है जो अपने आपमें अत्यन्त गूढ़ है। इस विज्ञान के अनुसार श्वास की बहुत सी गतियाँ है। और गतियों के प्रभाव से शरीर और मन दोनों में परिवर्तन होता है। विचार मन का विषय है। मन में उत्पन्न होता है वह। इसलिये प्राण की गतियों से वह भी उद्धेलित और परिवर्तित होता है। मन में जो अनुभव होता है। विचार उन अनुभवों का संग्रह रूप समझा जाता है। अब तक की धारणा यह थी कि विचार, आकार-प्रकार और रूप रंगहीन हैं। लेकिन विचार पर जो वैज्ञानिक खोजे हुई है उनसे यह सिद्ध हो चुका है कि विचार का अपना रूप रंग और आकार प्रकार भी होता है। इतना ही नहीं वह पदार्थगत भी सिद्ध हो चुका है। विचार का पदार्थगत, अस्तित्व भी है। अब इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया है।

लेकिन इसका अभी तक कोई प्रमाण है नही था। पर अब इसके लिए बहुत सारे वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध है। विचार का भी रूप है रंग है, और विचार भी पदार्थ है इसका इस समय सबसे बड़ा प्रमाण है अमेरिका निवासी टैड सैरियस।

टैड सैरियस को अनजाने में कोई विशेष परा मानसिक शक्ति उपलब्ध हो गयी है। जिसकी सहायता से वह किसी भी विचार पर ध्यान कर इतना एकाग्र चित्त हो जाता है कि उस विचार का स्पष्ट चित्र उसकी आँखों में उभर आता है - जिसे कैमरे में आसारी से उतारा जा सकता है।

टैड सैरियस का कहना है कि १९५५ ई० में उसमें थारो ग्राफ यानी विचार चित्र कैमरे में उतारने की क्षमता आ गयी थी। शुरू में तो किसी ने उसका विश्वास ही नहीं किया था। लेकिन अब वैज्ञानिकों और टेलीविजन कम्पनियों ने उसकी इस क्षमता को स्वीकार कर लिया है। पचपन वर्षीय टैड अपने आपमें एक अजूबा है। और वैज्ञानिकों के लिये गुत्थी ही नहीं चुनौती भी हैं। वे यह तो स्वीकार करते हैं कि टैड के विचार चित्र कैमरे में उतारे जा सकते हैं। लेकिन वे यह नहीं बता पाते कि ऐसा कैसे हो सकता है। टैड बहुत नम्र हैं। और जब जब वैज्ञानिाकें ने उसकी शक्ति का वैज्ञानिक परीक्षण करना चाहा, वह तैयार हो गया। एक बार अमेरिका के प्रसिद्ध मनश्चिकित्सक डॉ. जूले आई सेनवेड ने टैड पर असंख्य प्रयोग किये और अन्ततः १९७६ में ''द वर्ल्ड ऑफ टैड सेरियस'' नामक पुस्तक लिखी।

अब तक टैड के लगभग दस हजार फोटो ग्राफ प्रकाशित हो चुके हैं। कहीं कोई धोखा नही है। मान ले वैज्ञानिकों को धोखा दिया भी जा सकता है लेकिन शक्ति शाली कैमरे को धोखा कैसे दिया जा सकता है ? उसे धोखा देना कठिन ही नहीं असम्भव है।

इससे यह सिद्ध होता है कि विचार केवल विचार ही नही है। वह भी वस्तु है। क्योंकि पदार्थ के ही चित्र लिये जा सकते हैं। विचार भी वस्तुगत है पर है अत्यन्त सूक्ष्म। और हम उसका भी भोजन कर रहे है। और उस भोजन से हमारे भीतर मनोमय शरीर का निर्माण हो रहा है।

अगर गहरायी से सोचा जाय तो हम अपने मन के मालिक नही है। मन पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। हमारा मन लगभग विक्षिप्त है। इसलिए कि हम अपने भीतर एक साथ अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के विचार ले जा रहे हैं और यही कारण है हमारे चित्त को चंचल और बेचैन होने का।

दोनों प्रकार के विचार भीतर जाकर आपस में बराबर संघर्ष करते रहते हैं और हम उस संघर्ष का परिणाम अस्थिरता और बेचैनी के रूप में बराबर भोगते रहते हैं।

जिसे हमने अनुकूल विचार और प्रतिकूल विचार कहा है योग उसे सद् विचार और असद् विचार कहता है। ये दोनों विचार एक दूसरे के विरोधी हैं। अगर

मनोमय शरीर को शुद्ध निर्मल और स्वच्छ करना है तो दोनों प्रकार के विचारों में सामन्जस्य चाहिए। और यह तभी संभव है जब हम दोनों प्रकार के विचारों से अलिप्त रहकर उनके साक्षी बन जायेंगे। है तो यह कठिन पर अभ्यास से सम्भव है।

विज्ञान कोष (विज्ञानमय शरीर)

चौथा है विज्ञानमय कोष यानी विज्ञानमय शरीर। इस चौथे शरीर का निर्माण होता है चेतना से बोध से अथवा होश से। योग इसे चेतना शरीर कहता है। जब हम विचार को जानने में समर्थ हो जाते हैं। जब हम विचार के साक्षी हो जाते हैं तब उस अवस्था में हम विचार को वैसे ही देखते हैं जैसे देखते हैं निर्मल आकाश में बादलों के टुकड़ों को धीरे धीरे सरकते हुए। अथवा बगुलो की पक्तियों को उड़ते हुए। जब ऐसी स्थिति को हम उपलब्ध होते है तब हमको अपने चैतन्य की झलक मिलनी शुरू होती है।

लेकिन हम अपने मनोमय शरीर के बंधन में इस प्रकार बंधे हुए है, अपने मन से इस प्रकार ग्रस्त है और अपने मन में इतने डूबे हुए है कि अपने मन के पार जा भी सकते हैं इसका हमें पता नहीं चलता।

ब्रह्मचारीजी बोले - पहली बार जब मैं गुरू से मिला तो उनसे बोला-मेरा मन बहुत अशान्त है। मन को शान्त होने का मार्ग बतलायें।

गुरूदेव ने कहा - तुम कहते हो मन बड़ा अशान्त है। क्या तुमने कभी कोई शान्त मन भी देखा है। मैं हैरान हुआ। मैने कहा -शान्त मन तो कभी नहीं जाना। गुरुदेव ने कहा - तुम अशान्त मन क्यों कहते हो ? सच तो यह है कि अशन्ति का ही नाम मन है। और तुम मन को शान्त करने चले हो। पागल हो जाआगे। मन कभी शान्त न होगा।

मैंने कहा - क्या फिर ऐसी अशान्ति में मर जाना होगा। गुरूदेव ने उत्तर दिया - नहीं लेकिन मन के पार हो सकते हो। और मन के पार जो है वह शान्त है। वास्तव में "शान्ति" मन के पार होने में उपलब्ध है (इस संबंध में आगे विस्तृत चर्चा की जायेगी) मन के पार होने का अर्थ है मन का तिरोहित हो जाना मन के अस्तित्व का प्रणाश हो जाना।

जैसे ही विज्ञानमय शरीर विकसित होता है वैसे ही मनोमय शरीर बिखरने लगता है। केवल उसकी उपयोगिता मात्र रह जाती है। समझ गये न। जिसका चौथा शरीर विकसित है - वह विचार जाल में उलझा नहीं रहता। विचारों से घिरा नहीं रहता। जब उसे आवश्यकता होती है - विचार का उपयोग कर लेता

है। विचार उसके लिये आज्ञाकारी हो जाता है। बिना उसकी आज्ञा के विचार न उत्पन्न हो सकता है। न प्रवेश कर सकता है। वह विचारों का अधिकारी हो जाता है। इसी का नाम है विचार जाल से मुक्ति।

जैसे अन्य शरीरों के भोजन है - वैसे विज्ञान मय शरीर का भोजन क्या है - मैंने पूछा ?

उसका भोजन है ध्यान। क्योंकि ध्यान चैतन्य को बढ़ाता है। ध्यान विज्ञान को बढ़ाता है। ध्यान बोध को जगाता है। ध्यान भी एक विशेष प्रकार की ऊर्जा है। ध्यान भी शक्ति है लेकिन है अति सूक्ष्म। इस बात को शरीर शास्त्री मनस शास्त्री और भौतिक शास्त्री सभी ने स्वीकार किया है एक स्वर में। मन की अस्थिरता मन की मलिनता और मन की अशुद्धता के कारण विज्ञानमय शरीर भी मलिन अशुद्ध और अस्थिर रहता है।

हमारा मन जितना घनीभूत होगा और हमारा ध्यान जितना सघनतम होगा उतना ही विज्ञानमय शरीर, मानसिक ऊर्जा और ध्यान ऊर्जा के प्रभाव से स्वच्छ निर्मल और जागृत होगा। विज्ञानमय शरीर की उपयोगिता भी है। उसका स्वच्छ निर्मल और जागरूक होना ही सब कुछ नहीं है उसका पारदर्शी प्रकाशवान और उसमें प्रकाश की गति जैसी गति भी होनी आवश्यक है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब हम मन के पार पहुँचते है और पहुँचते है ध्यान की चरमावस्था में। विज्ञानमय शरीर उच्चकोटि के योगी के लिए अत्यन्त उपयोगी और अत्यन्त महत्वपूर्ण शरीर है। वे इस शरीर के द्वारा प्रकाश की गति से एक स्थान से दूसरे स्थान पर तत्काल पहुँच जाते हैं। लोक लोकान्तरों में उनका भ्रमण भी इसी शरीर के माध्यम से होता है।

क्या विज्ञान शरीर को देखा जा सकता है - मैंने पूछा ? नहीं वह इतना स्वच्छ निर्मल और पारदर्शी होता है कि उसके अस्तित्व का बोध सम्भव नहीं। जो उस शरीर को उपलब्ध होगा वही उसे देख भी सकता है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसका कोई भी भौतिक पदार्थ प्रतिरोध नहीं कर सकता। इसे जरा ठीक से समझाइये आप - मैंने कहा। वैसे पिछले सभी शरीर अपने अपने आहार की शुद्धता के फलस्वरूप पारदर्शी हो जाते हैं। लेकिन उनका संबंध ध्यान से न होने के कारण उतना पारदर्शी नहीं हो पाते जितना विज्ञानमय शरीर होता है।

ध्यान शुद्धतम ऊर्जा है। ध्यान का संबंध केवल विज्ञानमय शरीर से समझना चाहिए। अन्य शरीरों से इसका कोई नाता रिश्ता नहीं।

ध्यान ऊर्जा के प्रभाव से विज्ञानमय शरीर इतना शुद्धतम और इतना पारदर्शी हो जाता है कि उसके अस्तित्व का बोध ही नहीं होता। सबसे आश्चर्य की बात

तो यह है कि यदि आप विज्ञानमय शरीर को उपलब्ध है तो स्वयं आपको भी उसके अस्तित्व का बोध नहीं होगा। उसके स्थान पर बोध होगा आपको आनन्दमय शरीर का।

ध्यान की चरम सीमा और विज्ञानमय शरीर

ध्यान की चरम सीमा ''समाधि'' है। वह कौन सी समाधि है यह तो स्पष्ट रूप से बतलाया नहीं जा सकता किन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उस समाधि की दो अवस्थाएं है सविकल्प अवस्था और निर्विकल्प अवस्था। समाधि की पहली अवस्था में ध्यान ऊर्जा अल्फा तरंगों में परिवर्तित होकर अत्यधिक मात्रा में निकली है। वही ऊर्जा दूसरी अवस्था में भी अल्फा तरंगों में परिवर्तित होती है मगर उसकी मात्रा कम होती है। अल्फा तरंगों को ''इलेक्ट्रो एंस फेला ग्राफ'' की सहायता से देखा जा सकता है समाधि की इन दोनों अवस्थाओं में मस्तिष्क के तीनों भागों (इस संबंध में पीछे बतलाया जा चुका है) में क्रमशः बीटा, डेल्टा और थीटा तरंगे प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहती हैं। वे तीनों तरंगे वही है जिनकी घनीभूत अवस्था को मन बुद्धि और अहंकार कहते है। साधारण अवस्था में मस्तिष्क के तीनों भागो से वे तीनों तरंगे बराबर विकीर्ण होती रहती जैसा कि अभी बतलाया गया है वे ही तीनों तरंगे घनीभूत होकर मन बुद्धि और अहंकार का रूप धारण कर लेती हैं।

लेकिन समाधि की अवस्था में डेल्टा और थीटा मिश्रित होकर बीटा में विलीन हो जाती है। इसलिये समाधि में केवल मन की अस्तित्व रहता है बुद्धि और अहंकार का नहीं।

सभी के मूल में ''ध्यान'' है। योग विज्ञान द्वारा खोजी गयी वह शुद्धतम ऊर्जा है और है सूक्ष्म शक्ति। इसके बाद ब्रह्माण्ड में न कोई सूक्ष्मतम ऊर्जा है और न तो है सूक्ष्मतम शक्ति। योग विज्ञान की परम खोज है विज्ञानमय शरीर और उस शरीर के अस्तित्व और स्वरूप का बोध योगी को समाधि में ही सम्भव है।

आगे के विषय समझने के लिए यहाँ विज्ञानमय शरीर के विषय में थोड़ा बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है।

विज्ञानमय शरीर ''योग'' की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में एक है। इस परम काया को उपलब्ध होने पर विशुद्धतम अवस्था को प्राप्त मन बुद्धि और अहंकार से रहित योगी निर्विकार हो जाता है। यदि यह कहा जाय तो साधुतम होगा कि मन के विशुद्धतम और निर्विकार होने पर ही विज्ञानमय शरीर योगी को उपलब्ध

होता है। जिसके फलस्वरूप मन की शक्ति असीम हो उठती है। और इसी असीम मन-शक्ति की सहायता से विज्ञानमय शरीर द्वारा योगीगण सैकड़ों हजारों मील की यात्रा एक मुहूर्त में पूरी कर लेते हैं। इतना ही नही अन्य लोक लोकान्तरों में भ्रमण कर सकने में भी समर्थ हो जाते हैं। अपार्थिव सत्ता में विद्यमान अशरीरी महात्माओं-योगियों और यहाँ तक कि देवताओं से भी इच्छानुसार सम्पर्क साधने में समर्थ हो जाते है। परकाया प्रवेश, हजारों मील पर बैठे व्यक्ति से तत्काल सम्पर्क और किसी के भी चित्त का ज्ञान चिर तारूण्य आदि बाते उनके लिए साधारण होती है।

योग विज्ञान के अनुसार विशुद्धतम और निर्विकार मन का ही दूसरा नाम अचेतन मन है। और यह अचेतन मन अपनी पूर्ण अलौकिक शक्ति और क्षमता को साथ विज्ञानमय शरीर में प्रकट होता है। चेतन मन का विज्ञान मनोविज्ञान और अचेतन मन का विज्ञान है जरा मनोविज्ञान इस पर हम थोड़ा वैज्ञानिक दृष्टि विचार करेंगे।

चेतन मन और अचेतन मन

भौतिक विज्ञान की दृष्टि में जगत मानव से निरपेक्ष है और मानव जगत से। ऐसा मानने पर जगत भी निरर्थक हो जाता है और मानव जीवन भी। लेकिन आधुनिक विज्ञान के आचार्य जीवन और जगत में अर्थ खोजना चाहते हैं। पर उनकी कठिनाई यह है कि इस दिशा में आगे बढ़ते ही वह अपने को ऐसे क्षेत्र में पाते हैं जहाँ उनके परिचित वैज्ञानिक साधनों और प्रयोगों की सीमा समाप्त हो जाती है और उन्हें अपनी सीमाओं का आभास होने लगता है। आधुनिक विज्ञान की एक सीमा तो यही है कि अभी तक वह पदार्थ की मूल इकाई, इलेक्ट्रान के विश्लेषण में नितान्त असमर्थ रहा है। वैज्ञानिक इलेक्ट्रान की कल्पना ही कर सकते है। किसी भी विधि से, किसी भी यंत्र से उसे देख नहीं सकते। विज्ञान की दृष्टि में इलेक्ट्रान सर्वथा रूप हीन है, ठीक उसी प्रकार जैसे धर्म की दृष्टि में ब्रह्म रूप हीन है। पदार्थ की ही भौतिक सत्ता को सर्वोपरि मानने वाले वैज्ञानिकों को यहाँ तक कि आइंसटीन और मैक्सब्लैक को भी जब पदार्थ की मूल इकाई इलेक्ट्रान की गति विधियों में कोई कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता नहीं मिली तो उन्हें यह मानने के लिये विवश होना पड़ा कि भौतिक सत्ता से आगे शायद एक अभौतिक सत्ता भी है। एक खामोश चैतन्य है। जिसमें प्रवेश करने पर निश्चय ही उन्हें उन उच्चतम वैज्ञानिक सत्यों का साक्षात्कार हो सकता है, जो भौतिक चेतना के स्तर पर नहीं हो पाया था। और वह अभौतिक सत्ता

बाहरी जगत में नहीं स्वयं मानव मन में है। यही क्षेत्र है, परामनोविज्ञान का, जिसकी ओर आधुनिक विज्ञान के कदम ठिठकते-झिझकते बढ़ रहे हैं।

अचेतन मन चेतन मन का दो तिहाई भाग है। हम उसके कार्य कलापों से पूर्णतया अनभिज्ञ रहते है। योग के अनुसार उसका संबंध सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में क्रियाशील ब्रह्माण्डीय चेतना से है। और यही कारण है कि विज्ञानमय शरीर को उपलब्ध होने पर योगी का सम्पर्क अपने आप ब्रह्माण्डीय चेतना से जुड़ जाता है।

परामनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद वैज्ञानिकों को ज्ञात हुआ कि अचेतन मन में अविश्वसनीय और अकल्पनीय शक्तियाँ विद्यमान है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि योग विज्ञान उन्ही शक्तियों को योग शक्ति कहता है जो सिद्धियों के रूप में समय समय प्रकट होती है। वही शक्तियाँ जब अचेतन मन की सीमा को लांघ कर अल्पमात्रा में भी चेतन मन में प्रकट होती है तो उनके कौतुक मय चमत्कार हमें हतबुद्धि कर जाते हैं। हमारे लिये तो वे दैवी चमत्कार है, लेकिन वैज्ञानिक को तो यही मान कर अपने प्रयोग शुरू करने पड़ते है कि ये कौतुक ये चमत्कार आदि सब अचेतन मन की ऐसी साधारण क्रियाएं हैं जिन्हें समझने में हम अभी तक असमर्थ रहे हैं।

परामनोविज्ञान

परामनोविज्ञान के वैज्ञानिकों को यह विश्वास है कि इन चमत्कारों की तर्क युक्त व्याख्या यही मानकर की जा सकती है कि मन की शक्ति पदार्थ की शक्ति से कहीं अधिक है। निस्सीम है। उनका यह भी विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति का मन ऐसी चमत्कारिक और रहस्यपूर्ण शक्तियों का भण्डार है पर उनकी अनुभूति के मार्ग में बाधक बनता है स्वयं उसका चेतन मन। यही कारण है कि हमें यह अनुभूति तभी होती है जब हमारा चेतन मन निष्क्रिय रहता है। जैसे स्वप्नावस्था में मूर्च्छावस्था में या फिर गहरे नशे की अवस्था में।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि तंत्र साधना में मदिरापान का एक लक्ष्य यह भी है चेतन मन निष्क्रिय हो जाय और अवचेतन मन का द्वार खुल जाय। ताकि उसमें विद्यमान अकल्पनीय शक्ति का साक्षात्कार सम्भव हो सके। योग में इसके लिये मार्ग अलग है। योगी गण गहन ध्यान द्वारा इस अवस्था को अपलब्ध होते हैं।

परा मनोविज्ञान की चर्चा। सन् १९३४ में तब हुई जब एक अमरीकी विश्व विद्यालय के मनो-विज्ञान के प्राध्यापक डॉ० जोसेफ राइन की कृति "एक्स्ट्रासेंसरी

पर्सेप्शन'' का प्रकाशन हुआ था। उन्होंने पहली बार परा मनोविज्ञान को विज्ञान की एक शाखा मान कर अनेक महत्वपूर्ण प्रयोग किये। अन्त में वे निम्नलिखित निष्कर्षो पर पहुँचे-

(१) भौतिक माध्यमों और संचार व्यवस्था के अभाव में एक मन दूसरे मन को प्रभावित कर सकता है।

(२) बिना किसी ज्ञात संवेदी यंत्र की सहायता के मन पदार्थ से सक्रिय ज्ञानात्मक संबंध स्थापित कर सकता है।

(३) इस प्रक्रिया में दिक् काल की ओर से कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

(४) मन भौतिक पदार्थो को इच्छानुसार प्रभावित करने में सक्षम है।

कहने की आवश्यकता नहीं वर्तमान समय में अनेक वैज्ञानिक परा मनो विज्ञान के प्रयोगों में व्यस्त है। वे सब लोग इस प्रश्न का, कि कुछ लोगों में दूर बोध दूर विचार संप्रेषण कर पर चित्र को इच्छानुसार प्रभावित करने की शक्ति अथवा योग्यता क्यों और कैसे आ जाती है? युक्ति संगत उत्तर जानने का प्रयत्न कर रहे है।

योग विज्ञान के अनुसार ये सब अलौकिक योग्यताएँ मनोराज्य से योगी को प्राप्त होती है, जिसके मूल में है एक मात्र मन अथवा चित्त की एकाग्रता।

मनः एक प्रसारण केन्द्र

अमरीकी मनो वैज्ञानिकों और परा मनोवैज्ञानिकों की भाँति रूस के परा मनो वैज्ञानिकों ने भी अतेन्द्रीय शक्ति से सम्पन्न व्यक्तियों को रेडियो तरंगो 'क्ष' - किरणों और विद्युत चुम्बकत्व के प्रभाव से मुक्त रख कर यह जानने का प्रयत्न किया कि इसके बाद भी दूर बोध आदि की शक्ति कायम रह जाती है या नहीं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे ''मन'' से प्रभावित होने वाली कुछ सूक्ष्म और अदृश्य तरंगों के कारण कोई मन कभी कभी संप्रेषक बन जाता है और कोई दूसरा मन संग्राहक।

अमेरिका के परा मनोवैज्ञानिको के अनुसार मस्तिष्क तरंगे अति दीर्घ रेडियों की तरंगो के समान हैं। अब तो उन्होंने एक ऐसा यंत्र भी बना लिया है - जो इन तरंगो को संप्रेषित कर सकता है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि अचेतन मन की शक्ति को परा मानसिक शक्ति और चेतन मन की शक्ति को मानसिक शक्ति कहते है योग तंत्र की भाषा में। जिन तरंगो की चर्चा की जा रही है वह मानसिक शक्ति की तरंगे हैं। दोनों शक्तियाँ योग विज्ञान के महत्वपूर्ण विषय है।

योग विज्ञान का कहना है कि मानसिक शक्ति का विकास सर्व प्रथम आवश्यक है। उसका पूर्ण विकास हो जाने पर ही परा मानसिक शक्ति का विकास सम्भव है। दूर दृष्टि दूर बोध विचार संप्रेषण आदि कार्य मानसिक शक्ति के विकास के ही चमत्कारिक परिणाम है। जिसे योग अनहदनांद कहता है वह वास्तव में मस्तिष्क तरंगो से निकलने वाली उत्तेजक ध्वनि ही है। योगी गण मानसिक शक्ति को विकसित करने के लिए इसी ध्वनि पर अपने चित्त को एकाग्र करते हैं।

तिब्बत में मुझे कुछ ऐसे योगी मिले जिनकी मानसिक शक्ति अत्यन्त विकसित थी। और वे हजारों मील दूर स्थित स्थानों और वहाँ के दृश्यों को देख सकते में समर्थ थे। इसी प्रकार वे एक स्थान पर बैठे ही बैठे हजारों मील दूर के किसी भी व्यक्ति के विचारों को तुरन्त जान ही नहीं जाते थे बल्कि अपने विचारों को भी उस तक पहुँचा देते थे। कैलाश से व्यास कुण्ड की दूरी बहुत है। गुफा में मुझसे बाते करते समय एक बार ब्रह्मचारीजी ने नेत्र बन्द कर तत्काल जान लिया था कि व्यास कुण्ड स्थित उनके स्थान पर क्या हो रहा है ? उन्होंने अपने एक गुरू भाई को विचार संप्रेषण द्वारा यह भी बतला दिया कि अमुक दिन वे व्यास कुण्ड पहुँच रहे हैं। मैं यह देखकर आश्चर्य चकित रह गया था कि वास्तव में ब्रह्मचारीजी के गुरू भाई उनके निर्देशानुसार सारी व्यवस्था कर उनके साथ मेरी भी प्रतीक्षा कर रहे थे।

ब्रह्मचारीजी क गुरू भाई का नाम था सच्चिदानन्द। योग साधक है यह उनके आकर्षक और तेजोमय व्यक्तित्व से स्पष्ट झलकता था।

मुझे देखते ही मुस्कराकर सच्चिदानन्द बोले आपके विषय में मुझे पूर्ण जानकारी है। कैलाश की गुफा में ब्रह्मचारीजी से अब तक आपका जो सत्संग हुआ है वह सब मुझे ज्ञात है। यह सुनकर दंग रह गया था मैं।

इसी तरह एक बार जब मैं तिब्बत यात्रा पर था उस समय अचानक घर परिवार का मोह सताने लगा मुझे। एक लामा-योगी मेरे साथ थे। नाम था डुप्पा लामा। उन्होंने मुझे सान्त्वना दी। लेकिन केवल सान्त्वना से क्या होने वाला था। मन इतना बेचैन हो उठा कि वापस लौटने का निर्णय कर लिया मैंने।

मेरी स्थिति देखकर डुप्पा लामा बोले - तू अपने घर परिवार को देखना चाहता है ?

हाँ। मगर यह कैसे सम्भव है - मैने भाव विह्वल होकर पूछा ?

सम्भव है। सब सम्भव है एक योगी के लिये - डुप्पा लामा बोले - मैं अपनी दूर दृष्टि की शक्ति तुमको केवल छै मिनट के लिए दे रहा हूँ। यहाँ बैठे ही बैठे इतने समय में तुम अपने घर परिवार को स्पष्ट रूप से देख सकते हो।

यह सुनकर पहले मुझे विश्वास नहीं हुआ। सोचने लगा यह कैसे सम्भव है ? कहाँ यह भयंकर हिमाच्छादित पर्वतीय क्षेत्र और कहाँ बनारस ?

लेकिन नहीं दूसरे ही क्षण सत्य मेरे सामने स्पष्ट हो गया। डुप्पालामा ने मुझे नेत्र बन्द करने की आज्ञा दी। मैंने तुरन्त नेत्र बन्द कर लिए। फिर मुझे अपने भूमध्य पर डुप्पालामा की उँगली के स्पर्श का अनुभव हुआ। और उसके बाद... शायद पाठकों को विश्वास न होगा मेरे मानस पटल पर सर्वप्रथम एक एक कर बनारस के सारे दृश्य उभरने लगे। बनारस के घाट गलिया बाजार और बनारस के मन्दिर। अन्त में आया मेरे सामने अपना मकान। फिर देखा अपने पूरे परिवार को मैंने। ऐसा लगा मानो अपने परिजनों के बीच में हूँ मैं। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि कौन क्या सोच रहा है ? किसके मन में क्या है ? यह मैं बड़ी आसानी से समझ रहा था। फिर अचानक सब कुछ गायब हो गया मेरे सामने से। शायद समय पूरा हो चुका था।

योग विज्ञान में गीता योग, उपनिषद योग और पातन्जल योग - इन तीनों योगों का समन्वय है। यह प्रकृष्ट विज्ञान है। इसके सिद्धान्त अकाट्य और अपरिवर्तनीय हैं। आधुनिक विज्ञान के अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्त योग विज्ञान के सिद्धान्तों से मिलते जुलते प्रतीत हो रहे हैं।

जैसे योग विज्ञान का कहना है कि जड़ पदार्थ के परमाणुओं से भी कुछ तरंगे विकीर्ण होती हैं। मानव जो असंख्य परमाणुओं का महायोग है - सदा ऐसी तरंगे विकीर्ण करता रहता है। विशेष यौगिक क्रिया द्वारा उन तरंगो को बढ़ाया भी जा सकता है। योगी लोग इन्हीं तरंगो की सहायता से किसी भी जड़ पदार्थ को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं। तिब्बत में मैंने एक ऐसे लामा योगी को देखा था जो किसी भी जड़ पदार्थ को अपनी ओर चुम्बक की तरह खींच लिया करता था। वह वस्तु या पदार्थ जैसे सजीव हो उठता था और खिंचा हुआ चला आता था उस लामा योगी के पास। वैज्ञानिकों का कहना है कि उन तरंगो को रेडिया अणुवीक्षण यंत्रों से भी देखा जा सकता है। वैज्ञानिकों को योग विज्ञान के इस सिद्धान्त पर विश्वास हो गया है कि दूर बोध आदि कौतुकों में संचार व्यवस्था इन्हीं अदृश्य तरंगो के कारण होती है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि योग विज्ञान वस्तु परक और आत्मपरक दोनों का आश्रय लेकर परा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

आज परामनोविज्ञान के विलक्षण कौतुक कुछ वैज्ञानिकों को वर्तमान भौतिक नियमों का उलंघन करते अवश्य प्रतीत हो पर इसके यह अर्थ नहीं कि जैविक तथ्य कभी भौतिक नियमों का विरोध नहीं कर सकते या उनका स्थान लेकर

एक नयी भौतिकी को जन्म नहीं दे सकते। परामनोविज्ञान जिसमें भौतिक ज्ञान-विज्ञान और अवचेतन (जिसे हम धर्म की भाषा में ब्रह्म कह सकते हैं), का सत्य - दोनों विद्यमान है। सम्भव है भविष्य में एक नयी भौतिकी को जन्म देगा।

समस्त ज्ञान विज्ञान का मूल स्रोत ''योग''

यह निर्विवाद सत्य है कि भौतिक विज्ञान दिन पर दिन दुरूह होता जा रहा है। सापेक्ष वाद के सिद्धान्त ऊर्जाणुवाद तरंग यांत्रिकी आदि ने विश्व का ऐसा रूपान्तरण कर दिया है कि अब बड़ा ही अद्‌भुत और विलक्षण लगता है। और रूपान्तरण का यह क्रम समाप्त हो गया हो ऐसा भी नहीं है।

पर इस रूपान्तरण का एक पक्ष और भी है। आजके वैज्ञानिक को बाह्य जगत की जैसी अगम्यवादी अवधारणा है - वैसी पिछली सदी के वैज्ञानिक को नहीं थी। वह जानता है कि भौतिक विज्ञान मानव और जगत का जो चित्र और दृष्टिगत वस्तुओं की सरलता से समझ में आने वाली जो यांत्रिकी धारणायें प्रस्तुत करता है वे अत्यधिक एकांगी और संपूर्ण है और उनका अन्तिम रूप से सच्चा और साथ ही वास्तविक रूप जानने के लिए उसे आत्म परक सत्ता अथवा जगत में जहाँ मानव की परिचालक मूल भूत सत्ता का सम्पूर्ण रहस्य छिपा है उसमें प्रवेश करना ही होगा। मगर यह योग के द्वारा ही सम्भव है क्योंकि योग जहाँ समस्त ज्ञान विज्ञान का मूल श्रोत है - वहीं आत्मपरक सत्ता में प्रवेश करने का एक मात्र साधन भी है।

और इसीलिए डॉ. राइन ने अपनी पुस्तक *दी रेज आफ माइण्ड* में एक स्थान पर कहा है परामनोविज्ञान ने मानव मन के बारे में जो भी तथ्य उद्‌घाटित किए है उनका सीधा संबंध ''धर्म'' से है।

उस धर्म से जो इस सत्य की प्रतीति बहुत पहले ही कर चुका है। वह धर्म क्या है ? वह धर्म है एक मात्र ''योग धर्म''।

समस्त अविष्कार अन्तर्ज्ञान द्वारा ही सम्भव

विज्ञानमय-शरीर की उपलब्धि योग धर्म की सबसे बड़ी उपलब्धि है। जिस कुण्डलीनी शक्ति की चर्चा योग-तंत्र करता है उसका बोध होता है प्राणमय-शरीर में उसका जागरण होता है मनोमय शरीर में, इसी प्रकार उसका उत्थान होता है विज्ञानमय-शरीर में। षट्‌चक्र का क्रमिक भेदन भी इसी शरीर में होता है।

कुण्डलिनी साधना की अन्तिम उपलब्धि है, सहस्त्रार चक्र में स्थिति। जब साधक को आनन्दमय शरीर की उपलब्धि होती है तभी कुण्डलिनी शक्ति की स्थिति भी सहस्त्राचार चक्र में होती है (इस संबंध में पढ़े कुण्डलिनी साधना प्रसंग ''ले० अरूण कुमार शर्मा'') कुण्डलिनी शक्ति का जागरण और उत्थान थोड़े अन्तर में होता है। सहस्त्रार चक्र में शिव शक्ति का मिलन अथवा सामरस्य भाव का जो आनन्द है वह आनन्दमय शरीर की परम उपलब्धि है।

विज्ञानमय शरीर में कुण्डलिनी शक्ति का उत्थान होता है। उत्थान होते ही योगी भौतिक जगत यानी वस्तु परक सत्ता की सीमा लांघकर आत्म परक सत्ता अर्थात अन्तर्जगत में प्रवेश कर जाता है। अन्तर्जगत में जिस ज्ञान की उपलब्धि होती है उसी का नाम अन्तर्ज्ञान है। संसार में अब तक जितने महान अविष्कार हुए है वे सब इसी अन्तर्ज्ञान द्वारा हुए हैं। यह अन्तर्ज्ञान मानवी प्रज्ञा की सीमा से परे है।

अन्तर्ज्ञान को महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने भी स्वीकार किया है। उनका कहना है - जब हम जीवन और ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानने का प्रयत्न करते हैं तो मन भय और शंकाओं से भर जाता है। पर हमें कभी किसी जिज्ञासा को कुण्ठित नहीं होने देना चाहिए और सदा चकित रहना भी नहीं भूलना चाहिए। किसी अज्ञेय वस्तु या विचार का हमें थोड़ा भी ज्ञान है, तो बहुत है। मैं मानता हूँ कि वैज्ञानिक प्रगति केवल अन्तर्ज्ञान से ही सम्भव है। भगवान या परम सत्य की खोज वैज्ञानिक विधियों से ही सम्भव है ऐसा मैं मानता हूँ। ज्ञान वैज्ञानिक के लिए आवश्यक है। फिर भी ज्ञान तो वही तक हमारा साथ दे सकता है जहाँ तक वह ''जानता'' और सिद्ध कर सकता है। पर एक स्थिति ऐसी भी आती है, जहाँ मस्तिष्क एक छलांग लगा कर बोध के उच्चतर स्तर पर पहुँच जाता है। इस स्थिति को सहजोपलब्धि या अन्तर्ज्ञान कुछ भी कह लीजिये। संसार के सब अविष्कार मानव प्रज्ञा के आगे की इस रहस्यमयी अनुभूति द्वारा ही सम्भव हुए है।

जिस परम सत्य की खोज में वैज्ञानिक लगे है, वह, वह यथार्थता नहीं जो हमे आँखों से दिखाई देती है। बल्कि वह यथार्थता है जो यर्थाथ में निहित है। विज्ञान मय शरीर में हमारी बोध क्षमता अति निर्मल और स्वच्छ हो जाती है। जिसके फलस्वरूप हमें सब कुछ वैसा ही दिखाई देता है, जैसा है। अनन्त अमित और अपार। जब तक ऐसा नहीं होता सत्य और यथार्थता, नित्य और अनित्य एक से प्रतीत होते हैं।

आनन्दमय कोष (आनन्दमय शरीर)

आनन्दमय कोष पांचवाकोष हैं। भारतीय मनीषियों ने इसे भी शरीर बतलाया है। आत्मा का यह शरीर के रूप में अन्तिम पर्त यानी अन्तिम आवरण है। इस शरीर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अपने आपमे पूर्ण रूपेण शुद्धतम है। किसी भी प्रकार का विकार नहीं है इसमें। और यही कारण है कि प्रायः लोग इसे विशुद्धात्मा भी कहते हैं।

आनन्दमय शरीर कभी किसी अवस्था में अशुद्ध नही हो सकता। इसलिए कि आनन्द के विपरीत किसी भी शब्दकोष में कोई भी शब्द नहीं है। सुख के विपरीत दुख है। चेतना के विपरीत मूर्च्छा है। लेकिन आनन्द के विपरीत कोई शब्द नहीं है। यदि हम उसके विपरीत निरानन्द शब्द का प्रयोग करें तो वह आनन्द के अभाव का सूचक समझा जाएगा उसके विपरीत नही। वास्तव में निरानन्द का कोई रूप नही है। कोई अस्तित्व नही है। कोई आकार भी नही है। इसलिए आनन्द एक अकेला शब्द है। और एक मात्र यही कारण है कि आनन्दमय शरीर को शुद्ध से शुद्धतम बतलाया गया है। इसी के फलस्वरूप आनन्द सदैव और प्रत्येक अवस्था में मनुष्य को उपलबध है। प्रत्येक स्थिति में और प्रत्येक अवस्था में उसे आनन्द प्राप्त होना ही चाहिए। उसपर वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। यही एक मात्र कारण है कि मनुष्य सदैव आनन्द की खोज में भटकता रहता है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि वह स्वयं यह नहीं जानता कि उसे आनन्द की क्या आवश्यकता है? क्यों चाहिए उसे आनन्द? क्यों भटक रहा है वह आनन्द की खोज में? वास्तव में सभी प्रकार की खोज के लिए प्रश्न हैं, लेकिन आनन्द की खोज के लिए प्रश्न नही है। क्योंकि प्रश्न स्वयं अपने आपमे व्यर्थ प्रतीत होता है उसके प्रति। इसी प्रकार कुछ ऐसे प्रश्न भी हैं जो अपने आपमे स्वयं व्यर्थ। जैसे ईश्वर को क्यो खोजे? सत्य को क्यों खोजे? जीवन का उद्देश्य क्या है? जन्म क्यो होता है? मृत्यु क्यो होती है आदि आदि। ऐसे प्रश्नो की तरह आनन्द को क्यो खोजे? यह भी प्रश्न अपने आपमे व्यर्थ ही है। सभी प्रकार की खोज के प्रश्न का तो कोई न कोई उत्तर है लेकिन आनन्द की खोज क्यों? इसका उत्तर कहीं नही है। यह कोई नही जानने समझने का प्रयत्न करता कि आनन्द को किस लिए खोजे? क्या है उद्देश्य आनन्द को उपलब्ध होने के लिए? सच पूछा जाय तो 'आनन्द' स्वंयं अपने आपमें स्वीकृत है। ईश्वर की खोज आनन्द की खोज है। सत्य की खोज आनन्द की खोज है। अपने आपकी खोज आनन्द की खोज है। जिस खोज से संबंधित प्रश्न का कोई योग्य उत्तर नही है - वह खोज आनन्द की खोज है एक मात्र। मनुष्य को आनन्द की आशा

न हो तो वह कदापि ईश्वर अथवा सत्य की खोज के झंझट में नहीं पड़ेगा। आनन्द को उपलब्ध होने की आशा है इसलिए ईश्वर की खोज सत्य की खोज है और है अपने आपकी खोज। मनुष्य सोचता है कि ऐसी खोज जाने भला क्या लाभ जिसमें आनन्द उपलब्ध न हो। क्योंकि आनन्द पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। उसका एक मात्र उद्देश्य हैं आनन्द को प्राप्त करना। चाहे वह ईश्वर की खोज से प्राप्त हो चाहे किसी सत्य की खोज से। वास्तव में सभी अज्ञात खोज की एक मात्र उद्देश्य आनन्द की खोज है। वह अज्ञात ईश्वर भी हो सकता है और कोई सत्य भी हो सकता है।

ब्रह्मचारीजी ने कहा - आनन्द की उपलब्धि दो प्रकार से है। पहला तो है किसी के माध्यम से और दूसरा है बिना किसी के माध्यम से। पहले प्रकार के आनन्द को यदि व ईश्वर से प्राप्त होता है तो उसे परमानन्द कहेंगे। यदि वह किसी सत्य से प्राप्त होता है तो उसे सत्यानन्द कहेंगे। इसी प्रकार वह आत्मा से उपलब्ध होता है तो उसे कहेंगे आत्मानन्द। लेकिन जो आनन्द बिना किसी के द्वारा अथवा बिना किसी के माध्यम से उपलब्ध होता है उसे कहेंगे विशुद्धानन्द। क्योंकि जो बिना किसी कारण, अथवा बिना किसी माध्यम के जो आनन्द प्राप्त होता है वह अपने आपमे शुद्धतम और दिव्य रहता ही है इसीलिए उसे दिव्यानन्द भी कहते हैं। जो अपने आप प्रशन्न रहे और अपने आप जो हर समय मन्द-मन्द मुस्कराता रहे, और दिव्य तथा शुद्धतम आनन्द के सागर में आकण्ठ डूबा हुआ है। जो सच्चे अर्थो में दिव्य पुरुष है। महापुरुष है, जो वास्तव में योगी हैं और हैं साधक वे बिना किसी कारण के सदैव मुस्कराते हुए आनन्द के सागर में आकण्ठ डूबे रहते हैं और उनकी सजल आंखों में हर समय दया कृपा अनुकम्पा और करूणा के दीप जलते रहते हैं। लेकिन नीस्ते जैसे पश्चिम के कुछ ऐसे भी विचारक हैं जिनका कहना है कि यदि आनन्द ही जीवन का लक्ष्य है और वह आनन्द यदि हमें असत्य में उपलब्ध हो तो फिर असत्य में बुराई क्या है? यदि आनन्द की खोज ही मानव जीवन का एक मात्र लक्ष्य है और वह लक्ष्य सपने में पूरा होता हो और सपने में ही आनन्द उपलब्ध होता हो तो सत्य को खोजने की आवश्यकता ही क्यों? यदि सपने में ही आनन्द से संबंधित लक्ष्य की पूर्ति हो जाती हैं और सपने में ही आनन्द भी उपलब्ध हो जाता है तो ब्रह्म को परमेश्वर को अथवा ईश्वर को छोड़े। क्या हैं उनकी आवश्यकता यदि माया में ही सुख हैं शान्ति है और है आनन्द तो फिर चिन्ता किस बात कीं?

जरा यह सोचने समझने की बात है। पूरब के दर्शन शास्त्री, धर्मशास्त्री और विचारक भला इसका क्या उत्तर दे सकते है? किस प्रकार समाधान कर सकते हैं इसका?

नीत्से जैसे पश्चिम के दार्शनिक और विचारक यह भी कहते है कि क्या आपको इस बात का पूर्ण विश्वास है कि सत्य दुख न देगा। कैसे आपके विश्वास कर लिया और कैसे आपने निश्चय कर लिया कि सत्य से दुख कष्ट और पीड़ा प्राप्त न होगी? अनुभव तो यही कहता है कि 'सत्य' बड़ा कटु होता है। और दुख के अलावा और कुछ नहीं देता वह। क्या आपने यह निश्चय कर लिया कि कल्पना से दुख ही प्राप्त होता है, सुख नहीं। लेकिन अनुभव तो यही कहता है कि कल्पना बड़ी सुखद होती है! लेकिन यह समझ में नहीं आता कि लोगों के सपने तोड़ने के लिए क्यों पीछे लगे हुए है? विचारकगण! क्योंकि सपने सुन्दर, मनोहर और सुखद भी तो होते हैं। हम यह अवश्य स्वीकार करते है कि सपने दुखद कष्टदायक और अनाकर्षक भी होते है। क्यों नहीं यह प्रयास किया जाय कि दुखद कष्टदायक और अनाकर्षक सपनों के सदैव के लिए मुक्ति मिल जाये और सुखद सुन्दर और मनोहारी सपने स्थायी हो जाय और हो जाय शाश्वत। कभी उनके टूटने का प्रश्न ही न हो। ... तो फिर खोज की क्या आवश्यकता? फिर क्या चाहिए?''

ब्रह्मचारीजी थोड़ा हंसकर आगे बोले - पश्चिम के मनीषियों का कितना हल्का विचार हैं? और कितनी हैं हल्की धारणाएं? भारतीय मनीषियों का कहना है कि सपना तो है ही नहीं। सपने का अस्तित्व ही नहीं है नहीं। पर उसका अस्तित्व ही नहीं है तो किसे किया जाय स्थायी? और किसे किया जाय शाश्वत?

जिस वस्तु या जिस पदार्थ से हमे सुख प्राप्त होता हैं। कभी उसी वस्तु या उसी पदार्थ से दुख भी प्राप्त होता हैं हमें! आज जो सुख का विषय है वही कल दुख का भी विषय हो जाता हैं हमारे लिए। सुख हमे इसलिए प्राप्त होता है कि अपरोक्ष रूपमें दुख निहित होता हैं उसमें। यदि ऐसी बात न होती तो सुख उपलब्ध होता ही नहीं हमें। भारतीय मनीषियों का कहना है कि हमे कभी असत्य में भी सुख प्राप्त होता है इसलिए कि असत्य हमें 'सत्य' होने का धोखा देता है, नहीं तो असत्य में कभी भी हमे सुख प्राप्त न होता। और एक मात्र यहीं कारण है कि संसार में कोई भी व्यक्ति यह नहीं कहता है कि असत्यवादी है वह! सदैव लोग अपने आपको सत्यवादी ही कहते है असत्य वादी नहीं। सच तो यह है कि सत्यवादी को अपने लिए सत्यवादी कहने की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ती! आपको ज्ञात होना चाहिए, ब्रह्मचारी थोड़ा रुककर आगे बोले-असत्य को भी यदि चलना होता है तो वह सत्य से पैर उधार लेता है। सत्य से बिना उधार पैर लिए चल ही नहीं सकता कभी वह! इसी प्रकार सपने को भी जीने के लिए यानी अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए सपने का ही

भ्रम उत्पन्न करना पड़ाता है कि 'सपना नही हूँ, सत्य हूँ मैं। भ्रम नहीं हूँ, वास्तविक हूँ मै! यदि ऐसा न हो तो जीवित रहना कठिन हो जाय। जीवित रह ही नहीं सकता कोई। असत्य में सत्य का भ्रम न हो तो सच पूछिये संसार में कोई श्वास भी नहीं ले सकता। वास्तव में इसी का नाम माया है।

आनन्द सुख नहीं है

सायंकाल का समय हो गया था। ब्रह्मचारीजी ने कहाँ - बाहर बराबर बर्फ गिर रही हैं। सम्भव है रात्रि में गुफा के भीतर भी ठंड का प्रभाव अधिक पड़े, इसलिए हम लोगों को कम्बल ओढ़ लेना चाहिए। कम्बल तो ओढ़ लिया मैंने मगर भूख लगी थी मुझे उस समय। सम्भवत: समझ गये इसे ब्रह्मचारी जी! हंसकर बोले भूख लगी है क्या? कोई बात नहीं, जिन पदार्थो को खाने की इच्छा हो उनकी कल्पना करिए।

कल्पना ...!''

हां, कल्पना।''

उस समय मेरी जो कुछ खाने की इच्छा थी। उनकी कल्पना करने लगा मैं। कुछ देर बाद ऐसा लगा कि मेरा पेट भर गया है। न जाने कैसे पूर्ण तृप्ति का अनुभव होने लगा मुझे! घोर आश्चर्य की बात थी यह। कौन सी सिद्धि थी यह ब्रह्मचारी जी की, वही जाने।

अब आगे प्रसंग बढ़ाया ब्रह्मचारीजी ने-लेकिन आनन्द को सुख मत समझे! कभी भी आनन्द सुख नहीं हो सकता। क्योंकि अनिवार्य रूप से सुख के साथ दुख बंधा हुआ है। जहाँ सुख है, वहाँ उसके ठीक पीछे दुख मौन साधे चुपचाप खड़ा रहता है। बस उसे अवसर चाहिए सामने आने के लिए। आनन्द, सपना भी नहीं है, क्योंकि सपने के साथ स्वप्न भंग अनिवार्य रूप से संलग्न है। और जहां 'विपरीत' प्रभाव अधिक पड़े। वहां फिर आनन्द नहीं। क्योंकि आनन्द के विपरीत कुछ भी नहीं है जो आनन्द को भंग कर सके। सच तो यह है कि आनन्द स्वयं अपने आपमे अकेला एकाकी और अद्वैत है।

आनन्द की खोज क्यों?

आनन्द को उपलब्ध होने के लिए हम इसलिए प्रयास करते है कि 'आनन्द' हमारी आत्मा का 'परम शरीर' है। और यह परम शरीर उसका अन्तिम आवरण है। इस संबंध में योग विज्ञान की खोज इतनी सूक्ष्म है कि बतलाया नहीं जा सकता। वह कहता है कि आनन्द भी शरीर हैं। इसलिए कि जब तक हमे इस

बात का ज्ञान रहता है कि 'आनन्द है' - तब तक हम उसको उपलब्ध नहीं हुए होते हैं। क्योंकि जब तक 'ज्ञान' बना है तब तक शरीर है, द्वैत है। अभी पता चलने वाला पृथक है।

इसे ठीक से समझा नहीं मैंने कहा।

ब्रह्मचारी जी बोले - जैसे आपने कहा बहुत आनन्द आ रहा है। इस वाक्य में दो बाते स्पष्ट हैं। पहली बात है, जिसे आ रहा है। दूसरी बात है, जो आ रहा है। जिसे और जो ये दोनों अलग-अलग है। इससे यह बात स्पष्ट हैं कि आनन्द भी आपका एक आवरण है एक पर्त है और है एक केन्द्र। अभी भी कोई ऐसा है जो उपस्थित है और जिसे इस बात का ज्ञान होता है कि आनन्द आ रहा है।

यहाँ 'जिसे' और 'जो' इन दोनों शब्द पर ध्यान देना हैं। दोनों शब्द 'द्वैत' है। योग मार्ग की अन्तिम साधना इसी द्वैत को अद्वैत में परणित करना है। इस साधना में योगीगण अपने आनन्दमय शरीर का उपयोग करते हैं। वास्तव में यह साधना आनन्दमय शरीर की साधना है जो ज्ञान की चरम पराकाष्ठा पर आधारित है। इसलिए अत्यन्त सूक्ष्म है वह इतना सूक्ष्म की उसका न विश्लेषण किया जा सकता है और न तो विवेचन ही।

आनन्दमय शरीर में ज्ञान द्वारा जैसे ही आत्म जागरण होता है उसी क्षण योगीगण आनन्द से भी मुक्त हो जाते हैं यानी अन्तिम आनन्दमय शरीर से भी उनकी आत्मा अलग होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाती हैं।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो यह जागरण पहले जागरण से भी सूक्ष्म है। जैसा कि बतलाया जा चुका है, जैसे विज्ञानमय शरीर में जागरण होते ही जैसे मन विचार जाल से भय मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही आनन्दमय शरीर में जागरण होने पर हम आनन्द से भी मुक्त हो जाते हैं। आनन्द से मुक्त होना आवश्यक है अनिवार्य है। क्योंकि उससे मुक्त होने पर हम उसे प्राप्त कर लेते है, जो हम है। फिर हम शरीर नहीं रह जाते, आत्मा हो जाते हैं। विशुद्ध आत्मा। इसी अवस्था को जीव भाव से मुक्ति कहते हैं। आपके कहने का तात्पर्य यह है पाँचों कोष यानी पाँचों शरीर आत्मा के आवरण है, और उन आवरणों से इस प्रकार क्रमशः मुक्त होने पर आत्मा अपनी विशुद्ध अवस्था को उपलब्ध होती है, जिसे आपने जीव भाव से मुक्ति कहा है। हाँ। ठीक समझा आपने - ब्रह्मचारीजी बोले, लेकिन एक बात है और वह कि आनन्द के लिए यानी आनन्द को जानने के लिए द्वैत चाहिए। आनन्द के सारे अनुभव बाहरी है और आनन्द का अनुभोक्ता भीतर है। लेकिन जब आनन्द भी न रह जायेगा तो हम उसको अनुभोक्ता कहेंगे। क्योंकि

अनुभव ही न बचा तो उसे अनुभोक्ता कहने में क्या सार है ? अनुभव और अनुभोक्ता जब दोनों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तब हम आत्मा को उपलब्ध होते हैं।

ब्रह्मचारीजी बोले - बहुत से ऐसे साधक है जो आनन्दमय शरीर को उपलब्ध है लेकिन आनन्द से मुक्त होकर आत्मस्वरूप में स्थित नहीं हैं। ऐसे केवल आनन्दमय शरीर धारी योगी गण भी जन्म लेते है। लेकिन उनका जीवन परम आनन्दमय होता है। सच पूछा जाय तो वे आनन्द को लेकर ही जन्म लेते हैं। पूरा जीवन उनका नृत्य होता है। पूरा जीवन उनका "आनन्द" होता है। लेकिन फिर भी "जीवन" होता है। इसलिये कि जब तक कोई भी शरीर है तब तक जन्म और जीवन अनिवार्य है। भले ही वह आनन्दमय शरीर ही क्यों न हो।

आपको हिमालय और तिब्बत में ऐसे योगी मिलेंगे जो बिना कारण हमेशा आनन्द मग्न रहते हैं। बिना कारण हमेंशा हँसते-मुस्कराते रहते हैं। हमेशा अपने आपमें लीन रहते हैं।

आपको जहाँ ऐसा कोई व्यक्ति दिखलायी दे उसे साधारण मत समझिये। योगी समझिये। निश्चय ही वह व्यक्ति आनन्दमय शरीर को उपलब्ध होगा। और उस परम उपलब्धि के बाद ही पुनः जन्म लिया होगा उसने।

निर्वाण क्या है ?

योग का अत्यन्त प्रचलित शब्द है निर्वाण। मगर निर्वाण है क्या ? यह बहुत ही कम लोग जानते समझते है।

इस संबंध में पहली बात यह है कि हम आनन्द के प्रति कैसे जागे? हमे तो आनन्द का अभी कोई अता पता ही नहीं है। और जिसका कोई अता पता ही नहीं है, उसके प्रति जागना या उसको छोड़ना कैसे सम्भव है ? उसी प्रकार जैसे कोई भिखारी यह कहे कि वह त्यागी है। मेरे गुरू का कहना है कि जो भी अनुभव तुम्हें हो उसे छोड़ देना। तुम उस समय तक छोड़ते ही चले जाना जब तक छोड़ने के लिए कुछ बचे नहीं तुम्हारे पास। सारे के सारे अनुभवों को छोड़ना है। क्योंकि जब तक अनुभव है तब तक संसार है। कैसा भी अनुभव हो ? सूक्ष्म से भी सूक्ष्म क्यों न हो, वह संसार ही है। आनन्द का अनुभव भी इसी प्रकार संसार है। आनन्दमय कोष आत्मा की बीज है - उसी प्रकार जैसे किसी वृक्ष का बीज। जब तक बीज नहीं टूटता और नहीं फूटता, तब तक वृक्ष का जन्म नहीं हो सकता। उसका अस्तित्व प्रकट नहीं हो सकता। ऐसा ही यहाँ भी समझना चाहिए। आनन्दमय कोष रूपी आत्मा का खोल नहीं टूटता जब तक

तब तक वृक्ष रूपी आत्मा का अस्तित्व भी प्रकट नहीं होता। भारत के योगियों और मनीषियों ने कभी भी आनन्द की खोज नहीं की। कभी भी उन लोगों ने आनन्द पाने का प्रयास नहीं किया। वे लोग उस स्थिति की और उस अवस्था की खोज में रहे जहाँ आनन्द भी तिरोहित हो जाता है। उसका अस्तित्व भी हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है। उनका कहना था जब तक आनन्द है, तब तक हम दुख में है। जब तक आनन्द की आकांक्षा है - और जब तक आनन्द में रस मिलता है तब तक हम दरिद्र हैं। योगी ही हैं जो आनन्द को भी ऐसे ही छोड़ देता है जैसे बीज अपने खोल को छोड़ देता है।

ब्रह्मचारीजी ने कहा - पाँचवे शरीर को उपलब्ध हो जाना ही आनन्द अतिक्रमण है। और आनन्द का अतिक्रमण होते ही हम परमात्मा के इतने निकट और इतने समीप हो जाते हैं कि वह हमें स्वयं अपनी ओर खींच लेता है। स्वयं अपने आप में हमें लीन कर लेता है। हमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता अपनी ओर से। इसी को कहते है निर्वाण।

पूरे दो महीने के बाद गुफा खुली। बर्फ का गिरना बन्द हो गया था। जब बाहर निकला तो अपने आप में पूरे हिमालय की नीरवता का अनुभव किया मैंने। मेरी आत्मा एक अवर्णनीय शान्ति का अनुभव कर रही थी उस समय। अब तक की हिमालय यात्रा में मुझे पद्मगन्धा, गिरि महाशय और ब्रह्मचारीजी जैसी महान आत्माओं से जो आध्यात्मिक लाभ हुआ था वह निश्चय ही भारतीय संस्कृति और साधना की अमूल्य निधि समझी जायेगी इसमें सन्देह नहीं।

ब्रह्मचारीजी को व्यास कुण्ड जाना था और मुझे वापस लौटना था वाराणसी। लेकिन सच मानिए मेरी जरा सी भी इच्छा नहीं थी वापस लौटने की। मैं तो यही चाहता था कि बस हिमालय की गिरि कन्दराओ गुफाओं की खोज में बराबर भटकता रहूँ, और उनमें गुप्त रूप से साधनारत सन्त महात्माओं के सान्निध्य में आध्यात्मिक सत्संग लाभ बराबर प्राप्त करता रहूँ और फिर एक दिन हिमालय की ही शीतल शान्त गोद में हमेशा हमेशा के लिए सो जाऊँ। शायद मेरे मन के भाव को समझ गये ब्रह्मचारीजी। हँस कर बोले - पढ़ना लिखना नहीं है क्या ? काशी लौट जा और अपना अध्ययन पूर्ण कर फिर तेरे घर परिवार वाले भी तो तुम्हारे लिए चिन्तित होंगे। नहीं ब्रह्मचारीजी। आप जिसे पढ़ने लिखने की बात कह रहे हैं - उसका मेरे जीवन में न कोई मूल्य है और न तो है कोई महत्व ही। रही बात घर परिवार की। कौन सा घर है मेरा ? कौन सा परिवार है मेरा महाराज ? किस घर का दरवाजा खुला है मेरे लिए ? और कौन सा परिवार मेरी प्रतीक्षा करेगा ? आज तक समझ न सका मैं स्वामीजी, अपने आपको हमेशा

आश्रयहीन और एकाकी ही समझा है मैंने। मेरे लिये अब सारा संसार महा श्मशान के सिवा और कुछ नहीं है। और मै भी सारे संसार के लिये चलते फिरते शव के अलावा और कुछ नहीं रह गया हूँ। मुझे अपने साथ ले चलिये महाराज। आपके साथ मैं भी चलना चाहता हूँ।

मेरी बात सुनकर एक बार ब्रह्मचारीजी ने मेरी ओर गहरी दृष्टि से देखा और फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ गये।

समझते देर न लगी मुझे। नेत्र की मूक भाषा में ब्रह्मचारीजी का मौन निमन्त्रण मिल चुका था मुझे। और मैं भी चल पड़ा उनके पीछे पीछे व्यास कुण्ड की ओर।

❖

४

अध्याय

कैलास से व्यास कुण्ड की ओर

मौन मनस्वी हिमालय। चिन्तको विचारकों का आश्रय स्थल। महान ऋषियों साधकों योगियों ने मैदानों की भीड़ भाड़ से भाग कर यहाँ की शीतल गुफाओं और कन्दराओं में परमार्थ चिन्तन किया, वह हिमालय।

साधको तपस्वियों मनस्वियों की साधना स्थली जिसने ज्ञान विज्ञान और अध्यात्म की ऐसी धाराये प्रवाहित की, जो समतल भूमि पर पहुँचते पहुँचते गंगा जमुना सरस्वती हो गयी।

ऐसी ही एक धारा फूटी ३९७६ मीटर की ऊँचाई पर स्थित रोहतांग दर्रे से रोहतांग, जहाँ पहुँचने पर हम अपने को सबसे ऊँचा पाते हैं। वास्तव में आस पास की चोटियों से अपेक्षाकृत नीचा है, इसलिए यहाँ सरलता से पहुँचा सकता है। रोहतांग के चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखर है और बीच में है एक छोटा सा मैदान। जिसके एक ओर है लाहुल स्पीतो के हिमाच्छादित पर्वत। फिर है सीधा ढलान जहाँ से बहती है एक पहाड़ी नदी केलांग की ओर, जिसका नाम है चन्द्रा।

रोहतांग में आकर लगता है कि यहाँ प्राणी मात्र का संसार शेष हो गया है। परन्तु यह अन्त नहीं है। इससे परे भी नदियों का देश है, चन्द्रा और भागा का देश, जहाँ मानसून का नामो निशान नहीं। इसलिए रोहतांग से इस ओर नीचाइयों

पर ही ऊँचे-ऊँचे पेड़ है फल फूल है तो दूसरी ओर कोई पेड़ पौधा तक नहीं। बस केवल नंगे पर्वत हैं जो हिमाच्छादित रहते हैं सदैव।

रोहतांग दर्रे पर कुल्लू की ओर ठीक उस जगह जहाँ से ढलान शुरू होती है, व्यास कुण्ड है। इसी जगह से व्यास नदी की एक पतली धारा फूटती है, जो आगे उछलती कूदती हुई धीरे-धीरे बड़ी होती जाती है। व्यास नदी का उद्‌गम एक नन्ही सी धारा। जैसे एक कोपल फूटी हो, या किसी अबोध शिशु ने आँखे बन्द किये हुए पहली किलकारी मारी हो। यही लगता है कि व्यास ऋषि और व्यास नदी, जिसे पिपासा भी कहते है - एकाकार हो गये हैं। व्यास ऋषि भी मैदानों में जाकर नदी के समान ही हो गये थे। व्यास का नाम विस्तार है। ऋषि और नदी दोनों मूल से बूँद बन कर निकले और फैलते-फैलते सागर के समान हो गये।

रोहतांग के दूसरी ओर सोलंग नाले के ऊपर व्यास ऋषि का आश्रम है। और उसी के निकट है शैल सरोवर। जिसके आगे है मढ़ी। मढ़ी से लाहुल घाटी की ओर जाने का मार्ग है जो, अत्यन्त कठिन मार्ग है। मढ़ी के पर्वतों पर बारहों महीने बर्फ गिरता रहता है। रोहतांग में तो केवल अगस्त तक ही बर्फ गिरती है। मढ़ी के नीचे देवदार के घने जंगल हैं। जिसकी धरती रंग बिरंगे फूलों से भरी रहती है अगस्त से पतझड़ के मौसम तक। मढ़ी के सामने ही है एक भयंकर नाला। जहाँ भयंकर आवाज करता हुआ बर्फानी पानी बराबर गिरता रहता है। उसे सागू नाला कहते हैं। सागू एक राक्षस था, जिसका दूसरा नाम था हिडिम्ब। महाभारत काल में भीम ने हिडिम्ब को मनाली से उठाकर यहाँ ला पटका, जहाँ नाले में उसकी मृत्यु हो गयी। आज भी उस राक्षस का अन्तिम चीत्कार उस गहरे नाले में सुनाई पड़ता है। हिडिम्ब मारा गया। भीम ने उसकी बहन हिडिम्बा को अंगीकार किया। महाभारत का यह महत्वपूर्ण प्रसंग राजपुरुष का राक्षसी से पाणिग्रहण। प्रेमी भीम को लेकर हिडिम्बा सुरम्य पर्वतो, मनोहर सरोवरों, गुफाओं में विहार करती है। दोनों के प्रेम का अंकुर घटोत्कच के रूप में फूटता है। घटोत्कच सात्विक वृत्ति का है। वह द्रोपदी सहित पाण्डवों व ब्राह्मणों को पीठ पर उठा कर बदरिकाश्रम जाते समय कैलास की ओर उड़ता है। रथ-यूथ पतियों का अधिपति घटोत्कच, जिसके पास रीक्ष के चमड़े से मढ़ा विशाल रथ था। पाण्डवों की ओर से लड़ता हुआ महारथी कर्ण के प्राण संकट में डाल देता है। कुल्लू के लोक मानस में वीर घटोत्कच का नाम गर्व से लिया जाता है।

मनाली में डूंगरी नामक स्थान पर ही हिडिम्बा का मन्दिर है। यहाँ वह देवी के रूप में पूजी जाती है। महाभारत के समय की राक्षसी-जिसे पाण्डवों

ने मनुष्यों में स्थान दिया, आज यहाँ देवी है। जैगो शैली के मन्दिर के दरवाजे पर की गयी नक्काशी काष्ट कला का बेहतरीन नमूना है। द्वार पर दुर्गा, शिव, विष्णु, साधक आदि के चित्र उत्कीर्ष है। टाकरी में एक लेख है। मन्दिर को सोलहवी शताब्दी के मध्य में राजा बहादुर सिंह (१५४६-६६) ने बनवाया। कुल्लू के पाल वंशीय राजा हिडिम्बा को अपनी दादी बतलाते हैं। क्योंकि देवी के प्रसाद में ही उन्हें कुल्लू का राज्य मिला है। मन्दिर के भीतर एक बड़ा पत्थर है। उसके पास ही आगे छोटी चट्टान के नीचे देवी का चरण है। पुजारी का विश्वास है कि देवी इसी चट्टान के नीचे रहती थीं। आस पास काफी घना जंगल है। यद्यपि भीम का हिडिम्बा से साक्षात्कार का स्थान महाभारत के वर्णन के अनुसार मनाली प्रतीत नहीं होता। वारणाव्रत में पाण्डव लाक्षागृह को जलाकर सुरंग से निकल, नाव से गंगा पार कर दक्षिण दिशा की ओर बढ़े थे। वे एक वट वृक्ष के नीचे बैठे थे विश्राम के उद्देश्य से।

डूंगरी के ऊपर मनालसू के पार है मनाली गाँव। यहीं पर मनु महाराज का मन्दिर है। जलप्लावन के बढ़े हुए पाँनी में लड़खड़ाती हुई मनु की नौका जहाँ टकरायी वह स्थान मनाली है। एक पल आँखें मूंद कर कल्पना करता हूँ-सारी सृष्टि जल मय हो गयी है। पानी ऊपर चढ़ रहा है। व्यास की धरती में चढ़ता हुआ पानी कही ठहरेगा तो वह स्थान मनाली गाँव ही होगा। सूर्य पुत्र वैवस्वत मनु सांतवे मनवन्तर में सप्तऋषियों के साथ बैठे ऊपर चढ़ रहे हैं। नौका सींग वाले मत्स्य के साथ बंधी है। अन्न औषधियों और बीजों का संग्रह संभाले वे ऊँचाई की खोज में यहाँ किनारे आ लगे।

व्यास के उस पार मनु के मन्दिर के ठीक सामने है वशिष्ठ-आश्रम। जैसे अभी अभी पाश मुक्त हो वशिष्ठ समाधिस्थ हुए हो। लकड़ी के बने मन्दिर के भीतर महर्षि की काले रंग की विशाल पाषाण प्रतिमा है। साथ ही है गर्म जल का श्रोत। इसी गर्म जल को कुछ नीचे ले जाकर सरकारी स्नान गृह बनाए गये है। वशिष्ट मन्दिर के साथ राम मन्दिर भी है। वशिष्ट आश्रम के ऊपर चोटी पर है भृगु तुंग ऋषि के स्थान के साथ एक भव्य सरोवर भी है। मनाली का बाया किनारा आरम्भ होते ही बौद्ध संस्कृति के भी दर्शन होने लगते हैं। व्यास के पत्थरों पर पर्वतों की चट्टानों पर बौद्ध मंत्र खुदे हैं। वहाँ एक बौद्ध मन्दिर भी है।

व्यास के नीचे लगभग पाँच मील की दूरी पर आता है जगत सुख। जगत सुख कभी कुल्लू के राजाओं की राजधानी थी। यहीं पर मायापुरी के निर्वासित राजकुमार विहंग मणिपाल को जय धार में राजा घोषित किया गया था। यही

पर एक बुढ़िया को राजकुमार ने पीठ पर उठाकर धुआंगढ़ का नाला पार कराया था। और कोई नहीं देवी हिडिम्बा ही थी। जिसने राजकुमार को इसके बदले ऊँचे पत्थर पर खड़ा कर दूर दृष्टि की सीमा तक के राज्य का आशीष दिया था। राजकुमार ने इसके बाद कुल्लू को स्पीती के अत्याचारी शासकों तथा आपस में झगड़ते छोटे-छोटे राजाओं से मुक्त कराया। जगत सुख में सन्ध्या देवी की काष्ट मन्दिर है। और साथ में ही है शिखर शैली का छोटा-सा मन्दिर शिवजी का। जो नवी शताब्दी का है।

जगत सुख के ऊपर है हांमटा। यहाँ भी एक झील हैं। कहा जाता है कि जमदग्नि, किन्नर और कैलास की यात्रा के बाद यहीं आकर रूके थे। वे एक टोकरी में देवताओं की प्रतिमायें उठाये थे। यही से वे मलाणा गये। चन्द्रस्वर्णी पर्वत पर आँधी आयी और ऋषि के सिर से देवताओं की टोकरी गिर गयी जिससे देवता विभिन्न स्थानों पर जा गिरे और वहाँ प्रतिष्ठित हुए। इन्द्रकील कुल्लू, और स्पीती के बीच का पर्वत-जिसे, "देव रिब्बा" भी कहते यही हैं। इन्द्रकील और अर्जुन गुफा, पुनः भीम के अनुज समर्थ अर्जुन का स्मरण कराती है। शंकर से पाशुपातास्त्र प्राप्त करने के उद्देश्य से अर्जुन जब इन्द्रकील के समीप पहुँचे तो उन्हें एक आवाज सुनाई दी - खड़े हो जाओ।

चारों तरफ देखने पर उन्हें पता चला कि एक वृक्ष के नीचे कोई तपस्वी बैठा है। वे उसके आदेश पर रूक जाते हैं। तपस्वी कहता है - तुम धनुष बाण कवच और तलवार धारण किये हुए हो ? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? यहाँ शस्त्रों की आवश्यकता नहीं। यहाँ शान्त स्वभाव के तपस्वी निवास करते हैं। युद्ध नहीं होता है। इसलिए तुम अपना शस्त्र फेंक दो ? तपस्वी भेषधारी इन्द्र से भेंट के बाद हुआ था अर्जुन किरात समागम। अर्जुन किरात युद्ध में जब अर्जुन के सभी शस्त्र बेकार हो गये। उनका बाहुबल जवाब देने लगा तो अर्जुन ने शिव की अराधना की। तब उन्हें मालूम हुआ कि किरात ही शिव हैं। आज भी देवी पार्वती सवरी के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

जगत सुख के बाद आता है नग्गर। यह वर्षों तक कुल्लू के राजाओं की राजधानी रही। यहाँ पर गुफा में रहता था वह वैष्णव बाबा किशनं दास जोहारी। जिसने सत्रहवीं शताब्दी में राजा जगत सिंह तथा सम्पूर्ण प्रजा को वैष्णव बना दिया था। अवध से रघुनाथजी की मूर्ति लायी गयी थी और सारा राज्य वैष्णव बन गया था। अवध से रघुनाथ जी की मूर्ति लायी गयी थी और सारा राज्य रघुनाथ जी को सौंप कर राजा, छड़वादार (मुख्य सेवक) बन गये थे। यहाँ ऊपर ठाहना में मुरली मनोहर का मन्दिर है और नीचे है शिव। त्रिपुरा सुन्दरी आदि के भी

मन्दिर है। थोड़ा हटकर नागर का किला है। जिसका निर्माण राजा सिद्ध सिंह ने (१५००-१५४६) करवाया था। भीतर एक छोटा-सा मन्दिर है। जिसमें मूर्ति के स्थान पर एक पत्थर है। जिसे जगती कहा जाता है। किम्बदन्ती है कि उस भारी पत्थर को मनाली से लाया गया था और उसे लाये थे मधुमक्खी के रूप में देवता।

किले से कुछ ही दूर है रोरिक आर्टगैलरी। किले और गैलरी के प्रांगण से रोहतांग के पर्वत नीचे मण्डी तक की पहाड़ियाँ नजर आती है। बीच में व्यास और आस पास की पर्वत श्रृंखलाएँ काफी दूर तक दिखलायी देती हैं। सूर्यास्त के समय प्राकृतिक छंटा देखते ही बनती है। शान्त मनोरम और अद्‌भुत - ऐसे ही चित्ताहारी दृश्य है गैलरी के भीतर टंगे चित्रों में। टूटा तारा दूर देश के आगत, कल्कि अवतार दाता बुद्ध आदि प्रसिद्ध चित्रों के निर्माता महान चित्रकार पुरातत्व वेत्ता कवि और लेखक निकोलस के रोरिक ९ अक्टूबर १८९४ को रूप के सेट पीटर्स वर्ग में जन्में और १३ दिसम्बर १९४७ को कुल्लू के नगर में समाधिस्थ हुए। उनको समाधिस्थ होने के ठीक तीन महीने बाद मैं पहुँचा था रोहतांग। काश इसके पूर्व पहुँचा होता तो उस महान साधक और महान कलाकार का भी दर्शन हो जाता मुझे।

कहाँ रूस और कहाँ नगर। हिमघाटी के अदृश्य तन्तुओं ने किस प्रकार उस महान कलाकार को अपनी ओर खींचा था - आश्चर्यजनक है। निकोलस की समाधि के निकट बैठा हूँ मैं। चुपचाप मौन साधे। पतझर का मौसम है। समाधि की मिट्‌टी अभी पूरी तरह सूखी नहीं है। समाधि के चारों ओर छतनार के पेड़ है। जिनकी पीली और सूखी पत्तियाँ झर झर कर गिर रही है उस पर। वातावरण में गहरी नीरवता बिखरी हुई है। एक विचित्र सी शान्ति का अनुभव हो रहा है मेरी आत्मा को। अपलक निहार रहा हूँ मैं समाधि को। कितने आत्मनिष्ठ थे निकोलस। वे हिमालय में "इन्स्टिच्युट" खोलना चाहते थे। इसी उद्‌देश्य से १९२८ ई० में मण्डी के राजा से "हाल स्टेट" खरीदा। सात हजार से भी अधिक चित्रों के निर्माता निकोलस रेगिस्तान चीन तिब्बत तथा मध्य ऐशिया के दुर्गम बीहड़ों में लगातार भटकने के बाद हिमालय के उस कोने में शान्ति पा सके।

वह रहस्यमय गुप्त आश्रम

यह था व्यास कुण्ड और जिसके आस-पास के हिमाच्छादित उत्तुंग शिखरों के पीछे छिप चुका था सूरज सांझ की स्याह कालिमा धीरे-धीरे फैलने लगी थी। मैंने सोचा था व्यास कुण्ड के समीप ही किसी शान्त निर्जन स्थान पर होगा

ब्रह्मचारी जी का आश्रम। मगर मेरा ऐसा सोचना भ्रम सिद्ध हुआ।

ब्रह्मचारी जी कौतुक भरे स्वर में बोले - तू समझता था जैसा मेरा मठ या आश्रम। वैसा यहाँ कुछ नहीं है। यह सुनकर भौचक्का सा रह गया मैं।

मुझे सकपकाये हुए देखकर ब्रह्मचारी जी पहले की ही तरह कौतुक भरे स्वर में बोले - तू घबड़ा मत। मेरा आश्रम है यहाँ मगर यह सर्वथा गुप्त है। साधारण लोग वहाँ नहीं पहुँच सकते। आओ चलो मेरे साथ।

इतना कहकर ब्रह्मचारी जी जल्दी-जल्दी व्यास नदी के किनारे किनारे चलने लगे। मैंने भी उनका अनुसरण किया। पूरा एक घण्टा चलने के बाद मैं उनके साथ एक अत्यन्त निर्जन स्थान पर पहुँचा। चाँद निकल आया था अब तक। जिसकी हल्की पीली रोशनी में बड़ा ही रहस्यमय लगा वह स्थान मुझे। गहरी नीरवता छायी हुई थी उस रहस्यमय वातावरण में। चारो ओर सांय सांय हो रहा था।

सहसा मेरी नजर बाँयी ओर घूम गयी। देखा ! वहाँ एक छोटा-सा पत्थर का दरवाजा था। जिसमें पल्ले नही लगे हुए थे। उसी दरवाजे के सामने जाकर खड़े हो गये ब्रह्मचारी जी। और उसी समय एक लम्बी कद-काठी का सुदर्शन व्यक्ति भीतर से प्रकट हुआ। अब तक चाँद देवदार के घने जंगलो के ऊपर आ गया था। जिसकी रोशनी ठीक सामने की ओर पड़ रही थी। और उसी रोशनी में मैंने देखा गौर से उस व्यक्ति को सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व, मुण्डित सिर दाढ़ी मूँछ भी सफा चट गौरवर्ण शरीर पर काषाय वस्त्र गले में रूद्राक्ष की माला और पैरों में खड़ाऊँ।

उस अनजाने व्यक्ति ने एक बारे मेरी ओर ध्यान से देखा और फिर धीरे से मुस्करा कर बोला वह - आइये शर्माजी। आपके आने की सूचना मुझे प्राप्त हो गयी थी। मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। यह सुनकर एक बारगी स्तब्ध रह गया मैं। मेरा नाम इस व्यक्ति को कैसे मालूम हुआ? और मेरे आने की सूचना इसको कैसे मिली। समझ में नहीं आ रहा था कुछ।

योगी सच्चिदानन्द

बाद में पता चला ब्रह्मचारी जी ने ही बतलाया मुझे। वे थे योगी सच्चिदानन्द। ब्रह्मचारी जी के गुरू भाई जैसा कि मैं पीछे बतला चुका हूँ - ब्रह्मचारी जी ने अपने योग बल से आने की सूचना उनको पहले ही दे दी थी।

स्वामी सच्चिदानन्द की आयु पूरी एक सौ तीस वर्ष की थी। अस्सी वर्ष से वहाँ रह रहे थे वह। लेकिन देखने में पच्चीस वर्ष से अधिक के प्रतीत नहीं

हो रहे थे महाशय। स्वामी सच्चिदानन्द ब्रह्मचारी जी के साथ मुझे भी भीतर ले गये। थोड़ा चलने के बाद एक काफी लम्बा चौड़ा प्रांगण मिला। जिसके चारों ओर छोटे-छोटे कमरे बने थे। शायद वे कमरे साधना कक्ष थे। फिर छोटा सा एक सुरंगनुमा मार्ग था। उसमें से होकर हम लोग जिस स्थान पर पहुँचे - वह एक छोटा मठ नुमा आश्रम था। पत्थर का बना वह आश्रम काफी पुराना लगा मुझे। यह देखकर घोर आश्चर्य हुआ कि उस आश्रम में सारी सुविधाएँ थी पानी रोशनी, सभी प्रकार की भोजन सामग्री। किसी चीज का अभाव नहीं था वहाँ उस आश्रम में।

रोहतांग आने वाले पर्यटक अथवा वहाँ स्थायी रूप से निवास करने लोग कभी सपने में भी न सोचते होंगे कि वहाँ उस पौराणिक और ऐतिहासिक रमणीक स्थान पर कोई गुप्त आश्रम भी होगा।

आश्रम में कई युवा साधक साधिकाएँ थीं, लेकिन सभी को अवस्था सौ वर्ष से अधिक ही थी, इससे कम नहीं। साधिकाओ में एक थी दिव्य माया। वास्तव में वह दिव्यमाया थी। स्वस्थ सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व गौरांग काया, बड़े-बड़े स्थिर नेत्र उच्च ललाट घने काले बाल गले में स्फटिक की माला और शरीर कर काषाय वस्त्र।

सौम्य शान्त और निर्विकार लगी मुझे दिव्य माया। बहुत ही कम बोलती थी वह। प्रायः सिर झुकाये-पद्मासन की मुद्रा में ही बैठी रहती थी। मुझे देखकर के केवल एक बार मुस्करायी थी। बोली कुछ नहीं थी वह। पहली ही नजर में उनका व्यक्तित्व बड़ा ही रहस्यमय लगा मुझे।

कहने की आवश्यकता नही पूरे तीन महीने रहा मैं उस रहस्यमय गुप्त आश्रम में। और इस अवधि में वहाँ जो कुछ देखा जो कुछ अनुभव किया उन्हें यहाँ लिपिबद्ध कर रहा हूँ मैं।

पंचक़ोष और प्रकृति प्रदत्त अनुकूल और प्रतिकूल गुण

योग में जिन षट्चक्रो की चर्चा की गयी हैं। क्रम से उन्हीं में पंचकोषो की स्थिति है। वे पंचकोष पाँचो शरीरों के मूल तत्व अथवा बीज रूप हैं। पहले कोष से स्थूल शरीर का विकास ७ वर्ष में होता है। दूसरे कोष से दूसरे ७ वर्ष में भाव शरीर का विकास होता है। जिसके बाद तीसरे कोष से तीसरे ७ वर्ष में प्राणमय शरीर का विकास होता है। चौथे कोष से चौथे ७ वर्ष में मनोमय शरीर का विकास होता हैं। इसी प्रकार पांचवे कोष से, पांचवे ७ वर्ष में आत्मशरीर

का विकास होता है। योग के अनुसार मानव जीवन के ये ३५ वर्ष अति महत्वपूर्ण और अति मूल्यवान हैं। प्रत्येक ७ वर्ष में साधना का सोपान परिवर्तित हो जाता है। ७ सोपान है योग साधना के। और प्रत्येक साधना की अवधि ७ वर्ष है। यदि ३५ वर्ष में विधिवत साधनापूर्ण हो जाती है तो अन्त योगी उस स्थिति को उपलब्ध हो जाता है - जिसे आत्मकाम की संज्ञा दी गयी हैं। जिसे भव मुक्ति कहा गया है और जिसे कहा गया है आत्मोपलब्धि।

भारतीय मनीषी का कहना है कि प्रत्येक कोष में प्रकृति द्वारा प्रदत्त अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के गुण विद्यमान है। प्रतिकूल गुणों का प्रणाश और अनुकूल गुणो का विकास साधना का प्रथम लक्ष्य है।

पहले कोष का प्रतिकूल गुण है कामवासना और अनुकूल गुण है ब्रह्मचर्य। दूसरे कोष का प्रतिकूल गुण है भय, घृणा, क्रोध और हिंसा और अनुकूल गुण है अभय, प्रेम, क्षमा और अहिंसा। तीसरे कोष का प्रतिकूल गुण है सन्देह, और अनुकूल गुण हैं श्रद्धा, विचार और विवेक। एक मात्र सन्देह ही साधना के धरातल पर रूपान्तरिक होकर श्रद्धा फिर विचार और अन्त में विवेक का रूप धारण कर लेती है। चौथे कोष का प्रतिकूल गुण हैं कल्पना और स्वप्न और अुनकूल गुण हैं संकल्प और अतीन्द्रिय दर्शन। इसी प्रकार पांचवे कोष का प्रतिकूल गुण है मूर्च्छा, और अनुकूल गुण है द्वैत। प्रतिकूल को अनुकूल में रूपान्तरित करना साधना का दूसरा लक्ष्य है। कहने की आवश्यकता नहीं प्रत्येक कोष में उससे संबंधित प्रतिकूल और अनुकूल गुण बीज रूप में विद्यमान रहते है जो समयानुसार संबंधित शरीर के द्वारा प्रकट होते हैं। साधना का तीसरा लक्ष्य हैं, सुख ओर दुःख दोनों से निवृत्त हो जाना सदैव के लिए।

सुख और दुःख का स्वरूप और उससे निवृत्ति

अत्यन्त मृदुभाषी संयमी और स्वभाव से गम्भीर थे स्वामी सच्चिदानन्द। मेरी यात्रा का उद्देश्य और मेरे आध्यात्मिक विचारों को उन्हें समझते देर न लगी। अब तक अपने प्रवास काल में मुझे जो आध्यात्मिक उपलब्धियां हुई थी उन सबको जानने के पश्चात् स्वामी सच्चिदानन्द बोले सच पूछा जाय तो शर्मा जी पांचो शरीर आत्मा के लिए बंधन स्वरूप हैं। एक प्रकार से कारागार के समान है वे पांचो शरीर। उनके अतिरिक्त, सुख-दुःख और अज्ञान की पांचो ग्रन्थियों भी है जो आत्मा के लिए बंधन और कारागार के तुल्य हैं। क्रमशः सभी से मुक्त हो जाने पर ही आत्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होती हैं और अन्ततः परमात्म तत्व में विलीन हो जाती है। इसी का नाम आत्म मुक्ति अथवा मोक्ष है।

सबसे प्रबल प्रश्न यह है कि पांचो कोषो और उनसे संबंधित पांचो शरीर से आत्मा कैसे बंधी हुई है? इस पर विचार करना आवश्यक हैं। शरीर से आत्मा बंधती है सुख दुःख के कारण! समझ में आया आपको - स्वामी सच्चिदानन्द बोले।

सुख दुःख!

हाँ, एक मात्र सुख दुःख। स्वामीजी ने कहना शुरू किया - और सुख-दुःख के मूल में है इन्द्रियां और उनसे संबंधित है रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि! शरीर के बंधन में आत्मा को कोई बांधता नहीं, आश्चर्य की बात तो यह है कि आत्मा स्वयं बंध जाती है इन्द्रियों तथा उनके गुणो के कारण शरीर से। इसलिए आत्मा को शरीर के बंधन से मुक्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

सच पूछा जाय तो हम स्वयं बधें हैं अपनी इच्छा से।

वह कैसे? मैने पूछा।

किसी को कोई बांधता है तो बंधने वाला अपने आपको मुक्त करने का प्रयत्न करता है और प्रयत्न करने पर अन्त में मुक्त हो भी जाता हैं। लेकिन जब कोई स्वयं अपने आपको बांधता है तो उस बंधन से मुक्त होना असम्भव तो नहीं कठिनतम् अवश्य है।

अत्यन्त आश्चर्य की बात है स्वयं हम इसलिए अपने आपको बांधते है कि हमे अपने को बांधने में रस मिलता है सुख मिलता और मिलता है आनन्द।

यह कहना साधुतर होगा कि सुख की आशा हमे बांध देती है और हमारी आत्मा इसी के फलस्वरूप माया के ऐसे भ्रम जाल में फंस जाती हैं कि उससे उसका मुक्त होना कठिन हो जाता है।

आपके कहने का तात्पर्य यह है कि सुख की आशा आत्मा को बांध देती है शरीर से।

हां! ठीक समझा आपने स्वामीजी बोले - सुख की आशा सुख की कामना और सुख की इच्छा आत्मा और शरीर को एक दूसरे से बांध देती है और यह एक ऐसा बंधन है जिसमे बंधकर आत्मा जीवात्मा बन जाती है और जीवात्मा के रूप में जीवन-मरण की यात्रा पर निकल पड़ती है संसार में। इसी का नाम भवचक्र हैं। इस भवचक्र से मुक्त होने का उपाय ही योग की विभिन्न साधनाएं है और उन साधनाओं के हैं विभिन्न मार्ग। जब जीवात्मा भवचक्र से मुक्त हो जाती है तो उसे फिर कहते है "विशुद्धात्मा"! आत्मा का अपने निजस्वरूप में प्रतिष्ठित होना आवश्यक है क्योंकि आत्मा का निज स्वरूप में प्रतिष्ठित होने पर

ही परमात्मा का सान्निध्य होता है उसे उपलब्ध। लेकिन हमारी आत्मा है कि भवचक्र से मुक्त नहीं होना चाहती। कठिनाई है। जिस वस्तु से हमे सुख की आशा हो आनन्द की आशा हो और जो वस्तु प्रीतिकर प्रतीत होती हो जिस वस्तु में रस प्राप्त होता हो। उससे भला कौन मुक्त होना चाहेगा? कौन उसको छोड़ना चाहेगा? कौन उससे मुक्त होना चाहेगा?

मैंने कहा - ऐसे बंधन से लोग बंधा ही रहना चाहेंगे। किसी और ने हमारी आत्मा को शरीर से बांधा होता तो हमारी मुक्ति की कामना अथवा आकांक्षा ही इस दिशा में पर्याप्त न होती। बंधन को तोड़ने के लिए हमे अपने सम्पूर्ण श्रम के साथ संघर्ष करना पड़ता। मुक्त होने के लिए तरह तरह की युक्ति सोचती पड़ती और मार्ग खोजना पड़ता तरह तरह का, और अन्त में निर्णय इस बात से होता कि दोनो में शक्ति शाली कौन है? बांधने वाला कि बंधने वाला? यदि बांधनेवाला शक्ति शाली सिद्ध होता है तो बंधन से मुक्त होने का कोई भी मार्ग नही है, फिर!

ठीक समझा आपने, स्वामीजी बोले - यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो हमारी सारी क्रिया-कलाप हमारी सारी भाग दौड़ और हमारा सारा प्रयास सुख-दुःख की दिशा में है। उसी के आस पास है। इसलिए सुख-दुःख के अन्तराल में प्रवेश करना आवश्यक है, क्योंकि उसकी सम्भावना हो यानी उसकी आशा ही सारे बंधन का कारण है एक मात्र।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो सुख-दुःख दोनों एक दूसरे से भिन्न नही है और न तो है एक दूसरे से विपरीत ही। वास्तव में दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लेकिन भ्रम के कारण कभी यह सोचने समझने का प्रयास ही नहीं करते कि जिसे हम आप सुख समझते है कल वही सुख-दुःख के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार हम आज दुःख समझते है वही परम दुःख कल परम सुख में परणित हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि दोनो एक दूसरे के विपरीत नही है। बस, हर क्षण रूपान्तरित होते रहते है एक दूसरे में लेकिन उस रूपान्तरण को देखते समझते भी हम यह निष्कर्ष निकालने का कभी भी प्रयास नहीं करते कि सुख-दुःख दोनो अस्थायी है। जो अभी सुख है वहीं कुछ क्षण बाद दुःख में परिवर्तित हो जाता है। जो अभी दुःख है वहीं सुख में परिवर्तित हो जाता है दूसरे ही क्षण। एक सुख-दुःख में परिवर्तित हुआ कि नही, हम तुरन्त दूसरे सुख को पाने के लिए प्रयास करने लग जाते है। बड़े आश्चर्य की बात है। थोड़ा रूककर हम यह नही सोचते की जिसे हमने कल सुख समझा था वही सुख आज दुःख के रूप में परिवर्तित हो गया। और फिर जिस दूसरे सुख को पाने के लिए

प्रयास कर रहे है, वह सुख क्या आज की तरह दु:ख में परिवर्तित नही हो जायेगा? यदि यह बात समझ मे आ जाय तो फिर कोई समस्या ही नही है। लेकिन समझ में आता नही, भ्रम के कारण। भ्रम के वशीभूत मन कहता है कि अवश्य हम ही से कोई गलती हो गयी होगी तभी ऐसा हुआ। निश्चय ही दु:ख ही रहा होगा वह, जिसे हमने सुख समझा था। समझने की बात है, कितना भारी भ्रम है मन का यह, बतलाया नही जा सकता।

स्वामीजी थोड़ा ठहर कर आगे बोले - हम जिसे जितना बड़ा सुख समझते है, भविष्य में वही उतने ही बड़े दु:ख में परिवर्तित होता है, इसमें सन्देह नही। आज जो जितना बड़ा सुख है वहीं कल उतना ही बड़ा दु:ख होगा। अनुपात बराबर होगा दोनो का। इसके उदाहरण के रूप में एक विवाह को ही लीजिए आप! एक माता पिता द्वारा आयोजित विवाह होता है और एक होता है स्वयं किया गया प्रेम विवाह। दोनो विवाह के परिणाम में जमीन और आसमान का अन्तर है। जितना दु:ख आयोजित विवाह से नहीं प्राप्त होता उतना दु:ख प्राप्त होता है प्रेम विवाह से। हजारो लाखो में कोई प्रेम विवाह ही सुखमय होता है, नहीं तो प्राय: सभी दु:खमय ही होते हैं। प्रेम विवाह करने का अर्थ है जीवन भर के लिए विभिन्न प्रकार के दु:खो और विपत्तियो को खरीदना। और अशान्ति को मोल लेना हमेशा हमेशा के लिए।

आयोजित विवाह में अत्यधिक सुख-शान्ति और आनन्द की कामना अथवा आकांक्षा नही हो सकती और न तो हो सकती है अत्यधिक अभिलाषा की पूर्ति की ही अपेक्षा। इसके ठीक विपरीत अत्यधिक सुख-शान्ति और आनन्द की अपेक्षा होती है प्रेम विवाह में। प्रेमी युगल सोचते है कि विवाह होने पर उनकी सारी आशाएं सारी कामनाएं और सारी अभिलाषाए पूरी हो जायेगी। लेकिन क्या वे पूरी होती है? कभी भी नही। और जब नही होती हैं तो जीवन नर्क हो जाता है और जब जीवन नर्क हो जाता है तो उसकी परिणति होती है संबंध विच्छेद यानी तलाक। आयोजित विवाह में ऐसा कम ही आता हैं अवसर। इसलिए कि उसमें सुख-शान्ति और आनन्द की आशा और आकांक्षा ही कम रहती हैं तो टूटेगा क्या? क्या विच्छेद होगा? और होगा किसका किससे तलाक? कुछ टूटता है तो प्रेम विवाह में, कुछ बिखरता है तो प्रेम विवाह में और कुछ बिगड़ता है तो प्रेम विवाह में। तात्पर्य यह कि जितनी बड़ी अपेक्षा उतना बड़ा दु:ख।

विवाह को लेकर पश्चिम के विचारकों ने सोचा कि प्रेम विवाह अति सफल और अति सुखद होगा। वैसे यदि देखा जाय तो उनका चिन्तन अपने स्थान पर बिल्कुल ठीक ही था, लेकिन उन्होंने इसके दूसरे पक्षपर विचार नही किया कि

प्रेम विवाह दु:खद और कष्टदायक भी हो सकता है। अशान्ति का कारण भी बन सकता है। और अशान्ति जब अपनी चरम सीमा पर पहुचेगी तो आत्महत्या भी हो सकती हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं इस दृष्टि से हमारे देश के समाजवादी, सुधारवादी और धर्मनियोजक बड़े दूरदर्शी थे। उन लोगो ने एक दूसरा ही प्रयास किया। और वह यह कि विवाह में सुख की अपेक्षा ही कम हो। सुख-शान्ति और आनन्द की आशा ही कम रखे लोग। इसलिए कि भविष्य में कभी सुख-दु:ख में रूपान्तरित हो तो उसकी मात्रा अनुपात में ही हो। अधिक कष्ट पीड़ा और ब्यथा का सामना न करना पड़े लोगो को।

आयोजित विवाह से न अधिक सुख प्राप्त होता है और न तो अधिक होता हैं प्राप्त दु:ख। सामान्यतया दोनों का अनुपात बराबर ही रहता है। इसलिए आयोजित विवाह एक सीमा तक सफल होता हैं। जबकि प्रेम विवाह नही। उसका टूटना निश्चित हैं। क्योंकि प्रेमी युगल चाहते हैं शिखर लेकिन मिलती है उन्हें खायी।

स्वामीजी बोले - जब सुख, दु:ख में परिवर्तित हो जाता है तो दु:ख क्यो नहीं परिवर्तित हो सकता सुख में? उसके मार्ग में कौन-सी ऐसी बाधा है जो परिवर्तित होने नहीं देती? यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो एक मात्र बाधा यही है कि हम सुख की तरह दु:ख को स्वीकार नहीं कर पाते। सुख की तरह दु:ख में जीना नहीं चाहते। वास्तव में सुख की ही तरह दु:ख को भी प्रशन्नतापूर्वक और आनन्दपूर्वक स्वीकार कर उसमें जीने की कला एक लय है और है एक तपश्चर्या। पुत्र की मृत्यु का दु:ख है पिता की मृत्यु का दु:ख हैं। पत्नी के वियोग का दु:ख है और किसी प्रकार के अभाव का दु:ख हैं - और ऐसे दु:खों में भी हम अपनी अन्तरात्मा से यह कह सके कि हमे स्वीकार है ये सभी दु:ख। हम उसी में जीना चाहते है। हमारा यह अहो भाग्य है कि हमें दु:ख उपलब्ध हुआ। सच पूछा जाय तो सुख को दु:ख में परिवर्तित करने के बजाय दु:ख को सुख में परिवर्तित करने की कला को अपनाना अधिक बुद्धिमानी की बात है। यदि हम इस कला को अपना ले तो यह संसार हमारे लिए स्वर्ग बन जायेगा।

स्वामीजी बोले - सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि जब हम दु:ख को सुख में परिवर्तित कर देते है तो हमारा सुख कभी भी दु:ख में परिवर्तित नही हो सकता। यह गहरायी से समझने की बात हैं। यदि हम अपने दु:ख को सुख में परिवर्तित करने की शक्ति रखते है तो हमारा सुख हमारे किसी काम का न रहेगा। ब्यर्थ हो जायेगा वह हमारे लिए। क्योंकि परिवर्तन होगा कि नहीं उसमें कभी। वास्तव में जिस दिन हम दु:ख को सुख में परिवर्तित करने की कला

के ज्ञाता हो जायेंगे उसी दिन हमारे भीतर सुख की जो आकांक्षा है वह सदैव के लिए समाप्त हो जायेगी। आकांक्षा के गर्भ से क्षमता का जन्म होता है। जब आकांक्षा ही नहीं रहेगी तो क्षमता कहां से आयेगी। बस, रूपान्तरण की कला से परिचित होना चाहिए।

दु:ख को कष्ट को और वेदना को तत्काल स्वीकार कर लें हम। स्वीकार करने में किञ्चित भी हिचकिचाहट न हो। एक परम मित्र की तरह उसे गले लगा ले और कहे कि तू तो मेरा परम मित्र है। अब तू मेरा साथ मत छोड़ना। सदैव एक साथ रहेंगे हम दोनों।

कहने की आवश्यकता नही अन्तराल में यह भाव उत्पन्न होते ही अपने आप भीतर बाहर सब कुछ परिवर्तित हो जायेगा। वही परम दु:ख परम सुख प्रतीत होने लगेगा और परम सुख की उस प्रतीति से जिस परम आनन्द का अनुभव होगा, उसका वर्णन करना सम्भव नही।

रूचिकर और अरूचिकर

स्वामीजी आध्यात्मिक विषय के मर्मज्ञ थे इसमें सन्देह नही। उन्होंने विषय को आगे बढ़ाते हुए कहना शुरू किया - रूचिकर वस्तु हमे सुख देती जबकि अरुचिकर वस्तु देती है दु:ख। हमारे लिए जो अभी रुचिकर है वही कल अरुचिकर हो जाता है। क्यों? इसका कारण क्या है? इसका कारण है एक मात्र हमारा मन।

जिसको हम हृदय से चाहते है। जिसको हम बहुत ही प्रेम करते है और चाहते हैं कि हमारा प्रेमी बराबर हर समय हमारे निकट ही रहे। यदि हमे ऐसा अवसर प्राप्त हो जाय तो कुछ देर बाद हमारा मन ऊबने लगेगा। सोचेगे कि कुछ समय के लिए हमारा प्रेमी अलग हो जाय तो अच्छा हो। हम थोड़ा अलग रहकर एकान्त खोजने लगेगे। यह स्वाभाविक है। किसी वस्तु से मन ऊबने लगता है तो वह वस्तु हमारे लिए अरुचिकर हो जाती है। जिस प्रेमी के सम्पर्क में रहकर हमने सुख की कामना की थी उसी से अब थोड़ा अलग होने पर हमे सुख मिलेगा। सच बात तो यह है कि जिसको हम अच्छी तरह जान समझ लेते है तो उससे हमारा मन ऊबने लग जाता हैं। और उस ऊब के कारण हम नये की खोज में निकल पड़ते है। भारतीय मनीषी का कहना है कि जो रुचिकर है वहां सुख है और जो अरुचिकर है वहां दु:खं है। लेकिन रुचिकर भी अधिक समय तक रुचिकर नही रह जाता। ऊब के कारण वह वाद में अरुचिकर हो जाता है। स्थायी कुछ भी नहीं है न दु:ख और न तो सुख। लेकिन अभ्यास बहुत बड़ी चीज है। अभ्यास से सुख-दु:ख हो जाता है और दु:ख, सुख। हम बराबर दु:ख को ही

झेलते रहे, बराबर उसी में जीते रहे और बराबर उसी का सामना करते रहे तो हमारी जो संवेदनशीलता है वह क्षीण होते होते एक दिन नष्ट हो जायेगी। आदत बन जायेगा दु:ख और जब दु:ख आदत बन जाता है तो वह दु:ख फिर दु:ख नही रह जाता। इसी प्रकार हमे बराबर सुख ही प्राप्त होता रहे तो उसमें भी हमारा मन ऊबने लगेगा। सुख से घबराने लगेगे हम। और उससे भी मुक्त होने की इच्छा उत्पन्न होने लगेगी।

यदि हम रुचिकर और अरुचिकर को गहरायी से समझ ले तो सुख-दु:ख में और सुख दु:ख में कैसे रुपान्तरित होते है विचार में आ जायेगा। भारतीय मनीषी का कहना है कि इन्द्रियों के लिए के विषय अनुकूल है वह रुचिकर है। हमारे लिए नहीं हमारी इन्द्रियों के लिए और यही विवशता हैं। जैसा कि हमने आपको बतलाया कि रुचिकर सदैव रुचिकर नही रहता। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि हमारा व्यक्तित्व हर समय विकसित हो रहा है। हम रोज परिवर्तित हो रहे है। कुछ समय पहले हम क्या थे और फिर क्या हो जाते है। कल क्या थे और आज क्या है? बाल्यावस्था में हम कुछ होते हैं। युवावस्था में कुछ और फिर वृद्धावस्था में कुछ और

जो हमारी इन्द्रियो के विपरीत होता है और प्रतिकूल प्रतीत होता है उसे कहते हैं हम दु:ख। और इसी प्रकार जो हमारी इन्द्रियों के अनुकूल प्रतीत होता है उसे हम कहते है सुख। दु:ख को हम नहीं चाहते है। हम चाहते है सदैव सुख। यह हमारी आकांक्षा है। यही आकांक्षा शरीर से हमारे बंधने का एकमात्र कारण बन जाती है। क्योंकि सभी इन्द्रियां शरीर में है। हमे सुख दु:ख के अनुभव इन्द्रियों के माध्यम से होता है उन्ही से हमे यदि सुख प्राप्त होता हैं तो उन्ही के द्वारा दु:ख को रोका भी जा सकता है। मूल में यही कारण है कि हमारी चेतना शरीर के साथ सम्मिश्रित होकर बंध जाती है। हमारी आत्मा कब से बंधी है यह बतलाया नही जा सकता, लेकिन यह निश्चित है कि जब तक हम दु:ख-सुख के वास्तविक स्वरूप को न समझ ले और समझ कर दोनों के पार न हो जाय तब तक शरीर से आत्मा की मुक्ति सम्भव नहीं। बराबर जन्म-मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र में फंसे ही रहेंगे हम।

तपश्चर्या तप और कैवल्य

हमारे साधना शास्त्र में तपश्चर्या तप और कैवल्य ये तीन शब्द अपने आपमें अति महत्वपूर्ण है। इन तीनो का संबंध प्रबल मानषिकता की परम स्थिति से समझना चाहिए। सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि हम सुख-दु:ख के साथ बंधते

क्यों है? इस प्रश्न के उत्तर को प्राप्त करने के अतिरिक्त शरीर के बंधन के रहस्य से जब हम भली भांति परिचित हो जाते है और फिर उसके विपरीत जो कुछ करते है उसी का नाम है तप्। इसी प्रकार सुख की आकांक्षा न करना और दु:ख को हटाने का प्रयास भी न करना उसी का नाम है तपश्चर्या। तप और तपश्चर्या में बस इतना ही अन्तर है। हमें सुख की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हमें दु:ख से भयभीत भी नही होना चाहिए। ये दोनो चीजे हमे शरीर के बाहर ले जाती है। इसके ठीक विपरीत सुख की उपेक्षा और दु:ख के प्रति निर्भयता हमें शरीर के भीतर ले जाती है। भोग और तप में यही भेद है। सुख की कामना के लिए हमे बाहर भयंकर संघर्ष करना पड़ता है और संघर्ष की स्थिति में हमारी आत्मा बाहर भटकती है, इसलिए हम न सुख की कामना करे और न तो दु:ख को ही हटाने का प्रयास करे। जो जैसा है उसे वैसा ही रहने दे। और उसे वैसे ही स्वीकार करने केलिए तैयार रहे। कहने की आवश्यकता नहीं, यही है तपश्चर्या। यदि हमने तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी तो समझिए हम शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे है। हमारी आन्तर यात्रा प्रारम्भ हो गयी है। और जब भीतर प्रवेश करने लग जाते है हम उस स्थिति बाहर कोई संघर्ष नही रह जाता है फिर। भारतीय मनीषी का कहना है कि जब हम भीतर प्रवेश कर जाते है। हमारी आन्तर यात्रा समाप्त हो जाती है। और संघर्ष के लिए बाहर कुछ भी शेष नही रह जाता है। उस स्थिति में हमारी आत्मा शरीर के बंधन से मुक्त हो जाती हैं सदैव के लिए। थोड़ा रुककर स्वामी जी बोले आपको ज्ञात होना चाहिए इसी आत्म मुक्ति का नाम है 'कैवल्य'। कैवल्य के पश्चात् एक और परम अवस्था है जिसे कहते है निर्वाण। निर्वाण के पश्चात जो अवस्था आत्मा को प्राप्त होती है वह अन्तिम अवस्था है, जिसका नाम है मोक्ष। कैवल्य निर्वाण और मोक्ष ये तीनों क्रमिक उपलब्धियां है योग साधना मार्ग की।

कर्ता और अकर्ता

सुख को प्राप्त करने के लिए और दु:ख को दूर करने के लिए जो कर्म करता है उसे 'कर्ता' कहते है। इसके ठीक विपरीत जो व्यक्ति कहता है जो प्राप्त होता है वह भी ठीक और जो प्राप्त नही होता है वह भी ठीक। सुख भी परम हर्ष के साथ स्वीकार और दु:ख भी परम हर्ष के साथ स्वीकार दोनों की स्वीकृति और दोनो अवस्थाओं में समान भाव। वह अकर्ता है। कर्ता और अकर्ता में केवल यही अन्तर है। और जब व्यक्ति अकर्ता हो जाता है तब परमात्मा कर्ता हो जाता हैं और परमात्मा कर्ता हो जाता है तब उस स्थिति में व्यक्ति कर्म मुक्त हो जाता है। इसी कर्म मुक्ति का दूसरा नाम है भव मुक्ति।

नियति भाग्य और विधि

कहने की आवश्यकता नहीं इसी परम सिद्धान्त के गर्भ से भाग्य की मूल्यवान धारणा उत्पन्न हुई। भाग्य का संबंध न ज्योतिष से है और न तो है हाथ की रेखाओ से ही। भाग्य की धारणा आध्यात्मिक है।

जब कर्ता भाव नष्ट हो जाता है। जब प्राप्त होने और प्राप्त न होने की चिन्ता समाप्त हो जाती है। सुख और दुःख का भेद भी समाप्त हो जाता है। दोनों के मध्य निर्लिप्तता उत्पन्न हो जाती है। सुख क्या है? और दुःख क्या है? दोनो को जब पहचानना कठिन हो जाता है तो ऐसी अवस्था में जो भाव स्थिति होती है उसी को कहते है-नियति उसी को कहते है भाग्य और उसी को कहते है विधि। ऐसी भाव स्थिति अत्यन्त अभ्यास और अत्यन्त वैराग्य से ही उत्पन्न होती है व्यक्ति में इसमें सन्देह नही।

ऐसी भाव स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति अकर्ता होता है। उसकी गर्दन यदि कटने लगे तो वह यही कहेगा कि गर्दन कटनी ही थी। कोई विष पिला दे, कोई सूली पर चढ़ा दे कोई फांसी दे दे तो वह बस यही कहेगा कि विष पीना ही था, सूली पर चढ़ना ही था फांसी पर लटकना ही था। उसको किसी पर भी क्रोध नहीं आयेगा न गर्दन काटने वाले पर न विष देने वाले पर न सूली पर लटकाने वाले पर और न तो फांसी देनेवाले पर ही। क्योंकि वह समझता है कि कर्ता कोई और ही है। कोई और ही है इसका जिम्मेदार। अब जो भी हो रहा है वह परम नियति के वशीभूत हैं। वह परम नियति है। इसमे उसका कुछ भी लेना देना नही। इसलिए वह किसी को भी दोषी नही ठहरायेगा। सच बात तो यह है कि कर्ता का भाव नष्ट होते ही दोषारोपण और प्रतिरोध समाप्त हो जाता है। ऐसे ही व्यक्ति को इस संसार के प्रयत्न में परम शान्ति प्राप्त होती है, और होता है प्राप्त परम सन्तोष।

सन्तोष की उपलब्धि कब?

जो व्यक्ति सुख और दुःख का चयन करता है। कभी भी सन्तोष और शान्ति का अनुभव प्राप्त नहीं कर सकता वह। सच बात तो यह है कि जिसने दोनों का चयन करना छोड़ दिया है वास्तव में वही सन्तुष्ट है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सन्तुष्टी अथवा सन्तोष में कभी भी सुख नही है और न तो है शान्ति ही। सन्तोष और शान्ति दोनों सुख दुःख से परे ही जाने पर ही उपलब्ध होता है। जो व्यक्ति सन्तोष में सुख समझ कर जीवन में चलता है वह भ्रान्ति में जीता है। उसका सन्तोष एक प्रकार का धोखा है।

यह समझ लेना चाहिए कि मानव जीवन का चरम लक्ष्य है और चरम प्रयोजन है अहंकार से मुक्ति। जो व्यक्ति अहंकार से मुक्त हो जाता हैं उसमें अस्मिता नही रह जाती। अस्मिता के अभाव का अर्थ है - किसी भी प्रकार की शिकायत किसी के भी प्रति अब नही। जो हो रहा है और जो नही हो रहा हैं उसकी परम स्वीकृति। दोनों अवस्थाओं में समान। ऐसा जो 'तथाता' है और ऐसा जो भाव है स्वीकृति का, उससे व्यक्ति के भीतर उठने वाली सभी प्रकार की लहरे हमेशा के लिए शान्त हो जाय तो इसमे आश्चर्य क्या?

शरीर, इन्द्रियां, मन और आत्मा

शरीर के तल पर मन और आत्मा की समन्वित अभिव्यक्ति का नाम जीवन है। शरीर और मन के बीच इन्द्रियां है और इन्द्रियां ही सभी प्रकार के सुख और दुःख का मूल कारण है। मन जिन माध्यमो से शरीर द्वारा अपने उद्देश्यो को पूरा करता है वे माध्यम है इन्द्रियां। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन्द्रियों के गुण हैं पाप पुण्य आदि सारे अच्छे-बुरे कर्म इन्द्रियों के द्वारा ही होते है। शरीर में उपस्थित आत्मा उन कर्मो का अनुशरण करते हुए स्वयं को शरीर समझने लग जाती है। इसी अवस्था को आत्मा का जीव भाव कहते हैं। जीव भाव से युक्त आत्मा का नाम है जीवात्मा। मैं शरीर हूँ, यह भाव जीव भाव है और मैं शरीर के भीतर हूँ यह है आत्म भाव। इस प्रसंग में यह भी समझ लेना चाहिए कि सुख दुःख ही एक मात्र ऐसा कारण है जिसके फलस्वरूप मनुष्य को शरीर उपलब्ध होता है। इसीलिए शरीर के साथ आत्मा एकात्म अनुभव करने लग जाती है और समझने लग जाती है अपने आपको शरीर। एक प्रेमी है। अपनी प्रेमिका को, अपनी प्रेयसी को बहुत चाहता है। वह भाव विह्वल अथवा प्रेम विह्वल होकर अपनी प्रेमिका से अपनी प्रेयसी से कहता है - 'प्रिये' मुझमे और तुममे कोई भेद नही है अब। हम दोनों एक हो गये हैं। एकाकार हो गया हैं हम दोनो का अस्तित्व। प्रेमी का यह भाव निस्सन्देह भ्रमपूर्ण है। इसलिए कि ऐसा होना सम्भव ही नहीं है। अब प्रश्न होता है - क्यों?'' इसलिए कि मनुष्य को जिससे किसी प्रकार का सुख प्राप्त होता है उससे वह तत्काल एकता साध लेता है। किसी भी प्रकार का अन्तर अथवा भेद नही रखना चाहता वह। इसके ठीक विपरीत उसको जिससे दुःख प्राप्त होता हैं किसी भी प्रकार का, उससे वह दूर भागना चाहता हैं। उससे निकटता स्थापित करना नही चाहता है वह। यहाँ आश्चर्य की बात तो यह है कि उसे सुख प्राप्त होता हैं तो वह सोचता हैं कि वह सुख उसके शरीर से उसे प्राप्त हो रहा है और उसे दुःख प्राप्त होता है तो वह सोचता है कि वह दुःख

उसे किसी और से प्राप्त हो रहा हैं। उसके दुःख का जिम्मेदार कोई और ही हैं। उससे कोई प्रेम करता है तो वह यही समझता है कि वह प्रेम का पात्र है और प्रेम के योग्य है तभी तो कोई उससे प्रेम कर रहा है। लेकिन कोई उस पर क्रोधित होता है या कोई उसे गाली देता है तो वह यह नहीं कहता है कि क्रोध और गाली का पात्र है वह। तभी उस पर क्रोध किया जा रहा है और तभी उसे गाली भी दी जा रही हैं। वह तो क्रोध करने वाले अथवा गाली देने वाले को ही दोषी कहेगा। यह विभाजन अथवा यह भेद बुद्धि मनुष्य को धोखा देती है। यदि वह सत्य को उपलब्ध होना चाहता है। सत्य का अनुभव करना चाहता है और सत्य के मार्ग पर चलना चाहता है तो उसे दो में से किसी एक का चयन करना होगा। या तो वह दोनो है या तो फिर दोनो ही नही है न प्रेम के योग्य न तो घृणा के ही योग्य। लेकिन मनुष्य का विचार यह है और धारणा यह है कि जितने सुख हैं उसका अधिकारी वह स्वयं है और जितने दुःख है उनका कारण कोई दूसरा ही है। एक मात्र यही कारण हैं कि मनुष्य यह कभी नही पूछता कि संसार में सुख क्यों है? वह तो यह जानने समझने का प्रयत्न करता है कि संसार में दुःख क्यों है? और उस दुःख से बचने का उपाय क्या है? मनुष्य का एक विचित्र स्वभाव यह भी है कि संसार में जितनी भी अच्छाइया है उनका संबंध भगवान से जोड़ देता है वह और जितनी भी बुराईया है उन्हें जोड़ देता है शैतान से। यदि सुख प्राप्त होता है तो भगवान के कारण, यदि दुःख प्राप्त होता है तो शैतान के कारण। कहने की आवश्यकता नहीं, इसीलिए इस संसार में एक मात्र हिन्दू धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसने भगवान में ईश्वर में अथवा परमेश्वर में अच्छाई और बुराई दोनों को रखने का प्रयास किया। भगवान श्री कृष्ण को ही लीजिए उनके हाथ में बंशी है और सुदर्शन भी है, आशक्त है तो निराशक्त भी हैं वह। भोगी है तो योगी भी हैं वह। युद्धप्रिय है तो शान्तिप्रिय भी हैं वह। चोर है तो साधु भी हैं वह। जहां उनकी हजारो पटरानियां है वही एक पत्नीव्रत भी है वह। अब भगवान शंकर की ओर देखे वे विषपान करते है तो अमृत भी। यदि निर्माण कर्ता हैं तो विनाश कर्ता भी है। सोचिए ऐसे परमात्मा के अथवा परमेश्वर के साथ एकता स्थापित करना सरल नही। लेकिन हिन्दू धर्म ने एकता स्थापित की जो अपने आप में एक अनुकरणीय आध्यात्मिक क्रान्ति है।

शरीर से आत्मा का बंधने का कारण

अच्छाई, बुराई और सुख-दुःख इन दोनों का समन्वय संसार है। मनुष्य दोनों को स्वीकार कर ले या फिर दोनों को अस्वीकार कर दें। एक को स्वीकार करना

और दूसरे को अस्वीकार करना ही बंधन का कारण है। स्वीकार करने और अस्वीकार करने की जो भावना है वही मानव चेतना को शरीर से बांध देती है। मतलब यह कि इसी भावना के फलस्वरूप चेतना अपने आप शरीर से बंध जाती हैं। और वह अपने को शरीर समझने लगती हैं। इसी का नाम जीव भाव अथवा जीव अवस्था हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार यही भाव अथवा यही अवस्था जन्म-मृत्यु और पुनर्जन्म का कारण है एक मात्र। इससे मुक्त होने का एक ही मार्ग हैं और वह यह कि अच्छाई हो या बुराई हो सुख हो या दुःख हो, दोनों की गहराई में झांक कर देखें, उसकी वास्तविकता को समझे और उसकी सत्यता से परिचित हो और फिर उसकी खोज में लग जाय जिससे दोनों प्राप्त न हो। और मनुष्य की वह खोज एक न एक दिन उसे उस अवस्था में ले जायेगी जहाँ न सुख हैं और न तो है दुःख। न तो अच्छाई है और न तो बुराई ही है। जहाँ दोनों के प्रति अस्वीकृति हैं। दोनों का अभाव हैं। ऐसी अवस्था में आत्मा को जो अनुभव होता है उसका नाम है आनन्द। और वही आनन्द जब अपनी प्रगाढ़तम स्थिति में पहुँचता है तो उसे कहते है परमानन्द। और परमानन्द भी जब अपनी चरम सीमा पर पहुंचता है तो उसे कहते है दिव्यानन्द। इसी प्रकार दिव्यानन्द भी जब अपनी पराकाष्टा पर पहुंचता है तो उसे कहते है ब्रह्मानन्द इस प्रकार एक ही आनन्द की क्रमिक चार अवस्थाएं है आनन्द, परमानन्द, दिव्यानद और ब्रह्मानन्द।

क्या मानव अमर हो सकता है ?

आत्मा मन और शरीर इन तीनों का प्राण के आधार पर समन्वय "मानव" है। आत्मा सदैव स्वतन्त्र है। वह किसी भी अवस्था में परतंत्र नहीं हो सकता। मन परतंत्र है लेकिन विभिन्न साधनाओं के द्वारा वह स्वतन्त्र हो सकता है। शरीर पूर्णतया परतंत्र है वह किसी भी प्रकार स्वतंत्र नहीं हो सकता।

नोबुल पुरस्कार विजेता भौतिक शास्त्री पियरे विकाम्ते टु नाऊ का कहना है कि मानव स्वयं अमरत्व का प्रमाण है।

मानव का अन्तिम ध्येय है परम शक्ति के निकट पहुँच कर उसके साथ एकाकार हो जाना। उसकी नियति पृथ्वी पर उसके जीवन तक सीमित नहीं है। उसे इस बात को हमेशा याद रखना है।

विकासवाद का तगाजा है कि प्रत्येक जीवन जी लेने के बाद, आदमी विकास की एक मंजिल पार कर लेता है।

आइंस्टीन के सापेक्ष वाद के समान काल और स्थान के सातत्य को भी वैज्ञानिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। परामनोविज्ञान के चमत्कारों और कौतुकों को इस सतत्य के अतिक्रमण के परिणामों के रूप में ही जानना समझना चाहिए। मुझे पूरा विश्वास है कि एक दिन इस बात को वैज्ञानिक समर्थन मिल सकेगा। कारण, काल एक ऐसे अन्त हीन टेप के समान है जिस पर बीती वर्तमान और भावी सब घटनाएँ अंकित है।

इस बात को मान लेने के बाद दूर बोध में आस्था रखने में भी कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में प्रत्येक मानव के पास आत्मा होती है जो अदृश्य रूप से विश्वात्मा से संबंधित है। आप किसी भी दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर विचार करे, अन्ततः आपको यही मानने को बाध्य होना पड़ेगा कि आदमी अमरत्व का प्रमाण स्वयं है।

मन की अमरता एक वैज्ञानिक प्रयोग

अमरीका के प्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक गैरल्ड हाल्ड के अनुसार अभी जो शोध कार्य हुआ है उससे यह सिद्ध हो गया है कि मानव शरीर तेजी से चक्कर खाते हुए अणुओं का समूह है जो समन्वयकारी "क्षेत्र" के कारण एक समूह के रूप में संगठित रहते है। धूल भरे तूफान में दिखाई देने वाले धूल कण हमें हवा के चक्कर का रूख और आकार समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। पर उन्हें चक्रवात समझना भूल होगी। वे इस चक्रवात की अभिव्यक्ति मात्र हैं। जैसा कि अमरीकी अणु शक्ति आयोग की प्रयोगशालाओं में काम करने वाले एक ट्रेसर-शोध कर्ता का कहना है कि "अब शरीर को दहनशील यंत्र या रासायनिक भट्टी नहीं माना जा सकता। शरीर एक संगठन है। अणुओं और परमाणुओं का एक अतिविशाल सैन्य दल है। इस सैन्यदल का संचालन करने वाला कमाण्डर कौन है ? यह हमें नहीं मालूम हो पाता। क्योंकि वह हमें दिखाई नहीं देता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार धूल कणों से रहित होकर चक्रवात अदृश्य हो जाता है। जन्म जन्मान्तरों में आदमी के शरीर के अणुओं और परमाणुओं का संगठन भले ही बदल जाये पर उन्हें संचालन करने वाला कमाण्डर एक ही रहता है।

हम मन की अमरता को यह कह कर नही टाला या नजर अन्दाज कर सकते कि शरीर के समाप्त हो जाने पर वह हमें दिखाई नहीं देता। जीव विज्ञान के क्षेत्र में इधर जो नई क्रान्तिकारी खोज हुई है उनसे यह बात वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध हो गयी है कि अणुओं और परमाणुओं तथा कोशिकाओं आदि पर "मन" का संचालन अगले जन्म में भी कायम रहता है।

अमरत्व : कार्लजुंग की दृष्टि में

आदमी के सामने निर्णायक प्रश्न यह है कि वह अनन्त से संबंधित है या नही। एक बार उसे यह अनुभूति हो जाय कि अनन्त ही सब कुछ है तो जीवन की तुच्छ बातों के प्रति उसका मोह या आकर्षण बहुत कम रह जाये। अपने चेतन और अवचेतन के बीच सामंजस्य स्थापित करके आदमी मरणोत्तर जीवन के रहस्य को सुलझा सकेगा। अवचेतन के भी दो रूप हैं - आदमी का अपना अवचेतन और सामूहिक अवचेतन - जिसके गर्भ से हमारे से निराले और समझ में न आने वाले सपनो का जन्म होता है। आदमी को अपने अवचेतन को भी सामूहिक अवचेतन से - जिसका सीधा संबंध आदि कालीन प्रतिबिम्बों और धारणाओं से है - विचार प्राप्त होते रहते हैं। स्वभाव से ये विचार विश्व व्यापक होते हैं - और दिक् काल की कक्षा से परे और अप्रभावित।

स्वयं अपने सपनों तथा अपने रोगियों के सपनों का विश्लेषण करके मुझे मरणोत्तर जीवन तथा आत्मा की अमरता के बारे में अपने विचारों के निर्धारण में काफी सहायता मिली। अमरत्व को यद्यपि आज तक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सका है। तथापि ऐसे असंदिग्ध अनुभव मौजूद है - जो यही इंगित करते है कि आदमी सदा अमर है।

मानव प्रकृति की तुच्छ इच्छा

द्वितीय महायुद्ध के बाद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वैज्ञानिक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ था। दूसरे महायुद्ध की युद्धोत्तर समस्याओं से जूझने वाले साधारण नागरिक का ध्यान भले ही उसकी और आकृष्ट न हुआ हो पर आइस्टीन जैसे वरिष्ठ वैज्ञानिकों तथा अनेक बुद्धिजीवियों ने उसका स्वागत किया। उसकी गणना इस सदी की सर्वाधिक विचारोत्तेजक पुस्तकों में की गई। ग्रन्थ का नाम था "दि सोल आफ़ युनिवर्स" यानी ब्रह्माण्ड की आत्मा। जिसके लेखक थे, डॉ. गुस्ताफ स्ट्रोम वर्ग।

डॉ. गुस्ताफ की गणना उनके जीवन काल में विश्व के इने-गिने खगोल वेत्ताओं में होती थी और वे १९१७ से १९४६ तक अमरीका की विश्वविख्यात वेधशाला "माउन्ट विल्सन इस्टीच्युट आफ वाशिंगटन से संबंधित थे।

अपने इस विचारोत्तेजक ग्रन्थ में डॉ. गुस्ताफ ने मानव के लिए विज्ञान की उपयोगिता के प्रश्न को नयी निगाहों से देखा है। वे यह मान कर चलते है कि विज्ञान इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ रहा है कि ब्रह्माण्ड की व्यवस्था में मानव का उचित स्थान कौन सा है ? और विज्ञान ने मानव को उस स्थान पर

प्रतिष्ठित करने में कितना योगदान दिया है। क्या जीवन उद्देश्य हीन है अर्थहीन है, लयहीन, बेतुके राग के समान है? क्या उससे किसी अर्थ या उद्देश्य की आशा रखना व्यर्थ है? आदमी कल्पनानुकूल जीवन व्यतीत नहीं कर सकता ? क्यों वह यह नही मान सकता कि उसका जीवन प्रयोजनहीन नही है ? व्यर्थ नहीं ? ... वह किसी के निमित्त है ?

खगोलवेत्ता डॉ. स्ट्रोमवर्ग जानते थे कि खगोल विज्ञान के अनुसार मानव प्रकृति की एक अत्यन्त तुच्छ इच्छा अथवा अनिच्छित इच्छा मात्र है। खगोल वेत्ताओं के अनुसार मानव का जन्म ब्रह्माण्ड की किसी गम्भीर योजना का परिणाम नही है। कभी कहीं गलत आकार के कुछ पदार्थ पिण्ड प्रचण्ड ताप अथवा प्रभावोत्पादक शीत की सतर्क मार्जन क्रिया से बचे रह गये होंगे। तभी मानव जाति का जन्म हुआ होगा।

डॉ. स्ट्रोम वर्ग के सामने प्रश्न यह था - क्या हमारा शरीर तारा पदार्थ का ऐसा अंश है जो प्रकृति के किसी अरक्षित जल में किसी संयोगिग घटना के फल स्वरूप अपने सामान्य प्रारब्ध से मुक्त होकर और भिन्न ताप की परिस्थितियों से लाभान्वित होकर एक असाधारण गहनता की स्थिति तक पहुँच गया है। तथा वह सब कौतुक करता है जिन्हें हम "जीवन" कहते हैं। वे न इस मत को स्थापित करना चाहते थे और न इसका खण्डन ही करते थे। उनका यह एक खुला प्रश्न था।

उन्होंने इस विषय पर विज्ञान की अनेक विधाओं के माने हुए चिन्तकों - डॉ. एफ. आर. मोल्टन डॉ. वाल्टर आउक्स, सर आर्थर एडियटन, डॉ. थामस हंट मार्गन, डॉ. जान बूदिन डॉ. कारेल हुजूर और डॉ. ओ. एल. स्पासंलर आदि से विचार विमर्ष किया। डॉ. स्टोन वर्ग के ग्रन्थ की भूमिका में आइंस्टीन ने लिखा है - बहुत कम लोग इस पेचीदा मामले को इतनी स्पष्टता और संक्षिप्तता से प्रस्तुत कर सकते थे जितना डॉ. स्टोम वर्ग ने किया है। मैं जिस बात से सबसे अधिक प्रभावित हुआ वह यह थी कि उन्होंने आवश्यक तथ्यों को उपलब्ध सामग्री से बड़ी सफाई से अलग करके उन्हे एक विवेकपूर्ण एक सूत्रता प्रदान की है। और युक्ति मूलक विधि से प्रस्तुत किया है।

डॉ. स्ट्रोम वर्ग के सिद्धान्त को समझने के लिए पहले यह समझना आवश्यक है कि आधुनिक विज्ञान ठोस पदार्थ को ठोस पदार्थ नहीं मानता। उसके अनुसार सब ठोस पदार्थो की रचना अणुओं से हुई है। और अणु को भी पदार्थ की इकाई मानना गलत होगा। कारण अणुओं की रचना भी परमाणुओं प्रोटानों, न्यूट्रानों आदि के संयोग से हुई है।

और इधर जो नये प्रयोग किये गये है, उनके परिणामों के अनुसार तो इन परमाणुओं के प्रोटानों आदि को ''कण'' मानना भी गलत होगा। क्योंकि ''कण'' शब्द उनके वास्तविक स्वरूप और स्वभाव को सही ''ढंग'' से अभिव्यक्त नहीं करता। उनका असली स्वरूप और स्वभाव धनीभूत तरंगाकृतियों जैसा है। उन्हें निकट से बारीकी से देखने पर पता चलता है कि विभिन्न आवृत्तियों (फ्रीक्वेंसी) के इस सकर में कणों जैसी विशेषताओं की अधिकता इतनी होती है कि तरंगाकृतियों की स्वर शैली अनेक स्वरों को जन्म दे सकती है। अत: वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर उन्हें शक्ति के केन्द्रीकरण के बिन्दुओं के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है। स्वतंत्र सत्ताधारी पदार्थो के रूप में नही।

ज्ञानेन्द्रियों से परे एक आयाम

डॉ. स्ट्रोम वर्ग ने एक ऐसे आयाम की कल्पना की जिसका अस्तित्व हमारी ज्ञानेन्द्रियों से परे है। उन्होंने यह भी कल्पना की कि हम जिस दुनिया में रहते हैं उसका अविर्भाव इसी अतिरिक्त आयाम वाले जगत में से हुआ है। उनकी कल्पना के अनुसार इस आयाम का स्वरूप या तो अभौतिक है या अर्ध भौतिक। और उसी में से उन शक्ति क्षेत्रों का जन्म हुआ है जो प्रत्येक जीवित प्राणी, मानव, पशु, वनस्पति आदि के प्रतिरूपों के साचों की रचना का काम करता है। इन्ही साचों में हमारे जगत का सारा पदार्थ संग्रहीत है। ये साचे ही धरती पर विद्यमान सब जीवन की व्यवस्था के सिद्धान्तो का निर्माण करते हैं और यह निश्चित करते है कि उर्वर डिम्ब से कौन जन्म लेगा घोड़ा, कुत्ता या आदमी ? डॉ. स्ट्रोम वर्ग के सिद्धान्त के अनुसार डॉ. एच. एस. वर और उनके साथियों ने प्रत्येक प्राणी में जिस विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र का अविष्कार किया है वह इन कल्पित प्रतिरूपों के साचों की रचना का एक अंग है।

डॉ. स्ट्रोम वर्ग के सिद्धान्त को और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए हमें यह मानना होगा कि ब्रह्माण्ड विशुद्ध शक्ति है और पदार्थ शक्ति का घनीभूत रूप।

ऊपर जिस सांचों का उल्लेख किया गया है उनकी सत्ता पदार्थ की सत्ता से स्वतंत्र है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्राणी की प्रकृति विशेषताएँ उसके जन्म के समय ही निश्चित हो जाती है। शक्ति क्षेत्रों के प्रतिरूपों के सांचों की रचना के परिणाम स्वरूप जो अतिरिक्त आयाम में हुई थी। दूसरे शब्दों में हमारा जीवन तथा पृथ्वी पर पाया जाने वाला सारा जीवन इसी अदृश्य आयाम मे ही रचा गया था। और हमारे शरीर अणुओं परमाणुओं से निर्मित घनीभूत शक्ति के

पिण्डों के "अस्थायी निवास" के अलावा कुछ और नही है। क्या विज्ञान इस प्रकार नियति का समर्थन करता है।

डॉ. स्ट्रोम वर्ग ने प्रतिरूपों के इन साचों को उद्‌गामी शक्ति के "स्वयत्त क्षेत्रों" की संज्ञा प्रदान की है। उनके इस सिद्धान्त पर आधारित प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि वे स्वायत्त क्षेत्र, कोशिकाओ के विभाजन और विकास की चमत्कारिक निदेशात्मक प्रक्रियाओं के लिए भी जिम्मेदार है। जिस अभौतिक आयाम से उनका अविर्भाव होता है, वह हमारे वर्तमान वैज्ञानिक यंत्रों की पहुँच से बाहर स्थित है। और उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। इतना अवश्य सच है कि हमारे ज्ञानेन्द्रिय जगत में उनकी अन्तव्यीप्ति इसी बाहरी आयाम में ही होती है।

विचारों का मूल स्रोत क्या है ?

इस क्रान्तिकारी वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार हमारा मस्तिष्क हमारे मन का एक साधन मात्र है। और स्वयं हमारा मन और हमारी चेतना इन साचों में ही विद्यमान है। उन्हें अलग देखने और परखने के सब प्रयास बेकार साबित होंगे। स्मृति भी इन सांचों का ही अनिवार्य अंग है। हमारा चेतन मन ८० वर्षो की अवधि तक की स्मृतियाँ संग्रहीत कर सकता है।

लेकिन डॉ. स्ट्रोम वर्ग से पूछा गया कि जब मस्तिष्क की कोशिकाओं में निरन्तर परिवर्तन होते रहते है और नये अणु पुराने अणुओं का स्थान बराबर लेते रहते हैं तो स्मृति कैसे अक्षुष्ण रह सकती है ?

इसके उत्तर में डॉ. स्ट्रोम वर्ग ने कहा - "ऐसा लगता है कि अणुओं के प्रभाव से रहित कोई शक्ति क्षेत्र (भारतीय आध्यात्म इसी शक्ति क्षेत्र को आत्मा कहता है) मस्तिष्क में भी होना चाहिए। ऐसा शक्ति क्षेत्र जो न कभी बदलता हो और न कभी नष्ट ही होता हो।

कहने की आवश्यकता नहीं डॉ. स्ट्रोम वर्ग की इस धारणा और सिद्धान्त से अनेक वैज्ञानिक और शोध संस्थाएँ सहमत हैं।

इस सिद्धान्त में रूचि रखने वाले अनेक जिज्ञासुओं ने डॉ स्ट्रोमवर्ग ने पूछा - आपके सिद्धान्त के अनुसार मन और मस्तिष्क में जन्म लेने वाले विचारों का मूल श्रोत क्या है ? और उसकी वैज्ञानिक व्याख्या क्या है ?

डॉ. स्ट्रोम वर्ग का उत्तर वैज्ञानिक भाषा में होते हुए भी परामनोवैज्ञानिकों और परामनोविज्ञान में रूचि रखने वालो की समझ में आसानी से आ जायेगा।

उनका उत्तर था - अणुओं और परमाणुओं का कोई भी संगठन मानव विचारों का कारण या जन्म श्रोत नहीं बन सकता। विचारों के मामले में हमारा

मन दूर बोध जैसी विचार संरचना से प्राप्त प्रभावों का रिसीवर मात्र है। जिन विचारों को अन्तः प्रेरणा की संज्ञा दी जाती है वे वास्तव में ब्रह्माण्ड की आत्मा रूपी "सर्वव्यापक मन"। (भारतीय अध्यात्म इसी को परमात्मा या परमेश्वर कहता है।) से हमें प्राप्त होते है।

वृद्धावस्था में होने वाले स्मृति क्षय के बारे में डॉ. स्ट्रोम वर्ग का कहना है कि वास्तव में स्मृति क्षय कभी नहीं होता। हमें आभास ऐसा तब होता है जब हमारा आकुल चेतन मन कुछ अप्रिय घटनाओं को "याद" करने से इन्कार कर देता है, पर जान बूझ कर भूली बिसरी ऐसी अप्रिय यादे सम्मोहन में उजागर हो जाती है। इस प्रकार हमने देखा कि स्मृति हमारे ही कारण क्षीण हो सकती है। पर कभी समूल नष्ट नहीं हो सकती। हमारे जीवित मस्तिष्क में होने वाले विद्युतीय उत्पातों के बावजूद शक्ति क्षेत्रों के प्रतिरूपों के साचो की संरचना सदैव अक्षुण रहती है। और इन उत्पादों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तव में वह संरचना तब भी अक्षुण रहती है। जब शारीरिक मृत्यु होने पर मस्तिष्क का विघटन हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हमारे जीवन की व्यवस्था का निर्धारण करने वाली यह संरचना अजर-अमर है और प्राकृतिक मृत्यु के परिणामों से अप्रभावित रहती है।"

डॉ. स्ट्रोम वर्ग के अनुसार जिस दुनिया में हमारी चेतना की जड़े काफी गहरायी में पैठी हुई है उसे हमारे मस्तिष्क से जोड़ने का काम करती है हमारी स्नायु कोशिकाएँ। मृत्यु के समय हमारे मस्तिष्क क्षेत्र का नाश नही होता। वह अपने श्रोत पर पहुँच कर यानी दूसरे आयाम में प्रवेश कर अदृश्य हो जाता है। चूकि हमारी स्मृतियाँ इसी शक्ति क्षेत्र में अंकित होता है। इसलिये मृत्यु के बाद भी उन्हें बुलाया जा सकता है। कारण मृत्यु के बाद मन जड़ पदार्थ से अवरूद्ध नही रहता।

वास्तविक "हम" कभी नहीं मरते।

डॉ. स्ट्रोम वर्ग के इस सिद्धान्त के प्रकाश में आने के बाद इस क्षेत्र में जो प्रयोग किए गये और जो नये सिद्धान्त प्रतिपादित किए गये उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य का विद्युत चुम्बकीय रूप वास्तव में एक ऐसा शक्ति क्षेत्र है जो भौतिक और दृश्य जगत को डॉ० स्ट्रोम वर्ग की कल्पना के अभौतिक जगत और सूक्ष्म आयाम को जोड़ता है और शरीर और मस्तिष्क के कार्य-कलापों के व्यवस्था करने की भूमिका भी निभाता है। मस्तिष्क के माध्यम से ही संवेदनाएँ नियंत्रक चेतना तक पहुँचती है और उससे परे स्थित उद्गामी शक्ति संरचना के

स्मृति भण्डार में भी। अर्थात् हमारा शरीर और मस्तिष्क हमारी ज्ञानेन्द्रियों से परे स्थित "वास्तविक हम'' के साधन मात्र हैं। और शरीर और मस्तिष्क की समाप्ति के बाद भी इस ''वास्तविक हम'' का नाश नहीं होता। वह सदैव अजर-अमर है।

डॉ. स्ट्रोमवर्ग के सिद्धान्त और जीवन के विद्युतीय सिद्धान्त जिसके अनुसार आप विद्युद्वैगिक जीव है। को वैज्ञानिक दृष्टि से अन्तिम रूप से यह सिद्ध करने के लिए पेश किया जाने लगा है कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य की चेतना अक्षुण्ण रहती है। और कभी नहीं मरती। इससे यह भी प्रमाणित होता जा रहा है कि मनुष्य के जीवन में उसका व्यक्तित्व एकाध बार परिवर्तित हो सकता है पर उसकी निजी विशिष्टता कभी नहीं बदलती।

आर्थर को इस्तलर ने अपनी नवीन कृति ''दी स्ट्स आफ कोई सिडेस'' में उस रहस्मय आयाम का समर्थन किया है। जिसकी मूल कल्पना डॉ. स्ट्रोम वर्ग ने की थी।

कोइस्तलर का कहना है कि प्रत्येक जीवित पदार्थ में एक संघटनशील सम्भावना होती है जो संयोगों अव्याख्येय और अविश्लेष्य घटनाओं को जन्म देती है। इसी प्रकार वस्तुओं और घटनाओं का ऐसा मेल सम्भव है जो समूहों का रूप धारण करके अव्यवस्था में से व्यवस्था को जन्म देती है। विख्यात वैज्ञानिक लेकोम्ते टू नाऊ नें अपनी विचारोत्तेजक कृति ''ह्यूमन डस्टिनी'' में जिसकी नोबुल पुरस्कार विजेता राबर्ट मिलिकन ने ''पेनी अन्तर्दृष्टि और पूर्ण ज्ञान वाली ऐसी कृति जो सदियों में एकाध बार सामने आती है प्रशंसा की है, इन शब्दों में कहा है ''मानव विचार की प्रक्रिया काफी गुमराह करने वाली है। उसकी शुरूआत या तो संवेदी अवलोकन से, जिसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है या सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनों से होती है। कोई भी वैज्ञानिक सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनों को अन्तिम सत्य नही मान सकता। यदि ऐसे कथनों को ही अन्तिम सत्य मान लिया जाय तो हमें पृथ्वी को चपटा ही स्वीकार करना पड़ेगा और यह भी मानना पड़ेगा कि रेजर ब्लेड की धार एक दम सीधी है जबकि अणुवी क्षण यंत्र से देखने पर वह लहरियादार रेखा लगती है। सामान्य ज्ञान के अनुसार लोहा ठोस होता है पर एक्सरे से देखिये तो वह छिद्रिल दिखाई देगा। सामान्य ज्ञान पदार्थ को ठोस निर्जीव मानता है। पर आधुनिक भौतिकी के अनुसार उसमें असंख्य लघु ब्रह्माण्ड विद्यमान है। तेजी से आगे बढ़ते और चक्कर लगाते हुए ब्रह्माण्ड। जो एक दूसरे से बिल्कुल असंयुक्त है। चूँकि हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान, हमारी ज्ञानेन्द्रियों के अवबोधन पर आधारित है - इसलिये वह निरपेक्ष नहीं होता सापेक्ष होता है। अपनी ज्ञानेन्द्रियों के सीमित

अवबोधन को ही अन्तिम आधार मान कर हम जो भी प्रत्यक्ष ज्ञान अर्जित करेंगे वह एकांगी और सम्पूर्ण ही होगा। क्योंकि वह यथार्थता के हमारे स्तर पर प्राप्त होता है। पर हम याद रखना होगा कि यथार्थता के और भी स्तर है। खैर:

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मैने "अमरत्व" पर जो विचार व्यक्त किया है आशा है पाठकगण उससे सन्तुष्ट होंगे और उनकी जिज्ञासा का भी समाधान हो गया होगा।

व्यक्त से अव्यक्त की ओर

व्यास कुण्ड के उस रहस्यमय गुप्त आश्रम में स्वामी सच्चिदानन्द के बाद जिस महात्मा के साथ मेरा सत्संग हुआ - वे थे स्वामी केशवा नन्द। स्वामी केशवानन्द की आयु कितनी थी - यह तो ठीक-ठीक बतला नहीं सकता लेकिन देखने में बिल्कुल युवक लगते थे महाशय। साधक तो थे ही वे इसमें सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक विषयों का गहन चिन्तन मनन भी किया था उन्होंने।

स्वामी केशवानन्द का कहना था कि मन और शरीर की अन्तरक्रिया से अधिक रहस्यमयी कोई समस्या नही है। आधुनिक विज्ञान ने इसे कम रहस्यमयी बनाने में कोई योग नहीं दिया है, बल्कि इसको अधिक गहराई से देखना जरूरी बना दिया है। पूरकता की नीति से खोज की नई सम्भावनाए खुल सकती है। मैंने आधुनिक भौतिकी का भी गहन अध्ययन किया है स्वामी केशवानन्द बोले। आपको ज्ञात होना चाहिए कि प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री आर्विन श्रेजिगर ने लिखा है, सौ साल पूर्व सम्भवत: अन्य कोई व्यक्ति इस स्थान पर बैठा था... तुम्हारी तरह वह भी जन्मा तुम्हारी ही तरह उसने भी सुख-दु:ख का अनुभव किया। क्या वह और कोई था ? क्या वह तुम्ही नही थे ? यह तुम्हारे अन्दर की आत्मा क्या है ?... इस "और कोई" का स्पष्ट वैज्ञानिक अर्थ क्या हो सकता है ?

इस तरह देखने तथा समझने आप तुरन्त वेदान्त में मूल विश्वास की पूर्ण सार्थकता पर आ जाते है। इन सबका निचोड़ इस महा वाक्य से मिल जाता है - तत् त्वम् असिं या इस प्रकार के शब्दों मे - मैं पूर्व में हूँ, मैं पश्चिम में हूँ, मैं नीचे हूँ मैं ऊपर हूँ, मैं यह समूचा संसार हूँ। इसी सत्य का दर्शन (जिसके बारे में व्यक्ति बहुधा अपने कार्यो में सजग नहीं होता) सारे नैतिक दृष्टि से मूल्यवान कर्म कलापों का आधार है।

श्रेडिंगर ने साहसपूर्ण तथा गूढ़ विचार अपने एक निबंध में व्यक्त किए। आश्चर्य की बात यह है कि उन्होंने अपना निबंध तरंग यांत्रिकी की ऐतिहासिक खोज से कुछ मास पूर्व १९२५ ई० में लिखा। यह खोज बीसवीं शताब्दी की भौतिकी के इतिहास में बहुत मार्के की है।

आधुनिक भौतिक (क्वाण्टम यांत्रिकी) का आधार क्या है - मेरे इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी केशवानन्द ने कहा - वास्तव में इलेक्ट्रान कण तथा तरंग दोनों के ही गुण प्रदर्शित करता है। कण तथा तरंग दोनों की परिकल्पनाएँ एक दूसरे की विरोधी है लेकिन आश्चर्य यह है कि परमाणु परिघटना के विवरण में दोनों विरोधी विचार पूरक भूमिका निभाते हैं। प्रकृति की रचना ही कुछ ऐसी है कि ''कण पक्ष'' की परीक्षा के लिए किसी प्रयोगात्मक व्यवस्था में से ''तरंग'' की परीक्षा के लिए प्रयोगात्मक व्यवस्था अपने आप ही हो जाती है अलग। ऐसा क्यों ? मैंने प्रश्न किया।

उत्तर मिला - क्योंकि प्रेक्षण का हर कार्य स्वयं एक विचलन के साथ होता है जिससे विस्तार नहीं हो सकता तथा जो प्रकृति में समाया हुआ है। स्वामी केशवानन्द ने कहा - इस मूलतः नई परिस्थिति के दार्शनिक परिणाम बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी सबसे अच्छी परिभाषा पूरकता का सिद्धान्त हो सकती है। जिसके लिए हम नील्स दोहर के आभारी है। परमाणु परिघटना के गहन अध्यन पर आधारित ''पूरकता सिद्धान्त'' हमें महान प्राचीन विचारकों की याद दिलाता है जिन्होंने मानव तथ ब्रह्ममाण्ड के बीच संबंध की साहस पूर्ण खोज की। उनकी यह खोज देह तथा आत्मा (द्रव्य तथा चित्त) सत् और असत् की समस्या तथा उन अनेक गहन विरोधाभासों तक थी - जो मानव अस्तित्व में व्याप्त रहते हैं।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि वेदान्त विचार धारा केन्द्र में परमार्थिक केवल तथा व्यवहार की परम्परा पूरकता है। इसका प्रतिपादन आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने किया था। प्रथम निर्गुण विद्या है। तथा दूसरी सगुण विद्या है। विज्ञान की परस्पर पूरकता और वेदान्त की परस्पर पूरकता में एक दूसरे की अनुकूल मिलती जान पड़ती है। श्रेडिंगर ने अपना खोज वाला निबंध उसी समय लिखा जब उसने तरंग यांत्रिकी का अविष्कार किया, यह क्या केवल संयोग था ?

मस्तिष्क तथा चित्त का मूल अन्तर बहुत महत्व रखता है। मस्तिष्क स्थूल विषय-जगत का अंग है। इसकी विषयवत् पड़ताल की जा सकती है। सूक्ष्म इलेक्ट्रोनिकी की हाल की खोजों से इसके गठन तथा कार्य की मूल्यवान जानकारी प्राप्त हुई है। दूसरी ओर चित्त विषयी है उदाहरण के लिए जब ध्वनि तरंगे हमारे कानों पर पड़ती है, दबाव के परिवर्तन वैधुतिक लहरे उत्पन्न करते हैं, जो कानों से मस्तिष्क तक पहुँचती है। मस्तिष्क में ये विद्युत लहरे किस प्रकार मन में ध्वनि की गोचर अनुभूति में बदल जाती है ? यही बात अन्य संवेदनाओं पर भी लागू होती है। विज्ञान इस पहेली का कोई उत्तर नहीं दे पाता। विज्ञान अपने विषयी निष्पेक्षता के कारण इन पहेलियों की पहेली का उत्तर नहीं दे सकता। हमारे युग

के महान शरीर रचना शास्त्री सर चार्ल्स शैरीगटन ने कहा है - मस्तिष्क की परीक्षा ऊर्जा के रूप में नहीं की जा सकती। विचार भावनाएँ आदि की अवधारणा ऊर्जा (द्रव्य) के आधार पर। नहीं की जा सकती है। वे इससे बाहर की चीजें हैं। यानी वे प्राकृतिक विज्ञान से बाहर है। यह बात जीव विज्ञान के लिए एक प्रकार से असमंजसकारी है। प्राकृतिक विज्ञान ने जीवन को मूलत: पृथक परिघटना की कोटि में रखकर उसका चरम सीमा तक अध्ययन किया है ... जीवित और मृत के बीच और कोई मूल वैज्ञानिक अन्तर नहीं है... लेकिन हमारे मानसिक अनुभवों को किसी भी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा दर्ज नहीं किया जा सकता। ...इस प्रकार चित्त (चेतन) हमारे स्थूल संसार में एक भारी भूत की तरह चला जाता है। अदृश्य अस्पृश्य अमूर्त, यह कोई साकार चीज नहीं है। यह कोई "चीज" ही नहीं है ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा उसकी पुष्टि नहीं होती और कभी हो भी नहीं सकती।

भौतिकी में नोबूल पुरस्कार विजेता तथा नयी भौतिकी के एक जन्मदाता है ई०पी० विग्नर। जिन्होंने कहा है - कोई भी नाप उस समय तक पूरी नहीं होती जब तक उसका परिणाम हमारी चेतना में प्रविष्ट नहीं होता। यह अन्तिम चरण उस समय सम्पन्न होता है - जबकि अन्तिम मापक उपकरण के और हमारी चेतना को सीधा प्रभावित करने वाली चीज के बीच संबंध स्थापित हो जाता है। यह अन्तिम चरण हमारे वर्तमान ज्ञान के लिए अभी रहस्यों से घिरा है। और अब तक क्वाण्टम यांत्रिकी (आधुनिक भौतिकी) या अन्य किसी भी सिद्धान्त के अधीन इसके संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता है।

विज्ञान विषयी निरपेक्ष है। लेकिन यह भी सत्य है कि विज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। आप हम विज्ञान की इस विषयी निरपेक्षता को ही विज्ञान का पर्याय मानते हैं। विज्ञान का बहुत विस्तार हुआ है और आगे हो रहा है। परमाणु जीन उस परमाणु कणों तथा दूर की आकाश गंगाओं की खोज हुई है। कल मस्तिष्क के रहस्य भी खुल सकते हैं। ऐसा लगता है कि शीघ्र ही किसी दिन हर चीज अपने में समेट लेगा, लेकिन "मैं" का क्या होगा ?

प्रकृति के वैज्ञानिक विवरण - जिसमें मानव की है - मे "उद्देश्य का कोई स्थान नहीं है।" किस लक्ष्य के लिए ? खगोल विद्या हमें तारों के बारे में बहुत कुछ बतलाती है, लेकिन इस प्रश्न का कि तारो का क्या उद्देश्य है ? उसकी ओर से यही उत्तर हो सकता है कि कोई उद्देश्य नहीं। खगोल विद्या में या प्राकृतिक विज्ञान में इससे इतर कोई उत्तर निरर्थक होगा।

प्राकृतिक विज्ञान से विषयी का अर्थात् "मैं" का बहिष्कार सम्पूर्ण है। प्राकृतिक विज्ञान में "आत्म" नैतिक सत्य, प्रेम, सुन्दरता, तथा ईश्वर का कोई

स्थान नहीं है। विज्ञान का आधार तथा शक्ति इसकी विषयी निरपेक्षता है। विज्ञान का विषयी निरपेक्ष जाति तथा विषयी व्यक्ति का अनुभव जगत ये दो सर्वथा भिन्न संसार प्रतीत होते हैं। विज्ञान के संसार में हर वस्तु के लिए स्थान है, पर मानव के लिए कोई स्थान नहीं है। यह बड़ी निराशाजनक बात है बल्कि खींज पैदा करने वाली बात है। विज्ञान की या टेक्नालाजी की सफलताओं से प्रभावित लोग इस विश्वास की ओर झुकते हैं कि "जो विज्ञान में नहीं है वह है ही नहीं। उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। पर यह संकट हमारा ही बनाया हुआ है। यह हमारे ही भुलक्कड़ पन के कारण विज्ञान की विषयी निरपेक्षता इसी में है कि हम इसमें से विषयी को निकाल देते है। आज के पाश्चात्य मनुष्य के संकट की जड़े इसी भ्रान्त धारणा में है कि विज्ञान जिसके बारे में नहीं बतला सकता जो विज्ञान की परिधि में नहीं आता वह अनिवार्य रूप से विज्ञान के विरूद्ध है। और इसलिये उसका कोई अस्तित्व नहीं है। आज पहचानने की आवश्यकता है कि वस्तु सत्ता (रिएलिटी) के एक नहीं अनेक पहलू हैं, विज्ञान एक पहलू है। वस्तु सत्ता के विभिन्न पहलू एक दूसरे के पूरक है। परस्पर विरोधी नहीं।

स्वामी केशवानन्द थोड़ा रूककर आगे कहने लगे वैज्ञानिक तथा नैतिक सत्यों की द्रव्य और चित्त देह और आत्मा की परस्पर पूरकता की अवहेलना हमें व्यक्तित्व नाश तथा जीवन के अमानवीय कारण की ओर ले जा सकती है। सर्वोत्तम वैज्ञानिक कार्य विज्ञान में तथा मानव में चरम आस्था के बिना सम्भव नहीं है। यह एक नैतिक गुण है। एक ही व्यक्ति एक साथ ही बौद्धिक क्षेत्र में महान और आध्यात्मिक क्षेत्र में बौना हो - इसमें कोई अन्तर्विरोध नहीं है। यद्यपि वास्तविक जीवन में ऐसी सम्भावना कम है। जब आइस्टीन से उसके गम्भीर रोग के दौरान पूछा गया कि क्या वे मृत्यु से डरते है ? तब उन्होंने उत्तर दिया था - मैं सभी जीवित चीजों के साथ ऐसी एकात्मकता का अनुभव करता हूँ कि मेरे लिये यह बात कोई अर्थ नहीं रखती कि व्यक्ति कहाँ शुरू होता है और कहाँ समाप्त होता है ? " उन्होंने यह भी कहा कि "संसार में ऐसा कुछ नहीं है - जिसे मैं क्षण भर में त्याग नहीं दे सकता। आइस्टाइन की नैतिक मान्यता गान्धी के कितनी निकट है ?

आन्तरिक जगत की वास्तविकता का खण्डन नहीं किया जा सकता। हिसेलउड ने कहा है - आन्तरिक जगत की वास्तविकता का प्रत्यारण्यान आस पास की सम्पूर्ण सत्ता को एकदम अस्वीकार करने के समान है। उसकी अर्थवत्ता को कम करना जीवन के लक्ष्य को ही गिराना है और उसे प्राकृतिक चयन के उत्पाद की संज्ञा देकर उड़ा देना निरा तर्काभास है।

एक अन्य भौतिक शास्त्री नायमान ने क्वाण्टम यांत्रिकी की स्थापनाओं के सिद्धान्तों में चेतना (चित्त) के योग का समावेश किया है। उन्होंने अनुमान किया कि तथाकथित "तरंग पिटक" का हल निकालने के लिए चेतना से अन्त: क्रिया आवश्यक है। इस विचार की अनेक लोगों ने कटु आलोचना की है। विषयी सापेक्ष प्रेक्षण के बारे में नायमान की उक्ति हमारी दिलचस्पी का विषय है। वह कहते हैं - विषयी प्रेक्षण एक नई सत्ता है - जो भौतिक परिमण्डल में सापेक्ष है लेकिन उसके बराबर नहीं की जा सकती। वस्तुत: विषयी के प्रेक्षण हमें व्यक्ति के बौद्धिक आभ्यन्तर जीवन में ले जाता है। जो स्वभावत: प्रेक्षणातीत हैं। हमें संसार को दो भागों में बाँटना चाहिए - एक प्रेक्षित प्राणी दूसरा प्रेक्षण करने वाला। पहले में हम सारी भौतिक प्रक्रियाओं का अनुशरण कर सकते हैं। कम से कम सिद्धान्त के रूप में। दूसरे में यह बात अर्थ हीन है। दोनों के बीच की सीमा रेखा बहुत कुछ तदर्थ ही है। यह सीमा वास्तविक प्रेक्षण के शरीर के भीतर मनमाने ढंग से ले जायी जा सकती है। यही बात मनो भौतिक समानान्तर वाद के सिद्धान्त का सार है। लेकिन इससे इस तथ्य में कोई परिवर्तन नहीं आता कि हर विधि में सीमा - शरीर और चित्त के बीच कही रखनी अवश्य होगी।

प्राणी के संबंधी में हम जितना जानते है वह बहुत अधिक तो नहीं है - लेकिन जितना हम जानते है उससे हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि मानव शरीर एक यंत्र है। मेरा शरीर एक यंत्र है। लेकिन "मै" इसकी गति विधियों को नियंत्रित करता है। अन्य कोई धारणा अस्वीकार्य अनुचित होगी।

चित्त तथा द्रव्य की पूरकता चाहे हमें कितनी ही आश्चर्यजनक लगे, इसकी हम अवहेलना नहीं कर सकते। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें अपनी शक्तिशाली प्रयोग विधियों से इसकी खोज करनी चाहिए। देखना होगा - पूरकता क्या है ? उदाहरणतया यदि चित्त ऊर्जा नहीं है तो दो चित्तों के बीच सीधा संचार हो सकता है। और किसी भी ऊर्जा नियम के उल्लंघन के आधार पर इसे ठुकराया नहीं जा सकता।

चित्त शरीर समस्या सदा से जीवित है। हमें विज्ञान के आगे विकास की प्रतीक्षा करनी होगी सम्भवत: हजारों वर्ष तक तब जाकर हम द्रव्य जीवन तथा आत्मा के जटिल ताने बाने का एक विस्तृत चित्र प्रस्तुत कर सकेंगे। और इस साहसपूर्ण कार्य को मानव किस प्रकार झेल सकेगा। सिवाय जीवात्मा तथा परमात्मा की परस्पर पूरकता में आस्था के आधार पर।

रहस्यमयी साधिका दिव्यमाया

यह मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि दिव्यमाया का व्यक्तित्व अत्यन्त रहस्यमय लगा था मुझे। उनके आकर्षक व्यक्तित्व में कौन सा रहस्य छिपा था यह नहीं बतला सकता मैं। आकाश की ओर शून्य में घंटो अपलक निहारा करती थी वे। सदैव मौन रहना उनकी आदत थी शायद। कभी कदा मेरी ओर इस तरह घूम कर देखती कि सारा शरीर सिहर उठता मेरी एक बारगी।

सांझ होते ही पूरे आश्रम में गहरी नीरवता छा जाती थी। आश्रम के लोग अपनी-अपनी साधना के सागर में डूब जाते थे आकण्ठ, मैं क्या करता ? मुझे एक छोटी-सी पथरीली कोठरी दे दी गयी थी। उसी में चुपचाप लेटा रहता था। फिर कब नींद लग जाती, पता ही न चलता था।

उस रात भी हमेशा की तरह गहरी निस्तब्धा बिखरी हुई थी आश्रम के स्याह वातावरण में। और मैं भी हमेशा की तरह अपनी सीलन भरी पथरीली कोठरी में लेटा हुआ चिन्तन मनन कर रहा था। और उसी समय गहन अन्धकार में डूबी हुई मेरी कोठरी सहसा हल्के से प्रकाश में भर उठी एक बारगी। चौंक कर उठ बैठा मैं। देखा दरवाजे पर खड़ी थी दिव्य माया मौन शान्त और निर्विकार। वह हल्का प्रकाश उन्ही के शरीर से प्रस्फुटित हो रहा था। अपलक निहार रही थी वह मेरी ओर। कुछ क्षण बाद मन्द स्वर में बोली वह - तुम तिब्बत जाने का विचार रखते हो न।

सिर हिलाकर मैंने कहा - "हाँ।"

दिव्यमाया पूर्ववत् मन्द स्वर में आगे बोली - तुम्हारे चित्त में जो आध्यात्मिक चेतना जागृत हुई है और योग तंत्र के प्रति जो आकर्षक उत्पन्न हुआ है। उसका कारण अतिशय महत्व का है। उसके मूल में पूर्व जन्म का संस्कार और महाशक्ति का अनुग्रह ही समझना चाहिए।

"मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता "माँ" - मैंने कहा - मैं यह भी नहीं जानता कि कौन से संस्कार के वशीभूत होकर मैं चल पड़ा हूँ - इस सुनसान मार्ग पर एकाकी। मेरे जीवन में इतनी अविश्वसनीय घटना क्यों घटी। इतने रहस्यमय और गुप्त रूप से रहने और विचरण करने वाले योगी साधक और साधिकाओं से मेरा सम्पर्क क्यों हुआ ? यह नहीं जानता मैं और यह भी नहीं जानता कि सूक्ष्म शरीर धारी उच्च कोटि की आत्मा में मेरी ओर क्यों आकृष्ट होती हैं ? मुझसे स्वयं संबंध स्थापित क्यों करती हैं ? इनका और ऐसे ही और प्रश्नों का उत्तर मेरे पास नही है। कोई समाधान नहीं है। समझ में नहीं आता कुछ माँ।" क्या करूं ?

मेरी बात सुनकर हल्की सी मुस्करायी वह, फिर बोली - यदि तुमको अपने इन प्रश्नों का उत्तर मिल जाय तो तुम न संसार के योग्य रह जाओगें और न संसार ही तुम्हारे योग्य रह जायेगा। तुम्हारा अपना जीवन शाश्वत हो जायेगा और जिसके परिणाम स्वरूप अवरूद्ध हो जाएगी तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति।

फिर थोड़ा रूककर आगे बोली दिव्य माया - तुमसे अधिक बाते नहीं करूँगी। बस इतना कहने आयी हूँ कि तिब्बत की हिम भूमि में अनेक योग तांत्रिक मठ है, जिनमें कई गुप्त और अत्यन्त रहस्यमय है और उन्ही गुप्त और रहस्यमय मठों में एक मठ है चक्रेश्वरी मठ। समझ गये न। लद्दाख से चक्रेश्वरी मठ जाने का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। सभी उस मार्ग से परिचित नहीं है। तुम पहले हेमिस मठ जाना। वहाँ तुम्हारी भेंट डुप्पा लामा से होगी। मेरा नाम उनसे लेना। वे तुम्हारी सहायता करेंगे और अपने साथ चक्रेश्वरी मठ भी ले जायेंगे। क्योंकि उस पवित्र मठ में तुम्हारा जाना आवश्यक है।

क्यों ? मैंने आकुल होकर पूछा।

इसलिए कि चक्रेश्वरी मठ में मेरा पूर्व शरीर विद्यमान है।

ऐ! क्या कहा आपने ? आपका .... श... शरीर... मेरे वाक्य को पूरा न होने दिया दिव्यमाया ने - बीच में ही बोल पड़ी - मैंने पूर्व पार्थिव शरीर को उसी मठ में छोड़ रखा है पिछले अस्सी साल से।

फिर यह किसका शरीर है - सहज भाव से पूछा मैने ?

एक विष कन्या का- मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखती हुई उत्तर दिया उस रहस्यमयी योगिनी ने।

विषकन्या। समझा नहीं मैंने।

हाँ। यह विषकन्या का शरीर है यह। अपने गुरूदेव की आज्ञा से इस शरीर में प्रवेश करना पड़ा मुझे।

हे भगवान। क्या कह रही है, यह रहस्यमयी योगिनी ? विश्वास नहीं हो रहा था उनकी बात पर मुझे। मुँह बाये उनकी ओर देखने लगा मैं।

शायद मेरे मन के भाव को समझ गयी वह। बोली इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? अविश्वसनीय भी नहीं है। योग-तंत्र की साधना एक ही जन्म में पूरी नहीं होती। कई-कई जन्म लग जाते हैं पूरी होने में। इसलिए उच्च कोटि के योगीगण अपनी साधना की पूर्णता के लिए शरीरोपरान्त पुनः जन्म लेने की दृष्टि से गर्भ की खोज करते हैं और जब उनकी आत्मा के अनुकूल योग्य गर्भ उपलब्ध नहीं होता तो उस स्थिति में किसी की मृत काया में प्रवेश कर जाते हैं। और फिर उसी काया के माध्यम से अपनी आगे की साधना यात्रा शुरू करते हैं। वैसा

ही मैने भी किया। पूर्व शरीर के कमजोर शिथिल और जर-जर हो जाने के कारण मुझे उसका त्याग करना पड़ा। शरीर छूटने के बाद मैं काफी समय तक योग्य गर्भ की खोज में इधर उधर भटकती रही और फिर विवश होकर एक युवती के मृत शरीर को स्वीकार करना पड़ा मुझे। सर्प के काटने से उसकी मृत्यु हई थी। परिवार के लोगों ने उसके शव को परम्परा के अनुसार नदी में प्रवाहित कर दिया था। सर्प विष से भरे हुए लोगों के ब्रह्माण्ड में प्रसुप्त अवस्था में प्राण की स्थिति बनी रहती है। इसलिये लोग शीघ्र नहीं मरते। काफी समय लगता है उन्हें मरने में। इसलिए उस युवती के शरीर में प्रवेश करने में अधिक कठिनाई नहीं हुई (परकाया प्रवेश के संबंध में विस्तार से पढ़े परलोक विज्ञान ले. अरूण कुमार शर्मा) मुझे बाद में पता चला कि वह मृत युवती स्वयं विष कन्या थी।

विषकन्या।

हाँ। विषकन्या। उसे जन्म से ही भयंकर सर्पो का विष दिया जाता था। जब वह सोलह साल की हुई, तब तक उसका सारा शरीर विषमय हो चुका था।

ऐसा क्यों हुआ उस युवती के साथ थोड़ा व्यग्र होकर पूछा मैंने ?

बड़ी ही रहस्यमयी और बड़ी ही अविश्वनीय कथा है उसकी। समय आने पर तुमकों सब कुछ मालूम हो जायेगा। मालूम होना आवश्यक भी है, इसलिए कि कभी तुम भी रहे हो उस युवती की जीवन कथा का एक महत्वपूर्ण अंग।

क्या कह रही हैं आप ?

मेरे कथन में कहीं कोई शंका या भ्रम नहीं है। परकाया प्रवेश करते ही सारी कथा मालूम हो गई मुझे उस युवती की। इसके अतिरिक्त तुम्हारे विषय में भी सब कुछ जान समझ गयी मैं। तुम्हारी प्रतीक्षा थी मुझे। एक न एक दिन तुम यहाँ आओगें - इससे परिचित थी मैं। मेरे पास समय का अभाव है। अब मैं इस शरीर का भी त्याग कर काशी में जन्म लूँगी। ऐसा प्रतीत होता है कि तुमसे मेरी भेंट अवश्य होगी काशी में। तुम तो मुझे पहचान न सकोगे लेकिन तुमकों मैं अवश्य पहचान लूँगी। अन्त में मुझे इतना ही कहना है कि चक्रेश्वरी मठ में मेरी पूर्व काया को भू समाधि दी जाने वाली है। उस समय तुमको वहां उपस्थित रहना है। इस कार्य में डुप्पा लामा सहयोग देंगे तुम्हें। जब तक यह काया भूमिगत न होगी तब तक मैं गर्भ में प्रवेश न कर सकूँगी। मेरे लिए काशी में योग्य गर्भ का निर्माण होने ही वाला है। इसलिए अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती मैं। तुम यहाँ से शीघ्र से शीघ्र चले जाओ।

भौचक्का सा मुँह बाये सब सुनता रहा मैं। कुछ बोला न गया औन न तो कुछ कहा ही गया मुझसे। अचानक मेरी पथरीली कोठरी स्याह अन्धकार में डूब गई। दिव्य माया का अस्तित्व तिरोहित हो चुका था।

दिव्य माया ने जो कुछ कहा था। क्या वह सब सच था ? उनके एक एक शब्द पर काफी गहरायी से विचार कर रहा था मैं। लेकिन कुछ समझ में नहीं आ रहा था। पूरी रात नींद न आयी मुझे। करवट बदलता रहा बराबर। विष कन्या कौन थी ? और दिव्य माया से काशी में मेरी भेट कब और कैसे किस रूप में होगी ? यह एक अलग कथा है जिसकी चर्चा मैं आगे करूँगा।

काशी से लद्दाख की ओर

घर परिवार से दूर हुए कई महीने हो गये थे। फिर पढ़ाई लिखाई भी पूरी करनी थी अपनी। इसलिए काशी लौट आना पड़ा मुझे। लेकिन दिव्य माया और उनके रहस्यमय व्यक्तित्व को भूल न पाया था मैं। उस रहस्यमयी योगिनी के एक एक शब्द मेरे कान में बराबर गूंजते रहते थे। शायद मेरी तिब्बत यात्रा की प्रेरणा वे भी थे। आखिर रहा न गया मुझसे। एक दिन निकल ही पड़ा किसी को बिना बताये मैं। पूरे एक साल बाद यह मेरी दूसरी हिमयात्रा थी। पहले श्री नगर से लेह पहुँचा मैं। श्रीनगर से लेह की दूरी ४३४ कि०मी० हैं मार्ग अत्यधिक दुर्गम है। बीच में जांग दर्रा पड़ता है। जिसकी ऊँचाई लगभग ४.११५ मीटर है। यह संसार का दूसरा ठण्डा स्थान है। मार्च-अप्रैल के महीने में भी इतनी ठण्ड की, एक बार सोचा कहाँ आ फँसे ?

बिल्कुल पथरीला वीरान पर्वतीय क्षेत्र। जब बर्फ गिरती है तो गिरती ही रहती है। फिर ४.५ मीटर ऊँची बर्फ से ढंकी सफेदी ही सफेदी। ८० कि०मी० प्रति घण्टा चलने वाली तेज हवाएँ। ऐसे में कब और कहाँ विकट स्थिति उत्पन्न हो जाए कुछ पता नहीं चलता। इन सब के बावजूद भी प्रकृति दृश्य अनुपम है। प्रकृति मन को मोह लेती है। हिमानी श्रेणियों के आकर्षण दृश्य, बादलों के झुण्ड पर अठखेलियाँ करती सूर्य की सुनहरी किरणें, चारों ओर सांय सांय करता हुआ निस्तब्ध वातावरण। कम्बल ओढ़े और फिर सिर झुकाए अपने आप में लीन धीरे-धीरे आगे बढ़ता जा रहा था मैं। अचानक सिन्धु नदी दिखलायी दी। लगा कि कोई अजगर रेंग रहा हो। हिमाच्छादित पर्वत शिखर नीले आकाश में स्वच्छन्द विचरते बादलों के झुण्ड - बस इनकी ही प्रभुता थी पूरे जांग दर्रा में। रास्ते में कुछ बौद्ध भिक्षु मिल गए। वे लेह के निवासी थे। उन सब की कृपा से लेह में विश्राम करने के लिए एक बौद्ध मठ में स्थान मिल गया मुझे। उस समय लेह की आबादी ४, ५ सौ से अधिक नहीं थी। बाजार भी काफी छोटा था। लेकिन अब सुना है कि लेह की आबादी ६, १० हजार के लगभग है। और बाजार भी काफी विस्तृत हो गया है। लेह में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम जिस वस्तु

पर दृष्टि पड़ती है वह है एक विशाल प्राचीन महल। काफी ऊँचाई पर है वह महल और उसमें नौ खण्ड हैं। महल का इतिहास तिमिराच्छन्न है। लेकिन आज भी वह प्राचीन महल सारे लेह में मनोरम दृश्य को शासित-सा करता प्रतीत होता है। पूरे महल में चक्कर लगाया मैंने। कुछ कमरों में प्राचीन चित्रकला का संग्रह देखने को मिला मुझे। एक लामा ने बतलाया कि शंकराचार्य से प्रताड़ित होकर कभी किसी समय कापालिक सम्प्रदाय के दुघर्ष साधकों ने इस महल को अपनी साधना स्थलि बनाई थी। आज भी कुछ कापालिक लेह में निवास करते हैं।

शान्ति का प्रदेश लद्दाख

लद्दाख को शान्ति का प्रदेश कहा जाता है। बौद्ध मठों से भरा है पूरा लद्दाख। लामाओं के बाहुल्य के कारण वहाँ का जीवन सम्पूर्ण रूप से बौद्ध मय है।

वहाँ की भाषा में लद्दाख का अर्थ है खण्डित चन्द्रमा का प्रदेश। यह शायद इसलिए कि कही भी खड़े होकर वहाँ के भूखण्ड को देखे तो पर्वतीय प्रदेश इस प्रकार आभास होता है, मानों चाँद को आधा काट कर रख दिया गया हो। अर्ध गोलाकार पर्वत श्रेणी सामने नाना रंगों में चित्रकारी सदृश्य प्रतीत होती है। रात में तारे आकाश में झूलते लटकते से लगते हैं। बर्फीली धवल पहाड़ियों पर से फिसलती पूर्णमासी के चाँद की चाँदनी और उससे उत्पन्न प्रकाश पुन्ज दिन हो जाने का भ्रम पैदा कर देता है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि सूर्य के चढ़ाव-उतार के साथ-साथ, स्थान-स्थान पर पर्वत श्रेणियों और बर्फो के रंग बदलते रहते है कभी लाल कभी हरा और कभी बैगनी या पीला। बदलते हुए रंगों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

हेमिस का बौद्ध मठ

लेह से हेमिस का बौद्ध मठ ५० कि.मी. की दूरी पर है और वह ५० कि. मी. का सकरा और पथरीला मार्ग सिन्धु नदी की बलखाती धवल धारा के बगल से होकर गया है। संयोग से हेमिस मठ के एक लामा से परिचय हो गया मेरा। कभी वह सारनाथ (वाराणसी) में रह चुका था। इसलिए वह काशी से भली भाँति परिचित था और हिन्दी भी अच्छी तरह बोल लेता था। उसका नाम था तनछेन।

चारों ओर से पर्वत शिखरों से घिरे हेंमिस मठ का स्वर्ण कलश सूर्य की रश्मियों से चमकता हुआ दूर से ही दिख गया मुझे। तन्छेन के साथ जब मैं

उस प्राचीन बौद्ध मठ के भीतर पहुँचा तो उस समय वहाँ के लामा लोग प्रार्थना में लीन थे। उनके शान्त और निर्विकार चेहरे देखते ही बनते थे। मठ के वातावरण में पूर्ण शान्ति का साम्राज्य था। बड़ा ही मनोस्पर्शी वातावरण था इसमें सन्देह नहीं।

मठ में स्थापित भगवान बुद्ध की विशाल स्वर्ण प्रतिमा बिल्कुल सजीव लगी मुझे। यह कहना अनावश्यक न होगा कि हेमिस मठ वहाँ के मठों में सबसे अधिक सम्पत्तिशाली मठो में गिना जाता है। बहुमूल्य पत्थर रत्न प्राचीनतम ग्रन्थ अस्त्र-शस्त्र प्रत्येक वर्ष बाद यात्रियों के दर्शनार्थ खोले जाते है। सारे लद्दाख और तिब्बत के लोग उन्हें देखने के लिए आते हैं।

डुप्पा लामा से साक्षात्कार

तीन दिन की प्रतीक्षा के बाद तन्छेन लामा के सहयोग से डुप्पा लामा से भेंट हुई मेरी। मठ के प्रधान लामा थे डुप्पा लामा। उनकी आयु अधिक थी। स्वर्णासन पर शान्त गम्भीर भाव से बैठे हुए थे वह। बौद्ध पद्धति से उनको प्रणाम किया मैंने और सामने बैठ गया। फिर दिव्य माया की सारी बाते विस्तार से सुना डाली उन्हें। सिर झुकाए सब सुनते रहे वह। फिर धीमे स्वर में बोले - चक्रेश्वरी मठ का मार्ग वास्तव में अत्यधिक दुर्गम है। मार्ग में नाना प्रकार के कष्टों और अनेक प्रकार के विघ्नों का सामना करना पड़ेगा तुमको। क्या इसके लिए तैयार हो तुम ?

''हाँ''। सिर हिलाकर मैंने कहा। फिर बोला जिस परम रहस्य से परिचित होने के लिए मैंने संकल्प किया है उसके समक्ष सभी प्रकार के कष्ट सभी प्रकार के विघ्न और सभी प्रकार की बाधायें नगण्य हैं मेरे लिए।

यह सुनकर एक बार स्थिर और गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा डुप्पा लामा ने मगर बोले नहीं।

चक्रेश्वरी मठ की यात्रा

कहने की आवश्यकता नहीं एक सप्ताह बाद डुप्पा लामा और उनके छः शिष्यों के साथ चक्रेश्वरी मठ की यात्रा पर निकल पड़ा मैं।

पाठकों को ज्ञात होना चाहिए कि पूर्व में चीन की सीमा से पश्चिम में लद्दाख तक फैली हुई जो विस्तृत हिम भूमि है वह तिब्बत प्रदेश है। जैसा कि प्रारम्भ में मै बतला चुका हूँ- तिब्बत चारों ओर ऊँचे-ऊँचे हिमाच्छादित पर्वतों से घिरा और समुद्र तल से औसतन १२ से १५ हजार फुट से भी अधिक ऊँचा है। इसी से वहाँ ठण्ड अधिक पड़ती है। सर्दी की अधिकता तथा अधिक ऊँचाई

से वायु का पतला होने के कारण वहाँ पेड़ पौधों और वनस्पतियों का पूर्णतया अभाव है इसलिए पक्षी भी नहीं दिखायी पड़ते। सर्दी का अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि मई जून के महीने में भी वहाँ बराबर बर्फ गिरती है। जाड़े के समय का कहना ही क्या ? हिमालय का विस्तृत और विशाल दीवार मार्ग में अवरोधक होने से भारतीय समुद्र से चली हुई मेघ मालाएँ स्वच्छन्दता पूर्वक यहाँ नहीं पहुँच पाती। और यही कारण है कि यहाँ वर्षा नाम मात्र की ही होती है। बर्फ ही अधिक गिरती है।

चक्रेश्वरी मठ

लद्दाख से ल्हासा तक की यात्रा अधिक कष्टदायिनी प्रतीत नहीं हुई मुझे। लेकिन उसके आगे की यात्रा अति भयानक और जीवन मरण दायिनी थी मेरे लिए। पूरे बीस दिन लग गये ल्हासा से चक्रेश्वरी मठ पहुँचने में।

हिमाच्छादित पर्वत शिखरों से घिरा चक्रेश्वरी मठ दूर से ही दिख गया मुझे। काले स्याह पत्थरों से बना वह विशाल मठ लगभग एक हजार वर्ष पुराना होने के बावजूद भी बाकी भगिमा से सिर ऊँचा किए खड़ा था। मठ के चारों ओर काफी ऊँची पथरीली दीवारें थीं। लेकिन भीतर जाने का मार्ग एक ही था। जब मैं डुप्पालामा के साथ वहाँ पहुँचा उस समय सांझ की स्याही बिखर चुकी थी उस हिम प्रदेश में। मठ में प्रवेश करते ही बाहरी जगत से अनजाना लोक सा प्रतीत हुआ वह मुझे। मठ के वातावरण में घोर निस्तब्धता व्याप्त थी। चारों ओर सांय सांय हो रहा था। एक विचित्र सी उदासी और एक अबूझ सी खिन्नता छायी हुई थी मठ में।

मठ दो मंजिला था। और था सात भागों में विभक्त। पहले तीन भागों में दर्शन काव्य व्याकरण ज्योतिष वैद्यक योग तंत्रमंत्र आदि से संबंधित हजारों की संख्या में पाण्डुलिपियों और हस्तलिखित पुस्तकों का अपूर्व संग्रह था। सैकड़ों की संख्या में दुर्लभ तैल चित्र भी थे। उन महत्वपूर्ण दुर्लभ संग्रहो में कुछ ऐसी भी पाण्डुलिपियाँ और हस्तलिखित पुस्तकें थी - जो सोने की स्याही से लिखी हुई थी और लगभग हजार वर्ष पुरानी थी।

चौथा और पाँचवा भाग साधना कक्ष था। जिनमें योग और तंत्र की साधनाएँ की जाती थी। छठा भाग अध्ययन और अध्यापन का कक्ष था। जिस में योग तंत्र ज्योतिष, आयुर्वेद दर्शन आदि शास्त्रों का लोग अध्ययन करते थे और आचार्यगण योग पात्रों को साधना में प्रशिक्षित करते थे। इसी प्रकार अन्तिम सातवा भाग में - जिसे मठ के निवासी गुप्त प्रकोष्ट कहते थे। उन लोगों के मृत शरीर

रखे हुए थे - जिनकी आत्मायें परकाया प्रवेश द्वारा अथवा कहीं जन्म लेकर साधना कर रही होती हैं।

मठ के विशाल प्रागंण में भगवान तथागत की आदमकद स्वर्ण प्रतिमा एक ऊँची वेदी पर स्थापित थी। मठ के प्रधान आचार्य थे लामा दोर्जे-रन्-पा। दोर्जे-रन्-पा का मठ में वही स्थान प्राप्त था जो तिब्बत में दलाई लामा को प्राप्त हे। उनकी अवस्था अधिक थी लेकिन शरीर से पूर्ण स्वस्थ थे वह।

मठ के आचार्य का स्वर्ण मण्डित कक्ष

डुप्पा लामा और उनके शिष्यों का सत्कार और सम्मान तो हुआ ही उन लोगों के साथ मेरा भी हुआ। सत्तू मक्खन और ज्वार की रोटी खाने के लिए मुझे भी दी गयी। भोजन और विश्राम के बाद आचार्य से मिला मैं। उनका कक्ष बिल्कुल एकान्त में था और स्वर्ण मण्डित था। दीवार छत और फर्श सभी सोने के थे और उनपर पाली भाषा में भगवान बुद्ध के वचन खुदे हुए थे। कक्ष के एक ओर स्वर्ण पात्र में धूप जल रहा था जिसकी सुवासित गन्ध से पूरा कक्ष भरा हुआ था। कक्ष में जिस विशेषता का मैने अनुभव किया वह थी शान्ति जो मेरी आत्मा की गहराई में प्रवेश कर रही थी।

एक ऊँचे आसन पर ध्यानस्थ बैठे हुए थे आचार्य। उनके उज्जवल स्वस्थ शरीर पर पीत रेशमी वस्त्र था - जो चादर की तरह लिपटा हुआ था। मेरे साथ डुप्पा लामा भी थे। स्वर्ण मण्डित भूमि पर कम्बल बिछा हुआ था। डुप्पा लामा उसी पर बैठ गये और मुझे भी बैठने का संकेत किया उन्होंने।

मैंने देखा उस समय साधना के तेज से दप् दप् कर रहा था आचार्य का सौम्य शान्त और निर्विकार मुख मण्डल।

लगभग दो घण्टे बाद आचार्य की समाधि भंग हुई। और उनके नेत्र खुले। फिर तीक्ष्ण दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखा उन्होंने। हे भगवान। कितना प्रखर तेज था उस दृष्टि में। सारा शरीर रोमान्चित हो उठा मेरा।

डुप्पा लामा ने तिब्बती भाषा में पहले मेरा परिचय दिया और फिर मेरे आने का उद्देश्य बतलाया और यह भी बतलाया कि कुछ समय तक मठ में रहना भी चाहता हूँ मैं।

आचार्य ने भी सिर हिलाकर अत्यन्त गम्भीर स्वर में किसी अज्ञात और अपरिचित भाषा में कुछ कहा, जिसे समझ न सका मैं। बाद में डुप्पालामा ने बतलाया कि आचार्य ने दिव्य माया के मृत पार्थिव शरीर को भूमिगत होने के पश्चात् छः मास तक चक्रेश्वरी मठ में रहने का आदेश दिया है मुझे।

यह सुनकर प्रसन्न हो उठा मैं। छः मास का समय बहुत था मेरे लिए। आचार्य का आदेश एक प्रकार से वरदान ही था। एक अतिमहत्वपूर्ण वरदान। अपने उद्‌देश्य को लेकर मैने जो सपने देखे थे वे सच होते प्रतीत हुए। और जो कल्पना की थी वे भी साकार होती-सी प्रतीत हुई

ज्योतिष और योग-तंत्र

आचार्य के पट्‌ट शिष्य और मठ के उत्तराधिकारी थे लामा गुंचुग वर्तन। गुचुंग वर्तन् युवक थे और वे अत्यन्त मेघावी। अल्पकाल में ही ज्योतिष, योग, तंत्र, आयुर्वेद आदि गम्भीर शास्त्रों का गहन अध्ययन कर लिया था उन्होंने। योग और तंत्र की गुप्त साधनाओं में भी उनकी अच्छी गति थी। जब उनको यह ज्ञात हुआ कि मैं दिव्यमाया से परिचित हूँ और उन्हीं के संकेत पर मठ में आया हूँ तो अति प्रसन्न हुए महाशय। उनके साथ प्रायः नित्य सत्संग होने लगा। एक दिन प्रसंगवश अचानक प्रश्न कर बैठा में गुचुंग वर्तन से - ज्योतिष के संबंध में आप का क्या विचार है ?

मेरा प्रश्न सुनकर कुछ देर तक तो गुंचुग वर्तन मौन रहे फिर बोले, ज्योतिष सम्भवतः सबसे प्राचीन विषय है और एक अर्थ में सबसे अधिक तिरष्कृत विषय भी। सबसे प्राचीन इसलिए कि मानव इतिहास की जितनी खोज बीन हो सकी। उसमें ऐसा कोई भी समय नहीं था, जब ज्योतिष का अस्तित्व न रहा हो। आप को ज्ञात होना चाहिए कि जीसस से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व सुमेर में मिले हुए हड्‌डी के अवशेषों पर ज्योतिष के चित्र अंकित है। लेकिन भारत में तो बात और भी पुरानी है। ऋग्वेद में पंचानवे हजार वर्ष पूर्व ग्रह नक्षत्रों की जैसी स्थिति थी उसका उल्लेख है।

आपका कहना ठीक है - मैने कहा निश्चय ही इस तथ्य के आधार पर लोक मान्य तिलक ने यह निश्चित किया था कि वेद इतने हजार वर्ष से अधिक प्राचीन तो निश्चित ही होने चाहिए। इसलिए कि वेद में यदि पंचानवे हजार वर्ष पहले जैसी ग्रह नक्षत्रों की स्थिति थी - उसका उल्लेख है तो वह उल्लेख इतना प्राचीन तो होगा ही। क्योंकि उस समय जो स्थिति थी नक्षत्रों की उसे बाद में जानने का कोई भी उपाय नहीं था। अब अवश्य हमारे पास ऐसे वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो सके है कि हम जान सके कि अतीत में ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति कब कैसे रही होगी। लामा वर्तन बोले - ज्योतिष की सर्वाधिक गहरी मान्यताएँ भारत में पैदा हुई।

आपके विचार से सहमत हूँ मै।''

लामा वर्त्न आगे बोले - सच तो यह है, कि ज्योतिष के कारण ही गणित का जन्म हुआ। ज्योतिष गणना के लिए ही सर्वप्रथम गणित शास्त्र का आविर्भाव हुआ। इसलिए इसे स्वीकार करना पड़ेगा कि एक से नौ तक की जो गणना है वह भारतीय है। वे भारत में पैदा हुए और धीरे-धीरे विश्व की समस्त भाषाओं में फैल गये। जिसे आप अंग्रेजी में "नाइन" कहते हैं वह संस्कृत में नवम् का ही रूपान्तरण है। जिसे अंग्रेजी में आप "एट" कहते हैं वह संस्कृत के अष्ट का ही रूपान्तरण है। सारांश यह कि एक से लेकर नौ तक की संख्या जगत की समस्त भाषाओं के गणित शास्त्र में प्रचलित है। कहने की आवश्यकता नहीं यह प्रचलन भारतीय ज्योतिषय के प्रभाव से ही हुआ है।

थोड़ा रूककर लामा वर्तन आगे बोले - भारत में ज्योतिष की पहली किरण सुमेर की सभ्यता से पहुँची। सुमेर वासियों ने सबसे पहले ईसा से लगभग छः हजार वर्ष पूर्व पश्चिम के जगत के लिए ज्योतिष का द्वार खोला। सुमेर वासियों ने सबसे पहले नक्षत्रों के वैज्ञानिक अध्ययन की आधारशिलाएँ रखी। उन्होंने सात सौ फिट ऊँचे, कई मीनार बनाएँ और उन मीनारों पर सुमेर के पुरोहित चौबीस घण्टे आकाश का अध्ययन करते थे बैठ कर। सुमेर के तत्व विदों को इस गहरे सूत्र का पता चल गया था कि मानव जगत में जो भी घटित होता है उसका मूल श्रोत एक मात्र नक्षत्र ही होते हैं।

आज का बुद्धिजीवि वर्ग यह समझता है कि ज्योतिष विकसित विज्ञान नहीं है। प्रारम्भ तो उसका विकास हुआ और फिर वह विकास समाप्त हो गया। लेकिन मेरे विचार से स्थिति विपरीत है। ज्योतिष किसी अत्यन्त विकसित सभ्यता के द्वारा अविकसित विज्ञान है लेकिन फिर भी वह सभ्यता खो गयी और हमारे हाथ में जयोतिष के अधूरे सूत्र रह गये।

लामा वर्तन बोले - ज्योतिष कोई नया विज्ञान नहीं है जिसे विकसित होना है, बल्कि कोई विज्ञान है जो पूरी तरह कभी किसी काल में विकसित हुआ था और फिर जिस सभ्यता ने उसे विकसित किया वह खो गयी। और सभ्यताएँ रोज आती है और खो जाती है। फिर उनके द्वारा विकसित चीजें भी अपने मौलिक आधार खो देती है। सूत्र भूल जाते हैं। उनकी आधार शिलाएँ भी खो जाती हैं।

लामा वर्तन थोड़ा रूक कर आगे बोले-शर्माजी। भविष्य बिल्कुल अनिश्चित नहीं है। हमारा ज्ञान ही अनिश्चित है। हमारे अज्ञान की मात्रा अधिक है। इसी कारण हमें भविष्य में कुछ दिखायी नहीं पड़ता। अज्ञान भारी होने से हम अंधे है। भविष्य का हमें कुछ भी दिखलायी नहीं पड़ता। नही दिखलायी पड़ता है, इसीलिए हम कहते है कि निश्चित नहीं है। लेकिन न भविष्य में देखने की प्रक्रिया

है। तात्पर्य यह कि ज्योतिष केवल इतनी ही बात नहीं है कि ग्रह नक्षत्र क्या कहते हैं? ? उनकी गणना क्या कहती है ? यह तो केवल ज्योतिषं का एक आयाम है। फिर भविष्य को जानने के लिए इसके अतिरिक्त भी कई आयाम हैं। जैसे हाथ पैर की रेखाएं माथें की रेखाएं आदि। इनके अतिरिक्त मनुष्य के शरीर में छिपे हुए "चक्र" हैं उन सब चक्रों की अपनी-अपनी गति है अपना-अपना संवेदन है। योग में इन चक्रों का भारी महत्व है। इसलिए कि उन चक्रों में मनुष्य के हजारों वर्ष का अतीत्त संस्कार-बीज रूप में विद्यमान है। उन संस्कार बीज के रूप में विद्यमान स्मृतियों को खोलने के लिए योग और तंत्र में तो अनेक विधियाँ हैं। रही ज्योतिष की बात। आपको शर्माजी ज्ञात होना चाहिए कि ज्योतिष की जो गहनतम पकड़ है वह है मनुष्य के अतीत को उघाड़ने की। क्योंकि मनुष्य के अतीत का अगर पूरा-पूरा पता चल जाए तो उसके पूरे भविष्य का पता अपने आप चल सकता है। क्योंकि उसका भविष्य उसके अतीत से जन्मेगा। मनुष्य के भविष्य को, मनुष्य के अतीत को जाने बिना, नहीं जाना जा सकता - ज्योतिष का यह सिद्धान्त है।

लामा वर्तन ने कहा ज्योतिष केवल नक्षत्रों का ही अध्ययन नहीं है। वह तो है ही। वह अध्ययन तो हम करेंगे ही, साथ ही ज्योतिष और अलग-अलग आयामों से भविष्य को टटोलने की चेष्टा है कि वह भविष्य कैसे पकड़ा जा सके। उसे पकड़ने के लिए अतीत को पकड़ना आवश्यक है। और अतीत को पकड़ने के लिए दो साधन है, एक बाह्य और दूसरा आन्तर। ग्रह-नक्षत्र राशि जन्म कुण्डली रेखाएं आदि बाह्य साधन है। अन्तर साधन है वे केन्द्र जिन्हें योग शास्त्र "चक्र" कहता है। कहने की आवश्यकता नहीं, दीर्घ काल से ज्योतिष के आचार्य बाह्य साधनो पर ही अटके हुए है। जिसके कारण ज्योतिष की गहरायी खो गई और चक्रो पर किसी का ध्यान नहीं गया।

आपको ज्ञात होना चाहिए, ज्योतिष मूलत: भविष्य की तलाश है और विज्ञान मूलत: अतीत और वर्तमान की खोज है। विज्ञान इस बात की खोज है कि आज क्या है ? कारण क्या है? और ज्योतिष इस बात की खोज है कि कल क्या होगा? परिणाम क्या होगा ?

इन दोनों प्रश्नों का सही-सही और सटीक उत्तर चक्रो से ही प्राप्त हो सकता है। और किसी साधन से नहीं। मैंने कहा - इससे स्पष्ट है कि ज्योतिष का योग से गहरा संबंध है।

है ही। इसमें क्या सन्देह। योग से है ही तंत्र से भी है। आगे आपको इसका पता चल जायेगा आपको ज्ञात होना चाहिए कि चक्रो की कुल संख्या सात है।

जिस मन से आप परिचित है-वह उतना गहरा नहीं है - जितनी गहराई में वे सातों चक्र है शरीर में। वास्तव में वे चक्र विभिन्न शक्तियों के केन्द्र है और वे शक्तियाँ उन्हें उपलब्ध होती है सप्त ऋषियों से। सप्त ऋषि मण्डल में सात तारे है और प्रत्येक तारे का संबंध एक चक्र से है। लेकिन सभी चक्र चैतन्य और क्रियाशील नहीं है। सात में केवल प्रथम तीन चक्र ही चैतन्य और क्रियाशील है और वह भी पूर्ण रूप से नहीं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि वे तीनों चक्र जहाँ एक और जागृत स्वप्न और सुषुप्ति आत्मा की इन तीन, अवस्थाओं से संबंधित है वही दूसरी ओर वे तीनों में हमारे अतीत की स्मृतियों का भण्डार भी भरा हुआ है। यदि तीनों चक्रों को पूर्ण रूप से चैतन्य और क्रियाशील कर सके तो हमारे सामने पिछले एक ही जन्म का नहीं बल्कि सैकड़ों जन्म के अतीत का भण्डार खुल सकता है। फिर हमें अपना जीवन एक लम्बा इतिहास सा लगेगा। एक लम्बीश्रृंखला सी लगेगी। हमने किस जन्म में क्या किया है और क्या-क्या भोगा है - सब चल चित्र की तरह सामने आ जाएगा। विज्ञान इसी को टाइम ट्रैक कहता है और हमारा अध्यात्म कहता है "जातिस्मरण"।

जिस प्रकार तीन चक्रों में अतीत की अद्‌भुत सम्पदा भरी पड़ी है, उसी प्रकार चौथे चक्र में भविष्य का भी भण्डार भरा पड़ा है। तीन के खुलने के बाद चौथा चक्र अपने आप खुल जाता है और तब हम अपने सुदूर भविष्य को उसी प्रकार देख सकते हैं जैसे किसी ऊँची मीनार पर चढ़ कर बहुत दूर तक का अवलोकन करते हैं। एक ही साथ कई दृश्यों को देखते हैं।

अचानक न जाने कैसे फिर अंकों और नक्षत्रों का प्रसंग आ गया। लामा वर्तन बोले - एक से नौ तक की संख्या और ० "शून्य" इनका भारी महत्व है तंत्र में। समझ ले कि तंत्र और उसकी साधनाओं की मूल भित्ति है वे। ६ तक की संख्या स्त्री तत्व प्रधान है और ० शून्य है पुरुष तत्व प्रधान। तंत्र यह मान कर चलता है कि सृष्टि के पूर्व कुछ भी न था। शून्य बिन्दु था। बिन्दु को आप "शून्य" मत समझे। बिन्दु का अर्थ शून्य नहीं है अपितु पूर्ण है। ज्योतिष शास्त्र भी शून्य को पूर्ण कहता है। तंत्र के अनुसार ० शून्य अक्षर ब्रह्म का पहला उन्मुग्ध रूप है। उसी से १ से ६ तक की संख्या क्रमशः उत्पन्न हुई है। ० शून्य के बाद '६ की प्रधानता है। वास्तविक संख्या "६" के समाप्त होने पर ० शून्य के साथ १ का संबंध जुड़ जाता है वही १० है पुनः ११, १२, क्रम १६ पर समाप्ति है। यदि इस क्रम से देखा जय तो ६ पर ही संख्या का अवसान होता है। यही कारण है कि ६ संख्या को छोड़कर १,२,३, आदि किसी भी संख्या का संकलन फल समान नहीं आता ६ में से १ को अलग कीजिए, ८ सं० को जोडिए १८

होगा। २ से ७, ३ में ६, ४, में ५, ५ में ४, ६ में ३, ७ में २, ८ में १ इस क्रम से अन्त में ९ ही बचेगा। ९ + ९ = १८ होते है। १+८ = ९ है। ९ मिलाने पर २७ है। २+७ = ९ है। और ९ मिलाने पर ३६ है। ३+६ = ९ है। यही क्रम आगे समझिए। अन्त में ९ ही शेष रह जाता है। १०वां वही पूर्ण रूप है। तंत्र के अनुसार वही महाकाल रूप विश्वातीत परात्पर है।

२७ और ३६ है। २७ नक्षत्र और ३६ तत्व ज्योतिष के विषय है। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्ममाण्ड के मूल में ३६ तत्व है और उन तत्वों का नियंत्रण २७ नक्षत्रों द्वारा होता है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म के साथ अपनी विशेष क्षमताओं की सूचना देता है इसलिए कि वह विशेष नक्षत्रों की व्यवस्था से जन्म होता है। वह अपने जन्म होने के लिए विशेष नक्षत्रों का चयन करता है। वह जैसा होना चाहता है अथवा वह जैसा होना चाह सकता है जो उसके होने की सम्भावना थी जो उसके पिछले जन्मों का पूरा का पूरा रूप था जो उसकी संयोजित अर्जित चेतना थी। वह उसके चयन किए गए नक्षत्र में ही पैदा होगी। हर व्यक्ति हर आने वाला जीवन पर जोर देता है अपनी घड़ी के लिए अपने समय के लिए। वह अपनी घड़ी में अपने समय में ही पैदा होना चाहता है। अपनी ही घड़ी में अपने ही समय में गर्भाधान भी लेना चाहता है। दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

इसे मैं और भी स्पष्ट कर देता हूँ - लामा वर्तन बोले ज्योतिषियों का कहना है कि एक बच्चा प्रातः छः बजे पैदा होता है इसलिए उस समय नक्षत्रों की जो स्थिति होती है उससे वह प्रभावित होता है। लेकिन मेरी खोज और मेरा विचार कुछ और है। मूलतः भिन्न है किसी बच्चे के छः बजे पैदा होन के कारण ग्रह-नक्षत्र उस पर प्रभाव डालते हैं, ऐसा नहीं वह जिस प्रकार के प्रभावों के बीच पैदा होना चाहता है उस घड़ी और नक्षत्र को ही अपने जन्म के लिए चुनता है। यह तो बिल्कुल भिन्न बात है - मैंने कहा।

है ही भिन्न। बच्चा जब पैदा हो रहा है, तब वह अपने ग्रह नक्षत्र और घड़ी चुनता है कि कब उसे पैदा होना है। वह अपने गर्भ धारण का भी चयन करता है। प्रत्येक आत्मा अपना गर्भ चुनती है कि कब उसे गर्भ स्वीकार करना है - किस नक्षत्र में और किस समय किस क्षण-क्षण को छोटी घटना मत समझिए। क्षण का अर्थ है पूरा विश्व उस क्षण में कैसा है और उस क्षण में पूरा विश्व किस तरह की सम्भावनाओं का द्वार खोलता है।

अब "१०" की संख्या को लीजिए। इसमें "१" का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। वास्तव में "१" बिन्दु का ही अभिव्यक्त रूप है। "१" अपने स्वतंत्र अस्तित्व में बिन्दु है। वही "९" अपने स्वतंत्र अस्तित्व में विराट है। बिन्दु और विराट

एक पुरुष तत्व का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा करता प्रकृति तत्व का। पुरुष और प्रकृति-यही दोनों तंत्र की शिव शक्ति है वेदान्त की ब्रह्म माया है और यही दोनों नर-नारी के रूप में भी अभिव्यक्ति होते हैं। तंत्र के अनुसार "नर" परमेश्वर है और नारी है परमेश्वरी। इन्ही दोनों के संयोग से सृष्टि क्रम चलता है।

जिस प्रकार आगम शास्त्र "६" को विराट कहता है वैसे ही "१०" को "अहम्" कहता है। आप को ज्ञात हो कि "१" से "१०" तक के सभी अंकाक्षर अपने आप में अलग-अलग स्वतंत्र शक्ति स्वरूप है। इस अंकाक्षर शक्ति को "तंत्र" "महाविद्या" कहता है। प्रकारान्त में यह महाविद्या दस सृष्टि विद्या है। तंत्र की सगुणोपासना भूमि में दस महा विद्या को काली तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, वंगलामुखी, मांतगी और कमला कहते हैं। तंत्र की समस्त रजोगुणी और तमोगुणी साधना और उपासनाओं का आधार में दस महा विधाएँ ही है। मारण, मोहन, उच्चाटन आदि षट कर्म इन्ही के द्वारा सम्पन्न होते हैं।

"६" संख्या का ज्योतिष तंत्र में भारी महत्व है। वास्तव में "६" यंत्र विज्ञान की मूल भित्ति है। अंकाक्षरो और वर्णाक्षरों की अपनी-अपनी स्व शक्ति है। अंकाक्षरों की "स्वशक्ति" तंत्र की दश महाविद्या है। इसी प्रकार वर्णाक्षरो को महाशक्ति को मातृ का शक्ति कहते हैं। ये दोनो प्रकार की महा शक्तियों तंत्र की मूल मित्ति है।

मनुष्य का ग्रह नक्षत्रों से आन्तरिक संबंध

सारे ग्रह नक्षत्रों की अदृश्य किरणों का जाल सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में फैला हुआ है। उनमें से निरन्तर प्रवाहित होने वाली ऊर्जायें बराबर पृथ्वी से टकराती रहती है जिन्हे पृथ्वी अपने आप में समाहित करती रहती है। पृथ्वी की कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो उनसे प्रभावित न हो। एक बात आपको मैं बतला दूँ - वह यह कि प्रत्येक ग्रह नक्षत्रों की अपनी-अपनी गति है। और उसी गति के फलस्वरूप उनमे एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय ध्वनि उत्पन्न होती है। प्रत्येक ग्रह नक्षत्रों की अपनी-अपनी स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं जो दूसरो से भिन्न है। उन ध्वनियों से मनुष्य का गहरा आन्तरिक संबंध है। जब जिस ग्रह नक्षत्र की स्थिति में शिशु जन्म लेता है उसी समय तत्काल उनकी ध्वनियों से शिशु के मन, प्राण, वाक और हृदय का सम्बन्ध अपने आप जुड़ जाता है। कुछ विचारकों का यह भी कहना है कि उन ध्वनियों के प्रभाव में ही शिशु जन्म लेता है और वह प्रभाव मृत्यु पर्यन्त बना रहता है। मृत्यु भी प्रायः उसी ग्रह नक्षत्र की स्थिति

में होती है - जिस ग्रह नक्षत्र की स्थिति में उसका जन्म हुआ होता है। नक्षत्र-चरण में भले ही अन्तर सम्भव है।

मनुष्य की अस्वस्थता का मूल कारण

सबसे रहस्य की बात तो यह है कि जब-जब मनुष्य और उससे संबंधित ध्वनियों के तालमेल के बीच प्राकृतिक व्यवधान उत्पन्न होता है तब तब मुनष्य अस्वस्थ होता है। प्राकृतिक व्यवधान के कारण तारतम्य टूट जाता है और वह तारतम्य तभी जुड़ता है जब उचित औषधियों का सेवन किया जाता है। इसीलिए जड़ी बूटियों का संबंध ग्रह नक्षत्रों से बतलाया गया है। जिन ग्रह-नक्षत्रों की ध्वनियों से तारतम्य जुड़ा रहता है उन्ही ग्रह-नक्षत्रों से संबंधित जड़ी बूटियों के सेवन से मनुष्य स्वास्थ्य लाभ भी करता है। आयुर्वेद में इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। प्रत्येक जड़ी बूटी की अपनी तांत्रिक क्रिया और उससे संबंधित यंत्र भी है। आयुर्वेद के जिस भाग का संबंध तंत्र मंत्र से है उस भाग को औषधि तंत्र कहते है। औषधि तंत्र का विषय अति गहन और विस्तृत है इसमें सन्देह नहीं (इस विषय पर हम स्वतंत्र रूपसे विचार करेगें - लेखक)।

देव शक्ति के तीन रूप

वैदिक, पौराणिक और तांत्रिक ये तीन प्रकार के देवता है। और तीनों प्रकार के देवताओं की शक्ति के तीन रूप है प्रतिमा (मूर्ति) रूप, मंत्र रूप और यंत्र रूप। इन तीनों रूप के समन्वय को लेकर की गई देवोपासना सफल और सिद्ध होती है।

तीनों रूप में यंत्र रूप का कलियुग में अपना विशिष्ट महत्व है। यंत्र रूप मुख्यत: तीन प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार में केवल अंकाक्षरों का संयोजन होता है। दूसरे प्रकार में बीजाक्षरों का और तीसरे प्रकार में अंकाक्षर और बीजाक्षर दोनों का संयोजन होता है। कोई कोई विशिष्ट यंत्र में केवल रेखाकृति ही होती है। जैसे श्रीयंत्र आदि।

राशि चक्र और पंचदशी यंत्र

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है - १ से ६ तक की संख्या मुख्य है। नक्षत्रों की संख्या २७ है। प्रत्येक अंक से तीन-तीन नक्षत्रों का उर्जात्मक संबंध है। वैसे तो अंकाक्षर वाले यंत्र कई प्रकार के है। लेकिन उनमें पंच दशी यंत्र का अपना अलग महत्व और महिमा है। क्योंकि वह विशेष रूप से बारहो राशि से संबंधित है।

पंचदशी यंत्र में नौ कोष्टक होते हैं। प्रत्येक कोष्टक में एक से नौ तक की संख्या प्रतिष्ठित है। प्रतिष्ठित संख्या को आप जिस ओर से जोड़े उसका फल पन्द्रह ही आयेगा इसीलिए उसे पंचदशी यंत्र कहते हैं। यह उसकी पहली विशेषता है। दूसरी विशेषता यह है कि उसमें प्रतिष्ठित १ से ६ तक की संख्याओं का ऊर्जात्म संबंध २७ नक्षत्रों से तथा उनसे संबंधित राशियों से भी है। इसलिए अन्य यंत्रों के बजाय पंचदशी यंत्र का प्रभाव तत्काल पड़ता है।

चार प्रकार का पंचदशी यंत्र

२७ नक्षत्रों को बारह भागों में विभक्त किया गया है। ज्योतिष में उन्ही भागों को द्वादश राशि कहते हैं। प्रत्येक राशि में ३ से चार नक्षत्र होते हैं। प्रत्येक नक्षत्र से संबंधित असंख्य तारे हैं। राशि के आधार पर पंचदशी यंत्र चार प्रकार का है। प्रत्येक यंत्र का संबंध तीन राशियों से है। जिसकी जो राशि है उस राशि से संबंधित यंत्र उसे फल देगा। नक्षत्रों की तरह राशियों की भी अपनी ध्वनि तरंगे और उनका वर्चस्व है। जिनसे पृथ्वी पर के समस्त प्राणी बराबर प्रभावित होते रहते हैं। यहाँ तक कि प्रकृति में विकृति भी उन्हीं के प्रभाव के कारण होती है उत्पन्न। जिसके फलस्वरूप अकाल दुर्भिक्ष, महामारी, प्रलयकारी विभीषिका आदि विनाशकारी तत्व उत्पन्न होते हैं।

१

८	१	६
३	५	७
४	६	२

२

६	७	२
१	५	६
८	३	४

३

२	७	६
६	५	१
४	३	८

४

४	६	२
३	५	७
८	१	६

मेष, वृष, मिथुन, 'कर्क, सिंह, कन्या', 'तुला, वृश्चिक, धनु', 'मकर, कुम्भ और मीन इन द्वादश राशियों का एक और स्वरूप हैं और वह है तांत्रिक स्वरूप। जिससे बहुत कम लोग परिचित है।

लामा वर्तन थोड़ी देर रूककर आगे बोले - हम सभी कास्मिक पदार्थो से निर्मित है। यह वैज्ञानिक सत्य है। हमारी देह में रासायनिक एवं भौतिक पदार्थो का मिश्रण है। इसीलिए जितने भी सौर मण्डल में ग्रह नक्षत्र पिण्ड है उनकी कास्मिक शक्तियाँ प्रत्येक क्षण हमे प्रभावित करती रहती है। हमारी पृथ्वी भी एक कास्मिक पिण्ड ही है। यही पिण्ड हमें केन्द्र की ओर आकर्षित करता है। और सौर मण्डल में सबसे बड़ा और विशाल कास्मिक पिण्ड सूर्य है जो हमे उष्णता प्रदान करता है। इसी तरह चन्द्रमा का कास्मिक पिण्ड हमारे अस्तित्व को प्रभावित करता है।

जिस व्यक्ति की जो राशि होती है और जो नक्षत्र होता है उसका कास्मिक प्रभाव जीवन में जब और जिस अवस्था में विशेष रूप से पड़ता है उस समय उस व्यक्ति का भाग्य परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन सुनिश्चित है (विस्तृत अध्ययन के लिए पढ़े राशि चक्र और नक्षत्र विज्ञान)।

वह रहस्यमय ज्योतिष यंत्र

प्रत्येक नक्षत्र पिण्डों, प्रत्येक ग्रह पिण्डों और प्रत्येक राशि चक्रों की अपनी-अपनी कास्मिक शक्तियाँ है। और है उनकी ध्वनि तरंगों से उत्पन्न विद्युत चुम्बकीय ऊर्जाएँ। समझ गए न आप लामा वर्तन बोले - आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व इस मठ में एक महात्मा पधारे थे। नाम था पूर्णप्रज्ञ। पूर्णप्रज्ञ उच्च कोटि के योगी तो थे ही इसके अतिरिक्त ज्योतिष विज्ञान के भी मर्मज्ञ थे वह। इस मठ में सुना है पूरे चालिस वर्ष रहे थे महाशय और इस अवधि में उन कास्मिक शक्तियों और उन विद्युत चुम्बकीय ऊर्जाओं के अदृश्य और रहस्यमय प्रभावों से संचालित एक अति विलक्षण और चमत्कारी "ज्योतिष यंत्र" का निर्माण कर सभी को आश्चर्य चकित कर दिया था उन्होंने।

क्या वह यंत्र अभी है - मैंने पूछा ?

हाँ। है, और वह अभी भी अपना काम पूर्ववत् कर रहा है।

क्या मैं उसे देख सकता हूँ?

क्यों नहीं। आइए चलिए मेरे साथ।

लामा वर्तन मुझे जिस स्थान पर ले गए वह काफी लम्बा चौड़ा प्रांगण था, जिसके चारो ओर ऊँची ऊँची दीवारे थी। और उन दीवारों में बड़े बड़े झरोखे बने हुए थे। आंगन के ठीक बीच में स्फटिक पत्थर का तीन फुट ऊँचा और पाँच फुट लम्बा चौड़ा चौकोर चबुतरा बना हुआ था। जिसके चारों ओर की दीवारों पर चारों प्रकार के पन्द्रहा यंत्र उत्कीर्ण थे। चबुतरे के ऊपर चार फुट का गोलाकार स्फटिक पत्थर का ही एक थाल रखा हुआ था। जिसमें एक प्रकार का द्रव भरा था। जो बिल्कुल गाढ़ा और चमकीला था। थाल के चारों ओर गोलाकार रूप में किसी अज्ञात धातु की चौड़ी पट्टी लगी हुई थी, जिस पर १२ राशियों और २७ नक्षत्रों के चित्र और नाम उत्कीर्ण थे क्रम से मैंने ध्यान से देखा- राशि ऊपर थी और उसके नीचे संबंधित नक्षत्र थे। थाल के बिल्कुल बीच में लगभग एक फुट ऊँची अष्ट धातु की एक खूंटी थी। जिसके सिरे पर एक चमकदार शलाका जिसकी लम्बाई चार फुट थी कभी द्रुत गति से तो कभी मन्द गति से राशियों और नक्षत्रों पर घूम रही थी। उस स्वचालित शलाका को देखकर आश्चर्यचकित हो उठा मैं। जिज्ञासा और कौतुहल के भाव से भर उठा मेरा मन।

लामा वर्तन ने बतलाया कि यह शलाका पूरे साठ साल से इसी प्रकार राशियों और नक्षत्रों पर भ्रमण कर रही है। इस ज्योतिष यंत्र पर किसी भी प्रकार के वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता। उस महात्मा ने किस उद्देश्य से इस अनोखे ज्योतिष यंत्र का निर्माण किया था यह तो बतलाया नहीं जा सकता, लेकिन इसकी एक विशेषता से हम सब परिचित हैं।

कौन सी विशेषता है ?

आपकी कौन सी राशि है और आपका जन्म किस नक्षत्र में हुआ है - यह यंत्र तत्काल बता देगा आपको।

अच्छा, वह कैसे ?

आप सांस रोककर इस यंत्र के सामने तटस्थभाव से खड़े हो जाइए। फिर देखिए... वैसा ही किया मैने। सांस रोक कर खड़ा हो गया मैं यंत्र के सामने । देखा, भ्रमण करती हुई शलाका एकाएक ठहर गई मेरी राशि और जन्म नक्षत्र के चित्र पर। आश्चर्य चकित रह गया मैं। फिर जैसे ही मैने सांस छोड़ी और सामने से हटा वैसे ही शलाका फिर पूर्ववत भ्रमण करने लग गयी।

❖

५

अध्याय

चक्रेश्वरी मठ का गुप्त प्रकोष्ठ

कहने की आवश्यकता नहीं, लामा वर्तन योग, तंत्र, मंत्र, ज्योतिष और आयुर्वेद के निष्णात् विद्वान तो थे ही इसके अतिरिक्त आध्यात्म शास्त्र पर भी पूर्ण अधिकार था उनका, इसमें सन्देह नहीं।

एक दिन प्रसंग वश मठ के गुप्त प्रकोष्ठ की चर्चा करते हुए उसे देखने की इच्छा प्रकट की मैंने उनसे। पहले तो उन्होंने यह कहकर टालने का प्रयत्न किया कि बाहरी किसी भी व्यक्ति को उस प्रकोष्ठ में प्रवेश की आज्ञा नहीं हैं, लेकिन मेरे बार-बार अनुरोध करने पर अन्ततः दिखाने के लिए तैयार हो गए वह। तलघर जैसा था वह गुप्त प्रकोष्ठ। नीचे जाने के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ थी धूल से पटी पड़ी। लगा जैसे वर्षों से वहाँ कोई आया गया न हो। पूरी तरह अंधकार में डूबा हुआ था सारा प्रकोष्ठ। प्रकाश की व्यवस्था हुई। अपने पीछे आने का संकेत कर धीरे- धीरे सीढ़ियाँ उतरने लगे लामा वर्तन। मैंने भी उनका अनुसरण किया। सीढ़ियाँ उतरने के बाद एक काफी लम्बा चौड़ा हालनुमा कमरा मिला मुझे। जिसके मध्य में पत्थर की कई ऊँची-ऊँची वेदियाँ बनी हुई थी। जिनमे कुछ को छोड़कर अन्य सभी पर एक एक लामा योगी पद्मासन की मुद्रा में समाधीस्थ बैठे हुए थे। जिनके शरीर पर मांस नाम मात्र का नही था। सभी हड्डियों के ढाँचे मात्र थे। सारा शरीर सनसना उठा मेरा एक बारगी। लगा जैसे किसी कब्र में आ गया हूँ मैं। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उस रहस्यमय प्रकोष्ठ के रहस्यमय वातावरण में एक विचित्र प्रकार की सुगन्ध बिखरी हुई थी। जो मन और प्राण को सम्मोहित सी कर रही थी।

ध्यानपूर्वक देख रहा था मैं उन अस्थिमय लामा योगियों को, तभी लामा वर्तन का गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा मुझे, ये सभी योगी मृत समाधि में लीन हैं सम्भवतः दो अढ़ाई सौ वर्षों से।

यह सुनकर चौंक पड़ा मैं। सिर घुमा कर आश्चर्य से लामा वर्तन की ओर देखते हुए कौतूहल भरे स्वर में बोला 'ऐं'! क्या कहा आपने? समझा नहीं। यह मृत समाधि क्या है ?

मेरे प्रश्न के उत्तर में एक बार लामा वर्तन ने स्थिर दृष्टि से देखा मेरी ओर, फिर पूर्ववत् गम्भीर स्वर में बतलाने लगे योग तंत्र के अन्तर्गत पच्चीस प्रकार की समाधियाँ हैं, उन्हीं में से है एक मृत समाधि भी।

योग की रहस्यमयी मृत समाधि

सच पूछा जाय तो यह समाधि एक प्रकार की पूर्ण मृत्यु ही है, इसीलिए इसे मृत समाधि कहते हैं। मृत्यु और मृत समाधि में मात्र यही अन्तर है कि मृत समाधि की अवस्था में जागतिक चेतना बराबर बनी रहती है जबकि मृत्यु में इसका अभाव होता है।

जागतिक चेतना से आपका क्या तात्पर्य है?

जगत का बोध। मृत्यु में जगत का बोध समाप्त हो जाता है जबकि मृत समाधि में नहीं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जगत के साथ-साथ अपने पार्थिव शरीर का भी बोध बराबर बना रहता है योगी को।

थोड़ा रुककर लामा वर्तन आगे बोले मृत्यु और मृत समाधि में एक विशेष अन्तर यह भी है कि आत्मा का स्थूल शरीर से सीधा संबंध नहीं है। उसका सीधा संबंध होता है सूक्ष्म शरीर से और उसके माध्यम से होता है संबंध स्थूल शरीर से। नया पार्थिव शरीर आत्मा सूक्ष्म शरीर की सहायता से ही स्वीकार करती है और उसका त्याग भी सूक्ष्म शरीर की सहायता से ही करती है। स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच तादात्म्य बनाए रखने के लिए एक सूत्र होता है जिसे योग की भाषा में रजत रज्जु कहते हैं। वह चाँदी जैसा चमकीला और बाल से भी पतला सूत्र होता है वही दोनों शरीरों को एक दूसरे से मिलाए रहता है। वह सूत्र स्थूल शरीर की नाभि से संबंधित होता है। मृत्यु के समय वह रजत रज्जू टूट जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग हो जाता है और आत्मा उसे अपना वाहक बनाकर चल देती हैं और स्थूल शरीर मृत हो जाता है।

लेकिन जहाँ तक मृत समाधि का प्रश्न है। यह समाधि वही योगी ले सकता है जो अपने आत्म स्वरूप में स्थित है यानी जिसकी आत्मा अपने निज शरीर 'आत्मशरीर' में विद्यमान हैं।

आत्मशरीर द्वारा ब्रह्माण्ड भ्रमण

आप जिन जिन योगियों को यहाँ मृत समाधि की अवस्था में देख रहे हैं - वे अपने आत्मशरीर द्वारा पिछले दो सौ पचास वर्षों से ब्रह्माण्ड भ्रमण कर रहे हैं। जिनका एक मात्र उद्देश्य है-जिस सीमा तक उपलब्ध हो सके उस सीमा तक ब्रह्माण्ड के रहस्यों से परिचित होना, लोक लोकान्तरों का ज्ञान प्राप्त करना और उन दोनों के आश्रय से आध्यात्मिक उन्नति करना। और जब उनका उद्देश्य पूरा हो जाएगा और भ्रमण की अवधि भी पूरी हो जाएगी तो पुनः अपने-अपने पार्थिव शरीर में वे वापस लौटकर जीवित हो उठेंगे।

भ्रमण की अवधि पूरी नहीं हुई और उद्देश्य पूरा हो गया तो इस स्थिति में क्या होगा - मैंने पूछा?

योगियों का अपने उद्देश्य की पूर्ति ही एक मात्र लक्ष्य होता है। यदि अवधि के भीतर ही लक्ष्य पूरा हो गया तो उनका अपने पार्थिव शरीर में वापस लौटना ही लौटना है।

वैसे अवधि की सीमा क्या है?

तीन सौ वर्ष से चार हजार वर्ष तक लामावर्तन ने कहा, आप को यह समय सर्वाधिक प्रतीत हो रहा होगा लेकिन आपको ज्ञात होना चाहिए कि ब्रह्माण्ड में जितने भी परलौकिक जगत है वहाँ काल की गति कहीं मन्द है और कहीं है मन्द से मन्दतर। जिसे आप एक वर्ष मानते हैं पारलौकिक जगत में कहीं वह एक घंटे के समान है तो कहीं एक मिनट या एक क्षण के समान है। काल की गति ब्रह्माण्ड में सर्वत्र एक समान नहीं है। कहीं अति तीव्र है तो कहीं अति मन्द से भी मन्दतर। भौतिक जगत में काल की गति कुटिल हैं इसीलिए उसका प्रभाव अति तीव्रता से शरीर, मन और प्राण पर पड़ता है। इसी कारण अन्य लोक के प्राणियों के अपेक्षा मनुष्य की आयु बहुत ही कम है।

अदृश्य रूप से साधनारत योगीगण

लामा वर्तन विषय को बदलते हुए बोले आप को ज्ञात होना चाहिए कि तिब्बत और उसके आस पास के हिम प्रान्तों में सैकड़ों हजारों साल से अनेक योगी अदृश्य रूप से साधनारत हैं। उनका भी पार्थिव शरीर इसी प्रकार निर्जीव पड़ा हुआ है हिम प्रान्तों में, लेकिन उनकी आत्मा अपने आत्मशरीर द्वारा लोक लोकान्तरों में भ्रमण करते हुए आध्यात्मिक ज्ञान उपलब्ध करने में जुटी हुई है।

जो योगीगण हिम प्रान्तों में विद्यमान हैं वे क्या दिखलायी पड़ सकते हैं ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में लामा वर्तन ने बतलाया कि तिब्बत और उसके आसपास

के हिम प्रदेशों में कितने योगी और साधकगण होगें, यह तो निश्चित रूपसे बतलाया नहीं जा सकता, लेकिन जहाँ तक प्रश्न उनके पार्थिव शरीर का है वे अपने स्थानों पर रहते हुए भी अदृश्य हैं। चर्मचक्षु से परे हैं। साधारण जन उनके शरीर को देख नहीं सकते।

क्यों ?

इसलिए कि उनका शरीर मृत होते हुए भी रजत रज्जू के कारण मृत नहीं होता। अधिक समय तक एक ही स्थिति और एक ही अवस्था में उनके शरीर के रहने के फलस्वरूप वह प्राकृतिक रूप से चतुर्थ आयामी हो जाता है और यही कारण है कि अपने स्थान पर उनके शरीर को रहते हुए भी साधारण व्यक्ति उन्हें देख नहीं पाता। लेकिन कालान्तर में जब योगी अपने पार्थिव शरीर में लौटता हैं तो स्वयं अपने आप उसका पार्थिव शरीर तृतीय आयामी होकर प्रकट हो जाता है। इसके अन्दर क्या रहस्य है यह बतलाया नहीं जा सकता।

एक बात मेरी समझ में नहीं आयी वह यह कि इस प्रकोष्ठ में भी उसी प्रकार के योगियों के शरीर विद्यमान हैं और वह भी लगभग दो सौ पचास वर्षों से, फिर वे क्यों चर्म चक्षु से परे नहीं है? इसका क्या कारण है ? इनका क्यों नहीं चतुर्थ आयामी हो गया पार्थिव शरीर ?

मेरी बात सुनकर लामा वर्तन मुस्कराते हुए बोले आपका तर्क ठीक हैं लेकिन मैं इसका कारण जो बतलाऊँगा क्या आप उस पर विश्वाम करेंगे?

क्यों नहीं! बुद्धि को लेकर नहीं श्रद्धा और विश्वांस को लेकर चला हूँ मैं इस हिमयात्रा पर। बुद्धि को तो काशी में ही छोड़ आया हूँ मैं।

लामा वर्तन ने एक बार गम्भीर दृष्टि से मेरी ओर देखा और फिर कहने लगे इसके कई कारण हैं। पहला तो यही कि ये सभी मृत समाधीस्थ योगी इसी मठ के सदस्य हैं और इसी मठ में रहकर साधना भी की है उन्होंने। इसीलिए उनके शरीर को सुरक्षा की दृष्टि से तो रखा ही गया है इसके अतिरिक्त इसलिए भी रखा गया है कि यथा समय पार्थिव शरीर में वापस लौटने पर जहाँ संसार की यात्रा समाप्त की थी वहीं से पुनः अपनी जागातिक यात्रा शुरू कर सकें वह। दूसरा कारण यह भी है कि यह प्रकोष्ठ मंत्रपूत है। प्रकोष्ट के वातावरण में आपने एक अनर्वचनीय सुगन्ध का अनुभव किया होगा।

हाँ। अभी भी कर रहा हूँ, मैंने कहा। आपकी मनः शक्ति और प्राण शक्ति कुछ मात्रा में अधिक बढ़ गयी होगी, मेरी ओर देखते हुए लामा वर्तन बोले। जी हाँ। ठीक कहा आपने, मेरे मन में सोचने-विचारने की शक्ति भी बढ़ गयी है। और उसी के साथ जीवनी शक्ति भी, क्योंकि अपने आपमें अधिक उल्लास प्रफुल्लता और स्फूर्ति का अनुभव कर रहा हूँ मैं।

बिल्कुल ठीक कहा आपने लामावर्तन बोले, आपको ज्ञात होना चाहिए यह सब उसी सुगन्ध का परिणाम है जो मंत्र पूत होने के कारण स्वयं उत्पन्न हुआ है इस प्रकोष्ठ में। वास्तव में यह नैसर्गिक सुगन्ध है। सच पूछा जाय तो प्रकोष्ठ के मंत्र पूत होने तथा उससे उत्पन्न इस नैसर्गिक सुगन्ध के फलस्वरूप इन योगियों की पार्थिव काया त्रिआयामी बनी हुई है।

कुछ क्षण चुपचाप मौन साधे निर्मिनेष दृष्टि से योगियों की अस्थिकाया की ओर निहारता रहा मैं और फिर सिर घुमाकर लामा वर्तन से बोला एक जिज्ञासा और है मेरी।

क्या है ? व्यक्त करिए उसे। उसका भी समाधान हो जाएगा। लामावर्तन थोड़ा हँसकर बोले। आपके कथानानुसार पिछले दो सौ पचास वर्षो से इन योगियों की अस्थिकाया वेदियों पर पाषाणवत् बैठी हुई हैं बिल्कुल स्थिर भाव से। काया पर मांस का एक साधारण-सा टुकड़ा भी नहीं हैं। नस नाडियाँ भी कहीं दिखलायी नहीं दे रही है। सब हड्डी ही हड्डी हैं। प्राण संचालन का तो कोई प्रश्न ही नहीं हैं। एक प्रकार से तो इन सभी महात्माओं का शरीर कंकालवत् ही हैं। ऐसी स्थिति में यदि कभी भविष्य में इन लोगों की आत्मा वापस शरीर में लौटी भी तो उसे जीवनी शक्ति कहाँ से मिलेगी? जीवन को संचालित करने वाले सारे उपादान कैसे उपलब्ध होंगे... क्या इन कंकालो में ही आत्मा...।

मेरे वाक्य को पूरा न होने दिया लामा वर्तन ने। बीच में ही बोल पड़े- महाशय, लौकिक दृष्टि से आपका कहना अपने स्थान पर बिल्कुल सत्य है, लेकिन आपको ज्ञात होना चाहिए कि योगी समाज का संसार अलग है। वहाँ प्रकृति के वशीभूत कुछ भी नहीं है। इसीलिए सब कुछ सम्भव है। मनुष्य जिस सत्य की कल्पना भी नहीं कर सकता, वह सत्य वहाँ विद्यमान है। आपकी जिज्ञासा के समाधान में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आत्मा के आगमन के पूर्व इन सभी योगियों के शरीर पूर्ववत् हो जाएँगे। देखने वालों को ऐसा लगेगा कि ये लोग गहरी निद्रा से अभी-अभी जगे हैं। अब आप यह भी पूछ सकते हैं कि अपने आप शरीर कैसे पूर्ववत् हो जाएगा ? कैसे कंकाल में मांस चढ़ जाएगा ? कैसे नस नाड़ियाँ अपना अपना काम करने लगेंगी ? कैसे प्राणों का संचालन होने लगेगा और कैसे अपने आप जीवनी शक्ति उत्पन्न हो जाएगी ? इन तमाम प्रश्नों और जिज्ञासाओं का उत्तर मात्र एक ही है, और वह यह कि ये सब योग माया की लीला है - जो अपने आपमे अति रहस्य मय है और जिसे परमेश्वर के अलावा एक परम सिद्ध योगी ही जान समझ सकता है और कोई नहीं। आइए ऊपर चले यह कहकर लामा वर्तन खट्खट् कर सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। मैंने भी उनका

अनुशरण किया। कुछ अलौकिक और कुछ विचित्र सा लगा मुझे - सब कुछ देख सुनकर।

एक आकाशचारी योगी का दर्शन

चाँदनी रात थी। कमरे की खिड़की खोली। सामने सारे हिम प्रान्त पर दुधिया चाँदनी की सफेद मखमली चादर फैली हुई थी। निस्तब्ध वातावरण। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। धीरे-धीरे चल कर लामा वर्तन भी मेरे बगल में आकर खड़े हो गए। शायद रात आधी से अधिक गुजर चुकी थी। सुदूर अपलक निहार रहा था मैं और तभी मुझे ऐसा लगा मानो सुदूर आकाश में कोई मानवाकृति हवा के सहारे उड़ती हुई चली जा रही थी। सिर के लम्बे-लम्बे बाल हवा में बिखरे हुए थे उसके। पश्चिम से दक्षिण की ओर जा रहा थी वह मानवाकृति। भय मिश्रित दृष्टि से आश्चर्य चकित होकर देख रहा था मैं उस अविश्वसनीय दृश्य को। तभी लामा वर्तन का महीन किन्तु गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा मुझे-यह आकाशचारी योगी हैं। शून्य मार्ग से अपने गुरु से मिलकर अपने स्थान पर जा रहे हैं शायद! ऐसे योगियों का इस प्रान्त में अभाव नहीं है। आपका भाग्य था कि ऐसे आकाशचारी महात्मा का दर्शन लाभ हो गया अचानक आपको। वैसे दर्शन दुर्लभ है इनका।

फिर थोड़ा रुक कर लामावर्तन आगे बतलाने लगे आपकी इस चाँदनी रात में और निस्तब्ध वातावरण में दृष्टि जहाँ तक जा रही हैं, उसकी सीमा के अन्दर बिखरे हुए शिलाखण्डों पर अदृश्य भाव से न जाने कितने योगी साधक बैठे हुए होंगे समाधिस्थ, बतलाया नहीं जा सकता। बिरले ही किसी भाग्यवान को दर्शन होते हैं उनके।

उनकी आत्माएँ कहाँ होंगी और क्या कर रही होंगी मेरे इस प्रश्न के उत्तर में लामावर्तन बोले।

लौकिक ज्ञान पारलौकिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान

पहले आपको यह जानना आवश्यक है कि ज्ञान तीन प्रकार का है लौकिक ज्ञान जिसे सांसारिक ज्ञान अथवा भौतिक ज्ञान कहते हैं। दूसरा ज्ञान है पारलौकिक ज्ञान यानी भौतिक जगत से परे जो लोक-लोकान्तर अथवा जगत हैं उनसे संबंधित ज्ञान। तीसरा है आध्यात्मिक ज्ञान। जिसका संबंध आत्मा और उसके आन्तरिक स्वरूप से है।

प्रथम लौकिक ज्ञान का ही भण्डार इतना विशाल है कि मनुष्य हजारों जन्म लेकर भी उसे पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं कर सकता। हम एक जन्म में जितना जिस विषयों का अध्ययन किए होते हैं और ज्ञान प्राप्त किए होते हैं। वह उस विशाल भण्डार की एक बूँद के भी बराबर नहीं है। हम वर्तमान जन्म में जिस विषय का जिस सीमा तक ज्ञान प्राप्त किए रहते हैं, अगले जन्म में उससे आगे का ज्ञान प्राप्त करने के लिए संस्कार के अनुसार प्रकृति तो अपनी ओर से व्यवस्था कर देती है लेकिन नियति के अनुसार बदले हुए वातावरण, बदले हुए पर्यावरण और बदले हुए पारिवारिक जीवन के कारण हम किसी और ही ज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर चल पड़ते हैं। जिस पर चाहकर के भी पूर्ण सफलता नहीं मिलती। आत्मा को जो विषय अच्छा लगे, चित्त जिस विषय में एकाग्र हो और जिस विषय के अध्ययन में रुचि हो, समझिए वही विषय और वही ज्ञान हमारे पूर्व जन्म से संबंधित है जिसे अधूरा छोड़कर आए हैं हम।

रही पारलौकिक ज्ञान की बात। उसके संबंध में अब तक मानव समाज जितना जो कुछ जान समझ सका है वह सागर की एक बूद के समान है। सच पूछा जाए तो पारलौकिक विषय में जितना ज्ञान मनुष्य को होना चाहिए - वह नहीं है। जो है उसी को वह अपनी महान उपलब्धि समझ बैठा है। भारी भ्रम है यह।

जहाँ तक प्रश्न आध्यात्म ज्ञान का है, लगभग उसकी भी स्थिति ऐसी ही है। कहने की आवश्यकता नहीं आध्यात्मिक ज्ञान का भी सागर विशाल और असीम है। उसकी सीमा की कोई इयत्ता नहीं। सच तो यह हैं कि अपौरुषेय रूप में अब तक जितना जो कुछ आध्यात्मिक ज्ञान संसार में अवतरित हुआ है वह भी असीम और अथाह आध्यात्मिक ज्ञान के सागर की एक बूँद के ही समान समझा जाएगा। जिससे कोई विशेष आत्मिक लाभ नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के ज्ञान से पृथक है आध्यात्म ज्ञान। जो अपने आप में सर्वथा गूढ़ गोपनीय, और अति रहस्यमय है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि अध्यात्म ज्ञान का सारांश है परम ज्ञान। और परमज्ञान का सारांश है ब्रह्मज्ञान। लेकिन आध्यात्म ज्ञान का मार्ग तभी प्रशस्त होता है जब प्रथम दोनों ज्ञान में पारंगता उपलब्ध हो। अब आप ही बतलाईये शर्माजी। और ज्ञान की बात आप छोड़िए। लौकिक ज्ञान को पूर्ण रूपेण प्राप्त करने के लिए कितने जन्म लेने पड़ते हैं, एक दो नहीं, हजारों जन्म। तब कहीं जाकर लौकिक ज्ञान में पूर्णत्व उपलब्ध होता है। सिर हिलाकर मैंने कहा आपका कहना उचित है। जब लौकिक ज्ञान के लिए ही अन्त-हीन समय की आवश्यकता है तो अन्य दोनों ज्ञान के विषय में तो कल्पना करना ही कठिन है।

ज्ञानोपलब्धि के लिए तीनो शरीर का उपयोग

कठिन तो है, लामावर्तन बोले लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि अब तक न जाने कितने महान योगी हो चुके हैं जो परमज्ञान और ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध थे। अभी भी बहुत से ऐसी योगात्माएँ है जो परमज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान के मार्ग पर आरूढ़ हैं। निश्चय ही एक न एक दिन वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे इसमें सन्देह नहीं।

आपका कहना ठीक है, मैंने कहा - लेकिन उनके लिए यह सब सम्भव कैसे हुआ?

मेरी बात सुनकर लामावर्तन कुछ क्षण मौन रहे फिर बोले, समाधि द्वारा, समझे आप ! योग की पहली सबसे बड़ी उपलब्धि एक मात्र समाधि है।

स्थूल शरीर पर तंत्र हैं। उसकी अपनी सीमा है। वह कभी न स्वतंत्र हो सकता है और न तो उसकी सीमा ही बढ़ सकती है। लेकिन सूक्ष्म शरीर एक सीमा तक परतंत्र होते हुए भी स्वतंत्र और मुक्त है। उसकी अपनी पारलौकिक शक्ति भी है। और उसकी अपनी सीमा भी अधिक है। साथ ही साथ गति भी।

सूक्ष्म शरीर द्वारा लौकिक ज्ञान की प्राप्ति

समाधि में प्रवेश कर योगी लौकिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने सूक्ष्म शरीर का उपयोग करते हैं। अपने पार्थिव शरीर को किसी सुरक्षित स्थान पर रख कर सूक्ष्म शरीर द्वारा निकल पड़ते है वह लौकिक ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में। जब पार्थिव शरीर की आयु की अवधि समाप्त हो जाती है तो उस अवस्था में भी अपने सूक्ष्म शरीर का उपयोग करते रहते हैं वह। कोई-कोई योगी अपने सूक्ष्म शरीर में सैकड़ों वर्ष तक रह जाते हैं लौकिक ज्ञान प्राप्ति के लिए। ऐसे योगी आवश्यकता पड़ने पर कभी कभी परकाया प्रवेश भी कर लेते हैं। यदि यह सम्भव न हो सका अथवा इसका उन्हें अवसर नहीं मिला तो किसी योग्य और अनुकूल गर्भ में प्रविष्ट होकर जन्म भी ले लेते हैं। लेकिन बाल्यकाल से ही वे निस्पृह: और पारिवारिक व सांसारिक प्रभावों से अपने को मुक्त रखते हैं। सभी के प्रति उनका व्यवहार समान होता हैं। वे मृदुभाषी कोमल और उदार मना होते हैं। उनका समय चिन्तन, मनन और अध्ययन में ही व्यतीत होता है। दुख, कष्ट, विप त्ति, रोग, शोक आदि किसी भी भौतिक अवस्था में उनका चित्त विचलित नहीं होता। उनका मुख, मण्डल निर्मल शान्त और गम्भीर रहता है हर समय। उनके निकट शान्ति का अनुभव होता है। वैसे वे एकान्त में रहना अधिक पसन्द करते हैं। पहले तो वे पारिवारिक बंधंन में बंधते नहीं लेकिन किसी कारण

बध जाने पर एक प्रकार से उससे अप्रभावित और मुक्त ही रखते हैं अपने आपको। वे व्यवहारवादी भी बहुत कम होते हैं। वे सबके होते हुए भी किसी के नहीं होते। वे कार्य करते हुए भी कर्म नहीं करते। वास्तव में वे संसार के लिए एक परम आदर्श पुरुष होते हैं। इस प्रकार जब वे लौकिक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो अपने पूर्व पार्थिव शरीर में लौट आते हैं और मनोमय शरीर द्वारा पारलौकिक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए आगे की यात्रा पर निकल पड़ते है, यदि किसी कारण वश पूर्व पार्थिव शरीर नष्ट हो गया होता है तो अपने आध्यात्मिक संस्कार के अनुकूल उच्च कुल के पारिवारिक वातावरण में जन्म ले लेते हैं और अपने विशाल भौतिक ज्ञान भण्डार में से उन महत्वपूर्ण अंशों को जिनसे संसार और समाज अभी तक अपरिचित रहा है पुस्तक रूप में लिपिबद्ध करते हैं। जो कालान्तर में भौतिक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में एक विशेष मौलिक कृति समझी जाती है। जो कभी आगे चलकर भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर भी सिद्ध होती है।

यदि जन्म लेने का उचित और अनुकूल अवसर नहीं मिला तो सूक्ष्म शरीर में ही रहते हुए अपने अनुकूल किसी जीवित व्यक्ति के माध्यम से जो उनके विषयों में रुचि रखता हो-अपने उस कार्य को पूर्ण करने का प्रयास करते हैं।

लामावर्तन थोड़ा रुककर आगे बोले शर्मा जी, ऐसे योगियों को अनुकूल शरीर मिल गया तो वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहते। अल्पायु होते हैं और संसार का त्याग कर सन्यास ले लिया करते हैं।

क्यों ? किस लिए ? मैंने पूछा।

इसलिए कि सन्यासी अपने पार्थिव शरीर के साथ ही साथ अपने सूक्ष्म-शरीर का भी त्याग कर देता है। ताकि उसे जन्म न लेना पड़े। क्योंकि जन्म का एक मात्र कारण सूक्ष्म-शरीर ही तो होता है।

एक साधारण व्यक्ति की मृत्यु में और एक सन्यासी की मृत्यु में यही अन्तर होता है। साधारण व्यक्ति की मृत्यु के समय केवल पार्थिव शरीर ही छूटता है और उसके छूटते ही उसकी आत्मा भाव-शरीर स्वीकार कर लेती हैं और वासना, कामना आदि के शिथिल पड़ने पर वह शरीर भी उससे छूट जाता है। जिसे प्रचलित भाषा में प्रेतयोनि से मुक्ति कहते हैं। उसके छूटने पर आत्मा जो शरीर स्वीकार करती है वह सूक्ष्म शरीर होता है। समयानुसार उसी सूक्ष्म शरीर को लेकर आत्मा नए गर्भ में पुनर्जन्म के लिए प्रवेश करती है। यदि किसी ने विधिवत् सन्यास लिया है तो मृत्यु उसके दोनों शरीरों को एक साथ छीन लेगी। मतलब की एक ही साथ स्थूल-शरीर और सूक्ष्म शरीर दोनों की मृत्यु होगी।

जिसे आपने भाव-शरीर कहा है यानी प्रेत शरीर उसका क्या होगा? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में लामा वर्तन बोले सूक्ष्म-शरीर मृत्यु के बाद तत्काल नहीं

मिलता। लेकिन आत्मा है कि बिना शरीर के रह ही नहीं सकती इस स्थिति में वह अपनी वासना के अनुरूप स्वयं अपने लिए शरीर का निर्माण कर लेती है और जब सूक्ष्म शरीर उपलब्ध हो जाता है तो वह उसका त्याग कर देती है। भाव-शरीर, स्थूल-शरीर और सूक्ष्म-शरीर के बीच का शरीर है। जिसका निर्माण प्रकृति नहीं बल्कि आत्मा स्वयं अपनी वासना पूर्ति के लिए अपने भाव के आधार पर करती है। इसलिए उसे भाव-शरीर भी कहते है। जब सन्यासी के दोनों शरीर एक साथ नष्ट होते हैं तो उसके भाव-शरीर का अस्तित्व ही कहाँ रह जाता है। सन्यासी की आत्मा तत्काल मनोमय शरीर स्वीकार कर लेती है यदि उसमें साधना संस्कार है तो मनोमय शरीर को स्वीकार न कर सीधे किसी उच्च लोक में चली जाती हैं। लेकिन जिस प्रकार के योगी की चर्चा हो रही है मेरे आपके बीच-वे अपने दोनों शरीर का एक साथ त्याग, कर तत्काल मनोमय शरीर ग्रहण कर लेते हैं इसलिए कि पारलौकिक ज्ञान प्राप्त करना उनका उद्देश्य होता है और पारलौकिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनोमय शरीर आवश्यक है। क्योंकि आत्मलोक को छोड़ अन्य सभी लोक-लोकान्तर का संबंध मन और उसके विविध रुपों से है। सभी लोक-लोकान्तर मानसिक जगत हैं। उसके एक ओर प्राणमय सूक्ष्म जगत अथवा लोक-लोकान्तर हैं और दूसरी ओर हैं केवल आत्म-लोक का असीम विस्तार (विशेष अध्ययन के लिए पढ़े परलोक विज्ञान)

मनोमय शरीर द्वारा पारलौकिक ज्ञान की प्राप्ति

लामा वर्तन बोले सूक्ष्म-शरीर से अधिक गति और क्षमता मनोमय शरीर में होती हैं। वास्तव में मन आत्मा का क्रियात्मक अंश हैं। बुद्धि, विचार, विवेक आदि सब मनसे संबंधित है।

जिस संसार में हम रहते हैं वह भौतिक सत्ता है। मन इस भौतिक सत्ता और अभौतिक सत्ता दोनों का विभु है। अभौतिक सत्ता का मतलब है पारलौकिक जगत। योग का कहना है कि भौतिक स्तर पर जिस सत्य से और जिस ज्ञान-विज्ञान से हम परिचित नहीं हो सकते, उससे हम अभौतिक स्तर पर भली-भाँति परिचित हो सकते हैं।

दो प्रकार का मन

इसी सन्दर्भ में योग का कहना है कि मन के दो रूप है चेतन रूप और अचेतन रूप। भौतिक सत्ता में मन का चेतन रूप काम करता है और अचेतन मन काम करता है अभौतिक सत्ता में। अभौतिक सत्ता में ज्ञान-विज्ञान का असीम

भण्डार भरा हुआ है। जो अचेतन मन के द्वारा ही उपलब्ध हो सकता है। सच पूछा जाए तो अभौतिक सत्ता के कारण अचेतन मन की शक्ति असीम है। अब में इस विषय पर वैज्ञानिक दृष्टि से अपने विचारों को व्यक्त करूँगा, लामा वर्तन बोले, जिसे हम अलौकिक असम्भव और चमत्कार पूर्ण घटना कहते हैं वह वास्तव में है क्या? यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो वह सब अचेतन मन का ही तो खेल है विज्ञान की दृष्टि में जगत मानव से निरपेक्ष है, और मानव जगत से। यदि हम इसे माने तो जगत भी निरर्थक हो जाता है और मानव जीवन भी। लेकिन आज का वैज्ञानिक जीवन और जगत दोनों में अर्थ खोजना चाहता है, परन्तु इस दिशा में उसके लिए सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि आगे बढ़ते ही वह अपने आपको ऐसे क्षेत्र में पाता है जहाँ उसके सारे परिचित वैज्ञानिक साधनों, प्रयोगों की सीमा समाप्त होती प्रतीत होती हैं उसे।

आपको ज्ञात होना चाहिए वह क्षेत्र है परामानसिक जगत का क्षेत्र जिसे योग पारलौकिक जगत कहता है। जिसमें एक परम योगी कैसे प्रवेश करता है यह मैं आपको बाद में बतलाऊँगा। पहले आप आधुनिक विज्ञान की ही सीमा को समझें।

विज्ञान की आधुनिक सीमा

पदार्थ की मूल इकाई इलेक्ट्रान है। आजका विज्ञान उसी के विश्लेषण में अपने आपको पूर्ण असमर्थ पा रहा हैं। वैज्ञानिक उसकी केवल कल्पना मात्र ही कर सकते हैं। किसी भी विधि अथवा किसी भी यंत्र के द्वारा उसे देख नहीं सकते। उनकी दृष्टि में इलेक्ट्रान बिल्कुल रूप हीन और निराकार है जैसे धर्म की दृष्टि में ब्रह्म है रूप हीन और निराकार। अब तक पदार्थ यानी भौतिक सत्ता को ही सर्वोपरि मानने वाले वैज्ञानिकों को पदार्थ की मूल इकाई इलेक्ट्रान की गतिविधियों में कोई कार्य, कारण संबंध स्थापित करने में सफलता नहीं मिली, आइन्सटीन और मैक्स प्लैंक जैसे दिग्गज वैज्ञानिक मनीषी भी ऐसा करने में असफल रहे तो अन्त में उन्हें यह स्वीकार करने को विवश होना पड़ा कि भौतिक सत्ता के आगे निश्चय ही कोई अभौतिक सत्ता है जहाँ पूर्ण निस्तब्ध शान्त और नीरव चैतन्य का अस्तित्व है। जिसमें प्रवेश कर उन उच्चतम और श्रेष्ठतम ज्ञान-विज्ञान से संबंधित परम गोपनीय सत्यों का साक्षात्कार सम्भव है जो अपने आपमें परम रहस्यमय हैं और जो भौतिक चेतना के स्तर पर सम्भव नहीं हैं। और वह अभौतिक सत्ता और कहीं नहीं स्वयं मानव-मन में ही है।

योग विज्ञान यानी प्रकृष्ट विज्ञान

जिस सत्य से आपके वैज्ञानिक परिचित हुए हैं कहने की आवश्यकता नहीं उस सत्य से और उसके वास्तविक स्वरूप से आजसे कई हजार वर्ष पूर्व ही हमारे मनीषी हमारे तत्व वेत्ता भलीभाँति परिचित हो चुके थे योग-विज्ञान द्वारा। योग के विज्ञान को प्रकृष्ट विज्ञान कहते हैं इसीलिए कि उसके सिद्धान्त और नियम अपरिवर्तनीय हैं।

योग-विज्ञान का भी यही कहना है कि वह परम रहस्यमयी अभौतिक सत्ता स्वयं मानवमन में ही है लेकिन उस मन में नहीं जिस मन से हम सब परिचित हैं। उस मनमें हैं जिसे हम अचेतन मन कहते हैं। ज्ञात हो कि अचेतन मन में अभौतिक सत्ता उसी प्रकार समायी हुई है जैसे मानव मस्तिष्क में किसी भावी योजना अथवा किसी भावी कार्य की रूपरेखा समायी हुई रहती है और समय आने पर भौतिक जगत में साकार हो उठती है।

चेतन मन का विज्ञान मनोविज्ञान है और अचेतन मन का विज्ञान है परामनोविज्ञान। अचेतन, मन का दो तिहाई भाग है। जिसके क्रियाकलापों से साधारण लोग अपरिचित होते हैं। योग-विज्ञान के अनुसार अचेतन मन में अविश्वसनीय और अकल्पनीय शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। अब इससत्य को आधुनिक विज्ञान ने भी स्वीकार कर लिया है। उनका कहना है कि वे शक्तियाँ जब अचेतन की सीमा को लाँघ कर चेतन मन में प्रकट होती हैं तो उन्हीं को हम दैवी चमत्कार अथवा अलौकिक चमत्कार कहने लग जाते हैं। हालाँकि इस प्रकार के चमत्कार और अलौकिक घटनाएँ अचेतन मन की साधारण क्रियाए है, सामान्य कौतुक हैं।

परामनोविज्ञान: एक और यथार्थ

परामनोवैज्ञानिकों को यह विश्वास है कि इस प्रकार के अलौकिक अथवा दैवी चमत्कारों अथवा घटनाओं की तर्क युक्त व्याख्या यही मानकर की जा सकती है कि मन की शक्ति पदार्थ की शक्ति से कहीं अधिक और निस्सीम है। प्रत्येक व्यक्ति का मन असीम शक्तियों का भण्डार है इसमें सन्देह नहीं। पर उनकी अनुभूति के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक है स्वयं चेतन मन। यही कारण है कि जो थोड़ी-बहुत हमें अनुभूति तभी होती है जब हमारा चेतन मन स्वप्नावस्था में, मूर्च्छा की स्थिति में अथवा किसी गहरे नशे की स्थिति में रहता है।

योग-विज्ञान के निम्न धारणाओं को अब परामनोवैज्ञानिकों ने भी स्वीकार कर लिया है भौतिक माध्यमों और संचार व्यवस्था के अभाव में भी एक मन दूसरे मन को प्रभावित कर सकता है।

बिना किसी ज्ञात संवेदी यंत्र की सहायता के मन पदार्थ से सक्रिय ज्ञानात्मक संबंध स्थापित कर सकने में समर्थ है। इस प्रक्रिया में दिक्काल द्वारा कोई बाधा उस्थित नहीं होती है। मन भौतिक पदार्थो को इच्छानुसार प्रभावित करने में सक्षम है।

योगी का मनोमय शरीर में प्रवेश

चेतनमन और अचेतन मन की सीमा कहाँ है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में लामा वर्तन बोले - सीमा है लेकिन वैज्ञानिक उससे कभी भी परिचित नहीं हो सकते, केवल उच्चकोटि के योगी ही परिचित हो सकते हैं दोनों मन की सीमा से।

योग मार्ग में दो चीजें है पहली है, ध्यान और दूसरी है समाधि। ध्यान का संबंध चेतन मन से और समाधि का संबंध हैं अचेतन मन से। ध्यान की चरम सीमा पर पहुँचने पर मन अत्यन्त घनीभूत और अत्यन्त प्रगाढ़ हो जाता हैं और एक विशेष प्रकार के आकार में परिविर्तित हो जाता है। वह आकार वैसा ही होता है जैसा योगी के शरीर का आकार होता है। एक बात यहाँ समझ लेना चाहिए कि स्थूल, सूक्ष्म और मनोमय शरीर ये तीनों के रूप व आकार प्रायः समान ही होते हैं।

आपके कहने का मतलब यह है कि योगी का मन घनीभूत और प्रगाढ़ होकर जो रूप और जो आकार बनाता है वही योगी का मनोमय शरीर होता है मैंने कहा।

हाँ ठीक समझा आपने। लामा वर्तन बोले-साधारण व्यक्ति के मनोमय शरीर को ऐसा न समझ लेना चाहिंए। योगी और साधारण व्यक्ति के मनोमय शरीर में भारी अन्तर होता हैं। योगी का मनोमय शरीर ध्यान की उच्चतम और प्रगाढ़तम अवस्था का परिणाम है जबकि साधारण व्यक्ति का मनोमय शरीर उसी की गहन मनोवृत्ति का है परिणाम।

योगी अपने मनोमय शरीर को उपलब्ध होते ही अपने अचेतन मन का स्वामी हो जाता है। उसके और अचेतन मन के बीच जो बाधा होती है वह दूर हो जाती हैं और उसके सामने प्रकट हो जाता है-पारलौकिक जगत परामानसिक जगत अथवा अभौतिक सत्ता का विशाल और अन्तहीन साम्राज्य।

मनोमय शरीर द्वारा उस अभौतिक सत्ता में योगी कब तक रहता हैं, यह उसके पारलौकिक ज्ञान की उपलब्धि पर निर्भर हैं। पारलौकिक ज्ञान को उपलब्ध होते ही योगी। मनोमय-शरीर से मुक्त होकर अपने आत्म-शरीर को ग्रहण कर लेता है और उसके द्वारा आत्म लोक को उपलब्ध हो जाता है।

मनोमय शरीर धारी योगात्माओं का पृथ्वी पर आगमन

क्या सूक्ष्म-शरीर धारी योगात्माओं की तरह मनोमय-शरीर धारी योगात्माएँ भी धरती पर आती है? - मेरे इस प्रश्न के उत्तर में लामावर्तन बोले आगमन सम्भव है। लेकिन आना उनकी इच्छा पर निर्भर है या दैवी प्रेरणा पर।

यहाँ यह सर्वप्रथम बतला देना आवश्यक है कि मनोमय-शरीर धारी योगात्माओं के पारलौकिक जगत में रहने की अवधि समाप्त होते ही उन्हें आत्म-शरीर तत्काल उपलब्ध नहीं हो जाता। प्रतीक्षा करनी पड़ती है। मनोमय-शरीर द्वारा पारलौकिक जगत अथवा अभौतिक सत्ता में निवास करने वाली योगात्मा को विशुद्धात्मा कहते है। इसी प्रकार आत्म-शरीर द्वारा आत्मलोक में निवास करने वाली आत्मा को कहते हैं दिव्यात्मा। कोई-कोई विशुद्धात्माएँ प्रतीक्षा करने के बजाय सीधे संसार में आकार अपने योग्य गर्भ में प्रवेश करती हैं और यथा-समय संसार में उच्च कोटि के सन्त, महात्मा, साधक, तपस्वी, योगी और उच्च कोटि के फकीरों के रूप में प्रसिद्ध होती हैं। उनका मन अचेतन-मन के द्वारा पारलौकिक जगत से सदैव जुड़ा रहता है। जिसके फलस्वरूप अचेतन-मन में विद्यमान परामानसिक शक्तियाँ चेतन मन के माध्यम से उनके इच्छानुसार विभिन्न प्रकार के अकल्पनीय और अविश्वसनीय योग सिद्धियों और तांत्रिक चमत्कारों के रूप में प्रकट होने लग जाती हैं। जिनको देखकर साधारण लोग आश्चर्य चकित हो उठते हैं एक बारगी। लेकिन यहाँ यह न समझ लेना चाहिए कि उनका सिद्धियों और चमत्कारों का प्रदर्शन संसार को प्रभावित करने के लिए होता है। उनकी सिद्धियों के चमत्कार तो फूल की सुगन्ध की तरह होता है, जो अपने आप संसार के कलुषित वातावरण में विकीर्ण होता रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं ऐसे महापुरुषों की सिद्धियों द्वारा होने वाले चमत्कारों, अलौकिकक कार्यों और असम्भव सी प्रतीत होने वाली घटनाओं के पीछे लोक कल्याणकारी भावनाएँ तो रहती ही हैं इसके अतिरिक्त वे यह भी सिद्ध करने का प्रयास करते है कि मानवीय शक्ति अथवा भौतिक शक्ति के ऊपर कोई ऐसी भी रहस्यमयी अभौतिक शक्ति भी है, जो मनुष्य को नियन्त्रित करती हैं और जिसके सामने मनुष्य का ज्ञान-विज्ञान तुच्छ है अब तक भारत में जितने भी सन्त, महात्मा, योगी, तपस्वी, सिद्ध, साधक, फकीर आदि विख्यात हो चुके हैं-वे सभी परामानसिक शक्ति सम्पन्न विशुद्धात्माएँ ही थी। जिनके चमत्कारों, अलौकिक कार्यों और उनके द्वारा घटित होने वाली अलौकिक अथवा पारलौकिक घटनाओं से भरा हुआ है भारतीय संस्कृति और साधना से संबंधित साहित्य। कहने की आवश्यकता नहीं आज इस समय भी

परामानसिक शक्ति सम्पन्न संत, महात्माओं सिद्ध-साधकों और उच्च कोटि के योगियों का अभाव नहीं है। वे हैं और हमारे आपके बीच में हैं लेकिन प्रच्छन्न रूप में हैं। उन्हें जानने समझने और उन्हें पहचानने के लिए स्थूल दृष्टि की नहीं बल्कि सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है और वह सूक्ष्म दृष्टि उपलब्ध होती है पूर्व जन्म के आध्यात्मिक संस्कार से।

विशुद्धत्माओं द्वारा लोक सम्पर्क

थोड़ा रुककर लामा वर्तन आगे कहने लगे जो विशुद्धात्माएँ भौतिक शरीर धारण करना नहीं चाहती वे किसी योग्य व्यक्ति के अचेतन मन से सम्पर्क स्थापित कर अलौकिक कार्य करवाती हैं जिसका एक मात्र उद्देश्य होता है जगत कल्याण। माध्यम बने ऐसे व्यक्ति से जो अलौकिक और अविश्वसनीय कार्य होते हैं और उसके द्वारा जो अघटित घटित होता है-उससे साधारण लोग तो चमत्कृत और आश्चर्यचकित वो होते ही है, स्वयं वह व्यक्ति भी चमत्कृत और आश्चर्यचकित होता है कि उसके द्वारा कैसे ये सारे रहस्यमय कौतुक हो रहे हैं।

आत्म शरीर द्वारा अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति

आत्मलोक के विस्तार की कोई सीमा नहीं है। वह भी निस्सीम है। योग की भाषा में आत्मलोक को परमपद कहते हैं। परमपद को उपलब्ध, न जाने कब से कितने आत्म-ज्ञानी सिद्ध योगीगण आत्मलोक में निवास करते हुए अध्यात्म ज्ञान जिसे परम ज्ञान भी कहते हैं-का अर्जन कर रहे होंगे यह ठीक-ठीक नहीं, बतलाया जा सकता। और यह भी ठीक-ठीक नहीं बतलाया जा सकता कि हिमालय और तिब्बत की रहस्यमय गिरि-कन्दराओं में अपने पार्थिव शरीर को सुरक्षित छोड़कर कितने दिव्य साधक और कितने सिद्ध योगी विचरण करते हुए अध्यात्म। ज्ञान को उपलब्ध हो रहे होंगे। कहने की आवश्यकता नहीं उन सभी का एक मात्र लक्ष्य होता है परम निर्वाण, परम मुक्ति अथवा मोक्ष की उपलब्धि। लेकिन वह महान और परम उपलब्धि सहज नहीं है। उसके लिए प्रतीक्षा करती पड़ती है क्योंकि वह परब्रह्म परमेश्वर के अनुग्रह पर और उनकी करूणा पर आश्रित है। उनका अनुग्रह और उनकी करुणा प्राप्त होने पर ही उस परम दुर्लभ अवस्था की उपलब्धि होती है योगियों को। इसके लिए उनकी प्रतीक्षा कब समाप्त होगी? यह तो बतलाया नहीं जा सकता, लेकिन कोई-कोई प्रतीक्षारत योगी संसार के कल्याण की दृष्टि से आत्मलोक से सीधे धरती पर। मानव रूप में अवतरित होकर राम कृष्ण परमहंस, चैतन्यमहाप्रभु जैसे महात्माओं की तरह भगवान की

भक्ति और भगवान की लीलाओं एवं चरित्रों का प्रचार-प्रसार करते हैं। उनका यशोगाान करते हैं। भक्ति ज्ञान, वैराग्य धर्म आदि का उपदेश देते हैं। सांसारिक मोह-माया से मुक्त होने का उपाय बतलाते हैं। मानव जीवन का मूल्य और संसार की असारता तथा आत्मा की नश्वरता के संबंध में दुखी प्राणियों को समझाते हैं।

भोग में आकण्ठ डूबे लोगों को सत्य पर चलने की प्रेरणा देते हैं। उनका कहना होता है जो हो चुका उसे भूल जाना ही श्रेयस्कर है। संयोग और वियोग सृष्टि के नियम हैं। प्रकृति अथवा परमेश्वर ने मनुष्य को जो एक मस्तिष्क और दो हांथ दिये हैं, उन्हें यो ही अकर्मण्य पड़े रहने देने के लिए नहीं हैं। मस्तिष्क में शुभ योजनाएँ बनाकर हाथों से उनका निष्पादन करना ही सच्ची मानवता है लेकिन जो भी करो निस्पृहता और निस्संगता के साथ करो। कर्म से बधो मत। निस्संग और तटस्थ भाव से कर्म करने का ही नाम कर्म योग है। इसका मतलब यह नहीं कि फल आशा से रहित होकर कर्मरत होने पर फल नहीं मिलेगा। और श्रम व्यर्थ चला जाएगा। नहीं, सृष्टि का नियन्ता इतना कठोर और इतना निष्ठुर नहीं हो सकता। फल की आशा का त्याग तो चिन्ता से मुक्त होने का उपाय है। फल जो मिलना है वह तो मिलेगा ही। उसको लेकर व्यर्थ की चिन्ता को न पाल लेना ही बुद्धिमानी है। यही तो जीवन दर्शन है। फल तो चाहिए ही। जीवन के सारे प्रयास निष्फल चले जायें, यह न मनुष्य चाहेगा और न तो चाहेगा मनुष्य का निर्माता ही। कहने की आवश्यकता नहीं आत्मलोक से सीधे इस संसार में अवतरित होने वाली इस प्रकार की योगात्माएँ भगवान बुद्ध, महावीर, सन्त ज्ञानेश्वर, शिरडी के साईं बाबा जैसे महान पुरुषों की तरह सर्वस्व त्याग कर निरपेक्ष और निस्पृह भाव से संसार और समाज के लिए एक ऐसा परम आदर्श उपस्थित करती हैं जिसकी पावन सुगन्ध सैकड़ों हजारों वर्ष तक धरती पर विकीर्ण होती रहती है। उनका कहना होता है मानव जीवन का बहुत कुछ पूर्व निर्धारित है सुख, दुख, संयोग, वियोग, प्रसन्नता, अप्रसन्नता यहाँ तक कि मान-अपमान भी। सब उसके पूर्व कृत्यों का फल है। वे कृत्य पूर्वजन्म के भी हो सकते हैं और इस जन्म के भी। यह शाश्वत सत्य है और जिस दिन मनुष्य इस सत्य से साक्षात्कार कर लेगा कि नियति ही उसे अपने संकेत पर नाना नाच नचा रही है, उसे कीर्ति दे रही है, अपकीर्ति दे रही है प्रसन्नता, अप्रसन्नता, सुयोग, कुयोग और दु:ख सुख दे रही है और दे रही है, यश अपयश उसी दिन वह सारे द्वद्वों से ऊपर उठ जाएगा फिर उसे कुछ भी प्रभावित नहीं करेगा। कोई भी वस्तु उसे विचलित नहीं करेगी। कुछ भी उसे असन्तुलित नहीं करेगा। पर मनुष्य तो जन्म से अहंकार

लेकर संसार में आता है। वह अपने आपको जीवन-जगत का सर्वश्रेष्ठ प्राणी समझता है। वह सारी समस्याओं को अपने ही प्रयास से हल कर लेना चाहता है। नियति के विपरित जाना, वह अपने अहं की प्रतिष्ठा समझता है। उसकी यही समझ उसे परितुष्टि प्रदान करती है। लेकिन नियति कब अपना पराजय स्वीकार करती है? जीवन के हर मोड़ पर और जीवन के हर चौराहे पर उसका सामना करने के लिए खड़ी रहती है वह। अपने अस्तित्व का बोध कराने के लिए तैयार रहती है वह सदैव। और अन्त में उसी की विजय होती है। उसके सामने निरीह मनुष्य का पराजय सुनिश्चित है।

नियति क्या है ?

नियति स्वयम्भू नहीं है। उसका निर्माण स्वयं मनुष्य ही करता हैं और बराबर करता भी जाता है जीवन भर। मनुष्य प्रत्येक क्षण प्रत्येक पल इस सत्य से साक्षात्कार करने से सदा वंचित रह जाता है कि वह वही काट रहा है जो अतीत में बो चुका है अथवा कल वही काटेगा-जो आज बो रहा है। यदि वास्तव में इस परम सत्य से मनुष्य का साक्षात्कार हो जाए तो उसके जीवन में फिर सुख-दुख आपत्ति-विपत्ति, मान-अपमान और दीनता-हीनता रह ही नहीं जाएगी। उन सबसे मुक्त हो जाएगा वह हमेशा हमेशा के लिए। और उसका जीवन परम सुगन्ध से उद्‌भाषित हो उठेगा फिर। सच पूछा जाए तो मनुष्य के ही हाथ में है सब कुछ, सुख भी, दुख भी मान-सम्मान भी और अपमान भी, जय भी और पराजय भी। मनुष्य यदि दुख नहीं भोगना चाहता है तो बुरा कर्म न करें। सुख चाहता है तो सत्कर्म करे। यह भी कोई बतलाने की बात है कि सुकर्म क्या है और दुष्कर्म क्या है? एक निरोह पशु भी तो मात्र नाक से सूँघ कर खाद्य-अखाद्य के मध्य भेद कर लेता है। लाख प्रयत्न करने पर भी अखाद्य की ओर मुँह नहीं करेगा वह। ... तो क्या मनुष्य पशु से भी गया बीता है विवेक में, बुद्धि में, और अपने हित-अनहित के निर्धारण में? लामा वर्तन धारा-प्रवाह इस प्रकार बोलते जा रहे थे मानो वे स्वयं आत्मलोक से अवतरित कोई विशेष योगात्मा हो।

रात आधी से अधिक ढल चुकी थी। रुपहला चाँद कुहरे की धुन्ध से अटे बर्फिले पहाड़ों के ओट में हो गया था। खिड़की के बाहर शून्य में देखते हुए लामा वर्तन ने आगे कहना शुरू किया, लेकिन शर्माजी सबसे बड़ी बात तो यह है कि ऐसी योगात्माएँ सैकड़ों क्या हजारों साल में ही अवतरित होती हैं धरती पर मानव रूप में। कभी तो स्वयं या फिर ईश्वर की प्रेरणा से।

आत्मलोक की योगात्माओं का मानव मस्तिष्क से सम्पर्क

ईश्वर की प्रेरणा से आपका मतलब समझा नहीं थोड़ा उत्सुक होकर बोला मैं।

जब ईश्वर को मानव समाज में धार्मिक और सांस्कृतिक जागृति उत्पन्न करनी होती है अथवा मानव समाज को आध्यात्मिक प्रेरणा देनी होती है तो वह आत्मलोक की किसी योगात्मा को प्रेरित कर संसार में भेजता है। ऐसी योगात्माएँ श्रद्धानन्द और विवेकानन्द जैसे महापुरुषों के रूप में जन्म लेकर ईश्वर की इच्छा को संसारमें साकार करने का प्रयत्न करती हैं। आदि जगद् गुरू शंकराचार्य जैसे महात्माओं की तरह विकृत हो रहे धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करती हैं। जिससे धर्म, दर्शन और आध्यात्म के अतिरिक्त साधना उपासना आदि को भी नया आयाम मिलता है। लेकिन यह भी सैकड़ों-हजारों साल में ही होता है। सच पूछा जाय तो आत्मलोक से कोई भी योगात्मा भौतिक जगत में किसी भी रूप में आना स्वीकार नहीं करती, वैसे विवशता की बात अलग है। भला कौन ऊँचा उठकर नीचे गिरना चाहेगा? एक बात अवश्य है और वह यह कि जो व्यक्ति आध्यात्मिक चेतना, आध्यात्मिक संस्कार से सम्पन्न है, जो जन्म जन्मान्तर का योगी है, जो ध्यानयोग की उच्च अवस्था को उपलब्ध है और जो है उपलब्ध समाधि की अवस्था को, आपको ज्ञात होना चाहिए कि ऐसे व्यक्ति के मस्तिष्क से एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा बराबर विकीर्ण होती रहती है। कहने की आवश्यकता नहीं विकीर्ण हो रही उसी ऊर्जा के माध्यम से आत्म लोकस्थ योगात्माएँ अदृश्य रूप से उस व्यक्ति के मस्तिष्क के उस रहस्यमय भाग से संबंध स्थापित कर लेती है, जिसे शरीर शास्त्री "मेडुला आव्लोन्गटा" अधोलघु मस्तिष्क कहते हैं। और इस प्रकार संबंध स्थापित कर उस व्यक्ति का बराबर साधना मार्ग में सहयोग तो देती ही है, इसके अतिरिक्त पथ प्रदर्शन भी करती है वे। ऐसी योगात्माएँ अपने आत्मबल से साकार रूप में साधक के सम्मुख प्रकट होकर उसकी साधना संबंधी जटिलता को भी दूर करने का प्रयत्न करती है। उसकी साधना विषयक समस्या को भी सुलझाने का प्रयास करती हैं। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि साधक इस रहस्य से अपरिचित रहता है कि कोई आत्मलोकस्थ योगात्मा इस प्रकार साकार रूप में उसे सहयोग प्रदान कर रही है।

रात गल-गल कर अब ढल चुकी थी। ब्राह्म मुहुर्त का समय हो रहा था। लामा वर्तन अपने स्थान से उठे और अपने साधना आसन पर जाकर बैठ गए।

उनकी समाधि का समय हो गया था। कुछ क्षण तक उन्हें समाधि की अवस्था में जाते हुए देखता रहा और फिर अपनी पथरीली कोठरी में आकर लेट गया कम्बल पर। लेकिन नींद नहीं आयी। तन्द्रिल अवस्था में पड़ा-पड़ा सोचता रहा कितना गहन ज्ञान है लामा वर्तन को? सभी विषयों पर अधिकार है जैसे उनका। फिर सोचने लगा नियति को लेकर। ... जब नियति ही सर्वेसर्वा है और उसके सामने सभी पौरुष व्यर्थ है तो फिर मनुष्य को कुछ न करना चाहिए न पूजा, पाठ, न साधना, उपासना और न तो समस्या को हल करने के लिए अन्य कोई प्रयास। सब कुछ नगण्य है नियति के सामने। लेकिन इसका समाधान हो गया एक दिन। लामा वर्तन ने ही किया समाधान। वे बोले नियति के अस्तित्व को समाप्त नहीं किया जा सकता। उसका प्रत्येक स्थिति में सामना तो करना ही पड़ेगा। उसे झेलना ही पड़ेगा। लेकिन एक बात अवश्य हैं वह यह कि उसे टाला अवश्य जा सकता है। और उसे टालने के लिए ही तंत्र-मंत्र, पूजा-पाठ, साधना-उपासना आदि हैं। वे सब व्यर्थ नहीं है। अपने आपमें सार्थक है सब।

सूक्ष्म शरीर एक विवेचन

मैंने तीन प्रकार की योगात्माओं की चर्चा की है। सूक्ष्म-शरीर धारी योगात्मा, मनोमय-शरीरधारी योगात्मा और आत्म-शरीरधारी योगात्मा। इनमें से सूक्ष्म-शरीर धारी योगात्मा के विषय में थोड़ा बहुत बतलाया जा चुका हैं। इस तथ्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भौतिक शरीर अपने आप में अति मूल्यवान और अति महत्वपूर्ण है, इसलिए भी कि सूक्ष्म-शरीर, मनोमय-शरीर, आत्म-शरीर तीनों उससे एक साथ जुड़े हुए होते हैं। लेकिन साधना की दृष्टि से स्थूल शरीर द्वारा सूक्ष्म-शरीर का बोध हो जाने पर फिर उसका मूल्य कुछ नहीं रह जाता साधक के लिए। यदि स्थूल-शरीर दीक्षा-शरीर है यानि सद्गुरु ने उसे दीक्षित किया है उस शरीर द्वारा साधक ने सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त की है तो साधक अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा अपने लक्ष्य की पूर्ति करते हुए भी अपने पार्थिव शरीर में बराबर जीवित रहता है। और बराबर करता रहता हैं प्रत्येक दृष्टि से उसकी रक्षा भी। इस प्रसंग में लामा वर्तन बोले ऐसे साधक का शरीर प्रायः कृष होता हैं। अन्न कम से कम लेते हैं वे। किसी भी खाद्य पदार्थ के प्रति उनकी बहुत ही कम रुचि होती है। वे फलाहार या प्राणाहार अधिक से अधिक लेने का प्रयत्न करते हैं। सोलह प्रकार के आहार है जिनमें प्राणाहार सर्वोत्तम हैं। उच्च कोटि के साधक इसी प्राणाहार का अधिक सेवन करते हैं। इससे उनका स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर पुष्ट और स्वस्थ रहता है। यदि साधक की लक्ष्य पूर्ति अभी नहीं हुयी है और उसका पार्थिव

शरीर मृत होने के समीप है तो इस स्थिति में साधक क्या करता है - मेरे इस प्रश्न के उत्तर में लामा वर्तन बोले - यदि लक्ष्य की पूर्ति हो गयी है तो मृत होने पर उसका त्याग कर अपने सूक्ष्म शरीर में जीवित रहता हैं। यदि उसे अपने उपलब्ध लौकिक ज्ञान से संसार को परिचित कराना है तो इसके लिए वह पहले योग्य व्यक्ति के मस्तिष्क से सम्पर्क स्थापित कर उसके द्वारा अपने उपलब्ध लौकिक ज्ञान को प्रकट करता है। यदि इसमें उसे पूरी सफलता नहीं मिली तो परकाया प्रवेश कर दूसरे के शरीर के माध्यम से अपने कार्य को पूर्ण करने की चेष्टा करता है। यदि ऐसा भी सम्भव नहीं हुआ अथवा परकाया प्रवेश के लिए योग्य पात्र नहीं मिला तो वे किसी सुपात्र, संस्कारी और अनुकूल गर्भ में प्रवेश कर नया शरीर धारण कर लेता है।

मेरी एक जिज्ञासा है ?

क्या ?

कौन से और कैसे मृतकाया में साधक प्रवेश करता है ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में लामा वर्तन बोले सभी मृत शरीर योग्य नहीं होता साधक के लिए। ब्राह्मण कुल का संस्कारी युवक जो अकालग्रस्त होकर मृत हुआ है उसकी मृतकाया अति योग्य होती है परंकाया प्रवेश के लिए। वैसे जैसी परिस्थिति और जैसा वातावरण रहता है उसके अनुसार किसी भी उच्च वर्ण के सद्यः मृत शरीर में प्रवेश कर जाता है साधक। परकाया प्रवेश दो प्रकार का होता है-स्थायी और अस्थायी। मृतकाया में प्रवेश करना स्थायी परकाया हैं क्योंकि शरीर से वास्तविक जो आत्मा थी निकल गयी होती है, वह तो फिर वापस लौटकर आएगी नहीं। इसलिए साधक की आत्मा उसमें प्रविष्ट होकर उसे अपना बना लेती है और अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो जाती हैं।

कोई-कोई साधक ऐसे भी होते है जो अपने लक्ष्य को सिद्ध करने के उद्देश्य से आवश्यकता पड़ने पर किसी योग्य व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं कुछ समय के लिए और फिर यथा समय उसका त्याग कर देते हैं। इसे अस्थायी परकाया प्रवेश कहते हैं। लेकिन स्मरण रखना चाहिए कि अस्थायी रूप से तभी साधक परकाया प्रवेश करते हैं जीवित मनुष्य में, जब वह किसी कारण से बेहोश हो गया होता है अथवा गहरी निद्रा की अवस्था में होता है। इस संबंध में यह जान लेना आवश्यक है कि इस स्थिति में जो वास्तविक आत्मा होती है वह शरीर से बाहर नहीं निकल पाती, वह रहती है लेकिन मूढ़ावस्था अथवा जड़ावस्था मे और उसके स्थान पर शरीर-मन और इन्द्रियों का उपयोग करती है साधक की चैतन्य आत्मा। वास्तव में परकाया प्रवेश एक अत्यन्त रहस्यमय विषय है योग का, इसमें सन्देह नहीं। फिर थोड़ा रुककर अपने आपसे जैसे कहने लगे लामा

वर्तन, न जाने कितने इस प्रकार के साधक स्थायी और अस्थायी रूप से परकाया प्रवेश कर संसार में विचरण करते हुए अपने लक्ष्य की पूर्ति में संलग्न होंगे कहा नहीं जा सकता। (परकाया प्रवेश के विषय में विशेष अध्ययन के लिए पढ़े मारणपात्र)

एक योगी के लिए शरीर, वस्त्र के समान

योग-तंत्र की जितनी भी अन्तरंग साधनाएँ हैं वे सब सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर परक हैं। स्थूल-शरीर से उनका कोई लेना-देना नहीं जिनको अपने सूक्ष्म-शरीर का अनुभव नहीं है और जो केवल अपने पार्थिव-शरीर को महत्व देते हैं और उसके द्वारा पूजा-पाठ व्रत-उपासना आदि करते है वह सब व्यर्थ है, एक सन्यासी के श्राद्ध के समान समझा जाना चाहिए उसे। जैसे एक मृत सन्यासी के श्राद्ध का कोई परिणाम नहीं, उसी प्रकार पार्थिव काया द्वारा सम्पन्न कोई धार्मिक अनुष्ठान, व्रत आदि का भी परिणाम नहीं।

एक परम योगी अथवा परम साधक पार्थिव शरीर को एक वस्त्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता। लेकिन शरीर से आत्मा का संबंध इतना गहरा हो चुका होता है जीवन में कि मनुष्य शरीर को ही सब कुछ समझ बैठता है। उसे ऐसा कभी भी प्रतीत नहीं होता कि 'वह' और 'शरीर' दो हैं। ऐसा लगता है कि शरीर ही 'वह' हैं। लामा वर्तन् थोड़ा फिर हंस कर बोले, क्या कभी आपने नेत्र बन्द करके यह देखा हैं कि शरीर की आयु तो इतनी हुई, अपनी कितनी आयु है? कभी आपने यह भी सोचा है कि शरीर के किसी अंग में दर्द हो रहा हो। तो क्या नेत्र बंदकर आपने कभी सोचा-विचारा है अथवा छान-बीन की है कि मुझे दर्द हो रहा है या मुझसे कहीं दूर हो रहा है दर्द!

एक परम साधिका से साक्षात्कार

जिस समय इस महत्वपूर्ण प्रसंग पर चर्चा हो रही थी उसी समय एक परम विदुषी महिला का अचानक आगमन हुआ। नाम था किशोरी माँ। शरीर नेपाल का था। नेपाल के एक समृद्ध अभिजात्य और सुसंस्कृत परिवार से संबंधित थीं, वह। साधना की दृष्टि से प्राय: उनका आगमन होता रहता था तिब्बत में। बातचीत से पता चला कि तिब्बत के प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न योगी साधकों से भलीभाँति परिचित हैं वह।

देखने में पूर्ण युवती प्रतीत होती थीं किशोरी माँ। लेकिन लामा वर्तन से ज्ञात हुआ कि बहुत अधिक अवस्था हैं उनकी। पिछले पचास वर्षों से वे स्वयं उनको इसी प्रकार देखते आ रहे हैं।

गौर वर्ण, सुगठित देह दृष्टि, सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व, साधना के प्रखर तेज से दप्-दप् करता हुआ मुंख मण्डल-झील जैसी गहरी नीली आँखों में दैवी चमक और मधुर कोमल वाणी। प्रथम दृष्टि में ही मंत्र-मुग्ध सा हो गया मैं किशोरी माँ के प्रति।

कमरे में प्रवेश करते हो मेरी ओर एक बार स्थिर दृष्टि से देखी किशोरी माँ ने ! और जब लामा वर्तन से मेरा परिचय उन्हें ज्ञात हुआ तो, आश्चर्यचकित हुए बिना न रह सकी वह। आखिर उस महान साधिका के मुंख से निकल ही पड़ा-इतनी अल्पायु में इतनी कठिन हिम यात्रा।

शरीर किसी का और आत्मा किसी की

नि:सन्देह एक परम योग साधिका थीं किशोरी माँ। प्रसंग वश ज्ञात हुआ कि परकाया प्रवेश किया है उन्होंने। यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। एक दिन स्वयं किशोरी माँ ने ही अपने परकाया प्रवेश की कथा सुनाई, जो अपने आपमें कौतुहलपूर्ण और आश्चर्यजनक तो थी ही इसके अतिरिक्त अविश्वसनीय भी कम न थी। ब्रिटिश शासन काल के समय तवांग मठ से संबंधित अरुणाचल प्रदेश में तीन समृद्धिशाली मठ थे। उन्हीं में एक मठ था परम शक्ति साधक भोलानन्दजी का। भोलानन्द तंत्र मार्गीय कापालिक साधक थे उनके पास अनेको योग-तांत्रिक सिद्धियाँ थीं, जिनके कारण दूर-दूर तक उनका प्रभाव था।

भोलानन्द की कई भैरवियाँ थीं, एक से एक बढ़-चढ़ कर, लेकिन मातंगिनी को सर्वाधिक महत्व देते थे भोलानन्द। इसलिए कि उनकी गोपनीय योग-तांत्रिक क्रियाओं में मातंगिनी का भरपूर सहयोग उपलब्ध था। कहने की आवश्यकता नहीं मातगिनी का भरपूर सहयोग नहीं प्राप्त होता तो भोलानन्द अपनी साधना के मार्ग में जिस सफलता की आशा रखते थे वह आशा कदापि पूर्ण न होती। मांतगिनी खासी जाति की सुन्दर लावण्यमयी और आकर्षक युवती थी। जिस समय उसे भैरवी दीक्षा दी गयी उस समय उनकी आयु चौदह साल से अधिक न थी। दीक्षा उपलब्ध होते ही आत्म तेज से उद्भाषित हो उठा था मांतगिनी का मुंख मण्डल। अब उनकी आयु पचास-पचपन के लगभग थी, लेकिन उनके यौवन उनके सौन्दर्य उनके लावण्य और उनके कमनीय आकर्षण में कोई कभी नहीं आयी थी, अभी भी। समय व्यतीत हो रहा था धीरे-धीरे। समाधि लेने का समय आ गया भोलानन्द की। उस समय उनकी अवस्था सौ वर्ष से भी सम्भवत: अधिक थीं। उनको समाधि लेने के पश्चात् मठ का सर्वे सर्वा मांतगिनी का होना स्वाभाविक था। गुरु कृपा और कठोर साधना बल से कई उच्च कोटि की योग-तांत्रिक सिद्धियाँ

उपलब्ध थी मांतगिनी को भी। लेकिन काल का प्रभाव भला किस पर नहीं पड़ता ? काल का प्रभाव पड़ना शुरू हो गया मांतगिनी पर भी। दीर्घकाल तक अपने योग बल से अपने आपको काल के प्रभाव से मुक्त रखी रही मांतगिनी। लेकिन बाद में शनैः शनैः पड़ने ही लगा काल का प्रभाव उनकी कंचन काया पर। सौन्दर्य और आकर्षण गल गल कर झारने लगा। शिथिल और निर्बल होने लगा शरीर। मृत्यु का आलिंगन करना उन्हें उचित प्रतीत नही लगा इसलिए कि गर्भ यातना से बचना चाहती थी वह। इसके अतिरिक्त साधना स्मृति का जागरण नए शरीर में कब और कैसे होगा इसकी भी चिन्ता थी उन्हें। ऐसी मानसिक अवस्था में परकाया प्रवेश को श्रेष्ठ और उत्तम समझ रही थी वह। लेकिन परकाया प्रवेश के संबंध में किसी को कुछ बतलाया नहीं था उन्होंने।

एक दिन नित्य की तरह रात्रि में समाधि में बैठी थी मांतगिनी। रात्रि का मध्य प्रहर था सम्भवतः। वातावरण निस्तब्ध और शान्त था। सांय-सांय हो रहा था चारो ओर। उसी समय समाधि की अवस्था में अरुणांचल से सैकड़ों मील दूर नेपाल स्थित एक धनी सभ्रान्त अभिजात्य और प्रतिष्ठित परिवार के कुल वधु को प्रसव होने का दृश्य देखा उन्होंने। उस परिवार में वही एक मात्र कुल वधु थी। विवाह के बीस वर्षो के पश्चात् उसे सन्तान की प्राप्ति हो रही थीं। यथा समय कन्या का जन्म हुआ। बहुत ही सुन्दर थी वह कन्या। पारिवारिक वातावरण में आनन्दे उमंग और उत्साह छा गया। परिवार के लोग प्रसन्न हो उठे। लेकिन वह प्रफुल्ल वातावरण और वह प्रसन्नता अधिक समय तक रह न सकी। लगभग तीन चार घण्टे जीवित रही वह नवजात कन्या, फिर अपनी गोद में ले लिया मृत्यु ने उसे। परिवार में शोक की लहर फैल गयी।

हाहाकार मच गया वातावरण में। माता की स्थिति तो अत्यन्त कारूणिक और दयनीय थी उस समय। कन्या की मृत काया को अपनी छाती से लगाए करूण स्वर में विलाप कर रही थी वह।

परिवार का सन्तप्त और शोकाकुल वातावरण और माता का कारूणिक विलाप देखा न गया साधिका मांतगिनी से। विह्वल हो उठी वह। करूणा से भर गयी उनकी आत्मा। आखिर एक नारी ही तो थी वह। रहा न गया उनसे। तत्काल योग बल से-समाधि की ही अवस्था में-अपने पार्थिव शरीर को त्याग कर सूक्ष्म-शरीर द्वारा उस मृत कन्या के शरीर में प्रवेश कर गयी वह। तीन घंटे से मृत कन्या को पुनर्जीवित देखकर परिवार के लोगों को घोर आश्चर्य हुआ। लोगों ने इसे देवी चमत्कार समझा। पुनः उल्लासित हो उठा वातावरण। सर्वत्र प्रसन्नता छा गयी। शोक, सन्तप्त और दुःखी माता का मुख मण्डल खिल उठा एक बारगी गुलाब के फूल की तरह।

भौतिक स्मृति और आध्यात्मिक स्मृति

आपको अपना शरीर छोड़कर शिशु के शरीर में प्रवेश करते समय कैसा अनुभव हुआ ?

किशोरी माँ हंस कर बोली जैसे आदमी बड़े कमरे से निकलकर छोटे से कमरे में चला जाता है। बस वैसा ही लगा मुझे।

आपके भीतर कोई आन्तरिक परिवर्तन हुआ ?

नहीं, परिवर्तन कैसा ? एक मकान से निकलकर दूसरे मकान में चले जाने से आदमी के भीतर क्या कोई परिवर्तन होता है ? इसी प्रकार परकाया प्रवेश को भी समझिए !

शिशु के शरीर में प्रवेश करने पर क्या आपकी पूर्व स्मृति बनी रही ? और बनी रही तो कब तक ?

आपको बतला दूँ - स्मृति दो प्रकार की होती है, भौतिक स्मृति और साधानात्मक-आध्यात्मिक स्मृति। भौतिक स्मृति का मतलब जागतिक स्मृति। जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत पारिवारिक सामाजिक आदि सभी प्रकार की स्मृतियाँ आ जाती हैं। साधारण आदमी मरणोपरान्त जब जन्म लेता है तो उसकी पूर्व जन्म की उपरोक्त सारी स्मृतियाँ संस्कार के रूप में प्रकट होती हैं। और उन्हीं संस्कारों के अनुसार उसकी जीवन यात्रा शुरू होती है। लेकिन एक उच्चकोटि के योगी अथवा परम साधक जब कहीं जन्म लेता है अथवा परकाया प्रवेश करता है तो उसकी समस्त आध्यात्मिक स्मृतियाँ उसके साथ रहती हैं। उसके साधना संस्कार भी उसके साथ रहते हैं। इसलिए उसको अपनी साधना यात्रा के पथ पर आगे बढ़ने पर किसी भी प्रकार की कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

थोड़ा रुककर किशोरी माँ आगे बतलाने लगीं - ऐसा ही मेरे साथ भी समझिए। उस बालिका के शरीर में मेरी सारी पूर्व आध्यात्मिक स्मृति जागृत थी। सारे साधना संस्कार भी विद्यमान थे। कहने की आवश्यकता नहीं जब तक मैं परिवार से संबंधित थी तब तक मुझे दो जीवन एक साथ जीना पड़ा था। एक तो जीवन था पारिवारिक और दूसरा था साधनात्मक अथवा आध्यात्मिक। साथ-साथ दोनों प्रकार के जीवन को जीना बड़ी भारी समस्या थी मेरे लिए। दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर था। गुरुदेव मुझसे बराबर सम्पर्क बनाए रखते थें और आध्यात्मिक निर्देश के अतिरिक्त भौतिक जीवन में कैसे रहना चाहिए, कैसा व्यवहार करना चाहिए और अपने वास्तविक स्वरूप को कैसे अव्यक्त रखना चाहिए, यह भी समझाते रहते थे बराबर। भौतिक जीवन का कार्य कलाप और व्यवहार मेरे लिए एक नाटक के अलावा और कुछ नहीं था। बड़े कौशल से

अपनी भूमिका निभा रही थी मैं, माता पिता और घर-परिवार का कोई मूल्य नहीं था मेरे लिए। धन-वैभव भी मेरे लिए कोई महत्व नहीं रखता था। पूर्ण निस्पृहः और पूर्ण विरक्त थी मैं अपने भौतिक जीवन में। जानती थी कि किञ्चित्त मात्र आकर्षण और किञ्चित्त मात्र आशक्ति बन्धन का कारण बन सकती हैं। एक क्षण की मोह माया की आग में मेरी सारी आध्यात्मिक सम्पत्ति जलकर हमेशा के लिए भस्म हो जाएगी। कैसे मिलेगी इस परिवार और इस संसारिकता से मुक्ति? इसके लिए हर समय व्याकुल रहने लगी मैं। आखिर एक रात मुक्ति की कामना के वशीभूत होकर सर्वस्व त्यागकर चल पड़ी पोखरा की ओर मैं। धीरे-धीरे अस्सी वर्ष का समय व्यतीत हो गया। तबसे अब तक वहीं एक निर्जन सुनसान शान्त और एकान्त स्थान में कुटिया बनाकर रह ही हूँ मैं।

इस शरीर में कब तक रहेंगी आप ?

कुछ कहा नही जा सकता। गुरुदेव जैसा कहेंगे ? और जैसा आदेश देंगे वैसा ही होगा-किशोरी माँ थोड़ा विषण्ण भाव से बोली।

सूक्ष्म शरीर क्या है?

आपसे सूक्ष्म शरीर के संबंध में कुछ विशेष जानना चाहता हूँ मैं।

क्या जानना चाहते हैं किशोरी माँ किञ्चित गम्भीर होकर बोली।

सूक्ष्म शरीर क्या हैं ? और उसकी सम्भावनाएँ क्या हैं ? थोड़ी देर तक कुछ सोचती रही किशोरी माँ फिर कहने लगी-एक योगी के लिए पार्थिव शरीर एक वस्त्र के समान हैं। लेकिन मनुष्य अपने शरीर से इतना गहरा तादात्म्य स्थापित कर लेता है कि वह अपने आपको शरीर ही समझने लगता हैं। शरीर को हमेशा अपने आपसे पृथक समझना चाहिए। मनुष्य अपने शरीर के बाहरी स्वरूप से परिचित होता है उसके भीतरी स्वरूप से नहीं। जिस दिन भीतरी स्वरूप से परिचित हो जाएगा उसी दिन वह अपने शरीर को एक वस्त्र के समान समझने लगेगा और उसे समझने लगेगा आत्मा का बाहरी आवरण।

वास्तव में आत्मा के लिए शरीर वस्त्र के समान हैं। जैसे हम पुराने वस्त्र का त्यागकर नया वस्त्र पहन लेते हैं उसके स्थान पर उसी प्रकार आत्मा भी जीर्ण-शीर्ण हुए पुराने शरीर का त्याग कर नया शरीर धारण कर नयी जीवन यात्रा पर निकल पड़ती हैं। आत्मा का यह व्यापार कब से चल रहा है ? यह बतलाया नहीं जा सकता।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो आत्मा अपने आप में पूर्ण है और है अपने आपमें पूर्ण स्वतंत्र भी। वह न कहीं जाती है और न तो कहीं से आती है। इस

संबंध में अधिक गहरायी में जाने की आवश्यकता नहीं बस इतना जान लेना पर्याप्त है कि शरीर दो हैं एक शरीर से हम सब परिचित हैं जो माता पिता से उपलब्ध होता हैं यानी जो गर्भ से जन्म लेता है। लेकिन उस शरीर की अपनी एक निर्धारित सीमा हैं सामर्थ्य है। और वह अपनी उसी सीमा और उसी सामर्थ्य के अनुसार एक यंत्र के समान चलता हैं और फिर एक दिन समाप्त हो जाता हैं। वास्तव में माता-पिता से मनुष्य को एक 'यंत्र' ही प्राप्त होता है शरीर के रूप में। वे आत्मा के लिए यंत्र के रूप में एक स्थिति उत्पन्न करते हैं। दिखलायी पड़ने वाला यह शरीर जन्म से अपनी यात्रा शुरू करता है और जिसकी समाप्ति होती हैं मृत्यु के रूप में। उसके आने-जाने का क्रम बराबर बना रहता है।

यदि इस शरीर को हम आत्मा का पहला वस्त्र समझें तो ठीक रहेगा। इसी प्रकार आत्मा का एक भीतरी वस्त्र भी है। जो पहला वस्त्र है वह भौतिक अथवा स्थूल शरीर है और यह जो दूसरा वस्त्र है-वह सूक्ष्म शरीर है। जो विद्यु कणो से निर्मित होता है और पिछले जन्म से आता है। आत्मा उसी शरीर को लेकर गर्भ में प्रवेश करती हैं और मृत्यु के बाद उसी शरीर को लेकर अपनी अगली यात्रा पर निकल पड़ती हैं। सच तो यह है कि सूक्ष्म-शरीर आत्मा का एक ऐसा वाहक है-जिसके द्वारा वह स्थूल-शरीर ग्रहण करती हैं और स्थूल शरीर के जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर उसको त्यागकर सूक्ष्म शरीर के ही द्वारा पुनः दूसरा स्थूल-शरीर ग्रहण कर लेती है। यही आत्मा का आवागमन हैं जो सूक्ष्म-शरीर द्वारा होता रहता है। सूक्ष्म-शरीर के द्वारा आत्मा का आवागमन बिल्कुल प्राकृतिक है उसी प्रकार जैसे पानी का नीचे की ओर बहना प्राकृतिक है। जन्म की धारा जैसे स्वभावतः नीचे की ओर अपने आप बहने लगती है उसी प्रकार सूक्ष्म-शरीर को लेकर आत्मा भी अपने अनुकूल पार्थिव-शरीर में प्रवेश करती है।

सूक्ष्म शरीर मन और आत्मा

पहले एक बात समझ लेना चाहिए तुमको किशोरी माँ बोली आत्मा का अस्तित्व पूर्ण स्वतंत्र है। उसका स्वयं का निज शरीर है जिसे आत्म-शरीर कहते हैं। मन का भी अपना शरीर है जिसे मनोमय-शरीर कहते हैं। आत्मा और मन वास्तव में एक ही वस्तु के दो रूप हैं। जो रूप स्थिर हैं वह है आत्मा और जो रूप सक्रिय अथवा क्रियाशील है वह है मन। इसी कारण मन हमेशा आत्मा के साथ संयुक्त रहता है। मन क्रिया शील है वह स्वभावतः सूक्ष्म शरीर की ओर आकर्षित होता है। मन का भी दो रूप है एक तो स्थूल है और दूसरा है सूक्ष्म। सूक्ष्म रूप तो आत्मा के साथ लिप्त रहता है यानी बराबर उससे तादात्म्य बनाए

रखता है और पहला जो स्थूल है वह भौतिक जगत की ओर आकर्षित रहता है लेकिन बिना सूक्ष्म शरीर की सहायता के वह भौतिक सत्ता में प्रवेश नहीं कर सकता। जहाँ एक बार भौतिक शरीर के साथ संयुक्त हुआ कि फिर दोनों, ताकि एक दूसरे से मुक्त होना अत्यन्त कठिन है। इस प्रकार मन के स्थूल रूप का सूक्ष्म शरीर से संयुक्त हो जाने के कारण आत्मा के साथ उसका सूक्ष्म रूप भी सूक्ष्म शरीर से संयुक्त हो जाता है।

इसका सारांश यह है कि सूक्ष्म शरीर में मन के दोनों रूप (जिसे परामनोवैज्ञानिक भाषा में चेतन मन और अचेतन मन कहते है) के साथ आत्मा भी संलग्न रहती है और यही संलग्नता आत्मा की स्वतंत्रता को नष्ट कर देती है और ऐसी आत्मा को ही जीवात्मा की संज्ञा दी गयी है मैंने कहा। हाँ।

बिल्कुल ठीक समझा तुमने किशोरी माँ बोली कौन सा ऐसा क्षण था जब सूक्ष्म शरीर के साथ मन के दोनों रूपों का और आत्मा का तादात्म्य स्थापित हुआ और कौन सा ऐसा क्षण था जब आत्मा और मन को अपने आप में समेटे सूक्ष्म शरीर ने स्थूल शरीर में प्रवेश किया। कौन सा ऐसा क्षण था जब एक विशुद्ध और पूर्ण स्वतंत्र आत्मा जीवात्मा की संज्ञा में परिवर्तित होकर आवागमन के भाया जाल में फंसी ? और कौन सा ऐसा क्षण था जब जीवन यात्रा शुरू हुई मनुष्य की ?

कहने की आवश्यकता नहीं ऐसे प्रश्नों का समाधान न वेद में हैं, न उपनिषद में है, न पुराण में है, न धर्म शास्त्र में है, और न तो है किसी दर्शन शास्त्रों में ही। इतना कहकर आकाश की ओर शून्य में देखने लगी किशोरी माँ। और फिर उसी अवस्था में कहने लगी 'सूक्ष्म' के विषय में तुम्हारी जिज्ञासा काफी गहरी प्रतीत हो रही है इसलिए सूक्ष्म के संबंध में तुमको थोड़ा और बतला देना चाहती हूँ। जरा थम कर बोली वह।

सूक्ष्म की व्याख्या

जिस वस्तु का निर्माण होता है और नाश होता है और जो दिखलायी पड़ता है, वह स्थूल है। और जिसका निर्माण नहीं होता है और जिसका नाश नहीं होता है और जो दिखलायी नहीं देता है वह सूक्ष्म है और है अदृश्य। लेकिन योग विज्ञान सूक्ष्म को सूक्ष्म कहना उचित नहीं समझता। उसकी यह विवशता है। वास्तव में वह जब सूक्ष्म कहता है तो उसका तात्पर्य होता है स्थूल का ही कोई भाग। जब वह कहता है अति सूक्ष्म तो उसका तात्पर्य होता है बहुत कम स्थूल। वह कितना भी कहे सूक्ष्मातिसूक्ष्म लेकिन वह भी स्थूल से ही संबंधित रहेगा। तुमको

ज्ञात होना चाहिए कि समस्त मानव जाति की भाषा द्वन्दात्मक भाषा हैं। किसी भी भाषा के सभी शब्दों में द्वन्द रहता है। द्वन्द से मुक्त नहीं है किसी भी भाषा का कोई भी शब्द। तुमको ज्ञात होना चाहिए कि विज्ञान आज जो दूर से भी दूर की वस्तुएँ देख रहा है वह भी स्थूल ही है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जो भी आँखों से दिखलायी देता हैं, जो भी कानों से सुनाई पड़ता हैं, जिसके स्पर्श का अनुभव होता हैं और हमारी इन्द्रियों की सीमा के अन्तर्गत जो कुछ भी आता हैं वह स्थूल हैं। इसी प्रकार जो दिखायी और सुनायी नहीं पड़ता, जिसके स्पर्श का भी अनुभव नहीं होता और जो हमारी इन्द्रियों की सीमा के बाहर है और जिसे इन्द्रियों की सीमा में लाने का कोई साधन नहीं है कोई उपाय नहीं है और कोई मार्ग नहीं हैं, यहाँ तक कि हमारा विचार भी जिसे पकड़ नहीं सकता योग का कहना है कि वही है सूक्ष्म।

अनुमान भी विचार का एक अंग हैं

कभी विज्ञान के लिए अणु अति सूक्ष्म था। जब उसका विखण्डन हो गया तो उसके लिए परमाणु सूक्ष्मतम हो गया। और जब परमाणु भी टूट गया तो वह अब इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और प्रोट्रान को उससे भी अधिक सूक्ष्मतम मानने लगा है। विज्ञान के लिए वे सर्वाधिक सूक्ष्मतम है क्योंकि वे नेत्र की सीमा से बाहर है। उनका अनुमान ही लगा सकते है वैज्ञानिक। लेकिन वे यह नहीं जानते की जो अनुमान के अन्तर्गत आता है उसे भी सूक्ष्म नहीं कहा जा सकता। इसलिए कि अनुमान भी विचार का एक अंग समझा जाता है। विज्ञान जिसे सर्वाधिक सूक्ष्मतम समझ रहा है वह भी योग की दृष्टि से सूक्ष्म नहीं है। योग महा विज्ञान है और है परम विज्ञान। उसका कहना है कि मनुष्य का विचार अथवा उसका अनुमान जहाँ पहुँच जाता है उस पहुँच के भी जो पार है यदि वहाँ तक भी विचार और अनुमान पहुँच जाता है तो उसके भी जो पार है वह जो सदैव हर बार अतिक्रमण कर जाता है सीमा के पार बार-बार हो जाता है वह है सूक्ष्म। सूक्ष्म का गुण ही है अतिक्रमण कर जाना। अथवा पार हो जाना। मनुष्य जहाँ तक उसे पकड़ पाता है वह उस पकड़ से सदैव सदैव शेष रह जाता है और रह ही जाएगा, तभी तो वह सूक्ष्म कहलाएगा।

अज्ञात और अज्ञेय

इसी सन्दर्भ में तुमको दो - एक और महत्वपूर्ण बातें बतला दूँ मैं किशोरी माँ बोली - भारतीय दर्शनों में दो महत्वपूर्ण शब्द हैं पहला है 'अज्ञात' और दूसरा

है 'अज्ञेय'। हम प्रायः सूक्ष्म से 'अज्ञात' का अर्थ लेते हैं। जब हम सूक्ष्म की दिशा में आगे बढ़ते हैं तो यही सोच समझकर बढ़ते हैं कि हम किसी अज्ञात की ओर जा रहे हैं। लेकिन योग जिस 'सूक्ष्म' की बात करता हैं वह कुछ और ही हैं। क्योंकि आज जो अज्ञात है वह कल निश्चय ही 'ज्ञात' हो जाएगा। अज्ञात को कभी न कभी ज्ञात होना ही है। इसलिए अज्ञात भी सूक्ष्म नहीं है।

सूक्ष्म के रहस्य को ध्यानपूर्वक समझने का प्रयत्न करना होगा तुम्हें किशोरी माँ, मेरी ओर देखकर बोली।

जो स्थूल है जो नेत्र पथ पर आता है वही ज्ञात है। लेकिन जो कभी किसी अवस्था में किसी भी प्रकार किसी भी साधना से अथवा किसी भी उपाय से ज्ञात हो ही नहीं सकता। जो ज्ञान की सीमा के बाहर है, जो विचार की पकड़ के बाहर है और जो जानने समझने से भी बाहर है वह अज्ञेय है। इसलिए 'सूक्ष्म' का अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि कभी किसी समय किसी माध्यम से अथवा किसी उपकरण द्वारा हम उसे जान लेंगे। यह कदापि सम्भव नहीं है।

सत् और असत्

भारतीय धर्म और संस्कृति में भगवान, ईश्वर, परमेंश्वर, परमात्मा आदि शब्द भरे हुए हैं। इच्छानुसार मनमाने ढंग से बिना कुछ सोचे समझे इन शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र हुए है। वैसे तो अर्थ और गुण की दृष्टि से ये सभी शब्द एक दूसरे से भिन्न हैं लेकिन सच पूछा जाए तो एक ही वस्तु-जिसे 'ब्रह्म' की संज्ञा दी गयी हैं की ये भिन्न-भिन्न नाम है। सगुणोपासना भूमि में ब्रह्म जिस रूप में प्रकट हुआ हैं उसी रूप की व्याख्या के ये नाम हैं। लेकिन सर्वाधिक आश्चर्य की बात तो यह हैं कि सभी ज्ञानी, सभी तपस्वी, सभी साधक, सभी योगी और सभी भक्तगण भगवान का दर्शन चाहते हैं, परमात्मा से साक्षात्कार करना चाहते है और परमेश्वर से तादात्म्य स्थापित करना चाहते हैं। ये सारे लोग किसी न किसी रूप में इसके लिए व्याकुल हैं। लेकिन ऐसे महापुरुष लोग कभी भी यह जानने समझने का प्रयत्न नहीं करते कि जो कुछ भी ज्ञान की ओर विचार की सीमा में आ जाएगा। जो जानने समझने की सीमा में आ जाएगा और जो इन्द्रियों की पकड़ में आ जाएगा-वह पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ न होगा। परमात्मा, परमेश्वर अथवा ईश्वर का अर्थ ही हैं जो ज्ञान की सीमा से बाहर है जो विचार की परिधि से मुक्त हैं जो जाना समझा नहीं जा सकता और जो इन्द्रियों की पकड़ के बाहर हैं और जो सीमाओं से मुक्त हैं।

यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि अभी तक मनुष्य परमेश्वर के रूप में, परमात्मा के रूप में अथवा भगवान के रूप में जो कुछ जाना समझा हैं और

उसके विषय में जितना जो कुछ 'ज्ञान' प्राप्त किया हैं वह सब पदार्थ हैं, पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सच पूछा जाय तो मानव प्रज्ञा अभी तक जिसे समझ न सकी हैं। मनुष्य के ज्ञान की परिधि में अभी तक जो नहीं आ सका है। जो मानव इन्द्रियों की सीमा के बाहर है अभी तक। और जो मानव के जानने समझने से परे हैं अभी तक वही परमात्मा है वही परमेश्वर है, वही ईश्वर है, वही भगवान है, और वही है ब्रह्म।

सारांश यह कि जो ज्ञान, प्रज्ञा और इन्द्रियों की सीमा में है वह हैं असत् और जो ज्ञान, प्रज्ञा और इन्द्रियों की सीमा के बाहर है वह है 'सत्'। असत् और सत् में यही अन्तर हैं। इस तथ्य को तुम्हें एक उदाहरण देकर समझाए दे रही हूँ। समझो एक मन्दिर है। मन्दिर में किसी देवता की पाषाण प्रतिमा स्थापित हैं और पाषाण प्रतिमा पर ताजे फूलों की माला पड़ी हैं। कुछ ही समय के बाद माला के सभी फूल मुरझाकर बिखर जाऐंगे। सौ दो सौ वर्ष बाद पाषाण की वह देव प्रतिमा भी टूट फूट कर बिखर जाएगी। फूल के बिखरने और प्रतिमा के बिखरने में केवल समय का अन्तर हैं। बस, बिखरना तो एक न एक दिन दोनों को ही है। लेकिन एक वस्तु ऐसी हैं जो कभी नहीं बिखरेगी और वह हैं मन्दिर का सूनापन मन्दिर का खाली पन। वही 'सत्' हैं, शेष सब असत् हैं फूल प्रतिमा आदि सब। समझ गए न। मन्दिर में जो शून्य भरा गया हैं-वह वास्तव में शून्य नहीं है, बल्कि पूर्ण हैं। शून्य से नकार का अवश्य बोध होता है लेकिन पूर्ण से बोध होता हैं विधेय का। जो शून्य हैं वही पूर्ण हैं और जो पूर्ण है वहीं शून्य हैं। केवल शून्य का ही पूर्ण होना सम्भव है क्योंकि शून्य को अपूर्ण होने का कोई अर्थ ही नही है। तुम शून्य को दो भागों में कभी भी विभक्त नहीं कर सकते। शून्य और 'पूर्ण' एक ही सत्य के दो नाम है। उसके लिए तुम नकार का प्रयोग करो या करो प्रयोग विधेय का। दोनों एक ही हैं। परमेश्वर के संबंध में भी यही बात हैं। जिन लोगों ने परमेश्वर को पूर्ण समझा वे साधना की बहियात्रा पर थे। इसी प्रकार जिन लोगों ने परमेश्वर को शून्य समझा वे साधना की अन्तर्यात्रा पर थे। पहली यात्रा योग मार्ग की और दूसरी यात्रा साख्य मार्ग की है।

सूक्ष्म शरीर के प्रसंग में उससे संबंधित किशोरी माँ द्वारा जिन गूढ़ विषयों का संक्षिप्त में उद्घाटन हुआ, वह वास्तव में अध्यात्म जगत की अमूल्य सम्पदा थी। इसमें सन्देह नहीं। स्वयं अपने आप जरा हंस कर बोली - किशोरी माँ मूल विषय से थोड़ा भटक गयी थी, तुमने सूक्ष्म शरीर के संबंध में जानना चाहा था न ? मैंने भी मुस्कराकर सिर हिलाया, जिसका अर्थ था 'हाँ' किशोरी माँ कहने लगी जैसा कि तुमको ज्ञात है, आत्मा पूर्ण हैं अपने आप में और पूर्ण स्वतंत्र भी

हैं अपने आपमें। वह कहीं न जाती है और न तो कहीं से आती है। सूक्ष्म शरीर आता जाता है। स्थूल शरीर मिलता हैं और एक दिन नष्ट हो जाता हैं। वह मिलता हैं माता-पिता से। और सूक्ष्म शरीर मिलता हैं पिछले जन्म से। आत्मा तो सदा है ही। सूक्ष्म शरीर यदि न हों तो स्थूल शरीर की उपलब्धि सम्भव नहीं हैं। सूक्ष्म शरीर द्वारा ही स्थूल शरीर का संबंध मन और आत्मा से जुड़ता हैं।

योग साधना का मूल उद्देश्य

स्थूल शरीर एक यंत्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है-जो पंचप्राणों द्वारा संचालित होता हैं। एक ही प्राण अपने आपको पाँच रूपों में विभक्त कर शरीर के यंत्रों को अलग-अलग ढंग से गति और शक्ति प्रदान करता है। दूसरी ओर स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का भी संबंध बनाएँ रखता है वह। दोनों शरीरों के बीच सूत्र के रूप में एक मात्र प्राण ही काम करता है। उसी सूत्र के कारण दोनों शरीर एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं।

शरीर परतंत्र है। उसके सभी आन्तरिक और बाह्य यंत्र प्राकृतिक हैं जिन पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं। प्रकृति में विकृति उत्पन्न होना स्वाभाविक हैं। धीरे धीरे शरीर और उसके यंत्र भी विकृत होने लगते हैं। सभी शारीरिक और मानसिक रोग उसी विकृति के कारण उत्पन्न होते हैं। अन्ततः एक क्षण ऐसा आता है कि विकृति के कारण यंत्र शनैः शनैः अपना काम करना बन्द करने लग जाते हैं और उसी के साथ श्वास प्रश्वास की गति भी मन्द से मन्दतर होती जाती हैं जिसका परिणाम होता हैं मृत्यु।

मृत्यु घटित होते ही सूक्ष्म शरीर अलग हो जाता हैं और मन और आत्मा को लिए आगे की यात्रा पर निकल पड़ता है वह। और उसी के साथ पाँचो प्राण अपने अपने तत्वों में-जिनको पंच तत्व कहते हैं-विलीन हो जाते हैं।

सूक्ष्म शरीर ही सर्वे सर्वा हैं। योग-तंत्र आदि की जितनी भी आन्तरिक साधनाएँ हैं वह सब सूक्ष्म शरीर को नष्ट करने के लिए ही हैं। जैसे स्थूल शरीर मृत हो जाता हैं उसी प्रकार साधना द्वारा सूक्ष्म शरीर को भी मृत किया जाता हैं। उसका मृत होना इसलिए आवश्यक है कि वही एक मात्र कारण है जिसके द्वारा आत्मा स्थूल शरीर ग्रहण करती हैं यानी जन्म लेती हैं संसार में। यदि सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व समाप्त हो जाय तो स्थूल शरीर ग्रहण करना असम्भव हैं। इसलिए सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व के समाप्त होते ही एक ही साथ दो घटनाएँ घटती हैं-पहली यह कि स्थूल शरीर की यात्रा हमेशा के लिए समाप्त हो जाती

है। जन्म और मृत्यु से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है वह। और दूसरी यह कि परमेश्वर अथवा परमात्मा से साधक की निकटता बढ़ जाती हैं। यह कहना साधुतर होगा कि साधक और ईश्वर के बीच सीमा की जो दूरी थी वह समाप्त हो जाती हैं हमेशा हमेशा के लिए। वास्तव में सूक्ष्म शरीर ही एक ऐसा सूत्र है जो हमें एक ओर शरीर से और दूसरी ओर ईश्वर अथवा परमात्मा से जोड़े रहता हैं और जब वह सूत्र टूट जाता है तो उसी के साथ हमारा संबंध जहाँ एक ओर हमेशा के लिए पार्थिव शरीर से भंग होता है। और जन्म मृत्यु के बंधन से हमें सदैव के लिए मुक्ति प्राप्त होती है वही दुसरी ओर ईश्वर अथवा परमात्मा से हमारा संबंध सदैव के लिए स्थापित हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं समस्त साधना की यही एक मात्र उपलब्धि हैं।

सूक्ष्म शरीर का निर्माण और विसर्जन

जैसे स्थूल-शरीर अणुओं का समूह है उसी प्रकार सूक्ष्म-शरीर विद्युत कणों और परमाणुओं के मिश्रण का समूह हैं। इसलिए सूक्ष्म के संबंध में मैंने जो चर्चा की हैं उसकी परिभाषा के अन्तर्गत सूक्ष्म-शरीर की सूक्ष्मता नहीं आती। सूक्ष्म शरीर में तीन भाग विद्युत कण हैं और एक भाग है परमाणु। कभी-कभी दोनों का अनुपात अधिक या कम भी हो जाता है। सूक्ष्म शरीर उसी समय दिखलायी पड़ता है जब परमाणु की मात्रा अधिक हो जाती है। अब तो सूक्ष्म शरीर के फोटो ग्राफ भी लिए जा चुके हैं। अस्तु, सूक्ष्म शरीर के विद्युत कणो और परमाणुओं के मिश्रण में मनुष्य को समस्त इच्छाएँ समस्त कामनाएँ समस्त आकाँक्षाए अपेक्षाएँ और मनुष्य के द्वारा किए गए कर्म, न किए गए कर्म लेकिन चाहे हुए कर्म और उसके अच्छे बुरे विचार, वह जो करने वाला है, वह जो करना चाहता हैं और वह जो कर चुका हैं, उसने जो सोचा-विचारा हैं, जो किया है, जो अनुभव किया हैं, जो भावना की हैं और जो कुछ उसके पूर्व संस्कार हैं-वे सब के सब भरे हुए होते हैं।

विद्युत कणों के वैद्युतिक प्रभावों के कारण सूक्ष्म शरीर कभी छोटा हो जाता हैं तो कभी काफी बड़ा और कभी बादल की तरह फैल जाता हैं। लेकिन प्रायः वह स्थूल शरीर के ही आकार प्रकार का होता हैं। इस प्रसंग के अन्त में बस इतना ही कहना है कि सूक्ष्म-शरीर के विसर्जन से जन्म-मृत्यु से हमेशा के लिए मुक्ति मिल जाती है। गर्भ की यात्रा समाप्त हो जाती है और मानव जीवन से भी छुटकारा मिल जाता है। समस्त साधनाएँ उसी छुटकारे के लिए ही हैं। इसमें सन्देह नहीं।

किशोरी माँ का यौगिक रूप

अचानक बर्फ गिरने लगी। किसी ने सोचा भी न था कि प्रकृति में एकाएक परिवर्तन हो जाएगी। किशोरी माँ को एक योगी के आश्रम में जाना था लेकिन अपनी यात्रा इसी कारण स्थगित करनी पड़ी उन्हें।

कहने की आवश्यकता नहीं किशोरी माँ से मुझे जो आध्यात्मिक उपलब्धि हुई थी अब तक वह अपने आपमें अति मूल्यवान और अति महत्वपूर्ण थी इसमें सन्देह नहीं। लेकिन मेरी आध्यात्मिक जिज्ञासा अभी भी शान्त नहीं हुई थी। और कुछ जानना समझना चाहता था मैं इस दिशा में उनसे। मठ में एक छोटी सी कोठरी रहने के लिए दे दी गयी थी किशोरी माँ को। लगातार तीन दिनों तक अपनी कोठरी से बाहर नहीं निकली वह। मुझे थोड़ी उत्सुकता हुई। इस संबंध मे जब लामा वर्तन से पूछा तो उन्होंने कहा समाधि में होगी वह। धीरे-धीरे दो तीन दिन और व्यतीत हो गया। अन्त में रहा न गया मुझसे। एक रात जब गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी मठ में, मैं अपनी कोठरी से बाहर निकला और धीरे-धीरे चल कर किशोरी माँ की कोठरी के सामने जाकर खड़ा हो गया। भीतर गहरी शान्ति थी। लगा जैसे कोई भीतर है ही नहीं। काठ की किवाड़ थी, उसमें एक छेद था छोटा-सा। उसी छेद से भीतर झाँककर देखने का प्रयास किया मैंने। हे भगवान! कितना अद्‌भुत और विलक्षण था सब कुछ ! आँखे चुधियाँ सी गयी जैसे। पूरी कोठरी धवल शुभ्र प्रकाश से भरी हुई थी और उस प्रकाश में मैंने देखा पद्‌मासन की मुद्रा में किशोरी माँ नेत्र बन्द किए बैठी हुई थीं आसन पर ! और उनके पूरे शरीर से हल्के गुलाबी रंग की रश्मियाँ फूट रही थीं उस समय। मुँह बाये और विस्फारित नेत्रों से देख रहा था मैं वह अविश्वसनीय दृश्य ! कुछ क्षण बाद सहसा किशोरी माँ के पार्थिव-शरीर से एक आकार प्रकट होकर अलग होने लगा। वह आकार किशोरी माँ के पद्‌मासन की मुद्रा में बैठे शरीर जैसा था। मैंने देखा वह आकार पारदर्शी था और जब किशोरी माँ के पार्थिव शरीर से बिल्कुल अलग हो गया तो गुलाबी रंग के प्रकाश से पूरी तरह भर उठा वह। उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ जब वह गुलाबी रंग के प्रकाश से युक्त आकार द्रुत गति से किशोरी माँ की परिक्रमा कर धीरे-धीरे छोटा होता चला गया और अन्त में इतना छोटा हो गया कि उसे तीन-चार इंच के आकार से अधिक नहीं कहा जा सकताा था। और दूसरे ही क्षण उसी आकार में गायब हो गया वह। और उसके गायब होते ही कोठरी में फैला हुआ शुभ्र प्रकाश भी धीरे-धीरे कम होने लग गया। कुछ ही क्षणों के बाद अँधेरे में डूब गयी पूरी कोठरी। मैं भी अपनी कोठरी में आकर लेट गया और सोचने लगा किशोरी माँ के संबंध में।

निश्चय ही वह कोई उच्च कोटि की योगात्मा थीं इसमें सन्देह नहीं। सोचा, देखे हुए उन रहस्यमय दृश्यों की चर्चा सबेरे लामा वर्तन से करूंगा मै। रात अभी शेष थी। सम्भवतः तीसरा प्रहर समाप्त होने वाला था। सहसा मेरी दृष्टि कोठरी के बाहर आकाश की ओर घूम गयी। आश्चर्य कौतूहल और जिज्ञासा के मिले जुले भाव से भर गया मेरा मन। छोटा सा वह प्रकाशवान आकार-जो किशोरी माँ की कोठरी से अचानक गायब हो गया था स्याह आकाश में किसी शुभ्र नक्षत्र की तरह चमकता हुआ मन्थर गति से नीचे उतर रहा था। घोर अंधकार में आकण्ठ डूबे वाता!वरण में अत्यन्त रहस्यमय लग रहा था वह प्रकाशवान आकार। हे भगवान! वास्तव में यह है क्या... सारा शरीर रोमान्चित हो उठा मेरा एक बारगी।

दूसरे क्षण, वह प्रकाशनवान आकार मठ के भीतर आ गया था। अब मैं उसे बिल्कुल स्पष्ट देख रहा था। वह बिल्कुल पद्मासन की मुद्रा में बैठी किशोरी माँ के रूप का आकार था। मैं अभी और कुछ समझ पाता कि तभी वह गायब हो गया। लगा जैसे किशोरी माँ की कोठरी में चला गया हो। दूसरे दिन जब लामावर्तन को सारी बातें बतलायी तो बोले नहीं वह कुछ, मौन रहें। उनका मौन उस समय अत्यन्त रहस्यमय लगा मुझे।

लगभग एक सप्ताह बाद समाधि भंग हुई किशोरी माँ की। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया। प्रणाम कर उनके सामने बैठ गया मैं। उन्होंने सिर उठाकर पहले मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखा और फिर गम्भीर स्वर में कहा-मैं जानती हूँ तुम जिस महत्वपूर्ण यौगिक रहस्य से परिचित हुए हो वह रहस्य मेरा अपना हैं। उस दिन मैं अपने दिव्य सूक्ष्म-शरीर द्वारा अपने गुरुदेव का दर्शन करने भाव राज्य में गयी हुई थी।

भावराज्य

भाव राज्य क्या है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में किशोरी माँ बोलीं विचार का जो पहला रूप है वही भाव है। भाव से भी गहरी भावना है। भू राज्य और सूक्ष्म राज्य के मध्य में भाव राज्य हैं। वहाँ उषा कालीन प्रकाश का विस्तार हैं। हर समय वैसा ही प्रकाश वहाँ विद्यमान रहता है। भाव राज्य में मात्र केवल भाव अथवा भावना का अत्यन्त सूक्ष्म प्रवाह मात्र है। वहाँ निवास करने वाले लोग जो भू राज्य से ही गए हुए होते हैं-अपने विचारों का आदान-प्रदान केवल भाव द्वारा करते है। एक दूसरे का भाव क्या है? उसे भाव द्वारा ही समझ लिया जाता है भाव राज्य में।

आत्मा और मन की तीन अवस्थाएँ

इस प्रसंग में तुमको सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि मन को यदि आयुर्वेद के अनुसार पदार्थ मान लिया जाए तो पदार्थ विज्ञान के आधार पर मन को तीन अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है, पहली अवस्था है ठोस, दूसरी अवस्था हैं द्रव यानी तरल और तीसरी अवस्था है वाष्पी-भूत अथवा ऊर्जा। मन की ये तीनों अवस्थाएँ आत्मा की जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से संबंधित हैं। जब आत्मा भौतिक जगत में क्रियाशील रहती है तो उसे आत्मा की जाग्रत अवस्था कहते हैं। उस समय मन अपनी ठोस अवस्था में रहता हैं आत्मा के साथ। आत्मा और मन की यह अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण और सर्वोच्च समझी जाती हैं। सर्वोत्तम तो वह है ही। कहने की आवश्यकता नहीं विश्व ब्रह्माण्ड में जितने भी लोक लोकान्तर हैं और जितने भी जगत हैं उनमें निवास करने वाले सभी प्रकार के प्राणी सदैव लालायित रहते हैं उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए।

जब आत्मा स्वप्न जगत में क्रियाशील रहती है तो उसे आत्मा की स्वप्नावस्था कहते हैं। उस समय मन अपनी तरल अवस्था में रहता है आत्मा के साथ। इसी प्रकार जब आत्मा सुषुप्ति की अवस्था में रहती है तो उस समय मन अपनी वाष्पीभूत अवस्था में रहता है आत्मा के साथ। वाष्पीभूत से मतलब है कि सुषुप्ति की अवस्था में आत्मा के साथ मन रहता ही नहीं। इसीलिए गहरी नींद की अवस्था में किसी प्रकार का बोध नहीं रहता। बोध करने वाला जो मन है वह वाष्पीभूत हुआ रहता हैं।

सुषुप्ति और समाधि

बाह्य दृष्टि से प्रगाढ़ सुषुप्ति और समाधि दोनों की अवस्था एक ही है। एक प्रकार से दोनों एक समान हैं। क्योंकि प्रगाढ़ सुषुप्ति में तुम उसी अवस्था को उपलब्ध होते हो जिस अवस्था को एक योगी समाधि में उपलब्ध होता है। लेकिन एक महान अन्तर अवश्य है और वह यह कि जब तुम उस अवस्था को उपलब्ध होते हो तो गहरी सुषुप्ति यानी एक प्रकार की मूर्च्छा में रहते हो। लेकिन एक योगी जब उस अवस्था को उपलब्ध होता है तो वह पूर्ण चैतन्य रहता है और रहता है पूर्ण जाग्रत। इसी प्रकार एक और महान अन्तर है और वह यह कि तुम उस अवस्था में जैसे जाते हो और जिस रूप में जाते हो, उसी अवस्था में और उसी रूप में खाली हाथ वापस ही लौट आते हो। लेकिन एक योगी खाली हाथ वापस नही लौटता। वह उन अनुभवों का साक्षात्कार कर वापस लौटता

है जिनको योग की भाषा में परानुभव कहते हैं और जो भावातीत अवस्था में उपलब्ध होती है। वह परानुभव भौतिक स्तर पर कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता। तुमको बतला दूँ कि मैं जिस समाधि को उपलब्ध थी वह भावातीत समाधि थी। अब तुमको भाव राज्य के संबंध में थोड़ा बतला दूँ किशोरी माँ आगे बोली भौतिक जगत और सूक्ष्म जगत के बीच में है भाव राज्य! वहाँ भाव ही सब कुछ हैं उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। भाव राज्य के वातावरण में मात्र केवल भावना का तरल और वह भी अति सूक्ष्म प्रवाह है। वहाँ वैचारिक आदान प्रदान भावों द्वारा ही होता है। भावनाओं के द्वारा ही वहाँ के लोग एक दूसरे से परिचित होते हैं और अपनी आत्माभिव्यक्ति भी करते हैं।

दिव्य सूक्ष्म शरीर

किशोरी माँ पानी पीकर आगे बोली-जिस सूक्ष्म शरीर को चर्चा तुमसे मैंने की थी, उसका संबंध भाव राज्य से नहीं है। जिस सूक्ष्म शरीर में केवल भाव अथवा भावना की ही प्रधानता रहती है और कुछ नहीं रहता वही भाव राज्य में प्रवेश कर सकता है और ऐसे ही सूक्ष्म-शरीर को योग की भाषा में दिव्य सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

वैसे तो सभी प्रकार के सूक्ष्म-शरीर थोड़ी बहुत मात्रा में प्रकाशित होते है। उनकी प्रकाश की मात्रा सत्व, रजु और तजु में इन तीनों गुणों पर आश्रित होती हैं। सत्वगुणी सूक्ष्म-शरीर का रंग शुभ्र होता हैं। रजोगुणी सूक्ष्म-शरीर का रंग नीला अथवा हल्का पीला होता है और इसी प्रकार तमो गुणी सूक्ष्म-शरीर का रंग होता है काला! लेकिन दिव्य सूक्ष्म-शरीर का रंग होता है सुनहला। अब तुमको उनके प्रकाश का भी रहस्य समझा दूँ। सूक्ष्म शरीर विद्युत कणों और परमाणुओं के समूह से निर्मित होता है। वे विद्युतकण आपस में बराबर संघर्ष करते रहते हैं कहने की आवश्यकता नहीं उन्हीं संघर्ष के परिणाम स्वरूप जो प्रकाश उत्पन्न होता है वही प्रकाश सूक्ष्म-शरीर का प्रकाश होता है। पार्थिव-शरीर में सूक्ष्म-शरीर का वही प्रकाश आभा-मण्डल के रूप में प्रकट होता हैं। वैसे उस प्रकाश की उर्जा सारे स्थूल-शरीर से बराबर प्रवाहित होती रहती हैं। विशेषकर नेत्रों से और उंगलियों के अग्र भाग से।

प्राण और प्राण शक्ति

किशोरी माँ बोली - थोड़ा तुमको प्राण और प्राण शक्ति के संबंध में विशेष रूप से बतला देना चाहती हूँ। तुम तो यह जानते ही हो कि भौतिक विज्ञान के

मूल में जैसे विद्युत शक्ति है वैस ही योग-विज्ञान के मूल में है प्राण शक्ति। सच पूछा जाय तो प्राण ऊर्जा ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का अंश है जो अपने आपमें अति महत्वपूर्ण है इसलिए कि चेतना का संचालन उसी से होता है।

प्राण और प्राण शक्ति के तीन मुख्य मूल स्रोत है - सौर प्राण शक्ति, वायु प्राण शक्ति और भू प्राण शक्ति। सूर्य से जो प्राण शक्ति प्राप्त होती है उसे सौर प्राण शक्ति कहते हैं। उससे सम्पूर्ण शरीर को प्राण शक्ति प्राप्त होती हैं-जिससे मनुष्य हमेशा स्वस्थ रहता हैं। योगीगण सूर्य की ओर पीठ करके बैठते है ताकि मेरुदण्ड स्थित केन्द्र अधिक से अधिक सौर ऊर्जा यानी सौर प्राण शक्ति ग्रहण कर सके। और उनकी समाधि अधिक से अधिक समय तक स्थिर रह सके। क्योंकि योगी के पास जितनी अधिक प्राण शक्ति रहती है-उतनी अधिक गहरी समाधि को उपलब्ध होता है वह। एक बात यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि सौर प्राण में अत्यधिक शक्ति रहती है इसलिए साधारण लोगों को धूप में अधिक नहीं रहना चाहिए क्योंकि शक्ति की मात्रा अधिक बढ़ जाने के कारण स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

वायु प्राण शक्ति वास्तव में सूक्ष्तमत प्राण वायु हैं जिसे ईथर कहते हैं। ईथर सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में समान रूप से विद्यमान हैं। वही सूक्ष्मतम प्राण शक्ति श्वसन क्रिया द्वारा फेफड़े में पहुँच कर सूक्ष्म-शरीर के केन्द्र द्वारा सम्पूर्ण स्थूल-शरीर को जीवन प्रदान करती है। इसीलिए इसे जीवनी शक्ति भी कहते है। वायु प्राण शक्ति स्थूल-शरीर और सूक्ष्म-शरीर दोनों को संचालित करती है। सहजरूप में हम जो श्वास-प्रश्वास ग्रहण करते हैं वह स्वतंत्र तंत्रिका तंत्र के अन्तर्गत प्राकृतिक है। वायु प्राण शक्ति से अधिक से अधिक जीवनी शक्ति उपलब्ध हो इसके लिए योग में प्राणायाम बतलाया गया है। एक लय ताल में यदि प्राण शक्ति को श्वसन क्रिया द्वारा लिया जाय तो सूक्ष्म-शरीर विकसित होने लगता है और विकास को प्राप्त कर स्थूल शरीर के चारों ओर कम से कम पाँच इंच तक फैल जाती है उसकी आभा। जो उच्च कोटि के योगी हैं उनके शरीर के चारों ओर लगभग एक फिट तक फैला रहता है उनका सूक्ष्म-शरीर की आभा ! यदि उसके निकट कोई साधारण व्यक्ति पहुँच जाय तो उसका मन घबराने लगता है। उसका रक्त चाप कम या अधिक हो जाता है। वह अधिक समय वहाँ ठहर नहीं सकता।

इस प्रसंग में मुझे स्वामी दिव्यानन्द परमहंस देव का स्मरण हो आया है। स्वामी जी काशी के हनुमानघाट मुहल्ले के एक मकान में अकेले रहते थे। आयु तो बहुत अधिक थी लेकिन शरीर से स्वस्थ प्रतीत होते थे वह। सत्संग के लिए

प्रायः उनके यहाँ सायंकाल के समय जाया करता था मैं। अपने अत्यन्त समीप किसी को भी आने नहीं देते थे स्वामीजी ! उनके चरण स्पर्श करने का प्रश्न ही नहीं था। कभी-कभी उनके कमरे में जब वे बैठे रहते थे मुझे काफी बैचेनी होती थी। मन घबराने लगता था। लगता था जैसे मेरा रक्तचाप कम हो गया है! शायद मेरी स्थिति को समझ गये स्वामीजी! बोले - तुम नित्य कुछ समय तक शुद्ध जल में दोनों पैर रखकर बैठा करो। इससे तुम्हारी प्राण शक्ति बढ़ेगी। क्योंकि जल में भी प्राण शक्ति प्रचुर मात्रा में होती है। तुम्हारे शरीर में प्राण शक्ति का अभाव है। इसीलिए मेरे पास रहने से तुम घबराते हो और बेचैनी का भी अनुभव करते हो।

कहने की आवश्यकता नहीं मैं नित्य पानी में दोनों पैर डालकर घंटो बैठने लगा। कुछ ही दिनों के बाद अपने आपमें विशेष स्फूर्ति और उल्लास का अनुभव करने लगा मैं। कार्य करने की भी क्षमता बढ़ गयी मेरी। स्वामीजी के निकट बैठने में भी अब मुझे शान्ति और सुख का अनुभव होने लगा था। पहले जैसी स्थिति नहीं उत्पन्न होती थी।

इस संबंध में स्वामी ने बतलाया कि उनके शरीर से सर्वाधिक प्राण ऊर्जा जो विकीर्ण होती हैं-जिसे तुम्हारा मन प्राण और शरीर सहन नहीं कर पाता था, इसीलिए तुम्हारी शारीरिक और मानसिक स्थिति बिगड़ जाती थी। पानी से प्राप्त होने वाली प्राण शक्ति ने तुमको इस योग्य बना दिया कि तुम उस ऊर्जा को सहन कर सको।

एक दिन सायंकाल के समय सहसा हवा के झोंके से दीपक बुझ गया। पूरा कमरा डूब गया अँधेरे में। और उसी अंधेरे में एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा मैंने। स्वामीजी के शरीर के चारों ओर लगभग एक फुट के दायरे में शुभ्र प्रकाश फैला हुआ था। बाद में ज्ञान हुआ कि वह शुभ्र प्रकाश और कुछ नहीं स्वामीजी की सूक्ष्म काया थी।

किशोरी माँ ने बतलाया कि भू प्राण शक्ति विशेषकर कच्ची जमीन और पानी में भींगी हुई मिट्टी में सर्वाधिक होती हैं। नंगे पैर कच्ची जमीन पर चलने पर स्वयं अपने आप पूरे शरीर को भू प्राण शक्ति उपलब्ध होने लगती है। भू प्राण शक्ति से शरीर स्वस्थ निरोग और रक्त स्वच्छ रहता है। इसके अतिरिक्त नेत्र की ज्योति भी बढ़ती है। हृदय रोग की भी सम्भावना कम रहती है।

विशेष प्रशिक्षण प्राप्त कुछ ऐसे भी लोग होते है जो भूमि के अन्दर अपने आपको बन्द कर हफ्तों बैठे रहते हैं और जीवित रहते हैं। इसका बस इतना ही रहस्य है कि उनके शरीर की त्वचा के सूक्ष्म छिद्र भू प्राण शक्ति को ग्रहण करते हैं और उसी से ऐसे लोग जीवित तो रहते ही है इसके अतिरिक्त उन्हें भूख

प्यास भी नहीं लगती। क्योंकि भू प्राण शक्ति में वे सब तत्व विद्यमान रहते है जो जीवन के लिए अति आवश्यक हैं।

तुमको ज्ञात होना चाहिए कि भू प्राण शक्ति-इच्छा शक्ति और विचार शक्ति को भी प्रबल और प्रखर करती है। जीवनी शक्ति भी उससे अधिक से अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है।

योग में जल प्राण शक्ति को सर्वोत्तम और सबसे महत्वपूर्ण बतलाया गया है। क्योंकि सूर्य का प्रकाश, वायु और भूमि-इन तीनों के सम्पर्क में पानी रहता है प्राय:। इसलिए इन तीनों की प्राण शक्तियों का समिश्रण रहता है पानी में। योग में जल प्राण शक्ति को प्राप्त करने के लिए मुख्य रूप से चार प्रकार बतलाए गए हैं। तीनों समय स्वच्छ जल से स्नान नदी के तट पर बैठकर अधिक मात्रा में श्वास लेना अथवा प्राणायाम करना। ब्राह्म मुहुर्त में शुद्ध पानी पीना। ताबें के बड़े से पात्र में शुद्ध पानी भरकर उससे अपने दोनों पैरा को डालकर कम से कम एक घंटा बैठना।

जल प्राण शक्ति से इच्छा-शक्ति, मन: शक्ति और प्राण शक्ति की वृद्धि होती है। स्मृति वर्धक भी है वह। चित्त तुरन्त एकाग्र होता है उससे। शरीर भी स्वस्थ और निरोग रहता है उसके प्रभाव से। प्राणायाम और ध्यान धारणा में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती है जल प्राण शक्ति इसमे सन्देह नहीं।

इस संबंध में किशोरी माँ ने आगे बतलाया कि। जिस व्यक्ति के शरीर में अधिक मात्रा में प्राण शक्ति होती है उसके निकट रहने वाले लोग उसके प्रभाव से स्वयं को स्फूर्तिमय, उल्लासमय, आनन्दमय और जीवन्त अनुभव करते है। अपने भीतर प्रसन्नता का भी अनुभव करते हैं। अधिक से अधिक उस व्यक्ति के निकट रहने की इच्छा होती है लोगों की।

इसी प्रकार जिसके शरीर में प्राण शक्ति की मात्रा कम होती है वह अनजाने में दूसरे से प्राण शक्ति प्राप्त कर लेता है। इसलिए तुम किसी ऐसे व्यक्ति से मिले होगे जिसके निकट रहकर तुमको बिना किसी कारण थकान और खालीपन का अनुभव हुआ होगा।

प्राण शक्ति सबसे अधिक किसके पास होती है इसके संबंध में किशोरी माँ ने बतलाया कि जो वास्तव में योगी है आध्यात्मिक और धार्मिक प्रवृत्ति के है, देवोपासक हैं। तन-मन से निर्मल हैं। जिनकी आत्मा शुद्ध और निश्छल हैं ऐसे लोगो में प्राण शक्ति की मात्रा अधिक होती हैं। इसी प्रकार जो लोग कपटी है, धूर्त हैं, पाखण्डी है, असत्यवादी हैं, तन मन से कलुषित हैं। साधना उपासना अध्यात्म और धर्म के नाम पर आडम्बर और पाखण्ड करते हैं। कुछ न होते हुए

भी अपने को योगी, महात्मा और त्यागी कहते हैं उनके पास प्राण शक्ति की मात्रा अल्प मात्रा में होती हैं। ऐसे लोगों से सदैव दूर रहना चाहिए। क्योंकि वे दूसरों के प्राणों से प्राणवान रहते हैं। तुम जिस व्यक्ति के निकट जाते ही थकान का अनुभव करो, बेचैनी का अनुभव करो बार-बार जम्हाई लेने लगो और आलस्य का अनुभव करने लगो-समझो उस व्यक्ति में प्राण की मात्रा कम हैं और अनजाने में तुमसे वह प्राण ग्रहण कर रहा है। मदिरापान करने वाले, जुआ खेलने वाले और नीच कर्म करने वाले लोगों के पास भी प्राण शक्ति की मात्रा कम रहती हैं। जो व्यक्ति दीर्घ रोगी हैं यदि उसके निकट जाने पर मन घबराता है, उसके निकट बैठने की इच्छा नहीं होती तो समझो उस रोगी में प्राण शक्ति का अभाव है। इसी प्रकार जिस रोगी के निकट बैठने पर सुख का अनुभव हो, अधिक बैठने की इच्छा हो उसके पास तो, समझो वह रोगी शीघ्र स्वस्थ होगा।

बृक्षों में सभी प्रकार की प्राण शक्तियाँ

तुमको ज्ञात होना चाहिए सभी प्रकार के वृक्ष चारों प्रकार की प्राण शक्तियों को एक साथ ग्रहण करते हैं। कुछ वृक्ष ऐसे हैं जिनमें सर्वाधिक चारों प्रकार की प्राण शक्तियाँ प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं जैसे हर्रे, पीपल, बरगद, अर्जुन आदि। जो वृक्ष जितना पुराना होगा उतनी अधिक उनमें चारो प्राण शक्तियाँ होंगी इसमें सन्देह नहीं। पुराने वृक्षों के नीचे थके और बिमार व्यक्ति को शीर्घ आराम प्राप्त करने की सम्भावना होती हैं। दमा अथवा श्वास के रोगी के लिए पुराने वृक्ष अमृत के समान होते हैं। उनके नीचे लेटने या बैठने से दमा अथवा श्वास कष्ट में आशातीत लाभ होता हैं। तुमको यह जानकर घोर आश्चर्य होगा कि कोई भी, कैसा भी रोगी व्यक्ति पुराने वृक्ष के सामने खड़ा होकर अपने स्वास्थ्य लाभ की याचना बराबर करें तो उसके परिणाम अति अनुकूल होंगे। वह शीघ्र स्वस्थ हो जायेगा। एक बात और वह यह कि पुराने वृक्ष के तने को दोनों हाथ से दबाये रखने से भी चारों प्रकार की प्राण शक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। ऐसी स्थिति में शरीर में सिहरन अथवा कम्पन का होना स्वाभाविक है। यदि ऐसा होता है तो समझ लेना चाहिए कि वृक्ष से प्राण शक्ति प्राप्त हो रही है।

जीव द्रव्य शरीर

अब तक के आध्यात्मिक सत्संग से मुझे यह समझते देर न लगी थी कि किशोरी माँ केवल एक अध्यात्मिक आत्मा ही नहीं बल्कि योग-विज्ञान के विभिन्न महत्वपूर्ण और आपने आपमे रहस्यमय अंगों पर भी अपना पूर्ण अधिकार रखती

है। उन्होंने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहना शुरू किया सूक्ष्म शरीर के जो असंख्य विद्युत कणें हैं उनके आपस में बराबर संघर्षरत होने के कारण एक ऐसी आभा प्रस्फुटित होती हैं जिससे स्थूल शरीर चारों ओर से घिरा हुआ होता हैं। परामानसिक पद्धति उसे जीव द्रव्य शरीर कहती हैं। वास्तव में जीव द्रव्य शरीर सूक्ष्म शरीर का ही पर्याय हैं। वह बिल्कुल स्थूल शरीर जैसा ही होता हैं बिल्कुल प्रतिलिपि। परामनो विज्ञान की भाषा में जीव द्रव्य शरीर को वायोप्लाज्मिक कहते हैं। जिसका निर्माण दो शब्दों से हुआ है, पहला जीव (वायो) यानी 'जीवन' और दूसरा द्रव्य (प्लाज्मा)। यानी पदार्थ का चौथा रूप। साधारणतः पदार्थ के तीन रूप है-ठोस, द्रव और गैस। जिस द्रव्य यानी प्लाज्मा की चर्चा मैंने की है-वह एक आयनी कृत गैस हैं, जिससे धनात्मक और ऋणात्मक आवेश के अणु होते हैं। वह रक्त द्रव्य के समान नहीं होता। वास्तव में जीव द्रव्य का अर्थ है एक जीवित शक्ति, जो अदृश्य सूक्ष्म पदार्थ या वायवी पदार्थ का बना होता है। सच तो यह है कि जीव द्रव्य सूक्ष्म-शरीर की संचालिका शक्ति है।

पाठकों को ज्ञात होना चाहिए कि किशोरी माँ के बतलाये हुए'उपर्युक्त योग वैज्ञानिक तथ्य अब विज्ञान द्वारा पूर्ण प्रमाणित सिद्ध हो चुके हैं। विज्ञान ने किर्लियन फोटोग्राफी द्वारा जीव द्रव्य शरीर की पुनर्खोज की है। किर्लियन फोटोग्राफि के माध्यम से वैज्ञानिक छोटे वस्तुओं के जीवद्रव्य जैसे उंगलियों पत्तीयों फुलों ओदि का अध्ययन लेने और चित्र लेने में सफल हुए।

तुमको ज्ञात होना चाहए कि किशोरी माँ बोली इसी जीव द्रव्य शरीर द्वारा प्राण शक्ति अथवा ओजस्वी ऊर्जा ग्रहण होकर पूरे स्थूल-शरीर में फैलती और संचरित होती है।

जीव द्रव्य नाड़ियां

जिस प्रकार भौतिक शरीर में रक्त संचार के लिए नाड़ियाँ या रक्त। नलिकाएँ होती हैं उसी प्रकार जीव द्रव्य शरीर में भी न दिखाई देने वाली बारीक शिरोबिन्दु या नाड़ियाँ होती हैं, जिनके द्वारा प्राण शक्ति और जीव द्रव्य पदार्थ पूरे शरीर में संचारित होता हैं जीव द्रव्य शरीर में कई बड़ी और हजारो छोटी जीव द्रव्य नाड़ियाँ होती हैं। योग-विज्ञान में इन नाड़ियों को सूक्ष्म प्राण वाहा नाड़ियाँ कहते हैं। जिनका मुख्य केन्द्र 'नाभि' है। इस केन्द्र से उन नाड़ियों द्वारा प्राण शक्ति का संचार होता है जो पूरे शरीर को पोषित करता है और शक्ति प्रदान करता है। पुरुषों में ब्रह्मा को प्राण शक्ति का अधिष्ठाता बतलाया गया है। इसीलिए वे सृष्टिकर्ता हैं और उनकी उत्पत्ति भगवान विष्णु की नाभि से हुई है।

जीव द्रव्य और एक सिद्ध योगी

जैसा कि बतलाया जा चुका है पार्थिव-शरीर से सूक्ष्म-शरीर मृत्यु के समय जब अलग होता है तो पाँचो प्राण एक एक कर पांचों तत्व में विलीन हो जाते हैं लेकिन जीव द्रव्य सूक्ष्म-शरीर में यथावत अपना अस्तित्व बनाये रखता है। जिसके कारण सूक्ष्म-शरीर संचालित होता रहता है। कहने का तात्पर्य यह कि पार्थिव शरीर तो मृत हो जाता है लेकिन वह जीवित रहता है यानी क्रियाशील रहता है। एक बात और हैं वह यह कि जीव द्रव्य के कारण ही सूक्ष्म शरीर में आत्मा भी अपना अस्तित्व बनाए रखती है और उसी की सहायता से अपनी अगली यात्रा पर निकलती है और गर्भ में प्रवेश कर पुनर्जन्म ग्रहण करती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि पार्थिव शरीर से मृत्यु के समय अलग होने पर भी व्यक्ति जीव द्रव्य के ही कारण अनिश्चित काल तक अपने आपको मृत नहीं समझता और उन सभी दैनिक कार्यों को वैसे ही करता है, जिस प्रकार अपने जीवन काल में करता था। (विशेष अध्ययन के लिए पढ़े मरणोत्तरजीवन का रहस्य) योग विज्ञान ने जीव द्रव्य को एक अति महत्वपूर्ण वस्तु बतलाया है इसलिए कि एक सिद्ध योगी-जिसको पार्थिव-शरीर को छोड़कर सूक्ष्म-शरीर में जीवित रहने की कला आती है जीव द्रव्य की सहायता से ही परकाया प्रवेश करता है। सुदूर स्थित वांञ्छित व्यक्ति के सूक्ष्म-शरीर से संबंध स्थापित कर उसकी गतिविधि और मति गति का पता लगाता हैं। सुदूर घटित होने वाली किसी भी घटना के विषय में जानकारी प्राप्त करता है। अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा इच्छानुसार लम्बी यात्रा करता है और इतना ही नहीं एक ही समय में अपने आपको दो या उससे अधिक स्थानों में प्रकट भी करता है। कहने का सारांश यह कि जीव द्रव्य, कई योग सिद्धियों का मूलाधार है।

योग विज्ञान के अनुसार नाभि-मण्डल के केन्द्र पर पद्मासन की मुद्रा में मन को स्थिर कर चित्त को एकाग्र करना चाहिए। वह एकाग्रता एक दो दिन में नहीं सधती उसके लिए निश्चित समय पर नित्य अभ्यास करना पड़ता है। अभ्यास करते-करते जब वह एकाग्रता घनीभूत होती है तो इस अवस्था में पार्थिव शरीर का बोध अलग से होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति अलग है और उसका पार्थिव शरीर उससे है अलग। वह अपने पार्थिव शरीर को वैसे ही देखता है जैसे दूसरे के पार्थिक शरीर को देखता है और उसमें अपनी भिन्नता का अनुभव करता है। उसे इस बात का पहले आश्चर्य होता है कि वह अपने शरीर से अलग कैसे हो गया हे और यदि हो गया है तो जीवित कैसे है ?

इस स्थिति के दूसरे चरण में वह अपने अस्तित्व का बोध, जीव द्रव्य की सहायता से अपने सूक्ष्म-शरीर में करने लग जाता है और उसी स्थान से उसकी योग-सिद्धि यात्रा शुरू हो जाती हैं।

सिद्ध योगी रामानाथ चक्रवर्ती

लगभग पच्चीस तीस वर्ष पूर्व वाराणसी के देवनाथपुरा मुहल्ले में एक बंगदेशीय साधक रहते थे। नाम था रामानाथ चक्रवर्ती। गौरांग शरीर, मझोला कद, आकर्षक व्यक्तित्व और आयु यही पचास-पचपन के लगभग। साधारण परिचय था मेरा चक्रवर्ती महाशय से। किसी सज्जन से ज्ञात हुआ था कि पश्चिम बंगाल के किसी जमीन्दार के यहाँ नौकरी करते थे वह। बाद में किसी बात में खटपट हो जाने के कारण नौकरी छोड़कर सीधे वाराणसी आ गये थे महाशय, और तबसे वाराणसी में ही हैं और घर घर घूम-घूम कर बच्चों को पढ़ाते थे उसी से दाल रोटी चलती थी उनकी।

एक दिन रास्ते में एक परिचित सज्जन ने मुझे बतलाया कि चक्रवर्ती बाबू बिमार हैं और रामकृष्ण अस्पताल में भर्ती हैं। यह सुनकर उसी समय उनको देखने अस्पताल चला गया मैं। रास्ते में थोड़ा सा फल ले लिया मैंने उनके लिए। मैं जानता था कि चक्रवर्ती बाबू अकेले रहते हैं किराये के एक कमरे में। परिवार का कोई भी सदस्य नहीं था उनके साथ। सोचा वृद्ध व्यक्ति की कौन देखभाल करता होगा? मन विषण्ण हो उठा मेरा यह सोचकर। अस्पताल पहुँचने पर देखा जनरल वार्ड के एक साधारण सी चारपायी पर निढाल और बेबश पड़े थे चक्रवर्ती महाशय। देखकर अत्यधिक क्लेश हुआ। अपने दोनों कमजोर हाथों को किसी प्रकार उठाकर नमस्कार किया उन्होंने। उनके समीप स्टूल घिसका कर बैठते हुए बोला कैसी तबीयत है ? क्या हो गया था आपको, मेरी बात सुनकर थोड़ा मुस्कराये चक्रवर्ती बाबू और फिर कमजोर आवाज में कांपते हुए कहने लगे- माँ की इच्छा थीं। उसने कहा थोड़ा कर्म फल भोग ले। अगला जन्म हल्का हो जायेगा इसीलिए.

..

चक्रवर्ती महाशय का वाक्य पूरा नहीं हुआ था कि तभी एक बारह तेरह साल की एक काली-कलूटी लड़की आकर वहाँ खड़ी हो गयीं। काली होने के बावजूद भी उसके चेहरे में एक विचित्र प्रकार का आकर्षण था। आँखें बड़ी-बड़ी और स्थिर थी। विचित्र सा सम्मोहन था उन आँखों में। उसके काले रेशम जैसे बाल बिखरे हुए थे पीठ पर स्याह माथे पर एक छोटी सी लाल बिन्दिया चमक रही थी। बड़ी अच्छी लगी मुझे वह श्याम वर्णा कन्या! चक्रवर्ती महाशय के तपते

मस्तक पर अपनी बायीं हथेली रखते हुए धीरे से वह लड़की बोली अब कैसी तबीयत है बाबा?

चक्रवर्ती महाशय ने धीरे-धीरे आँखें खोली और पूर्ववत् कृष स्वर में बोले अब थोड़ा आराम है! फिर लड़की ने न जाने कहाँ से निकालकर एक ताजा खिला हुआ गुलाब का लाल फूल चक्रवर्ती महाशय के सिरहाने रख दिया और जल्दी से वापस लौट गयी। उसके चले जाने के बाद चक्रवर्ती महाशय ने गुलाब के फूल को उठाकर माथे से लगाया और फिर शून्य में ताकने लगे।

उस श्यामांगी कन्या की उपस्थिति उसकी बातें और व्यवहार उसके बाद चक्रवर्ती महाशय का उसके दिये गये पुष्प को अपने माथे से लगाना आदि अति रहस्यमय लगा मुझे। थोड़ी देर रुक कर वापस लौट आया मैं। रास्ते में मुझे कुछ आवश्यक सामान खरीदना था, इसलिए बाजार की ओर चल पड़ा मैं। और जब सत्यनारायण मन्दिर के निकट पहुँचा तो आश्चर्यचकित और स्तब्ध रह गया मैं एक बारगी। मन्दिर के बगल के फूल बाजार में एक दुकान के सामने खड़े चक्रवर्ती महाशय बेला, चमेली आदि फूलों की माला खरीद रहे थे। स्वस्थ और प्रसन्न दिखलायी दे रहे थे वह। उनके साथ वही श्यामांगी कन्या भी थी हाथ में डोलची लिए। मुँह बाये दोनों को देख रहा था मैं। विश्वास ही नहीं हो रहा था कि अभी अभी थोड़ी देर पहले जिस वृद्ध सज्जन को रामकृष्ण अस्पताल में रोग शैय्या पर पड़े हुए देख आया था वे ही वृद्ध सज्जन मुझे फूल खरीदते हुए बाजार में बिल्कुल स्वस्थ और प्रसन्न दिखलायी देंगे। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि वह रहस्यमयी कन्या भी उनके साथ थी। सामान खरीदना भूल गया मैं। तुरन्त रिक्सा कर रामकृष्ण अस्पताल पहुँचा और दौड़ते हुए जनरल वार्ड के भीतर गया। हे भगवान! चारपायी पर उसी तरह निठाल लेटे हुए थे चक्रवर्ती महाशय। आँखे बन्द थी। एक नर्स सूई लगा रही थी उनको। सिर घुमाकर उसने इशारे से मुझे चुप रहने के लिए कहा। थोड़े से समय के अन्तराल में एक ही व्यक्ति को दो स्थानों पर और दो अवस्थाओं में देखकर विस्मय कौतूहल, आश्चर्य, संशय, भ्रम और साथ ही विश्वास अविश्वास के मिले जुले भाव से भर उठा मेरा मन। उस समय मेरी मानसिक स्थिति कैसी रही होगी? यह बतलाया नहीं जा सकता। पाठकगण स्वयं अनुमान लगा लेंगे। न जाने कब तक स्तब्ध और अवाक् सा खड़ा रहा में, फिर वापस लौट आया। न जाने कैसे गौदालिया चौराहे से मेरे पैर गणेश महाल की ओर बढ़ गये और फिर देवनाथपुरा की ओर। और जब देवनाथपुरा पहुँचा तो अचानक चक्रवर्ती महाशय के मकान की याद आ गयी। चौराहे के एक ओर सामने ही था उनका मकान। भीतर आँगन के बायीं ओर

उनकी कोठरी थी। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मकान के भीतर चला गया मैं और भीतर जाकर जो कुछ देखा मैंने निश्चय ही उसपर कोई भी विश्वास नहीं करेगा। स्वयं मुझे ही विश्वास नहीं हुआ था, लेकिन अपने आपको कैसे धोखा दे सकता था। विश्वास करना ही पड़ा था मुझे।

कमरा खुला था। भीतर नित्य की तरह आसन पर बैठे कुछ पढ़ रहे थे सिर झुकाये चक्रवर्ती महाशय और बगल में वही श्यामांगी कन्या चुपचाप गालों पर हाथ धरे कुछ सोचती हुई बैठी थीं। अब समझते देर न लगी मुझे। निश्चय रामानाथ चक्रवर्ती कोई साधारण पुरुष नहीं है। एक ही समय में तीन-तीन स्थानों पर और तीन-तीन अवस्थाओं में दिखलायी पड़ना साधारण व्यक्ति के वश की बात नहीं है। निसन्देह यह कोई यौगिक रहस्य है।

बाद में सारा रहस्य खुल गया। प्रच्छन्न भाव से निवास करने वाले रामानाथ चक्रवती एक योग सिद्ध पुरुष थे। भगवती महाकाली की कृपा प्राप्त थी उन्हें। वह श्यामांगी कन्या और कोई नहीं साक्षात माँ काली थी जो बालिका के रूप में कभी कदा उनके पास आती थीं। उस श्यामांगी बालिका के रूप में माँ महामाया का दर्शन लाभ मुझे हुआ था यह मेरा परम सौभाग्य था। एक दिन न जाने कैसे भाव विह्वल होकर चक्रवर्ती महाशय के चरणों पर सिर टेक कर विचलित कण्ठ से बोला-योग क्या है? तंत्र क्या है? यह मैं नहीं जानता साधना उपासना आदि भी क्या हैं यह भी नहीं जानता! बहुत घूमा हूँ और बहुत भटका हूँ और धोखा भी बहुत खाया हूँ। बस इतना जानता हूँ कि दुख ने मुझे ज्ञान दिया है और कष्ट ने दिया है आगे बढ़ने की प्रेरणा। अनेक साधु महात्माओं से मिला हूँ। अनेक योगी साधकों से मिला हूँ। और मिला हूँ अनेक सिद्धों से भी। लेकिन आत्मा को जो शान्ति चाहिए वह नहीं मिली। मन को जो तृप्ति चाहिए वह उसे नहीं मिली। वास्तव में एक ऐसा खोटा सिक्का हूँ जो किसी भी दुकानपर चल नहीं सकता चक्रवर्ती महाशय। लेकिन आपके बटुए में आ जाऊँगा। यह दृढ़ विश्वास है मेरा।

यह सुनकर चक्रवर्ती महाशय कुछ क्षण मेरी ओर अपलक निहारते रहे और फिर छाती से लगा लिया उन्होंने मुझे, और धीमे स्वर में बोले बटुए में नहीं अपनी झोली में डाल लिया तुमको मैंने।

तांत्रिक योगी सुमति प्रज्ञ और उनका रहस्यमय मठ

दूसरे दिन किशोरी माँ को एक पूर्व परिचित साधक से मिलने जाना था। साधक का नाम था लोव्सङ्शेरव्। वे मंगोली थे। किशोरी माँ उनको सुमति प्रज्ञ

कहती थी। सुमति प्रज्ञ का प्रारम्भिक जीवन नालन्दा, राँची और सारनाथ (वाराणसी) में व्यतीत हुआ था। तीस वर्ष की अवस्था में सारनाथ में तिब्बत निवासी एक लामा से उनकी भेंट हुई। वह लामा एक सिद्ध योगी थे उन्हें एक योग्य शिष्य की आवश्यकता थी। सुमति प्रज्ञ उनको आध्यात्मिक संस्कार से युक्त और सभी दृष्टि से योग्य प्रतीत हुए। वापस लौटते समय सुमति प्रज्ञ को भी वे अपने साथ तिब्बत स्थित अपने मठ में ले गये। वहाँ उनको दीक्षित किया गया। दीक्षा के बाद उनके तीसरे नेत्र के खोलने की प्रक्रिया शुरू हुई, तीसरे नेत्र खुल जाने के बाद उनके लामा गुरु ने मठ में ही एक दिन समाधि ले ली। तब से सुमति प्रज्ञ अपने गुरु के आदेश और उनकी आज्ञा का पालन करते हुए मठ में निवास कर रहे थे। वे एक सिद्ध महापुरुष थे। और उनका मठ भी अत्यन्त रहस्यमय और गोपनीय था। तिब्बत के इने-गिने लोग ही उससे परिचित थे। किशोरी माँ अकेले जाना चाहती थी, लेकिन अनुरोध करने पर मुझे भी साथ ले लिया उन्होंने। रास्ता अति मनोहर था। पहाड़ों के उत्तुंग शिखरों पर बर्फ की पर्तें जमी थी। घाटियों में हरियाली थीं। जहाँ-तहाँ झरनो के पानी का कल-कल स्वर सुनाई पड़ता था। घाटी के सैकड़ों फुट नीचे फेन उगलती हुई कोई पहाड़ी नदी की धारा बड़े वेग से बह रही थीं। दो दिन की अति कठिन यात्रा के बाद किशोरी माँ के साथ पहुँचा मैं उस रहस्यमय मठ में। काफी ऊँचाई पर था वह। जहाँ पहाड़ों पर बर्फ जमी थीं वहीं नीचे सुदूर तक फैली हुई घाटियाँ विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधो लताओं और जड़ी-बूटियों से अटी पड़ी थीं। वहाँ की प्राकृतिक शोभा ने मेरी आत्मा को जैसे मोह लिया। किशोरी माँ ने बतलाया वह उस स्थान पर कई बार आ चुकी हैं। वहाँ एक प्राचीन गुफा में तीन साल रह कर तांत्रिक साधना भी की है। चारों ओर सिर घुमाकर मैंने देखा। सच मुच बड़ा ही रहस्यमय लगा मुझे वहाँ का वातावरण। काफी प्राचीन प्रतीत हुआ मुझे वह मठ तीन ओर से वह ऊँचे-ऊँचे हिमाच्छादित पहाड़ों से घिरा हुआ था। चौथी ओर काफी खतरनाक ढलान थी और वह ढलान जहाँ समाप्त होती थी-वहाँ उसी वेगवती पहाड़ी नदी का भयंकर उद्‌गम था-जिसकी प्रखर धारा को रास्ते में देखा था मैंने। मठ तो छोटा ही था लेकिन सुमति प्रज्ञ का कक्ष काफी लम्बा चौड़ा और सुरुचि पूर्ण था। जमीन पर कीमती कालीन बिछी हुई थी। चारों ओर दीवारों पर बौद्ध और भारतीय तंत्र से संबंधित अनेक देवी देवताओं के तैल चित्र बने हुए थे। जिस दीवार के समीप सुमति प्रज्ञ का आसन था-उस दीवार पर बौद्ध तंत्र की ईष्ट देवी तारा की भव्य किन्तु साथ ही अति भयंकर चित्र बना हुआ था। जिसके दोनों ओर डाकिनी हाकिनी के चित्र बने थे जो स्वयं अपने आपमें

भयंकर थे। और उनके नीचे भूमि पर सोने के बने दीपाधार पर मोम के चौमुखे दीप जल रहे थे। जिनका हल्का पीला प्रकाश पूरे कक्ष में फैला हुआ था। वातावरण तो वैसे आध्यात्मिक था लेकिन उस वातावरण मे भय का भी अंश कम नहीं था। न जाने क्यों एक बार सारा शरीर रोमांचित हो उठा मेरा। हाँ एक बात बतलाना भूल ही गया था मैं वह यह कि उस रहस्यमय कक्षा में प्रवेश करते ही एक विशेष प्रकार के गन्ध से भर उठा था मेरा नासा पुट।

सुमति प्रज्ञ अपने आसन पर पद्मासन की मुदा में बैठे हुए थे ध्यानस्थ। उनकी आयु पचास-पचपन के लगभग रही होगी। चेहरे पर साधना का तेज था। अपने गौरवर्ण शरीर पर पीले रंग का रेशमी चादर लपेटे हुए थे वह। किशोरी माँ के साथ जब मैं उनके समक्ष उपस्थित हुआ तो कुछ क्षण बाद धीरे-धीरे अपने बन्द नेत्र खोले और एक बार स्थिर नेत्र से हम दोनों की ओर देखा उन्होंने और उसके बाद अपना दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया।

मठ के अधिष्ठाता की मृत काया

किशोरी माँ ने मुझे बतलाया कि सुमति प्रज्ञ का आर्शीवाद प्राप्त करने के बाद मठ के अधिष्ठाता का दर्शन करना आवश्यक है। उस लम्बे चौड़े कक्ष के एक ओर बड़ा-सा सन्दूक था जो आवनूस की लकड़ी का था और लगभग छः फुट लम्बा और अढ़ाई फुट चौड़ा था। जिसकी ऊँचाई दो फुट से कम न थी। सन्दूक का ढक्कन काफी वजनी था। किशोरी माँ ने संकेत से बतलाया कि उसी लम्बे चौड़े सन्दूक में अधिष्ठाता विश्राम कर रहे हैं। ऐ क्या कहाँ आपने ? चौंक कर बोला मैं-इस काठ के सन्दूक में...।

हाँ ! यह कहकर सन्दूक की ओर बढ़ गयी किशोरी माँ। मैंने भी उनका अनुसरण किया। सन्दूक का ढक्कन खुलते ही फूलों की सुगन्ध से भर गया पूरा कक्ष। मैंने देखा उसके भीतर नीले रंग के मखमल का मोटा गद्दा बिछा था जिस पर मठ के अधिष्ठाता लेटे हुए थे। उनका केवल मुख खुला था और सारा शरीर लाल और पीले रेशमी चादर से ढका हुआ था। मुख पर गहरी शान्ति थी और अध्यात्म का था प्रखर तेज भी। ऐसा लगता था मानो अधिष्ठाता गहरी समाधि में लीन हो।

रहा नहीं गया मुझसे। किशोरी माँ से पूछ बैठा कबसे समाधि में है अधिष्ठाता? यह सुनकर किशोरी माँ ने एक बार गहरी दृष्टि से न जाने क्यों मेरी ओर देखा और फिर धीमे स्वर में कहा अधिष्ठाता समाधि में नहीं है। यह उनकी मृत काया है।

मृत काया?... समझा नहीं मैंने, आश्चर्य और कौतूहल के मिले जुले भाव से बोला मैं।

हाँ! मृतकाया! किशोरी माँ थोड़ा गम्भीर स्वर में बोली न जाने कितने साल से सुरक्षित रखा हुआ है इस शव पेटिका में अधिष्ठाता का शव बतलाया नहीं जा सकता। तुमको ज्ञात होना चाहिए कि आध्यात्मिक दृष्टि से उच्चकोटि के सिद्ध साधकों और दिव्य आत्माओं के मृत शरीर भी अति महत्वपूर्ण और उपादेय होता है। इस गोपनीय रहस्य से बहुत ही कम लोग परिचित हैं। थोड़ा रूककर किशोरी माँ आगे बोली मिस्र एक रेगिस्तानी देश है। वहाँ के पिरामिडो के विषय में तुमने अवश्य पढ़ा और सुना होगा।

मैंने सिर हिलाकर कहा-हाँ।

वे किसलिए बनाये गये है? क्या उद्देश्य था? इतने बड़े और इतने विशाल पिरामिड़ों के निर्माण की पृष्ठ भूमि में कौन-सा प्रयोजन था? कौन सी धारणा थी? और वह भी भयंकर मरू प्रदेश में ? उनके निर्माण में अकल्पनीय धन के अतिरिक्त कितने लोगो की मानसिक, वैचारिक और शारीरिक शक्ति व्यय हुई होगी? क्या कोई इसका सहज में अनुमान लगा सकता है? सचमुच कठिन है।

सन्दूक का ढक्कन अब बन्द कर दिया गया था। फूलों जैसी सुगन्ध एक बारगी सिमट कर सन्दूक के भीतर समा गयी थी। किशोरी माँ वहाँ से हटकर पहले की ही तरह धीरे-धीरे चलती हुई सुमति प्रज्ञ के आसन के निकट बैठ गयी। मैं भी बैठ गया। किशोरी माँ ने जब मेरा परिचय सुमति प्रज्ञ को दिया तो वे आति प्रसन्न हुए। और उसी प्रसन्न मुद्रा में उन्होंने मेरे ललाट का स्पर्श किया अपनी तर्जनी उंगली से। और बोले कुछ दिनों से तुमको अपने नगर अपने परिवार और अपने मित्रों की याद आ रही है न?

जी!... जी... हाँ! उत्तर में बस इतना ही बोला गया मुझसे फिर चेतना शून्य हो गया मैं। और उन चार पाँच क्षणों की ही चेतना शून्य अवस्था में पूरा वाराणसी घूम लिया और अपने पूरे परिवार के लोगो से भी मिल लिया मैंने। सुमति प्रज्ञ निश्चय ही तांत्रिक योगी थे इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने मुझ पर अपना प्रभाव डालने के लिए अपना चमत्कार नही दिखाया था। सच तो यह था कि उस समय मुझे अपने घर परिवार की बहुत याद आ रही थी। मेरा मन कहीं नहीं लग रहा था। शायद सुमति प्रज्ञ ने मेरे मन की भाषा पढ़ लिया था।

किशोरी माँ को अपनी साधना के निमित्त वहाँ ठहरना था तीन चार दिनों तक। कक्ष के बगल वाली कोठरी में मेरे रहने की व्यवस्था हो गयी थी। मठ

में चार पाँच सेवकों के अतिरिक्त कोई नहीं था। उस दिन मेरी ही कोठरी में रही किशोरी माँ। पिछले प्रसंग को उठाते हुए उन्होंने आगे कहना शुरू किया - तो वास्तव में विशेष रूप से विशेष साधना की दृष्टि से और विशेष अर्थ में निर्मित एक अतिशय महत्वपूर्ण आध्यात्मिक स्थान हैं वे पिरामिड।

मिस्र की सभ्यता के चरमोत्कर्ष के प्रतीक रहस्यमय पिरामिड

तिब्बत में महापुरुशों और योगी साधको के शव की दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने की प्रथा ने कब जन्म लिया? यह एक स्वतंत्र खोज का विषय है, लेकिन विश्व सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि में मिस्त्र की हजारो साल तक शव को सुरक्षित रखने की ममी परम्परा सर्वाधिक प्राचीन है इसमे सन्देह नहीं। शव को ममी के रूप में सुरक्षित रखने के लिए जिन विशाल गह्वरो का निर्माण किया गया वे है मिस्र के रहस्यमय पिरामिड! मिस्र की सभ्यता और संस्कृति के चरमोत्कर्ष के प्रतीत हैं रहस्यों की चादर ओढ़े वहाँ के पिरामिड। सच तो यह है कि गणितीय चमत्कार के मूर्त रूप हैं वे। उनके निर्माण में ज्यामितीय, त्रिकोणमिति, ज्योतिर्विद्या और भूगोल के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के सिद्धान्तो का एक मात्र मिश्रण है, वे यह तो निश्चित है। और यह भी निश्चित है कि कभी किसी काल में मिस्र का ज्ञान-विज्ञान अन्य किसी भी देश के ज्ञान विज्ञान से अत्यधिक उन्नत और श्रेष्ठ रहा होगा। वास्तव में अस्तित्व के जगत का एक ऐसा अद्‌भुत और अविश्वसनीय चमत्कार हैं पिरामिड जो अपने आपमे एक विशेष प्रकार का ऐसा चुम्बकीय वातावरण उत्पन्न करते हैं जिसके फलस्वरूप काल यानी समय का प्रभाव अत्यन्त क्षीण और मन्द से मन्दतर हो जाता है, कहने की आवश्यकता नहीं अब तक की सतत् वैज्ञानिक खोज से यह बात प्रमाणित हो चुकी हैं कि ममी किसी विशेष रासायनिक तत्व का परिणाम नहीं हैं बल्कि स्वयं पिरामिड की ही आन्तरिक शक्ति का परिणाम है कि उसके भीतर रखे जाने वाले शव अपने आप निर्जलित होकर ममी के रूप में परिवर्तित हो गये हैं।

शरीर विज्ञान के विशेषज्ञों का तो यह भी कहना है कि ममी किसी रासायन के कौशल का परिणाम नहीं, सच पूछा जाय तो उसके निर्माण में स्वयं पिरामिड को ही अपना योगदान हैं और सम्भवत: वही प्रमुख भी है। निश्चय ही यह पिरामिड की स्व शक्ति ही है कि जो एक शव को ममी का रूप प्रदान कर उसे हजारो वर्षों तक के लिए सुरक्षित कर देती हैं।

मिस्र के पिरामिडो का निर्माण काल

मिस्र के पिरामिडो का निर्माण काल ई०पू० २६३१-२६८६ हैं। इसी काल में मिस्र का पहला पिरामिड, फराऊ जोजर के लिए बनवाया गया था। जिसके वास्तु शिल्पी थे इम्होतेप। अधिकांश पिरामिड २४६४-२६१३ ई०पू० बने थे। गीजा का महान पिरामिड भी इसी काल में बना था। अपेक्षाकृत छोटे और तकनीकी दृष्टि से साधारण पिरामिड ममी रखने के लिए प्रयोग में लाये गये थे। लेकिन खायना और खुफु जैसे उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण पिरामिडो का प्रयोग ममी या शव पेटी रखने के लिए नहीं किया गया था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि गीजा के पिरामिड जैसा उत्कृष्ट पिरामिड अनेकानेक प्रयोगो का परिणाम हैं। यह मिस्र के ज्ञान विज्ञान की चरम परिणति थीं।

मिस्र के प्राचीन ज्ञान विज्ञान का प्रतीक गीजा का पिरामिड

मिस्र में लगभग ८० पिरामिड प्रमुख हैं। और उनमे भी सबसे विशाल रहस्यमय और चमत्कारो से भरपूर है गीजा का महान पिरामिड। यह पिरामिड मिस्र के निचले भाग में, नील नदी के पश्चिम दिशा में लगभग ८ कि०मी० की दूरी पर स्थित कफ-ए-सम्मन नामक गांव के निकट बना हुआ है। कभी पिरामिड की आधार से शिखर तक लम्बवत् ऊचाई १४७.६ मीटर थी, किन्तु बाद में उसका शिखर टूट गया और अब वह केवल १३७.१६ मीटर ऊंचा है। फिर भी वह पिरामिड ४० मंजिली गगनचुम्बी इमारत से कही अधिक ऊंचा है। भारत में अभी तक इतनी ऊंची कोई इमारत नहीं है। दिल्ली का कुतुबमीनार उससे बहुत छोटा हैं। उस विशाल पिरामिड में ग्रेनाइट के पत्थरो के छोटे बड़े २३ लाख टुकड़े लगे हैं। कोई टुकड़ा ढ़ाई टन का है तो कोई ७० टन वजन का। उन भारी-भारी पत्थरों के टुकड़ों में से बहुत से टुकड़े तो ८०० कि०मी० दूर से लाये गये थे। बतलाया जाता है कि उस पिरामिड के निर्माण में एक लाख व्यक्तियों ने श्रम किया था। और उसे बनवाया था फराऊ खुफु ने। वास्तव में वह पिरामिड मिस्री सभ्यता और संस्कृति के चरमोत्कर्ष का अविस्मरणीय प्रतीक हैं। मिस्र के सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान और उसकी वैज्ञानिक तकनीकी कुशलता का परिचायक हैं वह पिरामिड, इसमे सन्देह नहीं। सच वह न केवल सबसे बड़ा पिरामिड है बल्कि वास्तुकला कौशल और चमत्कारिक शक्तियों की दृष्टि से भी सबसे महान हैं।

गीजा के पिरामिड में ज्योतिष शास्त्रीय एवं ज्यामितिकीय दृष्टि

गीजा के उस पिरामिड के ढाल का कोण ५१°५१ हैं। लेकिन यह कोण पूरा ६०° क्यों नहीं है? इस प्रश्न को लेकर प्रसिद्ध पिरामिड खोजकर्ता जान टेलर यह निष्कर्ष निकाला कि ऐसा जानबूझकर किया गया, क्योंकि पिरामिड की प्रत्येक दीवार की सतह का क्षेत्रफल उसकी लम्बवत् ऊंचाई के वर्ग के बराबर हैं। यह आयाम ५१°५१ का कोण रखने पर ही उपलब्ध हो सकता हैं। पिरामिड के अवरोही मार्ग का कोण २६°१७ है। जान टेलर की ही तरह एक खोजकर्ता थे मिस. स्मिथ और मि. स्मिथ के अनुसार इस अवरोही मार्ग को जानबूझकर ध्रुव तारे के सीध में रखा गया हैं। इस मार्ग के कोई भी दो बिन्दु ध्रुव तारे की ठीक सीध में एक सरल रेखा का निर्माण करते हैं। महान ज्योतिर्विद हर्शेल के अनुसार जब इस रहस्यमय पिरामिड का निर्माण हुआ था, लगभग ४५०० वर्ष पूर्व उस समय ध्रुव तारा, अल्फा ड्रेकोनिस था, जबकि वर्तमान समय में 'पोलरिस' नामक तारा ध्रुव तारा है। ज्ञात होना चाहिए कि पृथ्वी की धुरी प्रति २५८०० वर्ष में ४७° का चाप बनाती हैं, इसी कारण ध्रुवतारा बदलता रहता हैं। यह बहुत ही कम लोगों को ज्ञात हैं कि सपृऋषि मण्डल के जो सात तारे हैं वे भिन्न भिन्न सात रंग विकीर्ण और उसी के साथ विकीर्ण करते हैं भिन्न-भिन्न प्रकार की सात ऊर्जा में भी जो ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के रूप में परिवर्तित होकर ब्रह्माण्ड के सातो लोको में फैल जाती हैं। इस सन्दर्भ में यह भी बतला देना आवश्यक है कि योग मानव शरीर में जिन सात चक्रों को चर्चा करता हैं वे सातो चक्र के भिन्न-भिन्न रंग, सप्तऋषि मण्डल के सातो तारो से विकीर्ण होने वाले रंगो का तो प्रतिनिधित्व करते ही हैं इसके अतिरिक्त उनकी ऊर्जाओं से अनुप्राणित भरे होते हैं। इस रहस्य से एक परमयोगी ही परिचित होता हैं कि सप्तऋषि मण्डल के किस तारे के रंग और उसकी किस ऊर्जा से शरीर के किस चक्र का संबंध हैं। अस्तु ।

गीजा के इस पिरामिड के आयाम में एक और विशेषता का पता लगाया विलियम पिलडर्स पीत्रे ने! उसने गणना करके बतलाया कि पिरामिड के आधार को ऊंचाई के आधे से भाग देने पर भागफल सम्पूर्ण इकाई नहीं आता। वह ३. १४२८५ रहता हैं। यह संख्या पाई (π) के मूल्य के लगभग बराबर हैं। पाई (π) किसी वृत्त की परिधि और व्यास का अनुपात हैं। व्यास कुछ भी क्यों न हो, परिधि, व्यास के तीन गुने से थोड़ी अधिक रहती हैं और थोड़ी अधिकता कभी भी पूरी इकाई नहीं हो तो। वृत्त की परिधि को तीन से पूरा पूरा कभी भी बांटा नहीं जा सकता।

पिरामिड के आधार और ऊंचाई का यह अनुपात यह प्रदर्शित करता है कि पिरामिड के निर्माता को उपर्युक्त तथ्यों का भरपूर ज्ञान था। वे जानते थे कि पृथ्वी गोल हैं। उन्होंने ग्रहो और तारो की गति के आधार पर पृथ्वी की परिधि की गणना की थी और अपने ज्ञान को खुफ के पिरामिड के निर्माण में लगा दिया। पिरामिड की परिमाप पृथ्वी की परिधि का प्रतिनिधित्व करती हैं और उसकी ऊंचाई पृथ्वी के ध्रुवीय अर्धव्यास को दर्शाती हैं। उसी अनुपात में पिरामिड की सतह का क्षेत्रफल पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध का परिचायक हैं।

पृथ्वी की भू गणितीय शक्ति

इस प्रकार गीजा का यह महान पिरामिड स्वयं में उसी प्रकार की चुम्बकीय शक्तियों से परिपूर्ण है जिस प्रकार की चुम्बकीय शक्तियां पृथ्वी की हैं। पृथ्वी के गर्भ में कुछ अज्ञात बल और ऊर्जा स्रोत हैं जो जीवन को प्रभावित करते हैं। किन्तु उनके विषय में मनुष्यों को अभी पूरी जानकारी नहीं हैं। यह निश्चित है कि पृथ्वी तथा कथित चुम्बकीय शक्तियां पृथ्वी पर समान रूप से सर्वत्र नहीं हैं। जहाँ उनका सर्वाधिक प्रभाव रहता हैं वहाँ उस स्थान पर भौतिक व्याधियां अधिक से अधिक उत्पन्न होती हैं। तामसिक ग्रहों का कुप्रभाव भी वहां अधिक पड़ता हैं। ऐसे स्थान पर जो मकान बना होता है उसमें निवास करने वाले लोग सुखी और सम्पन्न नहीं रहते। अशान्त रहते है हमेशा। यदि वहाँ कोई उद्योग हैं तो वह कभी भी उन्नति नहीं करेगा और न तो फलप्रद ही होगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति स्थान विशेष पर रहने से रोगी हो जाना हैं। और जब वह स्थान परिवर्तित कर देता है तो ठीक हो जाता है अपने आप। भूगर्भ शास्त्रियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि जिस स्थान पर व्यक्ति रोगी रहता हैं वह स्थान भू गणितीय ऊर्जा केन्द्रो पर स्थित होता है। जिस व्यक्ति का जैविक सामञ्जस्य पृथ्वी की उन भू गणितीय शक्तियों के अनुकूल नहीं होगा वह वहाँ रहकर न स्वस्थ रह सकता हैं और न तो उसे सुख शान्ति ही उपलब्ध होगी। वैसे विज्ञान इस बात को अब धीरे-धीरे स्वीकार कर रहा हैं। कि पृथ्वी के भीतर कुछ विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा स्रोत हैं, जो गुरुत्वाकर्षण के नियमों के परे हैं। जिन स्थानो पर ये बल अपना अधिक प्रभाव डालते हैं उन स्थानों को 'भूगणितीय शक्ति केन्द्र' कहते हैं। हमारे जितने शास्त्र हैं उनमे एक है वास्तु शास्त्र। इस शास्त्र में भूमि संबंधी जो व्यवस्था दी गयी है उसका मूल आधार भूगणितीय शक्ति है - ऐसा प्रतीत होता हैं। यह निश्चित है कि प्राचीन मिस्त्रवासी इन शक्ति केन्द्रो का पता लगाने में पूर्ण समर्थ थे। इसी कारण उन्होंने गीजा के पिरामिड के लिए जिस स्थान का चयन किया वह भूगणितीय शक्ति की दृष्टि से

पृथ्वी पर बेजोड़ हैं। सर्वप्रथम इस पिरामिड की संरचना का अनुपात दूसरे उसके निर्माण का सर्वाधिक उपयुक्त स्थान - इन दोनों बातो ने मिलकर इस महान पिरामिड को अद्‌भुत चमत्कारिक शक्ति प्रदान की है इसमे सन्देह नहीं। अब हम इस प्रसंग में खुफु के पिरामिड की भी चर्चा संक्षिप्त में कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

गणितीय चमत्कार का मूर्त रूप खुफु का पिरामिड

खुफु का पिरामिड वास्तव में गणितीय चमत्कार का साकार यानी मूर्त रूप हैं। इसकी डिजाइन और इसका आयाम प्राचीन ज्ञान विज्ञान के विपुल भण्डार समझे जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं तंत्र, मंत्र, ज्योतिष, गणित, ज्यामिति, भूगोल आदि का समष्टि रूप हैं गीजा का खुफु पिरामिड।

सन् ८२० में बगदाद के खलीफा के बेटे अब्दुल्ला-अल-मामून ने इस पिरामिड का सर्वेक्षण किया। उसे पिरामिड में घुसने का मार्ग नहीं मिला तो उसने पिरामिड की एक ओर की दीवार को तप्त करके उसे सिरके से तर कर दिया। परिणाम स्वरूप पत्थर चटक गये। अल आमून दीवार तोड़कर अपने मित्रो के साथ अन्दर घुसा। सामने उसे पिरामिड का आरोह मार्ग मिला और वह उस मार्ग से नीचे तक गया। फिर ऊपर आया और आरोह मार्ग से ही लम्बी दीर्घा से होता हुआ राज प्रकोष्ट में पहुंच गया लेकिन उसको मिला कुछ नहीं। विद्वान अल-मामून को विश्वास था कि पिरामिड के अन्दर प्राचीन ज्ञान का भण्डार भरा हैं और उसमें पृथ्वी तथा ब्रह्माण्ड के नक्शे और अन्य रहस्यों की बातें हैं। उसे यहीं सब बतलाया भी गया था, लेकिन जब उसे पिरामिड के अन्दर कुछ नहीं मिला तो निराश होकर लौट आया। उसने यहीं सोचा कि उसके आने के पहले ही लुटेरे सब लूट ले गये होंगे। पर यह उसका भ्रम था।

वास्तव में पिरामिड में न तो कोई नक्शे थे और न तो पिरामिड से संबंधित कोई ग्रन्थ ही रखे गये थे। ज्ञान का भण्डार तो पिरामिड को बनाने में ही भरा था। बस उसकी चाभी चाहिए थी। अल-मामून को वह चाभी नहीं मिली। बाद के बेत्ताओं को उसको खोलने की चाभी मिली और फिर ज्ञान के भण्डार एक के बाद एक खुलते गये।

नेपोलियन को किसी अज्ञात रहस्य का अनुभव

जिस भूगणितीय शक्ति की चर्चा ऊपर की गयी है, उसका रहस्यमय अनुभव नेपोलियन बोनापार्ट को खुफु के पिरामिड में हुआ था जब वह १२ अगस्त १७९९

में उसे देखने गया था। कुछ देर तक पिरामिड के राज प्रकोष्ट में अकेला रहा वह् और जब बाहर निकला तो सारा शरीर पीला जड़ गया था उसका। ऐसा लगता था जैसे किसी ने उसके शरीर का सारा खून निचोड़ लिया हो। निश्चय अन्दर से हिल उठा था वह कुछ देख कर। जब किसी ने नेपोलियन से पूछा कि उसने भीतर क्या अनुभव किया तो उसने उत्तर दिया - मै इस प्रसंग पर किसी प्रकार की चर्चा नहीं करना चाहता।

नेपोलियन जब अन्तिम सांसे ले रहा था अपने जीवन का उस समय उसके मन में आया कि पिरामिड के राज प्रकोष्ट में उसको जिस अज्ञात रहस्य का अनुभव हुआ था, उसे वह बतला दे। यह सोचकर उसने अपने सहायक को बुलाया। फिर न जाने क्या हुआ कि उसका विचार बदल गया। बोला - नहीं, नहीं, क्या लाभ? तुम मेरी बात पर विश्वास नहीं करोगे। कभी नहीं करोगे। और नेपोलियन उस अज्ञात रहस्य को अपने सीने में दफनाये अपने साथ ही ले गया। किन्तु उसकी यह मन:स्थिति क्या इस बात को स्पष्ट नहीं करती कि उसे कुछ ऐसा विचित्र अनुभव हुआ था जो उसके भविष्य की झांकी प्रस्तुत करता था। निश्चय अपने पतन का ज्ञान हुआ था, नेपोलियन को उस पिरामिड में, इसमें सन्देह नहीं।

अन्य लोगों को भी विचित्र अनुभव

नेपोलियन ही नहीं कई अन्य व्यक्तिों को भी पिरामिड के भीतर एक विशेष मानसिक अनुभूति हुई हैं। सन् १२२० में अरब इतिहाकार अब्द-अल-लतीफ पिरामिड में गया। उसने लिखा है कि वह पिरामिड के भीतर पहुँचकर भय से मूर्च्छित हो गया और जब वह बाहर निकला लेन मृत प्राय था। लेकिन इससे अधिक अपनी अनुभूति के संबंध में उसने कुछ नहीं बतलाया। कहने की आवश्यकता नहीं वर्तमान समय में पिरामिड का आन्तरिक वातावरण पहले जैसा तो नहीं है लेकिन फिर भी कभी कदा पर्यटकों को विचित्र अनुभूति होती ही हैं। लेकिन वे उसका वर्णन कर सकने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं।

ऐसा है रहस्यमय और विचित्र पिरामिड और उसका विज्ञान। अब तक की खोज से तो यह बात निश्चित हो चुकी है कि पिरामिड एक विशेष भूगणितीय शक्ति केन्द्र पर स्थित होने के कारण मनुष्य को ब्रह्माण्ड के 'सार्वभौम मस्तिष्क' से जोड़ता है और सभ्भवत: ब्रह्माण्ड किरणो का अभिग्रहित केन्द्र हैं पिरामिड। जो कुछ भी हो, लेकिन पिरामिड की चमत्कारिक शक्ति सन्देह से परे हैं।

सम्राट फैरो तुंतन खामेन की अभिषप्त समाधि

अब हम पिरामिड के प्रसंग को लेकर नील नदी के पश्चिमी तट पर सुदूर तक फैली हुई एक ऐसी सुनसान विरान और उदास घाटी में अपने पाठकों को ले चल रहा हूं जिसका नाम है राजन्य वर्ग। ३० नवम्बर १९२२ को अचानक यह विरान सुनसान और उदास घाटी पूरे विश्व में प्रसिद्ध हो गयी। और बन गयी चर्चा का विषय। इसलिए कि ३१०० वर्ष पूर्व मृत मिस्र के सम्राट फैरोतुंत खामने की समाधि का पता वैज्ञानिकों को लग गया था, जिसके फलस्वरूप एक बारगी उत्साहित हो उठा था पुरातात्विक जगत। वैज्ञानिकों ने सोचा कि मिस्र की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति पर भरपूर प्रकाश पड़ेगा, इस रहस्यमयी समाधि द्वारा। जैसाकि सुनने में आता हैं, उसके अनुसार तुंतन खामेन की मृत्यु के पश्चात उनकी समाधि का मार्ग बन्द करते समय उनके तांत्रिक पुरोहित ने अपने दोनो हाथ ऊपर की ओर उठाकर श्राप दिया था कि महान फैरो के इस समाधि को खोलकर जो उनकी चिर निद्रा में विघ्न डालने का प्रयास करेगा, उसकी मृत्यु समय से पहले हो जायेगी।

उस अभिशाप की बात सुनकर हस पड़ी बीसवीं सदी का अन्धविश्वास से मुक्त आधुनिक जगत, परन्तु दो वर्ष के अन्दर ही अपने विचार को बदलने पड़े आधुनिक जगत को। तब तक शुरू हो गया था मरण यज्ञ। मिस्र में प्रचलित किम्बदन्ती के अनुसार तुंतन खामेन की समाधि धन-रत्न का अकूत खजाना था। वैसे तो समाधि की खोज सदियो से लोग करते आये थे, लेकिन वर्तमान शताब्दी में सबसे अधिक जोर-शोर से खोज शुरू की विख्यात पुरातत्व वेत्ता हाबर्ट कार्टन ने। जिसके लिये आर्थिक सहायता दे रहे थे लार्ड कारनखन!

लगभग ६ वर्ष की खोज के बाद अन्त में ४ नवम्बर १९२२ को समाधि के निकट एक संगमरमर की सीढ़ी दिखलायी दी। खनन शुरू हुआ फिर दिखलायी दिया संगमरमर एक दरवाजा। जिस पर किसी राजा का राज चिन्ह अंकित था। पुरातत्ववेत्ता हाबर्ट कार्टर ने तुरन्त पहचान लिया हजारो वर्ष पुराने उस राज चिन्ह को। समझते देर न लगी उन्हे वह तुतंन खामेन की थी समाधि। २६ नवम्बर को प्रमाण मिल गया समाधि का। काफी सावधानी से संगमरमर का दरवाजा खोला गया। तुतंन खामने की समाधि अकूत धन रत्न आदि से परिपूर्ण है यह बात पूरे संसार में फैली हुई थी। सन् १९२३ में अन्य महत्वपूर्ण लोगों के साथ हाबर्ट कार्टर और लार्ड कारनखन संगमरमर की सीढ़िया उतरे। कुछ दूर जाने के बाद उन्हे एक और दरवाजा मिला। उसे भी तोड़ा गया। भीतर घोर अन्धकार था। मोमबत्ती जलाकर प्रकाश की व्यवस्था की गयी। मोमबत्ती के हल्के पीले प्रकाश में लोगो ने देखा भीतर की दीवारो पर जानवरो की आकृतियां बनी थी। आलमरियों में

बड़ी बड़ी मूर्तिया थी जिन पर हाथी दांत और सोने का काम किया हुआ था। आगे बढ़ने पर लोगों को एक तीसरा दरवाजा मिला। जो काफी मजबूत था। कुछ ही देर में वह ३१०० वर्ष पुराना दरवाजा भी टूट कर गिर गया। लार्ड कारनखन सबसे पहले भीतर गये। और भीतर जाते ही उनका दिल किसी अज्ञात आशंका से धड़कने लगा। मन में अशुभ विचार आने लगे। जहां वे खड़े थे वह एक छोटा सा वरामदा था। उसके ठीक सामने एक काफी मजबूत दरवाजा था। उसके टूटते ही एक अनजान आतंक हर एक के मन में समा गया। और सभी एक बार क़ांप उठे। उस समय लार्ड कारनखन हंस-हंस कर प्राचीन मिस्र की सभ्यता पर प्रकाश डालने वाले विख्यात लेखक और इतिहासकार ई. पी. बीगाल से बातें कर रहे थे। एकाएक बीगाल के मुंख से निकला - खूब हँस लो! . .. समय बहुत कम है - सिर्फ ६ सप्ताह। स्वयं बीगाल को इस बात का पता नही था कि वे क्या बोले गये? बाद में उन्होंने बतलाया कि उस समय का वातावरण अति विचित्र था।

दरवाजे के भीतर विविध रंगो के संगमरमर के पत्थरो की सुराही सोने के रत्न जडित पुतले और इसी प्रकार रत्न जड़ित और भी तमाम वस्तुएँ वहाँ रखी थी। लेकिन तुतंन खामेन का शवाधार वहाँ नहीं था। उस छोटे से कमरे में एक और पत्थर का दरवाजा था।

फैरो तुतंन खामेन का शवाधार और अमूल्य धन रत्न भण्डार

और उस दरवाजे को देखकर सभी लोग स्तब्ध रह गये एक बारगी। क्या उसी दरवाजे के उस पार आज ३१०० वर्ष पूर्व के मिस्त्री सम्राट फैरो तुतंखामेन का मृत शरीर ममी के रूप में चिर निद्रित है, नहीं उन लोगों का अनुमान गलत था। दरवाजा तोड़कर देखा गया तो वह कमरा भी सूना था, लेकिन उस कमरे के भीतर भी एक गुप्त दरवाजा था जो सील बन्द था। कार्टर ने स्वयं उसे अपने हाथों से तोड़ा और जिसके टूटते ही सामने उपस्थित लोगो को दिखलायी दिया ३१०० वर्षों से चिर निद्रा में लीन मिस्त्र के सम्राट फैरो तुंतखामेन का शरीर ममी के रूप में। ममी का वह छोटा सा कक्ष धन रत्न और मूल्यवान कामदार सुन्दर मूर्तियों का एक विशान भण्डार था। अचानक लार्ड कारनखन की दृष्टि एक रत्न जडित डिब्बे पर पड़ी। उन्होंने उसे न जाने किस आकर्षण के वशीभूत होकर उठा लिया और फिर उसके ढक्कन को खोला और जैसे ही ढक्कन खुला उसी क्षण सारा वह रहस्यमय कक्ष भर उठा एक बारगी गुलाब की सुगन्ध से, लेकिन

वह डिब्बा भीतर खाली था। कुछ भी नहीं था डिब्बे में। विस्मित भाव से लार्ड करनखन ने उसके भीतर हाथ डाला और डालते ही चींख पड़े वह। वहाँ उपस्थित लोगो ने आश्चर्य चकित होकर देखा कि लार्ड कारनखन की उंगली से खून की पतली धारा बह निकली है। जबकि डिब्बे के भीतर कुछ भी ऐसी चीज नही थी जिससे उंगली कट सकती हो, तो फिर उंगली कैसे कटी? उंगली में चोट कैसे आयी? इसका पता तो नहीं चला परन्तु केवल ६ सप्ताह के बाद शुरू हो गया मरण यज्ञ। और उस मरणयज्ञ में उस तांत्रिक के श्राप ने सबसे पहले आहुती ली लार्ड कारनखन के प्राणो की और फिर एक-एक कर उन बीस लोगो की जो संलग्न थे समाधि की खोज में और उस खोज में धन व्यय करने में।

यो तो जीवन जगत में नित्य लाखो लोग मृत्यु के ग्रास बनते हैं, परन्तु ६ वर्ष के अन्दर उस समाधि के खनन कार्य से संबंधित २१ मनुष्यों की मृत्यु सचमुच आश्चर्य घटना थी। स्मरण रहे कि इनमे सभी की मृत्यु किसी न किसी अज्ञात कारणो से हुई। कोई भी साधारण मृत्यु से नही मरा।

इस प्रसंग के अन्त में यह कहना अनावश्यक न होगा कि मिस्र और तिब्बत के अतिरिक्त अनेक ऐसे गुप्त स्थान है जहां रहस्यमय ढ़ंग से उच्चकोटि के दिव्यात्माओ के मृत पार्थिव शरीर सैकड़ो वर्ष से ममी के रूप में सुरक्षित है उनके शरीर को रखने का क्या प्रयोजन है इसे पुनः दुहराने की आवश्यकता नहीं।

समझे न! और उन विशाल पिरामिडों के गर्भगृह में उन्हीं लोगों के शवों को साधना के उपयोग के लिए रखा गया था जो दिव्य आत्माए थीं। तुमको यह सुनकर निश्चय ही घोर आश्चर्य होगा कि अभी भी इसी तिब्बत में हजारो वर्ष पुराने साधकों शव सुरक्षित रखे हुए हैं गुप्त रूप से। स्वयं तिब्बत के लोग इस रहस्य के संबंध में बहुत कम जानते हैं।

तिब्बत में मृतात्माओं का मार्ग दर्शन

किसी लेखक ने तिब्बत के संबंध में एक पुस्तक लिखी है नाम है तिब्बत आफ डेड। अपने आपमें अति महत्वपूर्ण है वह पुस्तक। उसका मुख्य विषय यह है, कि तिब्बत का एक योगी जो चौथे शरीर यानी मनोमय शरीर को ठपलब्ध था। उसने इस विषयपर अत्यन्त गहरायी से शोध और अन्वेषण किया कि किसी व्यक्ति के मरने के बाद उसकी क्या सहायता की जा सकती है ? उसका किस प्रकार मार्ग दर्शन किया जा सकता है ?

उदाहरण के रूप में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गयी है। उसकी पत्नी अपने पति से बहुत प्रेम करती है। लेकिन अब अपने मृत पति को किसी भी प्रकार

की सहायता नहीं पहुँचा सकती लेकिन तुमको ज्ञात होना चाहिए कि तिब्बत में इस बात की पूरी व्यवस्था है कि मृतक की पूरे पचास दिनों तक बराबर कैसे सहायता की जाय? कैसे उसका भली-भाँति मार्ग दर्शन किया जाय? कैसे उसके संस्कार के अनुकूल और योग्य गर्भ उसे दिलाया जाय? और जब तक वह किसी गर्भ को उपलब्ध नहीं हो जाता है तब तक उसकी कैसे रक्षा की जाय?

इस दिशा में विज्ञान को कब सफलता प्राप्त होगी यह तो बतलाया नहीं जा सकता लेकिन तिब्बत में चौथे शरीर को उपलब्ध व्यक्तियों द्वारा ऐसा सब कुछ होता है।

तिब्बत में प्रधान लामा के चयन की विधि

तिब्बत के प्रधान लामा की जब मृत्यु होती है तो वह बताकर जाते हैं कि उनका अगला जन्म किस घर अथवा किस परिवार में होगा? इनके अतिरिक्त यह भी बतला कर जाते हैं कि मेरे अनुयायी मुझे कैसे पहचानेंगे, मृत्यु के पूर्व अपनी पहचान के लिए कोई एक प्रतीक भी दे जाते हैं जिसको आधार पर उन्हें पहचाना जा सके।

लामा की मृत्यु के बाद उसी प्रतीक के आधार पर पूरे तिब्बत में जन्मजात शिशु के रूप में लामा की आत्मा ने कहाँ जन्म लिया है खोज शुरू हो जाती है। जो बालक उस प्रतीक का रहस्य बतला देता हैं-उसी को पिछला लामा लोग समझ लेते हैं। और यथा-समय उसे प्रधान लामा के आसन बिठाकर उसका अभिषेक करते हैं।

दिव्यात्माओं अथवा साधकों का मृत शरीर का मूल्य और महत्व

किशोरी माँ ने कहा तुमको बतला चुकी हूँ कि दिव्यात्माओं अथवा चौथे शरीर को उपलब्ध योगी और साधकों का मृत शरीर आध्यात्मिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण होता है।

कैसे?

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में किशोरी माँ बोली कोई योगी या कोई दिव्य साधक दीर्घकाल तक कठोर साधना की है तो उसका भौतिक शरीर साधारण व्यक्ति जैसा शरीर नहीं रह जाता है। वह असाधारण हो जाता है। इसलिए कि साधना काल में वह बराबर प्रकृति के रहस्यमय तत्वों को बराबर सोखता रहता है। और ब्रह्माण्ड की ऐसी तरंगों को बराबर पकड़ता रहता है-जो अपने आपमें रहस्यमयी

होती हैं। वे प्राकृतिक तत्व और वे ब्रह्माण्डीय रहस्यमयी तरंगे योगी अथवा साधक की मृत्यु के पश्चात् भी उसके मृत शरीर में सैकड़ों हजारो वर्षो तक विद्यमान रहती हैं। और यही कारण है कि ऐसी दिव्यात्माओं के मृत शरीर को ममी के रूप में अथवा अन्य किसी रूप में सुरक्षित रखा जाता है इसलिए कि मरणोपरान्त वे प्राकृतिक तत्व और वे ब्रह्माण्डीय तरंगे आपस में मिलकर एक विशेष प्रकार की विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित होकर वातावरण में बराबर विकीर्ण होती रहती है। कहने की आवश्यकता नहीं वह ऊर्जा योग-तंत्र मार्ग पर अग्रसर साधक की साधना में अत्यन्त उपयोगी और सहायक सिद्ध होती हैं इसमें सन्देह नहीं। अध्यात्मिक भूमि का यह एक अत्यन्त रहस्यमय तथ्य है। सभी इससे परिचित नही है। ध्यान देने की यह बात है कि जो शरीर भगवान बुद्ध, भगवान महावीर और रामकृष्ण, वामाखेपा, चैतन्य महाप्रभु, विवेकानन्द आदि जैसे महान और परम साधकों के पास रहा हो। जिसमें उनकी दिव्य आत्माएँ दीर्घ काल तक निवास किया हो। वह शरीर साधारण नहीं रह सकता कभी भी। असाधारण होता है वह। मूल्यवान आध्यात्मिक महत्व होता हैं उसका। काश ऐसे लोगो की मृतकाया को सुरक्षित रखा गया होता तो आज भारत की इतना पतन न होता। उसकी आध्यात्मिक दुर्दशा न होती इतनी। मनुष्य का मानसिक और वैचारिक पतन न होता इतना। और धर्म और साधना-उपासना आदि के नाम पर न इतना बढ़ता आडम्बर और पाखण्ड ही।

जब जीसस का शव अदृश्य हो गया

थोड़ा ठहरकर किशोरी माँ आगे कहने लगीं तुमने जीसस का नाम सुना होगा। वे अपने समय के बहुत बड़े सन्त थे। ईश्वर के प्रति उनकी अपूर्व निष्ठा थी। उनकी जब मृत्यु हुई तो उनके शव को उनके अनुयायिओं ने एक गुफा में सुरक्षित रख दिया इसलिए कि उसे प्रात:काल दफनाया जायेगा और अन्तिम क्रिया की जायेगी। लेकिन प्रात:काल उनके अनुयायिओं ने देखा तो गुफा में जीसस का शव था ही नहीं। न जाने कहाँ अदृश्य हो गया था वह। सभी लोग आश्चर्यचकित रह गये। किसी को कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था कि आखिर शव गया कहाँ गुफा से? बाद की कथा यह है कि जीसस कहीं देखे गये थे और पुनः जीवित होकर फिर कब मृत्यु को प्राप्त हुए। पुनर्जीवन के बाद का जीवन कैसा था उनका? इन सब बातो का कोई वर्णन अथवा उल्लेख प्रमाणिक रूप से कहीं नहीं प्राप्त होता। इस संबंध में मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि वास्तव में जीसस का मृत शरीर इतना मूल्यवान और महत्वपूर्ण था कि दीर्घकाल

तक उसका सुरक्षित रखना अति आवश्यक था। क्योंकि ऐसी दिव्यात्मा बड़ी प्रतीक्षा के बाद संसार में अवतरित होती हैं। अब तुमको समझ में आ गया होगा कि अधिष्ठाता का मृत शरीर क्यों इतने वर्षों से सुरक्षित रखा गया है। यह जो कक्ष तुम देख रहे हो उसके आध्यात्मिक वातावरण के मूल में अधिष्ठाता के मृत शरीर से विकीर्ण होने वाली ऊर्जा ही है।

सूक्ष्म-शरीर धारी महात्माओं से साक्षात्कार

दूसरे दिन अमावास्या थी। किशोरी माँ ने बतलाया कि अमावास्या की रात्रि में बहुत दूर-दूर से गुप्त साधकों का आगमन होता हैं यहाँ। सच पूछो तो उन्हीं के दर्शन लाभ के निमित्त मेरा आना हुआ है यहाँ।

क्या उनसे मेरा भी साक्षात्कार होगा - मैंने पूछा? हाँ क्यों नहीं, लेकिन तुम बोलना नहीं। अपने स्थान पर मौन साधे बैठे रहना बस।

दूसरे दिन सायंकाल के समय कक्ष की विशेष रूप से सफाई की गयी। कालीन बदला गया। चारों ओर मखमल के आसन बिछाये गये। लाल-पीले पताकाओं से कक्ष को सजाया गया। विशेष रूप से वातावरण आध्यात्मिक हो उठा एक बारगी।

रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हुआ। सम्पूर्ण हिम प्रान्त डूब गया अमावास्या की गहन कालिमा में। चारों ओर घोर निस्तब्धता छा गयी। सहसा उस अराजकता भरी रात में हिम-वर्षा होने लगी और तुफानी विलाप से गूँज उठा गहन कालिमा-मय निस्तब्ध वातावरण।

अपने भव्य आसन पर बैठे थे विशेष मुद्रा में उस समय सुमति प्रज्ञ। और उनके आसन के समीप ही भूमि पर बिछे हुए मखमल के आसन पर किशोरी माँ के साथ मैं भी बैठा हुआ था चुपचाप मौन साधे। सहसा मेरी दृष्टि चारो ओर कालीन पर बिछे मखमली आसनों की ओर घूम गयी। आश्चर्यचकित रह गया मैं एक बारगी। सभी आसनों पर मनुष्य से मिलती जुलती एक-एक घूम्राकृतियां बैठी हुई थी। सभी आकृतियाँ पारदर्शक और प्रकाशमयी थीं। आश्चर्य और कौतूहल के भाव से उन आकृतियों को मैं अपलक देख ही रहा था कि तभी कानों में किशोरी माँ का स्वर सुनाई पड़ा वह कह रही थीं- आसनों पर विराजमान जिन पारदर्शक और प्रकाशमयी आकृतियों को देख रहे हो वे सूक्ष्म शरीर धारी महात्मागण है जो सूक्ष्म लोकों से यहाँ पधारे है। कुछ समय पश्चात् वे सभी अणुओं को संघठित कर भौतिक पंच तत्वों के आधार पर स्थूल काया में अपने आपको परिवर्तित कर लेंगे। वास्तव में थोड़ी ही देर बाद वे घूम्राकृतियां धीरे-धीरे पार्थिव

काया में परिवर्तित हो गयी। कोई यह सोच ही नहीं सकता था कि आसनो पर विराजमान वे महात्मागण कभी धूम्राकृत रहे होंगे। महात्माओं का मुंख मण्डल साधना के प्रखर तेज से दप दष कर रहा था। सभी मन्द-मन्द मुस्करा रहे थें। सुमति प्रज्ञ ने सभी को प्रणाम किया और फिर शून्य में किसी को कुछ संकेत किया। मैंने देखा संकेत मात्र करने से ही सभी महात्माओं के सामने विभिन्न प्रकार की भोजन सामग्री की थाली उपस्थित हो गयी। सभी लोग एक साथ भोजन करने लगे।

यह सब योग सृष्टि है किशोरी माँ पहले ही की तरह मेरे कान में बोली - अभी कुछ और देखोगे तुम। बस शान्त बैठे रहना।

भोजन के पश्चात् सभी थालियाँ स्वयं अपने आप अपने स्थान से गायब हो गयी। और कुछ क्षणों के पश्चात् कक्ष का सारा वातावरण चन्दन की सुगन्ध से भर उठा। और उसी के साथ जाने किधर से देव कन्या सदृश कई नवयुवतियाँ कक्ष में आकर खड़ी हो गयी नृत्य की मुद्रा में। सभी नवयुवतियाँ अति सुन्दर थी। उनके यौवन से परिपूर्ण देह दृष्टि पर विभिन्न रंगों की रेशमी साड़ियाँ थी और थे विभिन्न प्रकार के अलंकार और आभूषण। सभी षोडशी थीं और नृत्य विद्या में पारंगत। कहने की आवश्यकता नहीं सुमति प्रज्ञ का संकेत प्राप्त करते ही वे सुन्दरियाँ नृत्य करने लगी उन महात्माओं के सम्मुख। उनके सामूहिक नृत्य की सुमधुर झंकार से गूंज उठा सारे कक्ष का सुगन्धित वातावरण। मुँह बाये आश्चर्य में आकण्ठ डूबा हुआ देखता रहा मैं उन देव बालाओं का स्वर्गीय नृत्य न जाने कब तक।

बाहर तूफान थम गया था। हिम-वर्षा बन्द हो गयी थी। पूरब का आकाश धीरे-धीरे सफेद होने लगा था। मैंने देखा महात्मा लोग अब अपने अपने स्थान पर धूम्राकृति में परिवर्तित होने लगे थे और उन्ही के साथ ही नृत्यांगनाएँ भी अस्तित्व हीन होने लगी थी। कुछ ही देर बाद सुमति प्रज्ञ का विशाल कक्ष सूना हो गया एक बारगी।

बाद में पता चला किशोरी माँ ने ही सब कुछ बतलाया मुझे। वे सभी महात्मा सूक्ष्म शरीर धारी दिव्यात्माएँ थीं।

यह सब सुनकर घोर आश्चर्य और कौतूहल से भर उठा मेरा मन प्राण। सच पूछा जाय तो जो कुछ मैंने देखा सुना और अनुभव किया था उन सब पर सहसा विश्वास ही नहीं हो रहा था मुझको। दूसरे दिन सुमति प्रज्ञ से आज्ञा लेकन किशोरी माँ के साथ वापस मैं लौट आया चक्रेश्वरी मठ।

उसके बाद किशोरी माँ भी वहाँ अधिक नहीं रुकी नेपाल चली गयी वह। कहने की आवश्यकता नहीं इतने कम समय में हम दोनों को एक दूसरे के प्रति

न जाने क्यों इतना मोह हो गया था कि उनके जाते समय आँखे सजल हो उठी थी मेरी। कुछ न बोला जा रहा था और न तो कहा ही जा रहा था कुछ मुझसे। शायद मेरे मन के भाव को समझ गयीं किशोरी माँ। मेरी पीठ और मेरे सिर पर अपना कोमल हाथ फेरती हुई धीरे से बोली वह नेपाल में अब भेंट होगी। तुम्हारी वहाँ प्रतीक्षा करुंगी मैं, और इतना कह कर बगल में अपनी झोली दबाए मठ की सीढ़ियाँ धीरे-धीरे उतर गयी किशोरी माँ और अवरूद्ध कंठ से और सजल नेत्रों से मैं उस परम साधिका को जाते हुए देखता रहा मूक और पाषाणवत्।

❖

* पं० अरूण कुमार शर्मा की अन्य महत्वपूर्ण कृतियाँ *

तीसरा नेत्र (द्वितीय खण्ड)

*

मारण पात्र

(संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)

*

काल पात्र

(योग तंत्र के गूढ़ और गोपनीय प्रसंग)

*

कुण्डलिनी शक्ति

(संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)

*

परलोक विज्ञान

*

लोक से परलोक की ओर

*

अभौतिक सत्ता में प्रवेश

*

फाँसी

(भूत प्रेत कथा प्रसंग)

*

तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी

योग तंत्र कथा प्रसंग

*

मृतात्माओं से सम्पर्क

भूत प्रेत कथा प्रसंग

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

आगम निगम संस्थान

बी. 5/23 हरिश्चन्द्र रोड, वाराणसी - 221001

दूरभाष : 312293